

COLLECTION OF HINDU LAW TEXTS

No. 25 (4)

Śrī VAIDYANĀTHA DĪKSHITA'S

SMRTIMUKTĀPHALAM

(PART IV)

ŚRĀDDHA KĀṆDA

EDITED BY

J. R. GHARPURE, B. A., LL. B. (Honours-in-Law), F. R. S. A.
*Principal, Law College, Poona; Senior Advocate, Federal Court
of India, Fellow of the University of Bombay.*

BOMBAY.

First Edition

(All Rights Reserved.)

1940

Printed at the Aryabhushan Press, 915/1 Bhamburda Peth,
Poona City, by Mr. V. H. Barve and
Published by Mr. V. J. Gharpure, B. A., LL. B. at the Office
of the Collection of Hindu Law Texts,
Angre's Wadi, Vithalbhai Patel Road, Bombay 4.

धर्मशास्त्रग्रन्थमाला.

[ग्रन्थाङ्कः २५ (४)]

श्री

वैद्यनाथदीक्षितीय-

स्मृतिमुक्ताफलम्

(चतुर्थः खण्डः)

श्राद्धकाण्डम्



जगन्नाथ रघुनाथ धारपुरे,

बी. ए., एलएल. बी., (ऑनर्स-इन्-लॉ)

पण्यपत्तनस्थव्यवहारशालाया आचार्यः, मुम्बईविश्वविद्यालयसदस्यः

भारतसङ्घन्यायसभासदस्यः, लंदन राजकलासंघसदस्यः

इत्यनेन संशोधितं, मुद्रापितं, प्रकाशितं च ।

प्रथमावृत्तिः

शकाब्दा १८६१

क्रिस्ताब्दा १९४०

(सर्वेऽधिकाराः स्वायत्तीकृताः)

पुण्यपत्तने 'आर्यभूषण' मुद्रणालये 'विठ्ठल हरि बर्वे' इत्यनेन मुद्रितः,
मोहमय्यां 'विश्वनाथ जगन्नाथ धारपुरे,' इत्यनेन प्रकाशितश्च ।

श्री
श्री वैद्यनाथदीक्षितीयस्मृतिमुक्ताफलस्थ-
श्राद्धकाण्डस्य विषयानुक्रमणिका

| विषयः | पृष्ठम् | विषयः | पृष्ठम् |
|---------------------------------|---------|-------------------------------|--------------|
| स्नात्वा कर्म कुर्वीत | ५४९ | दीक्षितस्य संस्काराधिकारः | ... ५६० |
| ऊर्ध्वपुण्ड्रादिधारणम् | ... | प्रेतकार्यकर्तृक्रमः | ... ५६१ |
| भस्मरुद्राक्षादि | ... | औरसादिलक्षणम् | ... ५६२ |
| भगवत्तीर्थनिषेवणम् | ... | पौत्रदौहित्रयोः | ... ५६३ |
| सर्वप्रायश्चित्तम् | ... | पत्नी | ... ५६४ |
| कृच्छ्रादिस्वरूपम् | ... ५५० | रजोमध्ये पतिमृतौ | ... ५६५ |
| आपदि कर्त्रन्तरवरणादि | ... ५५१ | पत्नीदुहितृदौहित्रसमवाये | ... ५६६ |
| अन्त्यकाले भगवन्नामस्मरणादि | ... | प्रातृपुत्रः | ... ५६७ |
| दानविधिः | ... | पिंडदक्रमः | ... ५६८ |
| दानविशेषाः | ... | अनाथप्रेते | ... ५६९ |
| दशदानानि | ... ५५२ | अग्निनिर्णयः | ... ५७० |
| तत्र मंत्राः | ... | आहिताग्न्यानाहिताग्न्योः | ... ५७१, ५७२ |
| मरणादिनगुणदोषौ | ... ५५३ | द्विभार्याविषये | ... ५७३ |
| दानविशेषाः | ... | बहुपत्नीकस्य पत्नीमरणे | ... ५७४ |
| ऊर्ध्वोच्छिष्टादिप्रायश्चित्तम् | ... ५५४ | युगपन्मरणे | ... ५७५ |
| अस्पृश्यस्पृष्टमरणे | ... | अग्न्याधानात्पूर्वं यजमानमृतौ | ... ५७६ |
| सद्वादौ | ... | आहिताग्नेर्देवशांतरमरणे | ... ५७७, ५७८ |
| पर्युषितप्रायश्चित्तम् | ... ५५५ | विच्छिन्नाग्नेः | ... ५७९ |
| शवस्योपहतौ | ... ५५६ | प्रेताग्निसंधानविधिः | ... ५८० |
| निशादिमरणे | ... | आश्वलायनकारिकायाम् | ... ५८१ |
| सर्पहतस्य | ... | रजस्वलाद्यग्निसंधानम् | ... ५८२ |
| दाहादिप्रेतकर्तारः | ... ५५७ | अंसन्निधाने विशेषः | ... ५८३ |
| तेषां क्रमः | ... | संकल्पप्रकारः | ... ५८४ |
| ज्येष्ठता | ... ५५८ | प्रेतालंकरणम् | ... ५८५ |
| यमलयोज्यैष्ठ्यनिर्णयः | ... | प्रेतनिर्हरणप्रकारः | ... ५८६ |
| औरसाभावे दत्तादयः | ... ५५९ | आतुरव्यंजनम् | ... ५८७ |
| ब्रह्मचारिणः संस्काराधिकारः | ... | पथिबलिविधिः | ... ५८८ |
| अनुपनीतस्य | ... ५६० | दहनदेशनिरूपणम् | ... ५८९ |
| अकृतचूडस्य | ... | दहनदेशाः | ... ५९० |

| विषयः | पृष्ठम् | विषयः | पृष्ठम् |
|--|---------|--|----------|
| चिताग्निनाशे ... | ... ५८४ | आस्थिसंचयने वारादिदोषः ... | ६१० |
| „ प्रायश्चित्तम् ... | ... „ | श्मशानाग्न्यनुगतौ प्रायश्चित्तम् ... | ६११ |
| दहनानन्तरकृत्यम् ... | ... „ | प्रभूतबलिः ... | ६११ |
| वपनविधिः | | अन्तर्दशाहे दर्शादिसम्भवे ६१२, ६१४ | |
| ज्ञातिवपनविधिः ... | ... ५८५ | दर्शसंक्रमे ... | ६१३ |
| रात्रौ वपनविचारः ... | ... ५८६ | मातापितृविषये ... | ६१४ |
| पुत्रस्य „ ... | ... ५८७ | पुत्रव्यतिरिक्तकर्तृविषये ... | ६१५ |
| विवाहदीक्षादिमध्ये पितृमरणे ... | ... ५८८ | पाषाणोत्थापनम् ... | ६१५, ६१६ |
| गर्भिणीपतिविषये ... | ... ५८९ | अन्तर्दशाहागतपुत्रविषये ... | ६१७ |
| दशाहवपनविधिः ... | ... ५९० | असपिण्डादिदाहकानां मुख्यकर्तृसमागमे „ | |
| सर्वांगवपनम् ... | ... ५९१ | दशमदिनागतमुख्यकर्तृविषये ... | ६१८ |
| गर्भिण्योर्भार्ययोः एकस्याः प्रसवे ... | ... ५९२ | एकादशेऽग्नि अपराण्हात् ... | ६१९ |
| मातृपितृदीक्षामध्ये पत्नीप्रसवे ... | ... „ | कनिष्ठादिभूतसपिण्डस्य ज्येष्ठेन | |
| पितृमरणाब्दे केशधारणादि ... | ... „ | पुनःकरणम् ... | ६२० |
| सपिण्डीकरणादूर्ध्वम् ... | ... „ | वत्सरान्ते मृतिश्रवणे ... | ६२१ |
| आहिताग्निविषये ... | ... ५९४ | „ मातृपितृ „ ... | ... „ |
| सपिण्डीकरणानिमित्तक्षौरम् ... | ... „ | सपत्नीमातरि ... | ६२२ |
| नग्नप्रच्छादनश्राद्धम् ... | ... „ | प्रोषितभ्रातरि ... | ६२३ |
| उदकदानविधिः ... | ... ५९६ | अपुत्रसपिण्डमृतौ ... | ... „ |
| तोयाञ्जलिदानम् ... | ... ५९७ | कृतप्रेतकृत्यविषये ... | ... „ |
| दशमदिनपर्यन्तम् ... | ... ५९८ | ज्येष्ठे आगते ... | ६२४ |
| उदकसंख्या ... | ... ५९९ | दयाभागागते ... | ६२५ |
| पिण्डदानविधिः ... | ... „ | पुनर्दाहाविधिः ... | ६२६ |
| जलदानमंत्राः ... | ... ६०१ | तंत्रप्रविष्टस्य तंत्रमार्गेण संस्कारः ... | ६२७ |
| पिण्डद्रव्यादिनियमाः ... | ... ६०२ | आहितानाहितान्योः ... | ६२८ |
| शिलादिविपर्यासि ... | ... ६०३ | दाहमन्तरेणाप्यशौचम् ... | ... „ |
| प्रेतशरीरोत्पत्तिक्रमः ... | ... ६०४ | अस्थ्यभावे ... | ६२९ |
| आतुराधानविधिः ... | ... „ | अनेकसपिण्डपुनर्दाहविधिः ... | ६२९ |
| तदनन्तरकृत्यम् ... | ... „ | दुर्घृतस्य पुनःसंस्कारः ... | ६३० |
| एकोत्तरवृद्धिनवश्राद्धानि ... | ... ६०५ | प्रोषितस्य द्वादशाब्दादूर्ध्व संस्कारविधिः „ | |
| आशौचिनां नियमाः ... | ... ६०६ | मासाद्यज्ञाने विधिः ... | ६३१ |
| आस्थिसंचयनम् ... | ... ६०७ | कृतौर्ध्वदेहिकस्य पुनरागमने ... | ६३२ |
| पुनःसंस्कारः ... | ... ६०८ | पुनःसंस्कारकालः ... | ६३३ |
| „ तत्र संचयो न स्यात् ... | ... „ | अतीतपिण्डादेकास्थिसंचयनादौ ... | ६३४ |
| अस्थिनिक्षेपः ... | ... ६०९ | | |

| विषयः | पृष्ठम् | विषयः | पृष्ठम् |
|--|---------|--|---------|
| दशाहमध्ये ज्ञातिमरणे } ... ६३५ | | शस्त्रादिहतानामेकोद्दिष्टम् ... ६६२ | |
| संस्कर्तुर्विशेषः } ... ६३६ | | संन्यासिविषये पार्वणव्यवस्था ... ६६३ | |
| अन्तर्दशाहे मातापितृमरणसंनिपाते ... ६३६ | | सपिण्डीकरणविधिः ... ६६४ | |
| अनुमरणे ... ६३७ | | नक्षत्रवारादिदोषः ... ६६५ | |
| „ सापिण्ड्यकालः ... ६३७ | | वत्सरान्ते सपिण्डीकरणप्रकारः ... ६६६ | |
| „ „ क्रमः ... ६३८ | | वर्णभेदेन सापिण्ड्यकालनियमः ... ६६७ | |
| संघातमरणे दाहादिक्रमः ... ६३८ | | दर्शापाते एकादशाहे } ... ६६७ | |
| पितृव्यतिरिकानां ... ६३९ | | आहिताग्निकर्तृकसापिण्ड्यम् } ... ६६८ | |
| मरणानुक्रमापरिज्ञाने ... ६४० | | साग्निमत्त्वानग्निमत्त्वभेदे ... ६६८ | |
| पित्रोः संघातमरणे ... ६४० | | सापिण्ड्याकरणे शुभानधिकारः ... ६६९ | |
| अनुमरणविधिः ... ६४१ | | सापिण्ड्याधिकारिणः ... ६७० | |
| एकचित्यारोहणक्रमः ... ६४२ | | विवाहाद्यनन्तरम् ... ६७० | |
| अन्येषुः ... ६४२ | | गृहस्थब्रह्मचारिणोः ... ६७१ | |
| गर्भिणीसंस्कारः ... ६४३ | | पतितादीनां सापिण्ड्यनिषेधः ... ६७१ | |
| दशाहान्तरकृत्यम् ... ६४४ | | वैयुक्त्युक्तममृतसापिण्ड्यविधिः ... ६७२ | |
| वृषोत्सर्गः ... ६४४ | | क्रमसापिण्ड्यम् ... ६७३ | |
| एकोद्दिष्टम् ... ६४७ | | पतिवैयुक्त्युक्तसापिण्ड्यनिषेधः ... ६७४ | |
| तत्स्वरूपम् ... ६४८ | | सपिण्डीकरणप्रकारः ... ६७५, ६७६ | |
| अग्नौकरणादि ... ६४९ | | तृप्तिप्रश्नादि ... ६७६ | |
| अकृताद्यमासिकम् ... ६५० | | संसर्जनविधिः ... ६७७ | |
| अर्वाक्संवत्सरात्सपिण्डीकृते ... ६५१ | | मातृसापिण्ड्यविधिः ... ६७८ | |
| षोडशश्राद्धानि ... ६५२ | | बहुपत्नीकपक्षे ... ६७९ | |
| अपकृष्य कार्याणि ... ६५३ | | पक्षान्तराणि ... ६८० | |
| अन्तरितमासिकानि ... ६५४ | | मातुःसापिण्ड्ये गोत्रनियमः ... ६८१ | |
| ऊनमासिककालः ... ६५५ | | राजविशोः ... ६८२ | |
| ऊनमासिकवर्ज्यकालः ... ६५५ | | अनेकभर्तृकायाः ... ६८२ | |
| वत्सरान्तसापिण्ड्ये ... ६५६ | | अपुत्रायाः ... ६८३ | |
| अत्यब्द „ „ ... ६५६ | | बहुपुत्रसदभावे पुनःसपिण्डीकरणप्रकारः ... ६८३ | |
| शुभागमे मासिकापकर्षः ... ६५७ | | सपिण्डीकरणादौ अग्निनिर्णयः ... ६८३, ६८४ | |
| „ कार्याणि ... ६५७ | | अग्न्यभावे ... ६८५ | |
| मासिकानां पार्वणैकोद्दिष्टव्यवस्था ... ६५८ | | आहितानाहिताग्न्योः ... ६८६ | |
| प्रत्याब्दिके पार्वणविधिः ... ६५८, ६५९ | | सर्वाधानार्धाधानयोः ... ६८७ | |
| पितामहादीनाम् „ ... ६६० | | पत्न्यां रजस्वलायाम् ... ६८८ | |
| संबन्धिर्बाधवादीनाम् „ ... ६६१ | | सपिण्डीकरणनिर्णयः ... ६८९ | |
| | | सोदकुम्भश्राद्धम् ... ६९० | |

| विषयः | पृष्ठम् |
|---|----------|
| उत्तरकाले प्रेतकार्यम् ... | ६९१, ६९२ |
| पित्रोर्मरणाब्दे दर्शश्राद्धादिनिषेधः ... | ६९३ |
| एकस्मिन्दिने एककर्तृकैकोद्देश्ये } श्राद्धद्वयनिषेधः ... } | ६९३, ६९४ |
| देवताभेदे एकस्मिन्दिने श्राद्धद्वये ... | ६९४ |
| नित्यनैमित्तिकयोः मातृपित्रोः संनिपाते | ६९५ |
| अनेकश्राद्धसन्निपाते ... | ६९६, ६९८ |
| सपिण्डानां ,, ,, ... | ,, ,, |
| संपाते मरणक्रमेण ... | ६९७ |
| आब्धिकानिरूपणम् ... | ६९८ |
| ,, श्राद्धम् ... | ६९९ |
| मासनिरूपणम् ... | ,, |
| ऋतुनिर्णयः ... | ७०० |
| अयननिरूपणम् ... | ७०१ |
| संवत्सर ,, ,, ... | ७०१, ७०२ |
| चांद्रसौरमासौ ... | ७०३ |
| तिथिद्वैधे ... | ७०४ |
| संक्रमणदोषनिर्णयः ... | ,, |
| सौरतिथ्यलाभे चान्द्रतिथिग्रहणम् ... | ७०५ |
| आब्धिकप्रत्यवाये परित्यागः ... | ७०६ |
| श्राद्धीयतिथ्यादिनिरूपणम् ... | ७०७ |
| आरंभसमाप्तिकालाः ... | ७०८ |
| पार्वणश्राद्धकालनिर्णयः ... | ७०९ |
| सायंप्रातर्मार्ध्यदिनादि ... | ७१० |
| मुहूर्ताः पूर्वाणहादि ... | ७११ |
| कुतपः ... | ,, |
| पूर्वार्धव्यापित्वे ... | ७१२ |
| अपराह्ण ,, ... | ७१३ |
| विभक्तादीनाम् ... | ७१४ |
| विभक्तैः पृथगनुष्ठानम् ... | ,, |
| आमश्राद्धम् ... | ७१५ |
| आशौचांतरिते ... | ७१६ |
| ग्रहणादिसंभवे सांवत्सरिकश्राद्धविधिः ,, | ७१७ |
| श्राद्धे उद्देश्याः ... | ७१७, ७१८ |

| विषयः | पृष्ठम् |
|-------------------------------------|--------------|
| स्त्रीणां पृथक्श्राद्धविचारः ... | ७१९ |
| मातृमृतताहे ... | ७२० |
| जीवपितृकस्य मातृश्राद्धे विशेषः ... | ७२१ |
| अनुमरणाब्दिके ... | ७२२ |
| मलमासः ... | ७२३, ७२४, २५ |
| क्षयमासः ... | ७२५ |
| मलमासे कर्तव्यानि ... | ७२७ |
| ,, वर्ज्याणि ... | ७२८ |
| ,, देयानि ... | ७२९ |
| प्रथमाब्दिकं तु कर्तव्यमेव ... | ७३० |
| अन्यानि वर्ज्यावर्ज्याणि ... | ७३१ |
| नित्यादिक्रियाः ... | ७३२ |
| अनन्यगतिकानि कर्तव्यानि ... | ७३३ |
| सावकाशं तु न कार्यम् ... | ७३४ |
| दर्शश्राद्धनिर्णयः ... | ७३५ |
| व्यतीपातः ... | ७३६ |
| श्राद्धात्पूर्वं तिलोदकम् ... | ७३७ |
| अष्टकासु ... | ७३७ |
| दर्शश्राद्धकालनिर्णयः ... | ७३८ |
| सिनीवाली कुहूः ... | ७३९ |
| दिनद्वयव्यापिन्यामावास्यायाम् ... | ७४० |
| आहिताग्नेदर्शश्राद्धमेव ... | ७४१ |
| पिंडपितृयज्ञः ... | ७४२ |
| अमायां योगविशेषः ... | ७४३ |
| अर्धोदयमहोदयौ ... | ७४४ |
| अष्टकाः ... | ७४४ |
| महायलश्राद्धम् ... | ७४५ |
| कन्यागते सवितरि ... | ७४६ |
| यावद्वृश्चिकदर्शनम् ... | ,, |
| महालयकालः ... | ७४७ |
| वर्ज्यनक्षत्राणि ... | ७४८ |
| वर्ज्यतिथयः ... | ,, |
| भषात्रयोदश्याम् ... | ७४९ |

| विषयः | पृष्ठम् | विषयः | पृष्ठम् |
|--------------------------------------|--------------|---|-------------------|
| विषयशस्त्रादिहतानाम् ... | ... ७५० | न प्रसज्येत विस्तरः ... | ... ७७७ |
| मासिश्राद्धे उद्देश्याः ... | ... ७५१ | निमन्त्रितब्राह्मणकृत्यम् ... | ... ७७८ |
| अपुत्रादयः ... | ... ७५२ | अंगीकृतश्राद्धातिक्रमे दोषः ... | ... ७७९ |
| वृद्धिश्राद्धम् ... | ... ७५३ | निमन्त्रितब्राह्मणपरित्यागे ... | ... ७८० |
| श्राद्धत्रयकालभेदाः ... | ... ७५४ | श्राद्धदिनकृत्यम् ... | ... ” |
| श्राद्धे ब्राह्मणाः ... | ... ७५५ | श्राद्धकर्ता दंतधावनादि न कुर्यात् ... | ... ७८१ |
| अशक्तौ आमश्राद्धम् ... | ... ७५६ | श्राद्धकर्त्रा भोक्त्रा च वर्ज्याणि ... | ... ७८१ |
| श्राद्धभेदाः ... | ... ७५७ | भूशुद्धिः ... | ... ” |
| श्राद्धदेशाः ... | ... ७५७, ७५८ | श्राद्धद्रव्याणि ... | ... ” |
| अस्वामिकस्थलानि ... | ... ७५८ | धान्यानि, शाकफलादीनि ... | ... ७८३ |
| पुण्यक्षेत्राणि ... | ... ७५९ | श्राद्धे वर्ज्यद्रव्याणि ... | ... ७८३, ७८४, ७८५ |
| श्राद्धकालाः ... | ... ७६० | पाकस्थानात् बहिष्कार्याः ... | ... ७८६ |
| युगादिश्राद्धानि ... | ... ७६१ | श्राद्धे अनवेक्षणीयाः ... | ... ७८६ |
| मन्वन्तरादयः ... | ... ” | नमादयः ... | ... ” |
| ” श्राद्धानि ... | ... ७६२ | एतद्दर्शनदोषापगमे संस्करः कर्तव्यः ... | ... ” |
| काम्यश्राद्धक्रमः ... | ... ७६३ | शुद्धवत्यः ... | ... ७८७ |
| कालान्तराणि ... | ... ७६४ | निमन्त्रितेभ्यो देयद्रव्याणि ... | ... ” |
| श्राद्धे ब्राह्मणाः ... | ... ७६५ | श्राद्धदेशे प्रकल्प्यद्रव्याणि ... | ... ७८८ |
| तेषां परीक्षा ... | ... ” | आसनदानम् ... | ... ७८८ |
| पंक्तिपावना नियोज्याः ... | ... ” | राजतताम्रादिपात्राणि ... | ... ७८८ |
| पित्र्यब्राह्मणान्सम्यक्परीक्षेत ... | ... ७६६ | पुष्पादि, धूपाः ... | ... ७९० |
| सावित्रीजाप्यनिरताः ... | ... ७६७ | वस्त्राणि ... | ... ” |
| यतीन्, योगिनो वा भोजयेत् ... | ... ७६८ | श्राद्धप्रकारः ... | ... ७९१ |
| मुख्यकल्पाः अनुकल्पाः ... | ... ७६९ | मण्डलकरणम् ... | ... ” |
| विद्वांसमेव निमन्त्रयीत ... | ... ७७० | पादप्रक्षालनम् ... | ... ७९२ |
| वर्ज्या ब्राह्मणाः ... | ... ७७१ | अर्घ्यादि ... | ... ७९३ |
| निन्दिताचाराः ... | ... ७७१, ७७२ | आचमनविधिः ... | ... ७९४ |
| देवलकः परिवित्तिः परिवेत्ता ... | ... ७७३ | तदन्तरकर्तव्यम् ... | ... ” |
| उपपतिः, माहिषिकः ... | ... ७७४ | उपवेशनम् । उपवेशनक्रमः ... | ... ७९५ |
| पुत्राचार्यः ” ... | ... ” | आसनदानानन्तरम् ... | ... ७९६ |
| नशाः ... | ... ७७५ | विश्वेदेवावाहनम् ... | ... ७९७ |
| निमन्त्रणप्रकारः ... | ... ७७६ | पित्राद्यावाहनम् ... | ... ” |
| ब्राह्मणसंख्या ... | ... ७७७ | अर्घ्यपरिकल्पनम् ... | ... ” |
| श्राद्धे मित्रसंग्रहो न कार्यः ... | ... ” | पवित्रकरणम् ... | ... ७९८ |
| | | अर्घ्यदानम् ... | ... ७९९ |

| विषयः | पृष्ठम् | विषयः | पृष्ठम् |
|--|---------|--------------------------------------|---------|
| कुशगन्धपुष्पादिपूजा ... | ... ८०० | वित्तशाठ्यं न कर्तव्यम् ... | ... ८१४ |
| भूशुद्धिः ... | ... ८०१ | आशीर्ग्रहणम् ... | ... ८१५ |
| अग्नौकरणम् । विधिः ... | ... ” | पिण्डदानविधिः ... | ... ” |
| ” तत्र आहुतयः ... | ... ८०२ | कात्यायनादीनां विधिः ... | ... ८१६ |
| परिवेषणादिकम् ... | ... ८०३ | पिण्डदानस्थलम् ... | ... ८१७ |
| पात्राभिमन्त्रणम् ... | ... ८०४ | पिण्डप्राशनविधिः ... | ... ” |
| पात्रालम्भनम् ... | ... ८०५ | प्रतिपत्तन्तरम् ... | ... ” |
| आपोशनम् ... | ... ८०६ | उच्छिष्टसंमार्जनादि ... | ... ८१८ |
| अर्घ्येऽगुष्ठानिवेशनम् ... | ... ” | पिण्डप्रक्षेपः ... | ... ” |
| अभिश्रवणम् ... | ... ८०७ | पात्रचालनादि ... | ... ” |
| दातृभोक्तृनियमाः ... | ... ८०७ | तत्र विशेषः ... | ... ” |
| अपेक्षितदानम् ... | ... ८०८ | वैश्वदेवकरणे ... | ... ८१९ |
| दातृनियमाः ... | ... ८०८ | पितृशेषभोजनम् ... | ... ” |
| भोक्तृनियमाः ... | ... ८०९ | अभोजने दोषः ... | ... ” |
| अदत्तमन्त्रं न स्पर्श्येत् ... | ... ८०८ | अतिथ्यादीनां भोजने न दोषः ... | ... ” |
| हस्तपानं वर्ज्यम् ... | ... ८१० | क्षुद्रभावेऽप्यवश्यं भोक्तव्यमेव ... | ... ८२० |
| उच्छिष्टभागदानम् ... | ... ” | एकादश्यादौ प्रत्याम्नायः ... | ... ” |
| उच्छिष्टस्पर्शं ... | ... ” | श्राद्धदिने दातृभोक्तृनियमाः ... | ... ” |
| विष्णूमूत्रोत्सर्जने ... | ... ” | ब्रह्मचर्यम् ... | ... ” |
| वमने ... | ... ” | यथाशक्तिश्राद्धानुष्ठानम् ... | ... ” |
| छर्दितब्राह्मणभोजने ... | ... ८११ | संकल्पश्राद्धविधिः ... | ... ८२१ |
| पितृस्थानीयस्य तु वमने पुनःश्राद्धम् ... | ... ” | अत्यक्ताग्रेवे श्राद्धाधिकारः ... | ... ” |
| दीपनाशे ... | ... ” | आमश्राद्धविधिः ... | ... ” |
| विकिरणविधिः ... | ... ८१२ | तदधिकारिणः ... | ... ” |
| वृत्तिप्रश्नः ... | ... ” | आमश्राद्धे विशेषः ... | ... ” |
| अनन्तरकर्तव्यम् ... | ... ” | हिरण्यश्राद्धादिविधिः ... | ... ८२२ |
| विकिरदानम् ... | ... ८१३ | श्राद्धप्रशंसा ... | ... ” |
| गन्धूषकरणम् ... | ... ” | कृतेफलम् ... | ... ” |
| हस्तप्रक्षालनविशेषः ... | ... ” | अकरणे दोषः ... | ... ” |
| स्वस्तिवाचनं, दक्षिणादिदानम् ... | ... ८१४ | श्राद्धं पितॄणां फलप्रापकम् ... | ... ८२३ |

स्मृतिमुक्ताफलम् अथ श्राद्धकाण्डम् (४)



श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे । यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥१॥

विशुद्धविज्ञानधनस्वरूपं विज्ञानविश्राणनबद्धदीक्षम् ।

दयानिधिं देहभृतां शरण्यं देवं हयग्रीवमहं प्रपद्ये ॥ २ ॥

श्रितरामपदाब्जेन वैद्यनाथविपश्चिता । स्मृतीनां सारमालोच्य श्राद्धकाण्डं वितन्यते ॥३॥

“स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत” इति स्मरणात् स्नातस्यैव प्रायश्चित्तादिकर्मण्यधिकारात्

वारुणे स्नाने अशक्तो मुमूर्षुः ब्राह्मादिस्नानमाचरेत् । तदाह योगयाज्ञवल्क्यः—

“असामर्थ्याच्छरीरस्य वैषम्यद्विशकालयोः । स्नानान्येतानि तुल्यानि मंत्रादीनि यथाबलम् ” ॥ इति ॥ १०

स एव—

“मात्रं भौमं तथाऽऽग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च । मानसं यौगिकं चेति सप्त स्नानान्यनुक्रमात् ॥

“आपोहिष्ठादिभिर्मात्रं मृदालंभस्तु पार्थिवम् । आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ।

“यत्तु सातपर्वणेण दिव्यं तत्स्नानमुच्यते । मानसं ह्यात्मचिन्ता तु यौगिकं विष्णुचिन्तनम् ” ॥ इति ।

तत ऊर्ध्वपुंड्रं त्रिपुंड्रं वा यथास्वाचारं बिभृयात् । यथाह मरीचिः—

“सर्पं दृष्ट्वा यथा लोके दक्ष्णा भयविह्वलाः । ऊर्ध्वपुंड्रांकितं तद्वत् कपन्ते यमकिंकराः” ॥

विष्णुरपि—

“ऊर्ध्वपुंड्रधरो मर्त्योऽप्रियते यत्रकुत्रचित् । श्वपाकोऽपि विमानस्थो यमलोके महीयते ” ॥

तथा पाद्मे ब्रह्मगर्भसंवादे—

“यस्यांतकाले सग गोपिचंदनं बाह्वोर्ललाटे हृदि मस्तके वा ।

“प्रयाति लोकं कमलासखस्य गोबालघाती यदि ब्रह्महा भवेत् ” ॥

स्कांदे—“भस्मरुद्राक्षधारी तु पश्वपि प्रियते यदि । सोऽपि रुद्रत्वमाप्नोति किं पुनर्मानुषादयः ॥

“तुलसीधारणान्मर्त्यां विष्णुलोके महीयते ” ॥ इति ।

भगवत्तीर्थनिषेवणम् ।

तुलसीदलसंमिश्रतीर्थपानं च कुर्यात् । तथा च स्मृतिचंद्रिकायाम्—

“अंत्यकालेऽपि यस्यास्ये दीयते पादयोजिलम् । सोऽपि सद्गतिमाप्नोति यश्चाचारबहिष्कृतः” ॥ इति ।

विष्णुपादयोरित्यर्थः । नारदीये—

“हरिपादोदकं यस्मान्मयि त्वं सिक्तवान्मुने । प्रापितोऽस्मि त्वया तस्मात् तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

“तुलसीदलसंमिश्रमपि सर्षपमात्रकम् । गंगाजलं पुनात्येव कुलानामेकविंशतिम् ” ॥ इति ।

एकविंशतिमिति वचनात् शरीरे तीर्थसेचनमपि पावनमित्यवगम्यते ।

सर्वप्रायश्चित्तम् । ततः परिषदनुज्ञापूर्वकम् द्वादशाब्दकुच्छ्रूरूपं षडब्दकुच्छ्रूरूपं त्रयोकाब्द-

कुच्छ्रूरूपं वा सर्वप्रायश्चित्तं यथाशक्ति स्वपापानुसारेण कुर्यात् ।

“सर्वजन्मार्जितानीह भ्रूणहत्यादिकान्यपि । सर्वपापानि नश्यति कुच्छ्रैर्द्वादशवार्षिकैः ॥

“जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्पातकं चोपपातकम् । अर्वाक् तु भ्रूणहत्यायाः षडब्दान्नश्यति ध्रुवम् ॥

१ क-यदि वा ब्रह्महा स्यात् । २ क्ष-यथा विक्रियते । ३ क-सिक्तवानिति ।

“अद्याप्यसकृदभ्यस्तं बुद्धिपूर्वमघं महत् । तच्छुद्ध्यत्यब्दकृच्छ्रेण महतः पातकाहते ” ॥ इति ।
त्रिंशत्कृच्छ्रा अब्दकृच्छ्राः ।

कृच्छ्रतत्प्रतिनिधिस्वरूपम् । कृच्छ्रोऽत्र प्राजापत्यः । तत्स्वरूपं मनुनोक्तम् (११।२११)—

“ज्यहं प्रातश्चयहं सायं ज्यहमद्यादयाचितम् । ज्यहं न किंचिदश्रीयात् प्राजापत्यं चरन् द्विजः ” ॥

५ तस्य स्वरूपतोऽनुष्ठानाशक्तैः प्रतिनिधिरेवानुष्ठेयः ।

“कृच्छ्रप्रतिनिधिं कुर्याद्भोभिरेव सवत्सकैः । गवामभावे निष्कं स्यात्तदर्थं पादमेव वा ॥

“पादहीनं न कर्तव्यमिति शातातपोऽब्रवीत्” ॥ इति स्मरणात् । **विज्ञानेश्वरोऽपि** (पृ. ३४२ पं. ५)

“प्राजापत्यक्रियाशक्तौ धेनुं दद्याद्विचक्षणः । धेनोरभावे दातव्यं तन्मूल्यं नात्र संशयः ॥

“धेनोरभावे निष्कं स्यात्तदर्थं पादमेव वा । पादहीनं न कर्तव्यमिति वेदविदो विदुः ” ॥ इति ।

१० प्रतिनिध्यन्तरमुक्तं हेमाद्रौ—

“कृच्छ्रोऽयुतं तु गायत्र्या विप्रदादशभोजनम् । तिलहोमसहस्रं वा सममेतच्चतुष्टयम् ” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे च—

“कृच्छ्रो देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम् । तिलहोमसहस्रं च वेदपारायणं तथा ॥

“षष्ठिश्चतुर्विंशतिर्वा भोज्या द्वादश वा द्विजाः । तावद्भोजनपर्याप्तं धान्यं तन्मूल्यमेव वा ॥

१५ “तत्समृद्धसमृद्धिभ्यां संख्यावैषम्यभाषणम् ” ॥ इति ।

तथा **विज्ञानेश्वरीये** (पृ. ३४३ पं. २०—२५)—

“कृच्छ्रे पंचातिकृच्छ्रे त्रिगुणमहरहस्त्रिंशदेवं तृतीये ।

“चत्वारिंशच्च तप्ते त्रिगुणगुणिता विंशतिः स्यात्पराके ॥

“कृच्छ्रे सातापनाख्ये भवति षडधिका विंशतिः सेव हीना ।

२० “द्वाभ्यां चांद्रायणे स्यात्तपसि कुशलो भोजयेद्विप्रमुख्यान् ” ॥ इति ।

अहरहरिति सर्वत्र संबध्यते । तृतीयः कृच्छ्रातिकृच्छ्रः । अत्र प्राजापत्यादिसंकलनया विप्राणां

षष्ठिभोजनानि भवन्ति । एवं अतिकृच्छ्रादावहनीयम् । **स्मृत्यन्तरे—**

“कृच्छ्रादिकरणाशक्तौ प्रत्याम्नायान् समाचरेत् । प्राजापत्ये तु गामेकां दद्यात्सांतपने द्वयम् ॥

“कृच्छ्रोऽयुतं तु गायत्र्या उपवासस्तथैव च । समुद्रगानदीस्नानं सममेतच्चतुष्टयम् ” ॥ इति ।

२५ नदीस्नानं भूतिकास्नानं विधिपूर्वकम् ।

पराशरः—

“पुण्यतीर्थेनार्द्रशिरः स्नानं द्वादशसंख्यया । द्वियोजनं तीर्थयात्रा प्राजापत्यसमं स्मृतम् ” ॥ इति ।

आपदि कर्त्रन्तरवरणादि ।

दुर्बलस्यापत्काले स्वयं व्रतं कर्तुमशक्तश्चेत् ब्राह्मणैः कारयेदित्याह **पराशरः** (६।५०)—

३० “व्याधिव्यसनिनि श्रान्ते दुर्भिक्षे डामरे तथा । उपवासो व्रतं होमो द्विजैः संपादितानि वै ” ॥ इति ।

व्याधिव्यसनी रोगग्रस्तः । डामरं परराजाद्युद्रपवः । अत्यंतापदमभिप्रेत्य पक्षांतरमाह **स एव** (६।५१)—

“अथवा ब्राह्मणास्तुष्टाः सर्वं कुर्वन्त्यनुग्रहम् । सर्वांस्त्वामानवाप्नोति द्विजसंपादितैरिह ” ॥ इति ।

महापुरुषवचनमात्रसंपादितैराशीविशेषैरशेषकामप्राप्तिर्भवति । अत्र पापक्षयो भवतीति कोऽयं विस्मयः । महापुरुषसंकल्पमात्रादेव कामप्राप्तिरथ श्रूयते (मुण्डकोपनिषद् ३-१-१०)—

३५ “यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान् ।

तं तं लोकं जयते तांश्च कामान् तस्मादार्त एवमभ्युच्चरेत् भूतिकां ” ॥ इति ।

१ क्ष-संज्ञाः । २ ख-दिवसकल्पनया । ३ क्ष-कोऽपि समयः । ४ आनंदाश्रमीयग्रन्थां १ पृ. ६० ।

५ क्ष-दात्मज्ञं स्वचैत् ।

महदनुग्रहविशेषं दर्शयति देवलः—

“ प्रायश्चित्तं यथोद्दिष्टमशक्यं दुर्बलादिषु । इष्यतेऽनुग्रहस्तेषां लोकसंग्रहकारणात् ” ॥ इति ।
पराशरोऽपि (६।५२) ।

“ दुर्बलेऽनुग्रहः प्रोक्तस्तथा वै बालवृद्धयोः । ततोऽन्यथा भवेदोषस्तस्मान्नानुग्रहः स्मृतः ” ॥ इति ।
ततोऽन्यथा प्रबलानुग्रह इत्यर्थः । दुर्बलस्य महदनुग्रहात् शुद्धिं दर्शयति स एव (६।६०-६१)— ५

“ ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं तीर्थभूता हि साधवः । तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यति मलिना जनाः ॥
“ ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः । सर्वदेवमयो विप्रो न तद्वचनमन्यथा ” ॥ इति ।

अनुग्रहयोग्यस्य दुर्बलस्य नियमविधानेऽपि प्रत्यवाय इत्याह स एव (६।६४)—

“ शरीरस्यात्यये प्राप्ते वदन्ति नियमांस्तु ये । महत्कार्योपरोधेन तत्पापं तेषु गच्छति ” ॥ इति ।
शरीरस्यात्ययो मुमूर्षोर्भूम्यां शयनं तस्मिन्प्राप्ते सति तेन कर्तुमशक्यं प्राजापत्यादिनियमं कर्तव्यत्वेन १०

ये वदन्ति तेषु तत्पापं गच्छति । तत्र हेतुः—‘ महत्कार्योपरोधेन ’ इति महतां देवतोपासकानां
कार्यं महत्कार्यम् । अन्तकाले देवतास्मरणकीर्तनादि । तस्योपरोधः प्रतिबन्धः । मुमूर्षुर्हि परिसरवर्तिभि-
रासैर्बोधितो देवतां स्मर्तुमुद्युक्ते तदानीमेतद्वक्तव्यतां श्रुत्वा कर्तुमशक्नुवन्त्याकुलचित्तः
पूर्वमुद्युक्तां देवतास्मृतिमपि परित्यजति सोऽयं पुरुषार्थप्रतिबन्धः । स्वस्थशरीरस्य पूर्वोक्तः
कार्योपरोधः कदाचिदपि नास्ति

“ स्वस्थस्य मूढाः कुर्वन्ति वदन्यनियमं तु ये । ते तस्य विघ्नकर्तारः पतन्ति नरकेऽशुचौ ” ॥ इति स्मरणात् । १५

अन्त्यकाले भगवन्नामकीर्तनम् । अन्त्यकाले हरिहरनामकीर्तनादिफलं स्मर्यते—

“ यथाकथंचिद्भेदि विंदे कीर्तिते वा श्रुतेऽपि वा । पापिनोऽपि विशुद्धाः स्युः शुद्धा मोक्षमवाप्नुयुः ॥

“ शिवशिवशिव चेति व्याहरन्वै त्रिवारं त्यजति निजतनुं यः स्वायुषोऽन्यक्षणेऽस्मिन् ।

“ भवति भवभयानां छेदकः पूर्वशब्दो न भवत इतरौ तौ कल्पितात्मोपकारौ ॥ २०

“ यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावमवाप्तिवितः ” ॥ इति ।

महदवलोकनं च कार्यम्

“ महापातकयुको वा युको वा सर्वपातकैः । परं पदं प्रयात्येव महद्भिरवलोकितः ” ॥ इति स्मरणात् ।

दानविधिः । मुमूर्षुः परलोकार्थं यथाशक्ति दानं कुर्यात् ।

“ इतः प्रदानं ह्यमुष्मिन् लोके प्रजा उपजीवन्ति ” इति श्रुतेः (तै.सं. * ३।२।९) । तथा महाभारते— २५

“ विद्या प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः । आतुरस्य भिषङ् मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः ॥

“ षडशीतिसहस्राणि योजनानां युधिष्ठिर । मानुषस्य च लोकस्य यमलोकस्य चांतरम् ॥

“ न तत्र वृक्षछाया वा न वाप्यो न च दीर्घिकाः । न ग्रामो नाश्रमो वापि नोद्यानं काननानि वा ॥

“ न किञ्चिद्विश्रमस्थानं पथि तस्मिन् युधिष्ठिर । कंटकाकीर्णमार्गेण तप्तवालुकपांसुना ॥

“ दह्यमानास्तु गच्छन्ति नरा दानविवर्जिताः । तस्माद्दानं तु कर्तव्यं मृतिकाले कथंचन ” ॥ इति । ३०

दानविशेषमाह शातातपः—

“ अन्नपानाश्वगोवस्त्रभूमिशय्यासनानि च । प्रेतलोके^१ प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः ॥

“ तिलाः पापहरा नित्यं तद्दानं तु प्रशस्यते । यो^२ हिरण्यं ददात्यन्ते ह्यमृतत्वं भजेत सः ” ॥ इति ।

१ खग-विशदयति । २ ख-द्विजाः । ३ क्ष-न स्वस्थस्य कदाचन । ४ भ. गी. अ. ८।६ ।

५ क्ष-काले । ६ क्ष-गो । * (आनंदाश्रम पृ. २७४)

मुमुक्षूणां ब्रह्मविदामपि गृहस्थानामीश्वरप्रीत्यर्थं देयमेव

“दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः” इति स्मरणात् (भ. गी. अ. १७।२५(२)) ।

संज्ञाहानौ मरणेऽपि वा हितैषी पुत्रादिर्दद्यात् “आतुरो वाऽथ पुत्रो वा दद्युरासन्नबांधवाः” इति व्यासस्मरणात् । स्मृतिरत्नेऽपि—

५ “उत्क्रांतिवैतरण्यौ च दश दानानि चैव हि । प्रेतेऽपि कृत्वा तं प्रेतं श्वधर्मे नियोजयेत्” ॥ इति ।

प्रचेताः—

“गोभूतिलहिरण्याज्यवस्त्रधान्यगुडानि च । रौप्यं लवणमित्याहुः दश दानानि पंडिताः ॥

“एतानि दश दानानि नराणां मृतजन्मनोः । कुर्याद्भूयुदयार्थं च प्रेतेऽपि हि परत्र च ॥

“भूमिर्भोजनपर्याप्ता द्रोणद्वयमितास्तिलाः । निष्कत्रयं सुवर्णं स्यादाज्यं प्रस्थचतुष्टयम् ॥

१० “सूक्ष्मवस्त्रद्वयं धान्यं सार्धस्यारीकमुच्यते । गुडं षष्टिपलं चैव रौप्यं निष्कचतुष्टयम् ॥

“लवणं सार्धस्यारीकं दशदानं प्रमाणतः” ॥ इति । भारते—

“यो मृत्युकाले संप्राप्ते गां ददाति पयस्विनीम् । गवा दर्शितमार्गस्तु ब्रह्मलोके महीयते ॥

“चतुःसागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् । दत्त्वा यत्फलमानोति सालग्रामात्तदश्नुते ॥

“ब्रह्मांडकोटिदानेन यत्फलं भवति प्रभो । तत्फलं समवाप्नोति शिवलिंगप्रदानतः ॥

१५ “हिरण्यं भूमिदानं च तैलान्शक्त्या च दापयेत् । कुटुंबिने दरिद्राय श्रोत्रियाय तपस्विने ॥

“यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं स्वर्गसाधनम् । गृहीतदानपाथेयाः प्रयांति त्रिदिवं नराः ॥

“आतुरो वाऽथ पुत्रो वा दद्युरासन्नबांधवाः” ॥ इति ।

दशदानमन्त्रा दानप्रकरणेऽभिहिताः । उत्क्रांतिगोदाने तु मंत्रः

“अत्युत्क्रांतौ प्रवृत्तस्य सुखोत्क्रमणसिद्धये । तुभ्यं संप्रददे धेनुमिमांमुत्क्रांतिसंज्ञिकाम्” ॥ इति ।

२० अन्त्यकाले जप्यमन्त्राः । अन्त्यकाले जप्यमन्त्रमाह शौनकः—

“नातानमिति सूक्तं तु ह्यंत्यकाले जपेत्सकृत् । लब्ध्वा चैव परं स्थानममृतत्वं च गच्छति” ॥

विष्णुः—

“आवयेत्पुण्यसूक्तानि पुण्यमन्त्राक्षराणि च । द्विजस्य दक्षिणे कर्णे पुत्रादिः प्राणसंशये” ॥

स्मृत्यंतरे—“कर्णे जपेदीशवाक्यं शास्त्रादिभिरुदीरितम्” ॥ इति । शुद्धिनिर्णये च तद्व्याख्यातम्

२५ “ईशवाक्यं पंचाक्षरी अष्टाक्षरी रामषडक्षरी प्रणव उपनिषद्वाक्यानि च” इति ।

आपस्तम्बः—

“‘ब्रह्मविदामोति परं’ ‘भृगुर्वै वारुणिः’ इत्येतावनुवाकौ ब्रह्मविदो दक्षिणे कर्णे जपति । इतरेषां

‘आयुषः प्राणम्’ इति । मरणसमीपकाले शुद्धभूमौ दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु दक्षिणाशिरसं संवेष्ट्य

मुमुक्षूः ब्रह्मविदो दक्षिणे कर्णे ‘ब्रह्मविदामोति’ ‘भृगुर्वै वारुणिः’ इत्यनुवाकद्वयं इतरस्य

३० कर्णे ‘आयुषः प्राणम्’ इत्यनुवाकं संनिहितः पुत्रादिः कश्चिज्जपेदित्यर्थः ।

तथा बोधायनीये—

“भूमौ दर्भास्तृतायां तं शाययेन्मृतिसंशये । जपेत्तदक्षिणे कर्णे आयुषः प्राणमित्यपि” ॥

कात्यायनः—

“ दुर्बलं स्नापयित्वा च शुद्धचेलाभिसंवृतम् । दक्षिणाशिरसं भूमौ बहिष्मत्यां निवेशयेत् ॥

“ मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे ब्रह्ममंत्रान् जपेत्सुतः ” इति । वसिष्ठो विशेषमाह—

“ पितुर्मरणकाले तु पुत्रस्तु ऋणमोचनात् । मस्तकं तु समाधाय दक्षिणेऽस्य तु जानुनि ॥

“ श्रावयेत्पुण्यसूक्तानि पुण्यमंत्राक्षराणि च । ततस्तु निर्गते वायौ कुशग्रेषु विनिक्षिपेत् ” ॥ इति । ५

मरणदिनगुणदोषौ गौतमः— “ दिवोत्तरायणे शुक्लपक्षे च मरणं शुभम् ।

“ भद्रे त्रिपदनक्षत्रे भृग्वंगारबृहस्पतौ । मरणं दहनं चास्थिसंचयं त्रिगुणं भवेत् ॥

“ भद्रे तु भूमिदानं स्यात् त्रिपदक्षे हिरण्यकम् । वारे वाराधिदेवानां पूजनं मृत्युनाशनम् ॥

“ तिलैः प्रतिकृतिं कृत्वा दहेत् दोषोपशान्तये ” ॥ इति । मार्कण्डेयः—

“ उत्तरायणगे सूर्ये उत्तमा मृतिरुच्यते । शुक्लपक्षे मृतिस्तत्र श्रेष्ठा वह्निमृतिः शुभा ॥ १०

“ श्रेष्ठा तत्रापि मध्यान्हे उभयोः पक्षयोरपि । एकादश्यां मृतिः श्रेष्ठा मोक्षदा सर्वकामदा ” ॥

वह्निमृतिः तृतीयायां मरणम् । भारतेऽपि—

“ स्यादुत्तरायणे यस्य मृतिस्तत्रोत्तमा गतिः । शुक्लपक्षे हि मध्यान्हे कूर्णेऽप्येकादशीदिने ” ॥

गार्ग्यः—

“ भद्रे भूमिप्रदानं स्यात् त्रिपदे तु हिरण्यकम् । अंगारके त्वनद्धाहौ^३ गुरौ वस्त्रं तु दक्षिणा ॥ १५

“ शुके रजतदानं स्यात्तत्तद्व्यप्रदः सुखी । वारे वाराधिदैवत्यं द्रव्यं दत्त्वा न दोषभाक् ” ॥ इति ।

एवं स्मृतिषूक्तो वारादिनिषेधः कालातिक्रमविषयः । प्रत्यक्षमरणे तु न दोष इत्याह लोकाक्षिः—

“ प्रत्यक्षे तु न किञ्चित् परोक्षे तु सूक्ष्मतः पश्येत् ” इति । स्मृत्यन्तरेऽपि—

“ प्रत्यक्षमरणे पित्रेण पश्येत्तिथिवारभम् । नैव दोषावहं प्रोक्तमन्येषामपि सर्वदा ॥

“ परोक्षे सूक्ष्मतः पश्येन्मृतौ तु तिथिवारभम् ” ॥ इति । बृहस्पतिः—

“ मातापित्रोर्मृतिप्राप्तौ पुत्रैर्दाहादिकर्म च । प्रातःकाले तु कर्तव्यं तिथ्यादिर्न तु दोषकृत् ” ॥ इति । २०

वसिष्ठः—

“ वैधे कर्मणि तु प्राप्ते कालदोषं न चिन्तयेत् । सद्यः क्षौरं प्रकुर्वीत सद्यः श्राद्धादि कर्म च ” ॥ इति ।

एवं च प्रत्यक्षमरणे यद्यपि वारादिदोषो नास्ति तथापि शंकाकाले शापानुत्तये मनःप्रीतये च

ब्राह्मणेभ्यः शक्तिः किञ्चित् दत्त्वाऽनुज्ञाप्य शंकितदोषान्नाशयेत् । तदाह हारीतः—

“ कुर्वीत सर्वकर्माणि ब्राह्मणानामनुज्ञया । ब्राह्मणैरप्यनुज्ञानाद्दोषो नश्यत्यसंशयः ” ॥

स्मृत्यन्तरेऽपि—

“ ब्राह्मणानां विना वाक्यैः क्रियाः स्युर्निःफलाः स्मृताः । कर्तव्या ब्राह्मणानुज्ञाकर्माणां परिपूर्त्ये ” ॥ इति ।

महदनुग्रहश्च यथाशक्ति द्रव्यदानेन कारयितव्यः “ दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् ” इति श्रुतेः (तै. आरण्यके) ।

“ दानेन निर्दोषा भवन्ति ” इत्यापस्तम्बस्मरणात् (१।१९।६) । “ ब्राह्मणान्सम्यगभ्यर्च्य ३०

पृच्छेत्कनकभूषणैः ” इति भरद्वाजस्मरणाच्च । एतच्च स्नात्वा र्द्रवासाः कुर्यात् ।

“ स्नात्वा स्वशक्त्या द्रविणं दत्त्वा सभ्यान्प्रदक्षिणम् । परीत्यैतैरनुज्ञातः कर्म संकल्पयेत्ततः ” ॥ इति

स्मरणात् ।

स्मृत्यन्तरे—

“आर्द्रवस्त्रो बहिः स्नातो नियतो वाग्यतः शुचिः शक्त्या दत्त्वाऽभ्यनुज्ञातः कुर्यात्संकल्पमादितः” ॥ इति ।

कर्तुः संस्कारयोग्यतासिद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तमुक्तं चंद्रिकायाम्—

“कार्ताधिकारसिद्ध्यर्थं त्रीन् कृच्छ्रान् पंच सप्त वा । चरेद्दत्त्वा तु दानाद्यैः पैतृमेधिकमाचरेत्” ॥ इति ।

५ अत्र कृच्छ्रप्रतिनिधिर्गवादिदानम् । तथा च स्मृत्यन्तरे—

“गवामभावे निष्कं स्यात् तदर्धं पादमेव वा । पादहीनं न कर्तव्यं ब्रह्मदंडं मनीषिभिः” ॥ इति ।

मृताहदाने वैशिष्ट्यमुक्तं चंद्रिकायाम्—

“उपरागसहस्राणि व्यतीपातायुतानि च । अमालक्षं तु द्वादश्याः कलां नार्हति षोडशीम् ॥

“एवंविधाया द्वादश्याः तिस्रः कोट्यर्धकोटयः । मातापित्रोर्मृताहस्य कलां नार्हति षोडशीम्” ॥ इति ।

१० ऊर्ध्वोच्छिष्टादिप्रायश्चित्तम् । मरणकालोपहतेः प्रायश्चित्तमाह पराशरः (१२।५५)—

“ऊर्ध्वोच्छिष्टमधोच्छिष्टमन्तरिक्षमृतौ तथा । कुच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत स्वाशौचमरणे तथा” ॥ इति ।

मरणकाले वान्तादिकमूर्ध्वोच्छिष्टं मूत्रादिकमधस्तनोच्छिष्टं तयोरन्यतरत् यदा संपद्यते तदा संस्कर्ता पुत्रादिः दानादिना प्रत्याप्तयेन प्राजापत्यत्रयं कुर्यात् । मंचकादिमरणं अंतरिक्षमृतिः ।

रजस्वलासूतिकादिमरणमाशौचमरणम् ।

१५ गौतमः—

“सूत्वा नारी मृता पश्चाद्दशाहाभ्यन्तरे यदि । न तस्या यमलोकद्वै निष्कृतिर्विबुवत्सरे ॥

“तद्दोषपरिहारार्थं चत्वार ऋत्विजः पृथक् । एक एव द्विजो वापि वारुणान् कलशान् क्षिपेत् ॥

“पूर्वादिदिक्षु सर्वत्र जलेनापूर्य यत्नतः । वरुणं पूजयेत्तत्र ऋत्विगेकश्चतुर्वर्षि ॥

“कलशान् पाणिभिः स्पृष्ट्वा मन्त्रानेतानुदीरयेत् । नमकं चमकं चैव पुरुषसूक्तं च वैष्णवम् ॥

२० “पवमानानुवाकश्च हिरण्यशृंगमिति क्रमात् । शान्तिभिर्दशभिश्चैव कलशानभिमन्त्रयेत् ॥

“अन्येन वाससाच्छाद्य सूतिकां कृतशौचिकाम् । मार्जयेदृत्विजस्तोयैः कलशस्थैः पवित्रजैः ॥

“आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैर्देवस्य त्वेति मार्जयेत् । ततः शवं बहिर्देशे स्थापयित्वाऽथ देशिकः ॥

“शातकुम्भोदकैः प्रोक्ष्य नूतनेनैव वाससा । आच्छाद्य कुणपं पश्चाद्देहदौपासनाग्निना” ॥

रजस्वलामरणेऽप्येवमिति हेमाद्रौ—

२५ “यथा पुष्पवती नारी दैवाद्यदि विपद्यते । तस्यास्तु निष्कृतिर्नास्ति रक्तकुण्डाद्भयंकरात्” ॥ इति ।

तथा त्रिकांडी चंद्रिकायाम्—

“प्रत्यक्षे चाप्रतिहतौ संस्कारेण च शोधनम् । कुर्यात्तत्राधरोच्छिष्टे प्राजापत्यत्रयं चरेत् ॥

“ऊर्ध्वोच्छिष्टेऽपि च तथा प्राजापत्यत्रयं चरेत्” ॥ चंद्रिकायाम्—

“अस्पृश्यस्पृष्टमरणे कृच्छ्रान्बद्धौतमोऽब्रवीत् । पराशरस्तु त्रीन्प्राह भृगुः पंच षडंगिराः” ॥

३० अस्पृश्याश्चंडालसूतिकोदक्यादयः । तैः स्पृष्टस्यास्नातस्य मरणे शक्त्यनुसारेण षट्कृच्छ्रादिकमित्यर्थः । देवालयादिमरणे प्रायश्चित्तमाह विष्णुः—

“मंढ्रे गोपुरे खट्वापासादे हर्म्यभित्तिषु । अकामतो मृतानां तु दापयेद्देन्दवद्वयम् ॥

“प्राजापत्यं चरेत्कुच्छ्रं पराकेण विशुध्यति” ॥ खट्वादावकाममरणे चांद्रायणद्वयं

कामतस्तु प्राजापत्यं पराकं च कुर्यादित्यर्थः ।

तत्प्रातिनिधिश्चतुर्विंशतिमते दर्शितः—

“प्राजापत्ये तु गामेकां दद्यात् सांतपने द्वयम् । पराकतप्तकृच्छ्रातिकृच्छ्रे तिस्रस्तु गाः स्मृताः ॥

“अष्टौ चांद्रायणे देयाः तिस्रो वा शक्यपेक्षया ” ॥ इति । स्मृत्यन्तरे—

“चांद्रायणं त्रयः कृच्छ्रा गायत्र्या अयुतत्रयम् । आप्लावनं महानद्यां सममेतच्चतुष्टयम्” ॥ इति ।

चतुर्विंशतिमते—“यस्य धान्यसमृद्धिः स कृच्छ्राग्निवतानि विप्रभोजनेन संपादयेत्” ॥ इति । ५

ब्राह्मणभोजनसंख्या चोक्ता—“कृच्छ्रे पञ्चाग्निकृच्छ्रे त्रिगुणमहरहः” ॥ इति । शुद्धिर्निर्णये—

“ऊर्ध्वोच्छिष्टाधोच्छिष्टं स्वर्गादिमरणाशुचिस्पर्शनियमलोपाख्यपञ्चनिमित्तप्रायश्चित्तान्येकैक-

निमित्तस्य त्रीणि कृच्छ्राण्येकैकं वा कृत्वा संस्क्रियात्” ॥ इति ।

पर्युषितप्रायश्चित्तम् । पर्युषितशवप्रायश्चित्तमाह गार्ग्यः—

“पंचविंशष्टीपूर्वं दिवा प्रेतेऽप्यसंस्कृतिः । दिवा वा यदि वा रात्रौ शवस्तिष्ठति कहिर्चित् ॥ १०

“तत्पर्युषितमित्याहुः दहने तस्य का गतिः ॥

“ब्राह्मणेभ्यो विधिं लब्ध्वा कृच्छ्रत्रयमथाचरेत् । पंचगव्येन संस्नाप्य पावमान्याभिमंज्य तु ।

“जलेन स्नापयित्वा च विधिवद्दहनं चरेत् । अन्यथा दहने तस्य सर्वं तन्निष्फलं भवेत्” ॥ इति ।

कात्यायनस्तु—

“प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैव विशोधयेत् । निर्द्विष्टकालवीक्षायां शवः पर्युषितो भवेत् ॥ १५

“दग्धः पर्युषितो यैस्तु पुत्रमित्रैश्च बंधुभिः । महाभयप्रदस्तेषां तिथ्यादींस्तत्र शोधयेत् ॥

“पंचगव्येन संस्नाप्य प्राजापत्यं समाचरेत् ॥

“पूतिगंधे तथा क्लिप्ते स्नाप्य गोमयवारिणा । ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥

“कुमिरुपपद्यते यस्य श्वकाकैश्च विदूषिते । कृत्वा तु पूर्ववत्स्नानं सपिषा मधुना ततः ॥

“पुण्याद्भिरभिषिच्यथ सेचयेद्बधवारिणा । गां दत्वा द्विजमुख्याय तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्” ॥ इति । २०

तप्तकृच्छ्रप्रातिनिधिः तिस्रो गावः “पराकतप्तकृच्छ्रातिकृच्छ्रे तिस्रस्तु गाः स्मृताः” इति स्मरणात् ।

वसिष्ठः—

“नासाग्रवर्तनादोषैः वायुना मृतवत्स्थितम् । अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात् पितृमेधमुपक्रमेत्” ॥ इति ।

“गृहकर्मावसाने तु जीवन्नौयुष्मतीं जपेत् ॥

“पथि कर्मावसानाद्वा श्मशाने यदि जीवति । घृतकुंभे निमज्ज्यैनं जातकर्मादि कारयेत् ॥ २५

“यामं यामद्वयं यस्य मृतिं निश्चित्य नान्यथा । ब्रह्महत्यामवाप्नोति कर्ता भवति निर्दितः” ॥

स्मृत्यन्तरे—

“ब्राह्मणान्मूर्तार्थः पूर्वः मृतः पर्युषितो भवेत् । वैखानसोदितं कार्यं प्रायश्चित्तं विशुद्ध्ये ॥

“याम्यपैतृकमंत्राभ्यां वैश्वदेवेन वै तिलान् । व्यस्ताभिश्च समस्ताभिः हुत्वा व्याहृतिभिर्दहेत्” ॥ इति

वैखानसोदितमंत्राः ‘यमो दाधार पृथिवीं०’ ‘उशंतस्त्वा हवामहे०’ ‘विश्वेदेवस्य नेतुर्मतीं०’

वृणीद्वे’ इति । व्यासस्तु—

“रवेरस्तमयात्प्राक् तु योग्यकाले तु दुर्लभे । श्वः प्रातरिष्टं दाहादि न हविस्तेन दूष्यति” ॥

अत्र व्यवस्थामाह बौधायनः—

“रात्रौ यदि मृतः कश्चित् प्रमादात्कालपर्ययात् । नवनाडीष्वधस्तात् चेद्ब्रह्मौ तु जुहुयाच्छवम् ॥

“ऊर्ध्वं श्वः प्रातरेव स्यात् न रात्रौ तु कदाचन” ॥ इति ।

“पुत्राः सर्वे पितुः प्रेष्ठाः पत्नी भ्राता सखाऽपि वा । अग्निदानादिकर्माणि कुर्युः पुज्यादयः पितुः” ॥ इति ।
जमदग्निः—

“ज्येष्ठपुत्रेण कर्तव्या दाहपिंडोदकक्रियाः । यदि कर्तुमशक्तः स्यात् सर्वमन्येन कारयेत्” ॥ इति ।
सर्वज्येष्ठस्याशक्तावसंनिधाने वा अवस्थितेषु पुत्रेषु मध्ये जन्मज्येष्ठेनैव कारयेत् । “जन्मज्येष्ठः
पितुः कुर्यात्” इति स्मरणात् । जन्मज्येष्ठ इत्यस्यार्थांतरमप्याहुः—भिन्नमातृकाणां पुत्राणां ५
समवाये यो जन्मतो ज्येष्ठः स एव पितुः कुर्यात् । न मातृतो ज्येष्ठः । सर्वत्र जन्मज्येष्ठस्यैव
ग्रहणादिति स्मरणात् । तथा च मनुः (१।१२५)—

“सहस्रस्त्रीषु जातानां पुत्राणां च विशेषतः । न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥

“जन्मज्येष्ठ्येन चाव्हानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम्” ॥ इति । यत्तु स्मृत्यन्तरे—

“ज्येष्ठो वाऽपि कनिष्ठो वा ज्येष्ठभार्यासुतो दहेत् । अग्निकार्यं प्रधानत्वाज्ज्येष्ठभार्यासुतोऽग्रजः” ॥ इति । १०

अन्यच्च—

“एककर्ता द्विभार्यश्रेडुभयोः पुत्रसंभवे । पितुर्मरणकाले तु ज्येष्ठपत्नीसुतोऽग्रजः” ॥ इति । अत्र
‘ज्येष्ठपत्नीसुत’ इति श्रेष्ठभार्यासुत इत्यर्थः । सवर्णस्त्रीजात इति यावत् । अन्यथा ‘सहस्र-
स्त्रीषु जातानाम्’ इति वचनविरोधापत्तेः ।

तथा च सवर्णभार्योत्पन्नस्यैव पितृऋणमोचनत्वमुक्तं बोधायनेन—

१५

“प्रजामुत्पादयेद्युक्तः स्वे स्वे वर्णे जितेंद्रियः । स्वाध्यायेन ऋषीन् पूज्य सोमेन च पुरंदरम् ॥

“प्रजया च पितृन् पूर्वान् अचृणो दिवि मोदते” ॥ इति । ज्येष्ठपत्न्यन्तरपुत्रः पितुरेव कुर्यात् ।

औरसत्वात् न सपत्नीमातुः भिन्नोदरोत्पन्नत्वात् कनिष्ठोऽपि स्वमातुः स्वयमेव कुर्यात् ।

“विदध्यादौरसः क्षेत्रे जनन्या और्ध्वदेहिकम् । तदभावे सपत्नीज” इति स्मरणात् ।

यमलयोज्यैष्ठ्यनिर्णयः ।

२०

यमलविषयेऽपि मनुः (१।१२६)—“यमयोश्चैकगर्भे तु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“यमयोजातयोर्ज्येष्ठो जन्मना प्रोच्यते बुधैः । गर्भस्य कस्यचिद्वेगे चिराज्जननदर्शनात्” ॥ इति ।

अन्यत्रापि—“यमयोजातयोर्ज्यैष्ठ्यमाधानं चेष्ट्यते बुधैः” इत्येतत् समभागस्थगर्भविषयम् ।

“पार्श्वयोः संस्थितौ गर्भौ तयोर्यः पूर्वजः स तु । ज्येष्ठ इत्युच्यते सद्भिर्जातकादिषु कर्मसु” ॥ इति २५

बादरायणस्मरणात् । अत एव उपर्यधोभागस्थगर्भविषये स्मृत्यन्तरम्—

“यमला चैकगर्भे तु स्त्री वा पुरुष एव वा । कनिष्ठ आद्यजातः स्यात् पश्चाज्जातोऽग्रजः स्मृतः” ॥ इति ।

स्थलविशेषापरिज्ञाने तु शिष्टाचारात् कनिष्ठ आद्यजातः स्यात् इति वचनार्थो ग्राह्यः तथा च भागवते—

“प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्यः प्राक् स्वदेहायमयोरजायत ।

“तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूत सोऽग्रतः” ॥ —श्रीधरीये व्याख्यातमिदं- ३०

‘यदा गर्भाधानसमये योनिपुष्पं विशदीर्य द्वेधा विभक्तं सत् प्राक् पश्चाद्भावेन योनिं प्रविशति
तदा यमो भवतः । तयोश्च पितृतः प्रवेशक्रमविपर्ययेण मातृतः प्रसूतिः

“यदाविशत् द्विधा भूतं वीर्यं पुष्पं परिक्षरत् । द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वैशविपर्ययात्” ॥ इति

पिंडसिद्धिस्मरणात् । स्वदेहात् पूर्वं यो जातः तस्य हिरण्यकशिपुरिति दितेः प्रथमं प्रसूतस्य हिरण्याक्ष इति नाम कृतवानिति ।

अथ पुत्रप्रतिग्रहानंतरमौरसजनने कनिष्ठोऽप्यौरस एव पितुर्दाहादि सर्वं कुर्यात्

“औरसे तु समुत्पन्ने पुत्रस्य ग्रहणादनु । औरसस्तु पितुः कुर्यात् तदा दत्तो विसर्जयेत् ॥

५ “औरसे तु समुत्पन्ने दत्तो ज्येष्ठो न चेष्यते ” ॥ इति स्मरणात् । जनयितुः पुत्रपौत्रप्रपौत्राभावे दत्त एव कुर्यात् ।

“पूर्वं भ्रातुः पितुश्चातौ कृत्यं रिक्थं च दत्तके । आब्दिकाद्यखिलं श्राद्धं कृत्वा रिक्थमवाप्नुयात् ॥

“दत्तस्य जनकापत्ये मृतेऽथ जनकेऽपि वा । संस्काराद्यखिलं कृत्वा दत्तो रिक्थमवाप्नुयात् ” ॥ इति

स्मरणात् । ऋष्यशृंगः—

१० “पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यं वै कारयेत् स्वधाम् । पितरो हिंसितास्तेन यस्त्वैवं कुरुते नरः” ॥ इति । स्वधा प्रेतकर्म । गर्भवानपि पित्रादीन् संस्क्रुर्यात् अन्यत्र न कुर्यादिति । तथा च वृद्धमनुः—

“वपनं दहनं वाऽपि प्रेतस्यान्यस्य गर्भवान् । न कुर्यादुभयं तत्र कुर्यादेव पितुः सदा ॥

“ज्येष्ठस्य चानपत्यस्य मातुलस्यासुतस्य च ” ॥ इति ।

वृद्धवसिष्ठश्च—“गर्भवता ज्येष्ठेन दाह्यः पिता माता चानपत्यो मातुलश्च ” इति ।

१५ अत्र मातुलग्रहणं मातामहादेरप्युपलक्षणम् । अत एव मातामहादेः संस्कारे गर्भवतो वपनं विहितम् ।

“मातामहापितृव्याणां मातुलग्रजयोर्मृतौ । श्वशुराचार्ययोरेषां पत्नीनां च पितृष्वसुः ॥

“मातृष्वसृभगिन्याश्च गर्भवानपि वापयेत् । सपिंडो वाऽसपिंडो वा संस्कर्ता वापयेत् द्विजः” ॥ इत्यादि ।

गौतमोऽपि—

“ज्येष्ठस्य चानपत्यस्य मातुलस्यासुतस्य च । अग्निदाहं तु यः कुर्यात् स केशान्वापयेद् बुधः” ॥ इति ।

२० स एव—

“अपुत्रस्य पितृव्यस्य ज्येष्ठस्याप्यसुतस्य च । अंतर्वाचं दहनं कुर्यात् केशश्मश्रूणि वापयेत्” ॥ इति ।

ब्रह्मचारिणः संस्काराधिकारः । ब्रह्मचार्यपि पित्रादीन्संस्क्रुर्यात् । सुमंतुः—

“मातुः पितुश्च कुर्वीत संस्थितस्यौरसः सुतः । व्रतस्थो वाऽव्रतस्थो वा एक एव भवेद्यदि ” ॥ इति ।

व्रतस्थ उपनीतः । स्मृत्यंतरेऽपि—

२५ “पित्रोश्चैव पितुः पित्रोरौरसस्याग्रजन्मनः । संस्कारादि क्रियाः कुर्यात् ब्रह्मचारी गुरोरपि” ॥ इति ।

अन्यत्रापि—

“दहनादि सपिंड्यन्तं ब्रह्मचारी करोति चेत् । अन्यत्र मातापित्रोः स्यादुपनीयं पुनर्व्रती” ॥ इति ।

अतः प्रेतकृत्यैकदेशकरणे न ब्रह्मचर्यहानिः कृच्छ्राचरणमेव । सपिंडीकरणमात्रकरणे न पुनरुपनयनदाहादिसापिण्ड्यान्तकरणे पुनरुपनयनमित्यर्थः । अत्र मातापितृग्रहणमाचार्यादिरुपलक्षणम् ।

३० तथा च वसिष्ठबोधायनौ (२३।७-८)—“ब्रह्मचारिणः श्वकर्मणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोराचार्याच्च ” इति । याज्ञवल्क्यश्च (प्रा. १५)

“आचार्यपित्रुपाध्यायान् निर्हृत्यापि व्रती व्रती । संकटाच्च न नाश्रियात् न च तैः सह संवसेत् ” ॥

संकटान्नमाशौचाच्च तैः आशौचिभिः । मनुरपि (५।९०)—

“आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् । निर्हृत्य तु व्रती प्रेतं न व्रतेन विगुज्यते ” ॥

३५ भृगुः—“मातामहं मातुलं च तत्पत्न्यौ चानपत्यके । व्रती संस्क्रुते यस्तु व्रतलोपो न तस्य हि” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“मातापित्रोर्व्रती कुर्यात् पितृमेधं सदैव हि । ज्येष्ठभ्रातुस्तथैव स्यादन्वेषां न कदाचन ” ॥ इति ।

अन्यत्रापि—

“मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोर्ध्वदेहिकम् । कुर्वन् मातामहस्यापि व्रती न भ्रश्यते व्रतात् ” ॥ इति ।

पुराणेऽपि—

“यथा व्रतस्थोऽपि सुतः पितुः कुर्यात्क्रिया नृप । उदकाद्या महाबाहो दौहित्रोऽपि तथाऽर्हति ” ॥ इति ।
उदाहृतेषु वचनेषु पितृव्यादेः कण्ठोक्त्यभावेऽपि गुरुत्वात् तत्संस्कारेऽपि न व्रतिनो व्रतहानिरित्याहुः ।

अनुपनीतस्यापि पितृसंस्काराधिकारः

अनुपनीतोऽपि पुत्रः पित्रोः संस्कारादि मंत्रवदेव कुर्यात् । तथा च **मनुः** (२।१७१)—

“ न ह्यस्मिन्विद्यते कर्म किंचिदा मौजिबंधनात् । नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ” ॥ इति । १०

स्वधानिनयशब्देन दाहादिसपिंडीकरणांतं प्रेतकर्म लक्ष्यते । ब्रह्म वेदः । अन्यत्र न वाचयेत् ।

पितृकृत्ये तु उच्चारयेत् । नात्र दोष इति व्याख्यातम् । **स्मृत्यन्तरेऽपि—**

“ पुत्रस्त्वनुपनीतोऽपि पित्रोः संस्कारमर्हति । अन्योऽप्युच्चारयेन्मंत्रान्सर्वास्तेनैव कारयेत् ” ॥

अन्य उपाध्यायादिरनुपनीतं वाचयेत् । तेन कर्माणि कारयेत् । न स्वयं कुर्यादित्यर्थः । **सुमन्तुरपि—**

“ नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म यावन्मौजी निबध्यते । मंत्राननुपनीतोऽपि प्रेतकृत्ये वदेत्पितुः ” ॥ इति । १५

वदेदेवैक इति पाठान्तरम् । तत्र प्रेतकृत्य इत्यध्याहर्तव्यम् । **वृद्धमनुरपि—**

“ कुर्यादनुपनीतोऽपि श्राद्धमेको हि यः सुतः । पितृयज्ञाहुतिं पाणौ जुहुयान्मंत्रपूर्वकम् ” ॥ इति ।

श्राद्धं सपिंडीकरणादि । **विश्वामित्रः—**

“ पित्रोरनुपनीतोऽपि विदध्यान्मंत्रवत्सुतः । और्ध्वदेहिकमन्ये तु संस्कृताः श्राद्धकारिणः ” ॥ इति ।

अन्ये भ्रात्रादयः उपनीताः श्राद्धकारिणः स्युः ।

“ कर्मशूद्रः स्मृतो विप्रो यावन्मौजी निबध्यते । तदूर्ध्वं मंत्रपूतेषु कर्मस्वप्यधिकार्यसौ ” ॥ इति

सुमंतुस्मरणात् । यत्तु

“असंस्कृतोऽनपत्यश्च ह्यग्निदानं समंत्रकम् । कर्तव्यमितरत् सर्वं कारयेदन्यमेव तु ” ॥ इति

कात्यायनवचनं तन्मंत्रोच्चारणाशक्तविषयम् । एतदेवाभिप्रेत्य व्याघ्रपादः—

“नवश्राद्धे मासिके च सपिंडीकरणे तथा । ऋत्विक्शशिष्यादिभिः कार्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेत्” ॥ इति । २५

शक्तः सर्वं प्रेतकर्म मंत्रवदेव कुर्यात् । अशक्तस्तु दाहमात्रं मंत्रवदेव कुर्यात् । अन्यत् सर्वं

प्रत्यासन्नेन कर्त्रन्तरेण दर्भप्रदानानुज्ञया कारयेत् । अयं च मंत्रोच्चारणाधिकारः त्रिवर्षकृतचूडस्य

त्रिवर्षस्य वा । तथा च **सुमंतुः—**

“अनुपेतोऽपि कुर्वीत मंत्रवत्पैतृमेधिकम् । यद्यसौ कृतचूडः स्याद्यदि वा स्यात् त्रिवत्सरः” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“पुत्रस्त्वकृतचौलोऽपि पित्रोः संस्कारमर्हति । चौलं ह्यविधिना कुर्यात् पश्चाच्चौलं यथाविधि” ॥ इति ।

पश्चात् सपिंडीकरणानन्तरम् ।

यत्तु व्याघ्रपादवचनं

“कृतचौलस्तु कुर्वीत उदकं पिंडमेव च । स्वधाकारं प्रयुञ्जीत वेदोच्चारं न कारयेत् ” ॥ इति यद्यपि स्मृत्यंतरवचनं

“कृतचौलोऽनुपेतस्तु पित्रोः श्राद्धं समाचरेत् । उदाहरेत्स्वधाकारं न तु वेदाक्षराण्यसौ ” ॥ इति ५ एतयोः पूर्वोक्तमन्वादिवचनानां च विकल्प इति चंद्रिकायामुक्तम् । एतत् वचनद्वयं प्रथमवर्ष-कृतचूडविषयम् इति । कालादर्शदीपिकादौ अत्रिवर्षस्याकृतचौलस्य वपननिषेधोऽपि स्मर्यते— “पुत्रस्त्वकृतचौलोऽपि पित्रोः संस्कारमर्हति । न तस्य वपनं कुर्यात्तेन कर्माणि कारयेत्” ॥ इति प्रथमवत्सरे तु संस्काराधिकारी न भवतीत्याह सुमंतुः—

१० “पुत्रस्योत्पत्तिमात्रेण संस्क्रुर्याद्वृणमोचनात् । पितरावाब्दिकाचौलात् पैतृमेधेन कर्मणा ॥ “चौलं यद्याब्दिकादवर्षात् न कुर्यात्पैतृमेधिकम् । तृतीयवत्सराद्ध्वं मंत्रवत्तत्समापयेत् ” ॥ प्रथमवत्सरात् प्रथमवर्षचौलाद्वा परं ऋणमोचनाद्धेतोः पितरौ संस्क्रुर्यात् । अब्दपरिसमाप्तेः प्रथम-वर्षचौलाद्वा पूर्वं पैतृमेधिकं न कुर्यात् । दर्भादानेनान्य एव कुर्यात् । तृतीयवत्सराच्चौलाद्वा परं मंत्रवदेव पैतृमेधिकं समापयेदित्यर्थः ।

दीक्षामध्ये मातापितृसंस्काराधिकारः । दीक्षितस्य दीक्षामध्ये मातृपितृमरणविषये कुण्डिन्यः—

१५ “दीक्षितोऽप्येकपुत्रश्चेन्मातापित्रोर्मृतिर्यदि । संस्कृत्य शालामागत्य यज्ञशेषं समापयेत् ” ॥ शांडिल्योऽपि—“दीक्षितोऽप्येकपुत्रश्चेत् माता पित्रोर्मृतिर्यदि दीक्षारूपं निधायान्नं संस्क्रुर्यान्नोदकापुत्रः ॥ “पावयेद्दर्भपुञ्जीलैर्दीक्षारूपं यथाविधि ” ॥ इति । एकपुत्र इति विशेषोपादानात् पुत्रान्तरसंभवे स एव कुर्यात् । नोदकापुत्रः उदकदानमपि नास्ति । स्नानमात्रमस्ति । स्नानतः सद्यःशौचस्योक्तत्वात् । स्मृत्यंतरे—

२० “ज्येष्ठस्य तु कर्तोर्मध्ये मातापित्रोर्मृतिर्यदि । संस्कृत्य शालामागत्य यज्ञशेषं समापयेत् ” ॥ इति । अन्यथा “दीक्षितोऽप्येकपुत्रश्चेत् ” इति वचनविरोधापत्तेः ।

विवाहादिकर्ममध्ये पित्रोर्मृतौ तु विशेषः स्मर्यते—

“मातापित्रोर्मृतिप्राप्तौ विवाहादिषु कर्मसु । तिलपिंडं तु कर्तव्यमन्यश्राद्धं तु वर्जयेत् ” ॥ इति । दहनं तिलमिश्रपिंडदानं च कर्तव्यम् । अन्यत् नवश्राद्धादिकं वर्जयेदित्यर्थः ।

२५ क्रमेण प्रेतकार्यकर्तृनाह मरीचिः—

“पुत्रः पौत्रश्च तज्जश्च पुत्रिकापुत्र एव च । पत्नी भ्राता च तज्जश्च पिता माता स्नुषा तथा ॥

“भगिनी भागिन्यश्च सपिंडो धनहार्यपि । पूर्वपूर्वविनाशे स्युरुत्तरोत्तरपिंडदाः ” ॥ इति ।

पराशरोऽपि—“पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा तद्वद्वा भ्रातृसंततिः ” ॥ इति । कालादर्शोऽपि—

“दाहादिमंत्रवत् पित्रोर्विदध्यादौरसः सुतः । तदभावे तु पौत्रश्च प्रपौत्रः पुत्रिकासुतः ” ॥ इति ।

३० “क्षेत्रजो दत्तकः क्रीतः कुत्रिमो दत्त एव वा । अपविद्धश्च पत्नी च गूढजः कन्यकासुतः ॥

“पौनर्भवः सहोदोऽन्यो नंदनश्च सुतीकृतः । दौहित्रो धनहारी च भ्राता तत्पुत्र एव वा ॥

“पिता माता स्नुषा चैव स्वसा तत्पुत्र एव च । सपिंडः सोदको मातुः सपिंडश्च सहोदरः ॥

“स्त्री च शिष्यस्त्विगाचार्या जामाता च सखापि वा । उत्सन्नबंधो रक्थेन कारयेदवनीपतिः ” ॥ इति ।

गर्भिण्यां परिणीतायां ततो जातः सहोदोत्थः । सुतीकृतः मातामहेन पुत्रत्वेन स्वीकृतः ।

औरसादिलक्षणम् । औरसादीनां क्रमेण लक्षणं चाह याज्ञवल्क्यः (व्य. १२८-१३२) —

“औरसो धर्मपत्नीजः तत्समः पुत्रिकासुतः । क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणेतरेण वा ॥

“गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः । कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः ॥

“अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः स्मृतः । दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥

“क्रीतस्तु ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात् स्वयंकृतः । दन्निमस्तु स्वयंदत्तो गर्भेविन्नः सहोदजः ॥ ५

“उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोऽपविद्धो भवेत्सुतः । पिंडदोऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः ” ॥ इति ।

बृहस्पतिरपि—

“प्रमीतस्य पितुः पुत्रैः श्राद्धं देयं प्रयत्नतः । जातिबंधुसुहृच्छिष्यै कृत्विक्भृत्यपुरोहितैः” ॥ इति ।

अत्र पुत्रैरिति बहुवचनादुक्ता औरसादिद्वादशविधपुत्रा गृह्यन्ते । तदाह मनुः (१।१८०) —

“क्षेत्रजादिसुतानेतानेकादश यथोदिताम् । पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ” ॥ इति । १३

एतत् गौणपुत्रपरिग्रहवचनं युगांतरविषयम् । चंद्रिकास्मृत्यर्थसारादौ “दत्तौरसेतरेषां च पुत्रत्वेन परिग्रहः” कलियुगवर्ज्यधर्ममध्ये परिग्रहणनात् । पुत्रिकापुत्रस्तु न निषिध्यते—

“पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रोऽनुजायते । समस्तत्र विभागः स्यात् ज्यैष्ठ्यं तत्र न विद्यते ॥

“रिक्थे च पिंडदाने च समौ तौ परिकीर्तितौ । औरसो धर्मपत्नीजः तत्समः पुत्रिकासुतः ॥

“पुत्रास्तु द्वादश प्रोक्ता मनुना येऽनुपूर्वशः । संतानकारणं तेषां औरसः पुत्रिकासुतः ॥ १५

“आज्यं विना यथा तैलं सर्पिः प्रतिनिधिः स्मृतम् । तथैकादशपुत्रास्तु पुत्रिकौरसयोर्विना ” ॥ इति

मनुयाज्ञवल्क्यादिभिरौरससाम्यस्मरणादित्याहुः । एवं च पुत्रपौत्रप्रपौत्राभावे पुत्रिकापुत्रस्य सत्त्वे स एव संस्काराधिकारी भवति । “यश्चार्थहरः स पिण्डदायी” इति (१।५।३९) विष्णुस्मरणात् ।

पौत्रादेः सत्त्वे तु तस्यैव प्राथम्यं न पुत्रिकापुत्रादेः “पुत्रेषु सत्सु पौत्रेषु नान्यं वै कारयेत्त्वधाम्” इति निषेधात् । तथा च क्रमं दर्शयति मरीचिः—“पुत्रः पौत्रश्च तज्जश्च २०

पुत्रिकापुत्र एव च” इति । तथैव स्मृतिरत्नकालादर्शादौ निर्णीतम् । अत एव पुत्रिकापुत्रस्य पौत्रसाम्यमुक्तं बृहस्पतिना—

“पौत्रश्च पुत्रिकापुत्रः स्वर्गप्राप्तिकराबुभौ । रिक्थे च पिंडदाने च समानौ परिकीर्तितौ ” ॥ इति ।

“तत्समः पुत्रिकासुतः” इति औरससाम्यवचनमौरससंतत्यभावे पुत्रिकासुतस्य समनंतराधिकारित्वप्रतिपादनपरम् “न तत् पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत् पितामहः” इति वचनं मुख्यसंतानविषयम् । २५

अतः पुत्रिकापुत्रदत्तापेक्षया पौत्र एव मुख्यः । पुत्रिकापुत्रस्योभयसंबंधोऽपि स्मर्यते देवलेन—

“ब्रामुष्यायणका दद्युर्द्विभ्यां पिंडोदके पृथक् ” इति । स्मृत्यंतरेऽपि—

“तस्मादुभयसंबद्धः पुत्रिकायाः सुतो ह्यसौ । पूर्वं मातामहश्राद्धं पश्चात्पैतृकमाचरेत् ” ॥

“अत्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् । अस्यां यो जायते पुत्रः स नौ पुत्रो भवेदिति ” ॥

प्रदानसमयेऽभिधानेन मातामहस्य जनकस्य च संस्काराधिकारी । ‘स मे पुत्र’ इत्युक्त्वा प्रदाने तु ३०

मातामहेनैव संबंधः । स उभयोरपि । पुत्रिकापुत्राभावे दत्तः कर्ता । तथा चन्द्रिकायां—(पृ. ३३८ पं. ३) “द्विविधो हि पुत्रिकापुत्रः । एको मातामहेन संबद्धः । अपरः पितृमातामहाभ्यां ततः

प्रथमं मातामहस्य कुर्यात् । पितुस्च्छिद्या य उभयसंबद्धः स उभयोरपि पुत्रिकापुत्राभावे धनहारी दौहित्रः कर्ता ।

“तस्मिंश्चित् प्रतिगृहीते यथौरस उत्पद्येत स चतुर्थीशभाक् ” इति वसिष्ठस्मरणेन (अ १।५।९) ३५

औरसचतुर्थांशभाजो दत्तस्य व्यवहितत्वेन समांशभाजः पुत्रिकापुत्रस्यैव प्राथम्यम् । दत्ताभावे धनहारी दौहित्रः कर्ता । तत्र विष्णुः

“अपुत्रपौत्रसंताने दौहित्रा धनमाप्नुयुः । सर्वेषां तु स्वधाकारे पौत्रा दौहित्रका मताः” ॥ इति ।

अपुत्रपौत्रसंताने गौणमुख्यरूपोभयविधपुत्रपौत्रतत्संतत्यभावे इत्यर्थः । स्मृत्यन्तरेऽपि—

५ “पुत्रश्च दुहिता चैव तुल्यसंतानकारकौ” इति । मनुरापि (१।१३९)—

“पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नास्ति धर्मतः । दौहित्राद्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरत् ॥

“स एव दद्यात् द्वौ पिंडौ पित्रे मातामहाय च” इति । स्मृत्यन्तरे—

“श्राद्धं मातामहानां च अवश्यं धनहारिणा । दौहित्रेण विधिज्ञेन कर्तव्यं पूर्वमुत्तरम्” ॥

धनग्रहणाभावेऽपि दौहित्रोऽधिकारी । तथा भविष्यपुराणे—

१० “यथा व्रतस्थोऽपि सुतः कुर्यात् प्रेतक्रियां नृप । मातामहस्य दाहाद्यान् दौहित्रोऽपि तथार्हति” ॥ इति ।

गृह्यपरिशिष्टे—

“पितामहस्य तत्पत्न्या मातामहोस्तथैव च । पिंडदानादिकं सर्वं मातापित्रोः समं विदुः” ॥ इति ।

पराशरः (विष्णुपुराणे ३।१३४-३७)—

“पूर्वाः क्रिया मध्यमाश्च तथा चैवोत्तराः क्रियाः । आद्याहा द्वादशाहाच्च मध्ये याः स्युः क्रिया मताः” ॥ इति ।

१५ “पूर्वा” च मध्यमा मासि मास्यैकोद्दिष्टसंज्ञिताः ॥

“प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिंडीकरणादनु । क्रियन्ते याः क्रियाः पित्रोः प्रोच्यन्ते तास्तथोत्तराः ॥

“पितृमातृसपिंडैस्तु समानसलिलैस्तथा । तत्संघातगतैश्चापि राज्ञा च धनहारिणा ॥

“आद्या मध्याः क्रियाः कार्याः पुत्राद्यैरपि चोत्तराः । दौहित्रैर्वा तथा कार्याः सर्वास्तत्तनयैस्तथा” ॥ इति ।

एकोद्दिष्टान्ताः सपिण्ड्यन्तास्तदुत्तराश्च त्रिविधा इत्यर्थः । अह्नां दशानां मध्ये याः क्रियाः

२० दाहादिकाः स्मृताः ताः पूर्वा मध्यमा मासीति पाठमाश्रित्य कालदर्शकारेण संगृहीतम्—

“दाहात् दशाहपर्यन्ताः सपिण्ड्यन्तादधः क्रियाः । तदूर्ध्वाश्च क्रमात् पूर्वा मध्यमाश्चोत्तराः स्मृताः ॥

“पुत्रैश्च भ्रातृतपुत्रैः पत्न्या शिष्येण वाऽखिलाः । क्रियाः कार्याः समादिष्टाः ज्येष्ठैः पुत्राश्च मध्यमाः” ॥ इति ।

अपुत्रस्य मातामहस्य मरणे धनहारिणा दौहित्रेण त्रिविधा अपि क्रियाः कर्तव्याः ।

“मलमेतन्मनुष्याणां द्रविणं यत् प्रकीर्तितम् । तत् गृह्णन्मलमादत्ते दुर्जरं ज्ञानिनामपि ॥

२५ “ऋषिभिस्तस्य निर्दिष्टा निष्कृतिः पावनी परा । आ देहपतनात्तस्य कुर्यात् पिंडोदकक्रियाम्” ॥ इति

स्मरणात् । धनग्रहणाभावेऽपि कर्त्रन्तराभावे त्रिविधा अपि क्रियाः कार्याः

“अप्यदायहरोऽपुत्रीकृतोऽपि दुहितुः सुतः । मातामहस्य विधिवत्कुर्याद्वोत्तराः क्रियाः” ॥ इति

स्मरणात् । पूर्वमध्यक्रियाकरणाभावे अवश्यकर्तव्याया उत्तरक्रियायाः कर्तुमयुक्तत्वात्

कर्त्रन्तरसद्भावे तु धनहरणयोग्यतारहितेन दौहित्रेणाद्याः क्रिया न कार्याः । तत्राब्दिकव्यतिरिक्त-

३६ महालयपूर्वमध्यक्रियादयस्तु कर्तव्याः ।

“पितृन् मातामहांश्चैव द्विजः श्राद्धेन तर्पयेत् । अन्वणः स्यात् पितृणां तु ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥

“पार्वणं कुरुते यस्तु केवलं पितृहेतुतः । मातामहे न कुरुते पितृहा स प्रजायते” ॥ इति व्यासस्मरणात् ।

“कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथायश्रान्दषोडशम् । प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिंडेषु षडिति स्थितिः” ॥ इति

कात्यायनस्मरणाच्च । कर्षूसमन्वितं कुण्डान्वितसपिंडीकरणमिति यावत् । शेषेषु महालयमन्वादिषु

१ क्ष-पू । २ कखग-ताः पूर्वा मध्यमा मासि । ३ कखग-शेषैः पूर्वाश्च । ४ क-ति ।

५ क्ष-पुत्रांतर । ६ खग-डाः स्युः षडिति स्मृतिः ।

वर्गद्वयपितृनुद्दिश्य भोजनं षट् पिंडाश्च भवन्तीत्यर्थः । मातामहस्य भ्रात्रादिसद्भावे संसृष्टस्य तस्य धनग्रहणरहितो दौहित्रोऽनाधिकारी 'योंऽशहरः स पिंडदायी' इति स्मरणात् । पुत्रसमत्वेन अविभक्तभ्रात्रादिरेवाधिकारी इति केचिदाहुः—

“तथा व्रतस्थोऽपि सुतः कुर्यात् प्रेतक्रियां अपि । मातामहस्य दाहाद्यान् दौहित्रोऽपि तथाऽर्हति” ॥ इति भविष्यत्पुराणवचनात् । पुत्रसमत्वेनाविभक्तभ्रात्रादेः सत्वेऽपि धनग्रहणरहितोऽपि दौहित्र एव ५ प्रेतक्रियायामधिकारीत्यन्ये । यथोचितमत्र ग्राह्यम् ।

दौहित्राभावे अधिकारः पत्न्याः । अत्र वृद्धमनुः—

“अपुत्रां शयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता । पत्न्येव दद्यात् तत्पिंडं कुत्सनमंशं लभेत च ” ॥ इति ।

सुमन्तरपि—

“अपुत्रे संस्थिते कर्तान भवेच्छ्राद्धकर्मणि । तत्र पत्न्यपि कुर्वीत सापिंड्यं पावर्णं तथा ” ॥ इति । १० कर्तान भवेत् । पौत्रादिः दौहित्रांतकर्तान भवेदित्यर्थः ।

दौहित्रापेक्षया पत्न्याः प्राथम्यमाह संग्रहकारः—

“पुत्रः कुर्यात्पितुः श्राद्धं पत्नी च तदसंनिधौ । धनहार्यथ दौहित्रः ततो भ्राता च तत्सुतः” ॥ इति । तथाह शंखः—

“पितुः पुत्रेण कर्तव्याः पिंडदानोदकक्रियाः । पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्पत्न्यभावे तु सोदरः” ॥ १५ इति । चंद्रिकायामिदं व्याख्यातम् । पुत्रग्रहणेनात्र गौणा मुख्याश्च गृह्यन्ते । तदपि पौत्राभाव-विषयम् । तदपि दायहरत्वाभावविषयम् । अन्यथा तु यो दायहरः स एव दद्यात् । अत एव विष्णवापस्तंबौ (१५।३९)—“यश्चार्थहरः स पिंडचदायी । पुत्रः पितृवित्ताभावे पिंडं दद्यात् ” ॥ इति । अत एव याज्ञवल्क्येन (व्य. १३२) “पिंडदोंऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः” इति । पिंडदत्तांशहरत्वयोरैकाधिकारणमुक्तम् । एवं सोदरेऽपि द्रष्टव्यमिति । अनेनैवाभिप्रायेण २० गौतमः (१५।१३-१४)—“पुत्राभावेऽस्य बान्धवाः सपिंडा मातृसपिंडाः शिष्याश्च दद्युस्तदभावे ऋत्विगाचार्यौ ” ॥ इति । अंशहरत्वे भ्रात्रादिसपिंडानां पत्न्याद्यपेक्षया अव्यवहितत्वमाह मार्कंडेयोऽपि—(मा. पुराणे. २७।१९-२४)

“पुत्राभावे सपिंडास्तु तदभावे तु सोदकाः । मातुः सपिंडा ये वा स्युः ये वा मातुश्च सोदकाः” ॥ इति । मातुः सपिंडा मातुलादयः । मार्कंडेयपुराणेऽपि—

२५

“पुत्रो भ्राता च तत्पुत्रः पत्नी माता तथा पिता । वित्ताभावेऽपि शिष्याश्च कुर्वीरन्मौर्ध्वदेहिकम्” ॥ इति । अंशहरत्वे तु पत्न्याः प्राथम्यमाह कात्यायनः—

“अपुत्रस्याथ कुलजा पत्नी दुहितरोऽपि वा । तदभावे पिता माता भ्राता तत्पुत्र एव वा ” ॥ इति । एतच्च ब्राह्मादिविवाहोदाविषयम् । तस्या यज्ञान्वितत्वेन तत्रैव पत्नीशब्दप्रयोगात् । इतरत्र तु “क्रयक्रीता तु या नारी न सा पत्न्यभिधीयते । न सा दैवे न सा पित्र्ये दासी तां कवयो विदुः” ॥ इति ३० पत्नीत्वाभावात् । अत एव आसुरादिविवाहोदाविषये विष्णुपुराणे पराशरः (३।१३।३०-३३)

“पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा तद्वद्वा भ्रातृसंततिः । सपिंडसंततिर्वाऽपि क्रियार्हा दृष्ट जायते ॥

“तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसंततिः । मातृपक्षसपिंडेन संबद्धा ये जलेन वा ॥

“कुलद्वयेऽपि चोत्सन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप । उत्सन्नबंधो रिक्थेन कारयेदवनीपतिः ” ॥ इति ।
मार्कण्डेयोऽपि (मा. पुराणे २७।२३-२४)—

“सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तृणाममंत्रकम् । तदभावे च नृपतिः कारयेत् सकुटुम्बिनाम् ॥

“तज्जातीयैर्नरः सम्यक् दाहाद्याः सकलाः क्रियाः । सर्वेषामेव वर्णानां बांधवो नृपतिर्यतः ” ॥ इति ।

५ स्वभर्तृणाममंत्रकमिति चाधर्मविवाहोदाविषयम् । ब्राह्मादिविवाहोदा तु मंत्रवदेव कुर्यात् ।

“यज्ञेषु मंत्रवत्कर्म पत्नी कुर्याद्यथाविधि । तदौर्ध्वदेहिके सा हि मंत्रार्हा धर्मसंस्कृता ” ॥ इति स्मरणात् ।

अथ रजोमध्ये पतिमरणे । संग्रहकारः—

“रजोमध्ये तु भार्याया दैवात् भर्तृमृत्युतिर्यदि । पुत्रहीनस्य कर्तव्यं न तथा दहनादिकम् ॥

“अन्यैस्तदनुमत्या च न कार्यं प्रेतकर्म हि । तूष्णीं दग्ध्वा चतुर्थेऽन्हि पुनः स्नानं विधाय च ।

१० “प्रेतकर्म तथा कार्यमथवा पंचमेऽहनि ॥

“रजोमध्ये तु यः कश्चित् द्रव्याशापरिमोहितः । कुर्याच्चेत् प्रेतकृत्यं तु कर्ता चैव प्रमीयते ॥

“अधोगतिं प्रयात्येव कुलहानिर्भवेत् ध्रुवम् ” ॥ इति ।

मरणदिने तूष्णीं दाहयित्वा चतुर्थे पंचमे वाऽह्नि तथा पुनर्दहनं कार्यमित्यर्थः ।

संग्रहांतरे—“प्राजापत्यं तीर्थकुच्छ्रं वारुणं च समाचरेत् ।

१५ “ब्राह्मणानां च वाक्येन गृहीत्वा तत्करात् कुशम् । विधिवद्दहनं कुर्यात् पिता भ्राताऽथवाऽपरः ” ॥ इति ।
रजस्वलास्नानप्रकारेण उद्धृततोयेन स्नापयित्वा तद्धस्तात्कुशमादाय कुर्यादित्यर्थः । पुत्रादि-
दौहित्रान्ताभावे पत्न्याः पतिः कुर्यात् । तथा च कात्यायनः—

“तेषामभावे तु पतिस्तदभावे सपिण्डकाः । अपुत्रायाः पतिर्दद्यात्सपुत्राया न तु कश्चित् ” ॥

संग्रहे—“भार्यापिण्डं पतिर्दद्यात् भर्तृभार्ये परस्परम् ” इति । तथा स्मृतिरतने—

२० “अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते । पतिरेव क्रियां कुर्यात् अपुत्राया मृतस्त्रियाः ” ॥ इति ।
तत् पत्नीधनम् । सपत्नीपुत्रसद्भावेऽपि भर्तैव दाहादिकं कुर्यादित्युक्तं तत्रैव—

“एकभर्तृकपत्नीनामपुत्रा निधनं गता । अन्यस्याः पुत्रवत्त्वेऽपि कर्ता भर्तैव तत्र तु ॥

“पत्यभावे तु सापत्न्यः पुत्र एव नियुज्यते । तदभावे तु तत्पुत्रः आसन्नोऽन्यस्ततः परः ” ॥ इति ।

एतच्च सपत्नीपुत्रापेक्षया भर्तुरभ्यर्हितत्त्ववचनं स्त्रीधनग्रहणविषयम् । अन्यथा सपत्नीपुत्र एव
२५ कर्तव्याहुः । धनग्रहणविषये मनुराह (९।१९६)—

“ब्राह्मदैवार्षगांधर्वप्राजापत्येषु यद्धनम् । अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते ” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि (व्य. १४५)—

“अप्रजस्त्रीधनं भर्तुः ब्राह्मादिषु चतुर्ष्वपि । दुहितृणां प्रसूता चेच्छेषेषु पितृगामि तत् ” ॥ इति ।

शेषेषु आसुरादिषु । धनग्रहणाभावे तु सपत्नीपुत्रस्य प्राथम्यमाह कात्यायनः—

३० “विदध्यादौरसः क्षेत्र्यो जनन्या और्ध्वदेहिकम् । तदभावे सपत्नीजः क्षेत्रजाद्यास्तथा मताः ॥

“तेषामभावे तु पतिः तदभावे सपिण्डकाः ” इति । औरसः क्षेत्र्यः स्वीयसन्तानः ॥

स्मृत्यंतरेऽपि—

“अपुत्रायाः सपत्नीजः क्षेत्रजाद्याः पतिस्तथा । पूर्वाभावे परः कुर्यात् विधिवत् पैतृमेधिकम् ” ॥ इति ।

मनुरपि (१।१८३)—

“बव्हीनामेकपत्नीनामेका चेतुत्रिणी भवेत् । सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्भनुः” ॥ इति ।

बृहस्पतिश्च—

“बव्हीनामेकपत्नीनामेव एव विधिः स्मृतः । एका चेतुत्रिणी तासां सर्वासां पिंडदस्तु सः” ॥ इति ।

गौतमोऽपि—“पितृपत्न्याः सर्वा मातरः” इति । केचिदाहुः—“अन्यस्याः पुत्रवत्त्वेऽपि कर्ता भर्तृव तत्र तु” इत्यादिवचनं असवर्णस्त्रीविषयम् इति । ‘विदध्यादौरसः क्षेत्र्य’ इत्यादिवचनं सपत्नीपुत्रस्य प्राथम्यप्रतिपादकसवर्णस्त्रीविषयमिति । अन्ये तु अत्र प्रमाणाभावात् ‘योऽशहर’ इति वचनेनांशग्रहणाग्रहणप्रयुक्ता व्यवस्था युक्तेत्याहुः । अत्र केचित् पुत्रदौहित्राद्यपेक्षया सपत्नीपुत्रस्य प्राथम्यमाहुः । अपरे तु, अपुत्रायाः सपत्नीज इत्यादेः स्वसंतानाभावविषयाभावविषयत्वात् ‘योऽशहरः स पिंडदायी’ इति वचनात् अंशहरेषु पौत्रादिषु सत्सु कथं तस्य प्राथम्यमिति वदंतस्तान्न क्षमन्ते । तदुक्तं स्मृत्यंतरे—

“सपत्न्याः पुत्रवत्त्वेऽपि अपुत्रायाः क्रियां पतिः । दौहित्रः पत्यभावे तु सपत्नीपुत्र इष्यते” ॥ इति ।

धनग्राहिणोः पतिदौहित्रयोरभावे सपत्नीपुत्रः कर्तेत्यर्थः । एतच्च विभक्तविषयम् । आविभागे तु दौहित्राद्यपेक्षया सपत्नीपुत्र एव प्रथमः । पुत्रादेरपत्यं तस्याभावे दुहिता कर्त्री । अत्र शंखः—

“पुत्राभावे तु कुर्यातां भर्तृभार्ये परस्परम् । अपुत्रस्य तु या पुत्री सैव पिंडप्रदा भवेत्” ॥ इति । १५

पत्युरभावे दुहिता मातुः कुर्यात् । पत्न्यभावे पितुश्च इत्यर्थः । पितृधनभाक्त्वं च तस्याः स्मर्यते देवलेन—“अपुत्रकस्य स्वं कन्या धर्मजा पुत्रवद्धरेत्” इति । कन्या ऊढा अनूढा च ।

स्मृत्यंतरेऽपि—

“यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा । तस्यामात्मानि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्” ॥ इति ।

अत्र केचित्—

२०

“पुत्रः कुर्यात्पितुः श्राद्धं पत्नी च तदसंनिधौ । धनहार्यथ दौहित्रस्ततो भ्राता च तत्सुतः” ॥ इति स्मरणात् “पत्नीदुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा” इति (याज्ञवल्क्य. व्यव. १.३५) धनग्रहणे क्रमस्मरणाच्च पत्न्या दुहितुश्च दौहित्रात्पूर्वभावित्वमाहुः । “पौत्रा दौहित्रका मताः” इति विष्णुस्मरणात् शिष्टाचाराच्च पत्नीदुहित्रपेक्षया दौहित्रस्यैव प्राथम्यं परे वदन्ति । दुहित्रभावे भ्रात्रादिः कर्ता ।

२५

“भ्रातुः सहोदरो भ्राता कुर्याद्वाहादि तत्सुतः । ततस्तु सोदरो भ्राता तदभावे च तत्सुतः” ॥ इति स्मरणात् ।

स्मृत्यंतरेऽपि—

“पत्नी भ्राता च तज्जश्च पिता माता स्नुषा तथा । भगिनी भागिनेयश्च सपिंडः सोदकस्तथा ॥

“असंनिधाने पूर्वेषामुत्तरे पिंडदाः स्मृताः” ॥ विष्णुपुराणे—

“पुत्रो भ्राता च तत्पुत्रः पत्नी माता तथा पिता । वित्ताभावेऽपि शिष्यश्च कुर्वीरन्नौर्ध्वदेहिकम्” ॥ इति । ३०

यत्तु मनुरवचनम् (१।१८२)—

“भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान् भवेत् । सर्वे तेनैव पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्” ॥ इति तत् भ्रात्रपेक्षया भ्रातृपुत्रस्य नाभ्यर्हित्वप्रतिपादनपरं किंतु भ्रातृपुत्रपरिग्रहसंभवेऽन्यं न परिगृह्णीयादित्येवंपरमिति विज्ञानेश्वरादिभिर्व्याख्यातम् (पृ. ९० पं. १७।१८) ।

अत्र केचिद्वाहुः—

“अपुत्रस्याथ कुलजा पत्नी दुहितरोऽपि वा । तदभावे पिता माता भ्राता पुत्राश्च कीर्तिताः ” ॥ इति कात्यायनस्मरणात्—“पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथेति ” धनग्रहणे क्रमस्मरणाच्च पित्रोः प्राथम्यं भ्रात्रादेस्तु ततो विप्रकर्ष इति । अन्ये तु ‘पत्नी भ्राता च तत्पुत्रः पिता माता ’ इति

५ पूर्वोक्तवचननिश्चयबलात् भ्रात्रादेः प्राथम्यमिति वदन्ति । यत्तु बोधायनवचनम्—

“न च माता न च पिता कुर्यात्पुत्रस्य पैतृकम् । नाग्रजश्च तथा भ्राता भ्रातृणां च कनीयसाम्” ॥ इति यदपि कात्यायनवचनम्—

“पित्रा श्राद्धं न कर्तव्यं पुत्राणां च कथंचन । भ्रात्राऽग्रजेन कर्तव्यं न भ्रातृणां यवीयसाम्” ॥ इति । यदपि स्मृत्यन्तरम्—“न पुत्रस्य पिता कुर्यान्नानुजस्य तथाऽग्रजः” ॥ इति तत्सर्वं मुख्याधिकारि-

१० पुत्रकनिष्ठभ्रात्रादिसद्भावविषयं स्नेहविहीनविषयं वा । तथा च देवलबोधायनौ—

“संस्कार्यश्च पिता पुत्रैर्भातरश्च कनीयसा । मातुलस्याप्यपुत्रस्य स्वस्त्रीया अपि वा मताः ॥

“न पुत्रस्य पिता कुर्यान्नानुजस्य तथाऽग्रजः । यदि स्नेहेन कुर्यातां सपिंडीकरणं विना ” ॥ इति । कर्त्रन्तराभावे तदपि कार्यमित्याह संग्रहकारः—

“अन्याभावे पिता माता ज्येष्ठो वाऽपि सपिंडनम् । कुर्याज्जीवंतमाक्रम्य पिंडभागं नियोजयेत्” ॥ इति ।

१५ आक्रम्यातिक्रम्येत्यर्थः । स्मृत्यन्तरे—

“सर्वाभावे पिता वाऽपि कुर्याद्भ्राताऽपि वाऽग्रजः । गयायां च विशेषेण ज्यायानपि समाचरेत्” ॥ इति । अकरणे प्रत्यवायश्च स्मृतिसारसमुच्चये दर्शितः—

“उत्सन्नबान्धवं प्रेतं पिता भ्राता तथाऽग्रजः । जननी वाऽपि संस्क्रुर्यान्महदेनोऽन्यथा भवेत्” ॥ इति । पित्रग्रजयोः समवाये प्रत्यासन्नत्वात् पितैव कुर्यात् । तदभावे ज्येष्ठ इति क्रमो विवक्ष्यते । कनिष्ठ-

२० भ्रातृसमवाये अनंतर एव कनिष्ठो ज्येष्ठस्य कुर्यात् । न व्यवहितोऽनुजः “अनंतरः सपिंडो यः क्रमेण तनयस्तयोः” इति मन्वादिस्मरणात् । जीवति पितरि भ्रातादेरन्येन कारयितव्यमित्युक्तं स्मृतिरन्ते—

“प्रेतश्राद्धं सपिण्डचन्तं प्रत्यब्दं श्राद्धमेव च । भ्रात्रादेः कार्यमन्येन स पिता यदि जीवति ” ॥ इति ।

एवं भ्रातृतत्पुत्रयोरभावे पिता मातापित्रोरभावे स्नुषा तदभावे स्वसा अनुजा अग्रजा वा तदभावे तत्सुतः स्वोदरस्वस्रभावे असोदरस्वसा ततस्तत्सुतः । ततः सपिंडः ततः समानोदकस्ततो मातृसपिंडः

२५ ततो मातृसमानोदकः तदभावे सगोत्रः ततः शिष्यः तदभावे कृत्विक् तत आचार्यः तदभावे जामाता तदभावे सखा इति क्रमः । तथा च स्मृतिसारे—

“पत्नी भ्राता च तज्जश्च पिता माता स्नुषा तथा । भगिनी भागिनेयश्च सपिंडः सोदकस्तथा ।

“असंनिधाने पूर्वेषामुत्तरे पिंडदाः स्मृताः” ॥ इति । कात्यायनः—

“अनुजा वाऽग्रजा वाऽपि भ्रातुः कुर्याच्च संस्क्रियाम् । ततस्तु सोदरास्तद्वत्क्रमेण तनयस्तयोः ” ॥ इति ।

३० चंद्रिकायाम्—

“पुत्राभावे सपिंडास्तु तदभावे तु सोदकाः । मातुः सपिंडा ये वा स्युर्ये वा मातुश्च सोदकाः ॥

“कुर्युरेनं विधिं सम्यक् अपुत्रस्य सुताः स्मृताः ” ॥ इति । मातुः सपिंडः मातामहः तत्सुतादिः पंचपुरुषपर्यंतः पञ्चपुरुषादूर्ध्वं त्रिपुरुषपर्यंता मातृसमानोदकाः । पराशरः—

“अभावे तु सपिंडानां समानोदकसंततिः । मातृपक्षस्य पिंडेन संबद्धा ये जलेन वा ” ॥ इति ।

बृहस्पतिः—

“ प्रमीतस्य पितुः पुत्रैः श्राद्धं देयं प्रयत्नतः । ज्ञातिबंधुसहच्छिष्यैः कृत्वा भृत्यपुरोहितैः ” ॥

कात्यायनोऽपि—

“ पुत्रः शिष्योऽथ वा पत्नी पिता माता तथा गुरुः । स्त्रीहारी धनहारी च कुर्युः पिंडोदकक्रियाम् ” ॥ इति ।
स्त्रीहारी रागतः कलत्रहारी । धनहारी तु मनुना दर्शितः (९।१८७—१८९) । ५

“ अनंतरः सपिंडो यस्तस्य तस्य धनं हरेत् । अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा ॥

“ सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः । त्रैविद्याः शुचयो दान्ता तथा धर्मो न हीयते ॥

“ अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः ” ॥ इति । **मार्कण्डेयः—**

“ सख्युरुत्सन्नबंधोश्च सखापि श्वशुरस्य च । जामाता स्नेहतः कुर्यादखिलं पैतृमेधिकम् ॥

“ सर्वाभावे तु नृपतिः कारयेत्तस्य रिक्थतः । तज्जातीयैर्नरैः सम्यक् दाहाद्याः सकलाः क्रियाः ” ॥ इति । १०

वृद्धशातातपोऽपि—

“ मातुलो भागिनेयस्य स्वस्रीयो मातुलस्य च । श्वशुरस्य गुरोश्चैव सख्युर्मातामहस्य च ॥

“ एतेषां चैव भार्याणां स्वसुर्मातुः पितृष्वसुः । मृतौ दाहादिकं कार्यमिति वेदविदां स्थितिः ” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरेऽपि—

“ मातुः पित्रोर्मातुलस्य मातुलान्या मृतावपि । दौहित्रः प्रथमः कर्ता ज्ञातिः स्यात्तदनंतरम् ” ॥ इति । १५

विष्णुरपि—“ श्वश्रवादीनां तथा पिंडं पत्नी दद्यात् सुसंयता ” ॥ इति ॥

धनहारित्वादिनिमित्ताभावेऽपि दाहादिके कृतेऽभ्युदय इत्याह **वृद्धशातातपः—**

“ प्रीत्या श्राद्धं तु कर्तव्यं सर्वेषां वर्णालिंगिनाम् । एवं कुर्वन्नरः सम्यक् महतीं श्रियमाप्नुयात् ” ॥ इति ।

लिंगिनः आश्रमिणः । **ब्राह्मेऽपि—**

“ अनाथं ब्राह्मणं दग्ध्वा क्षत्रियं वैश्यमेव च । पितृमेधमहायज्ञफलं प्राप्नोति मानवः ” ॥ इति । २०

एतच्च सवर्णाभिप्रायम् । अन्यथा दोषश्रवणात् । तथा **मरीचिः—**

“ ब्राह्मणो हन्यवर्णस्य यः कुर्यादौर्ध्वदेहिकम् । तद्वर्णत्वमसौ याति इहलोके परत्र च ” ॥

पारस्करोऽपि—

“ न ब्राह्मणेन कर्तव्यं शूद्रस्य त्वौर्ध्वदेहिकम् । शूद्रेण वा ब्राह्मणस्य विना पारशवादिति ” ॥

ब्राह्मणेन शूद्रायामुत्पादितः पारशवः । **कालादर्शोऽपि—**

“ स्नेहाद्विप्रादिकैः सर्वैः वर्णालिंग्यौर्ध्वदेहिकम् । कर्तव्यं नैव विप्रेण शूद्रस्यानेन तस्य च ” ॥ इति ।

विप्रादिना शूद्रादेरित्यर्थः । सपिंडानां मध्ये केषांचिद्दाहोदिनिषेधमाह **वृद्धमनुः—**

“ क्लीबाद्या नोदकं दद्युः स्तेना ब्रात्या विधर्मिणः । गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैव योषितः ॥

“ न ब्रह्मचारिणः कुर्यादुदकं पतिता न च ” ॥ इति । क्लीबो मोघवीर्यः । आदिशब्दात् कुंड-
गोलकादयः । स्तेनाः परस्वहारिणः । ब्रात्याः संस्काररहिताः । विधर्मिणः प्रच्युतस्वधर्माः । गर्भद्रुहः ३०
गर्भघातिन्यः । भर्तृद्रुहः भर्तृघ्न्यः । उदकग्रहणमन्येन दाहे कृतेऽपि उदकदाननिषेधार्थम् । अतो
दाहादिनिषेधः कैमुत्यसिद्धः । स्वसपिंडमरणे क्लीबाद्या दाहादिकं न कुर्युरित्यर्थः । ब्रह्मचारिणस्तु
दाहादिनिषेधः पित्रादिव्यतिरिक्तविषयः । तथा प्रतिपादितमथस्तात् ।

अत्रायं क्रमः—औरसः पुत्रः पौत्रः तत्पुत्रसंततिः । पुत्रिकापुत्रः तत्संततिः । दत्तः तत्संततिः । धनहारी दौहित्रः पत्नी पतिः सपत्नीपुत्रः दुहिता भ्राता तत्पुत्रः असोदरः भ्राता तत्पुत्रः पिता माता स्नुषा पौत्री दौहित्री पौत्रस्य पत्नी तत्पुत्री दत्तस्य पत्नी भगिनी भागिनेयः सपिंडः सोदकः मातृसपिंडः तत्समानोदकः सगोत्रः शिष्यः ऋत्विग्भृत्यः गुरुः श्वशुरः आचार्यः सहाध्यायी ५ उपाध्यायः जामाता सखा स्त्रीहारी धनहारी राजेति । इति संस्कृतिरूपणम् ।

अग्निनिर्णयः । तत्र मनुवृद्धयाज्ञवल्क्यौ—

“आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यघ्निरग्निभिः । अनाहिताग्निरकेन लौकिकेनेतरे जनाः ” ॥ इति । एकेन औपासनेन । तथा त्रिकांडी—“अनाहिताग्निस्त्वेकेन यः पूर्वं पतिभार्ययोः ” ॥ इति । वसिष्ठः—

१० “अनाहिताग्निर्यः पूर्वं पत्नीभ्यः प्रमितिं गतः । औपासनाग्निना तस्य संस्कारः पैतृमेधिकः ॥
“पश्चान्मृतस्य कुर्वीति केचिदुत्तपनाग्निना । पश्चान्मृतानां पत्नीनां पतिवच्चाग्निसंग्रहः ” ॥ इति ।
यमः—“अस्थिसंचयनादर्वाक् भर्तुः पत्नी मृता यदि । तस्मिन्नेवानले दाह्या यदि चाग्निर्न शाम्यति ।
“शांतेऽग्नौ पुनरेवास्याः पृथक् चित्यादि कारयेत् ” ॥ स्मृत्यंतरे—

“पूर्वमेव मृता माता घटिकानंतरं पिता । गृह्याग्निः पूर्वतो गच्छेत् अपरो विधुरानलः ” ॥ इति ।
१५ मातृदहनानंतरं पितृमरण इत्यर्थः । एकनौपासनाग्निना । जमदग्निरपि—
“दीक्षितस्याहिताग्नेश्च दाहः स्वैस्त्रिभिर्वाग्निभिः । अनाहिताग्नेः संस्कारस्तेनौपासनवन्हिना ॥
“इतरेषां लौकिकेन दाह उत्तपनाग्निना । चंडालाग्निरमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च कर्हिंचित् ॥
“पतिताग्निर्यथाग्निश्च न शिष्टग्रहणोचितः । शूद्रविदूक्षत्रविप्राग्निः श्रोत्रियस्य गृहानलः ॥
“पर्वताग्निररण्याग्निर्दारुनिर्मथनानलः । उपर्युपरिजः श्रेष्ठो लौकिकाग्निरग्रहे ॥

२० “व्रतियैत्योः कपालाग्निस्तुषाग्निर्बालकन्ययोः । विधुरं विधवा चैव दहेदुत्तपनाग्निना ” ॥ इति । यतिः परमहंसव्यतिरिक्तः । स्मृत्यंतरे—
“कन्यामनुपनीतं च अस्मात्त्वम् इति मंत्रतः । लौकिकेन दहेदेतावुत्तप्तेनाथ वन्हिना ” ॥

वृद्धवसिष्ठः—

“तुषाग्निना दहेत् कन्यां व्रीहिभिर्वा यवेन वा । अथवोत्तपनीयेन कपालेनानलेन वा ॥
२५ “यतिं च वर्णिनं चैव दहेत्कपालवन्हिना । अथवोत्तपनीयेन तुषेणैवापरे विदुः ” ॥ इति ।
“दर्भेष्वग्निः समारोप्य पुनर्दर्भेषु संस्थितः । पुनर्दर्भतृतीयेषु वन्हिरुत्तपनः स्मृतः ॥
“कपालमग्नौ निक्षिप्य तप्तं चैव तु निक्षिपेत् । करीषं वा समुद्भूतस्तुषेषु तुषपावकः ॥
“यावत्तप्तकपालेन केवलेनाग्निसंभवः । तावत्कपालसंभूतः पावकः परिकीर्तितः ” ॥ इति ।

जमदग्निरपि “दर्भमुष्टिं प्रदीप्याग्नौ लौकिके तत्र चापरम् । तत्राप्यन्यतृतीयस्थो वह्निरुत्तपनः स्मृतः ॥

३० “कपालमग्नौ निक्षिप्य तामादाय तुषे क्षिपेत् । तुषेण दर्भैः संभूतः कपालज इति स्मृतः ” ॥ स्मृत्यंतरे च—

“कपालोऽन्यः कपालाग्निः तुषाग्निस्तु तुषोद्भवः । दर्भमुष्टितृतीयोत्थो भवेदुत्तपनाव्हयः ” ॥ इति ।
बोधायनः “आहिताग्निमभिर्दहति यज्ञपात्रैश्च गृहस्थमौपासनाग्निना ब्रह्मचारिणं

कपालाग्निनान्यानुत्तपनेन ” इति । आपस्तबः—“ औपासनेनाहिताग्निं दहति निर्मथ्येन पत्नीमुत्तपनेनेतरान् ” इति । अत्र यथास्वगृह्यं यथाचारं व्यवस्था । कृतसमावर्तनस्याकृत-
विवाहस्य ब्रह्मचारित्वाभावात् गृहस्थत्वाभावाच्च कपालाग्न्यौपासनाग्न्योः प्रसक्त्यभावादन्यानुत्तपने-
नेति बोधायनवचनात् उत्तपनेनेतरानित्यापस्तम्बवचनाच्च उत्तपनाग्निरेव कृतविवाहस्यौपासनाप-
क्रमात् पूर्वं मरणे तदानीमेव शेषहोमांतं कर्म समाप्य औपासनेन दहेत् । ५

“ विवाहशेषमध्ये तु दंपत्योर्मरणं यदि । कर्मशेषं समाप्यैव दहेदौपासनाग्निना ” ॥ इति स्मरणात् ।
द्विभार्याविषयः । अनाहिताग्नेर्भार्याद्वयसंबन्धे अग्निद्वयसंसर्गात्पूर्वं मरणे तदैवाग्निद्वयसंसर्गं कृत्वा
तेनैव दहेत् । संसर्गान्तरं मरणे संसृष्टाग्निनैव दहेत् । यतेः पूर्वाश्रमभार्यामरणेऽपि उत्तपनाग्निरेव
अन्यानुत्तपनाग्निनेति बोधायनापस्तम्बस्मरणात् इति केचित् ।

अन्ये तु प्रेताग्निसंधानं कृत्वा तेनैव दाहः

१०

“ प्रमीतायां तु भार्यायां साग्नौ दूरंगतेऽथ वा । संधायाग्निं दहेदेनां पुत्रो वा यदि वेतरः ” ॥ इति
स्मरणात् । यतिरूपस्य भर्तुः समारोपिताग्नेर्दूरतोऽवस्थानादित्याहुः । तथा च पारिजाते—

“ परिव्राजकपत्नी चेन्मृता तस्मात्तु पूर्वतः । औपासनाग्निं संधाय दहेत्तु विधिवत्सुतः ” ॥ इति ।
तस्मात्पूर्वतः परिव्राजकमरणात्पूर्वमित्यर्थः । उत्तपनाग्नेः संस्कारमाह शौनकः—

“ अग्निमुत्तपनं कृत्वा पाश्वर्षे प्रेतस्य दक्षिणे । समूह्य संपरिस्तीर्य पर्युक्ष्य च यथाक्रमम् ॥ १५

“ आज्यं संस्कृत्य मंत्रेण स्रुवेण जुहुयात्ततः । अयाश्चेत्येकया हुत्वा व्याहृतीभिस्ततः परम् ” ॥ इति ।

बोधायनस्तु—

“ विधवाविधुराग्नौ तु स्मरन्पुरुषसूक्तकम् । जुहुयाद् द्वादशाज्येन विधवायास्त्वयं क्रमः ” ॥ इति ।
अयमुत्तपनाग्निना संस्कारः तुषकपालमथिताग्नीनामपि समानः । पूर्वमृतां पत्नीमाहिताग्निरग्निहोत्रेण
दहेत् । अनाहिताग्निः स्मार्तीर्धनं दहेदिति । आश्वलायन आह—

२०

“ स्मार्तीर्धनाग्निभिर्दग्ध्वा मृतां पत्नीं च तांस्त्रिभिः । शिष्टार्धेनोद्वहेदन्यां पुनश्चैवाग्निमान्यजेत् ॥

“ प्रागुद्धाहाच्च शिष्टार्धं स्मार्तस्याग्नेर्यथाविधि । शुश्रूषेदप्यपत्नीकं इष्टिं कुर्याच्च वा न वा ” ॥

सायंप्रातर्होममर्धाग्नावपि संचरेदिति । अत्र त्रिभिरग्निभिरग्निमान्यजेदित्येतदाहिताग्निविषयम् ।

अनाहिताग्निरौपासनाग्नेन दग्ध्वा शिष्टार्धेन सायंप्रातर्जुहुयात् स्थालीपाकं च कुर्वन्नुद्वहेत् ।

अशक्तोऽपि यावज्जीवं होमं कुर्यात् । याज्ञवल्क्यः (आ. ८९)—

२५

“ दाहयित्वाऽग्निहोत्रेण स्त्रियं व्रतवतीं पतिः । आहरेद्विधिवद्द्वारान् अग्नींश्चैवाविलंबयन् ” ॥

इत्येतत् शक्यविवाहविषयम् । अशक्यविवाहस्तु निर्मथ्येन दाहयित्वा यावज्जीवमग्निहोत्रं
जुहुयात् । अत्र कपर्दी—

“ आहिताग्निः पूर्वमृतां स्वाग्निभिर्दाहयेत्स्त्रियम् । शक्ये विवाहेऽथाशक्ये निर्मथ्येनैव दाहयेत् ” ॥ इति ।

तथा चापस्तम्बभरद्वाजौ— “ निर्मथ्येन पत्नीमुत्तपनेनेतरान् ” इति । स्मृत्यन्तरेऽपि— ३०

“ दारकर्मण्यशक्तश्चेत्पत्नी च निधनं गता । श्रौतस्मार्ताग्निना दाहः पत्न्या नैव तदा भवेत् ॥

“ निर्मथ्येनैव तां दग्ध्वा निदध्यादग्निमात्मनि ।

“ अग्निहोत्रं पौर्णमासं दर्शं चाग्रयणं तथा । अपत्नीकोऽपि कुर्वीत तस्मिन्नान्यत्कथंचन ॥

“विच्छिन्नवह्नेः संधानं पुनरेव विधीयते । दारकर्मण्यशक्तश्चेद्देहदौपासनाग्निना ”॥ इति ।
पूर्वं पत्नीमरणे दारकर्मण्यशक्तौ अनाहिताग्निदौपासनेन देहेत् । आहिताग्निहोत्रेणेत्यर्थः ।
सर्वाधाने पूर्वं यजमानस्य मरणे अग्निहोत्रेण त्रेतायां पितृमेधः । पत्न्यास्तु पश्चान्मरणे प्रेताधानमिति
चंद्रिकायात् । अत्र कात्यायनोऽपि—“पूर्वं मृतस्य दंपत्योः प्रेताधानं परस्य तु” । पूर्वं मृत-
५ स्याग्नि संस्कारः पश्चान्मृतस्य दंपत्योरन्यतरस्य प्रेताधानमित्यर्थः । कल्पपरिशिष्टे—

“मृताहिताग्नेर्भार्यायाः प्रेताया विधिरुच्यते । संस्करिष्य इमां पत्नीं निर्मथ्येन कुशाग्निना ॥

“इति संकल्प्य संपाद्य निर्मथ्याग्निर्भूमं त्रिधा । विभज्य दक्षिणाग्नौ^३ तु यदि पाकोवरानले ॥

“आमिक्षा स्रुकुसुवावत्र वारुणौ भवतस्ततः । वपनं पात्रचयनं विनान्यत्सर्वमाचरेत् ”॥ इति ।

पुनर्दारग्रहणासमर्थस्य पत्नीदाहविनियुक्ताग्निहोत्रस्य विधुरस्योत्सृष्टाग्नेर्विच्छिन्नाग्नेर्वा मरणे प्रेताधान-
१० मेव । तथा चापस्तम्बः—“यथाहिताग्निरुत्सृष्टाग्निर्विच्छिन्नाग्निः प्रमीयत न तमन्येन
त्रेताग्निभ्यो दहन्ति विज्ञायते । आधानप्रभृति यजमान एवाग्नयो भवन्ति । अथापि ब्राह्मणम्—
‘तमसो वा एष तमः प्रविशति सह तेन य आहिताग्निमन्येन त्रेताग्निभ्यो दहन्तीति’ । भाष्यकारः—
यथाहिताग्निरुत्सृष्टाग्निर्विच्छिन्नाग्निर्विधुराग्निर्वा प्रमीयत न तमन्येन त्रेताग्निभ्यो दहन्ति । तस्य
प्राचीनावीत्यग्न्यायतनमुधृत्यावक्ष्ये यजमानायतने प्रेतं निधाय गार्हपत्यायतने अरणिं निधाय
१५ मंथति यस्याग्नयो जुह्वाता मां सकामाः संकल्पयन्ते यजमानं मां संजानंतु ते हविषे सादिताय स्वर्गं
लोकमिमं न प्रेतं यं त्विति तूष्णीं विद्वत्य द्वादशगृहीतेन सुचं पूरयित्वा तूष्णीं हुत्वा प्रेतेमा त्वा
इत्यादि कर्म प्रतिपद्यत इति । स्मृत्यन्तरेऽपि—

“अथानुगतवन्निस्तु यजमानो मृतो यदि । प्रेताधानं तथा कुर्यादित्यापस्तम्बभाषितम् ”॥ इति ।

एवं चाहिताग्नेर्विधुरस्याग्नित्रयमुत्पाद्य तेनैव विधिवद्दाहः कार्यः । अनाहिताग्नेस्तु उत्तपनेनेति
२० भेदः । प्रेतेमा त्वा इत्यादि समानमुभयोः । ननु आहिताग्नेः अग्नित्रयोत्पादनवदनाहिताग्नेरपि
विधुरस्यौपासनाग्निमुत्पाद्य तेनैव दाहः कार्य इति चेन्न । आधानप्रभृति यजमान एवाग्नयो भवन्ती-
त्यापस्तम्बेन हेतूपन्यासान्न तमन्येन त्रेताग्निभ्यो दहन्तीति इतराग्निना दाहनिषेधाच्च यथा योगिनः
स्वान्देहान्परित्यज्य परकायमनुप्रविश्य पुनः स्वान् देहान् प्रविशन्ति न च तेन दुष्यन्त्येवमग्नयो-
ऽपि ‘पत्नीं संस्कृत्य यजमानमेवाभ्यावर्तत’ इति भारद्वाजवचनाच्च तस्य प्रेताधानं युक्तम् ।

२५ विधुरस्यानाहिताग्नेस्तु तथाविध्यभावात् उत्तपनाग्निविधानाच्च न प्रेतौपासनसंधानम् । तथा विधवाया
अनाहिताग्नेर्भार्याया मृतावुत्तपनाग्निनैव दाहः । आहिताग्निपत्न्यास्तु पश्चान्मरणे प्रागुक्त-
कात्यायनवचनानुसारेण प्रेताधानं निर्मथ्येनेति भाष्यकारः । पूर्वं मरणे व्रतवत्यास्तस्या
दारकर्मण्यशक्तश्चेदग्नित्रयेण दाहं कुर्यात् । तस्याः स्रुवृत्त्यभावे स्वस्य दारग्रहणशक्त्यभावे च
निर्मथ्येनैव तां देहेत् । अत्रैव विषये विष्णुः—

३० “मृतायामपि भार्यायां वैदिकाग्निं न तु त्यजेत् । उपाधिनाऽपि तत्कर्म यावज्जीवं समाचरेत्”॥ इति ।
उपाधिः प्रतिकृतिः । एतदेवाभिप्रेत्य भारद्वाजः— “यजमानस्यैवाग्नित्रयम् ” इति ।
मैत्रायणीयश्रुतिरपि—

“यस्तु स्वैरग्निभिर्भार्या संस्करोति कथंचन । असौ मृतः स्त्री भवति स्त्री चैवास्य पुमान्भवेत्”॥ इति ।

स्वैरिति श्रवणात् पत्न्या अंगतापक्षेऽयं निषेधः । न सहाधिकारपक्षे इति केचिद्विच्छिन्नाग्रेस्तृष्ठाग्रेवा यजमानस्य मृतेः पूर्वं पत्नीमरणे पुनर्दारग्रहणशक्तावशक्तौ च निर्मथ्याग्निनैव दाहः । न तु प्रेताधानाहितप्रेताग्निभिः । तथा च कपर्दी—

“नष्टोत्सृष्टानलसहचरी दाहकृत्येन कुर्यात् प्रेताधानं मथितदहनस्तत्क्रियायां प्रकल्प्यः ।

“कन्योपेतानुपनयनको पोषणे लौकिको वा कापालो वा भवति दहनश्चाथ संतापनो वा” ॥ इति । ५

विदेशस्थानग्नेः पत्नीमरणे प्रेताधानमुक्तं स्मृत्यन्तरे—

“दूरे पिताऽनग्निरितः स्वमाता मृता यदि स्यात्सुत औरसश्चेत् ।

“आधाय सर्वं विदधीत सर्वाभ्यन्त्येष्टिमात्मा स इति श्रुतिर्हि ॥” अनग्निरनाहिताग्निः । एवं विच्छिन्नौपासनस्य पत्नीमरणे प्रेताग्निं संवाजं पूर्वोक्तकपर्दिवचनेन न्यायसाम्यात् मथिताग्निरित्येके ।

बहुपत्नीकस्य पत्नीमरणे अग्निनिर्णयः । बहुपत्नीकस्य पत्नीमरणे बृद्धमनुः— १०

“बहुपत्नीकपक्षे तु ज्येष्ठा चेत्पूर्वमारिणी । तां दहेदग्निहोत्रेण पुनराधानमन्यया” ॥ इति । ‘निर्मथ्येन तथेतारम्’ इति पाठांतरम् । अयं न्यायो द्विपत्नीकपक्षेऽपि समानः । तथा स्मृत्यन्तरे—

“ज्येष्ठा भार्या मृता पूर्वं पुत्रस्त्रेताग्निना दहेत् । आधानं च पुनः कुर्यात्सह पत्न्या द्वितीयया ॥
“द्वितीया यदि चेद्भार्या पूर्वं मरणमाप्नुयात् । जीवन्त्यां प्रथमायां तु दहेदग्निमन्यिताग्निना” ॥ इति ।
द्वितीयाया अग्निहोत्रदाहादिनिषेधमाह देवलः—

“द्वितीयां वै तु यो भार्या दहेद्वैतानिकाग्निभिः । तिष्ठन्त्यां प्रथमायां तु सुरापानसमं हि तत्” ॥ इति ।
तिष्ठन्त्यां प्रथमायामिति विशेषणान्तराणादूर्ध्वं वियमानासु ज्येष्ठाया मरणेऽप्यग्निदानमनुमतमेव ।
एतदेवाभिप्रेत्य स्मृत्यन्तरम्—

“मृतायां तु द्वितीयायां योऽग्निहोत्रं समुत्सृजेत् । ब्रह्मो ज्ञेयं तं विजानीयात्तस्य काषात्समुत्सृजेत्” ॥ इति ।
‘एतदाधानाधिकृतस्त्रीविषयमिति’ विश्वामित्रेणोक्तम् । (श्रु. २. ५ पं. १. ५) तद्विषयत्वाप्रतीतिस्तदुक्त- २०
मयुक्तमित्यन्ये । द्विभार्यानाहिताग्निविषये स्मृत्यन्तरम्—

“पत्न्योरेका यदि मृता तां दहेत्स्मार्तवन्दिना । आदधीतान्यया सार्धमाधानविधिना गृही” ॥ इति ।
पत्न्योर्मध्ये एका मुख्या ज्येष्ठेति यावत् । सा मृता यदि तां संसृष्टस्मार्तवन्दिना दाहयित्वा पुन-
रन्यया कनिष्ठया सह पुनः संवाजानविधिना संदधीतेत्यर्थः । तथा शौनकः—

“अथाग्न्योर्गृह्ययोर्योगमहं वक्ष्यामि शौनकः । सहाधिकारसिद्धयर्थं सपत्नीभिर्दजातयोः” । इत्यादिना २५
अग्निद्वयसंसर्गमुक्त्वा ज्येष्ठायाः संसृष्टाग्निना दाहमाह—

“तयोरेका यदि मृता तां दध्वा तेन वन्दिना । आदधीतान्यया सार्धमाधानं विधिना गृही” ॥ इति ।
यत्तु भाष्यकारवचनं—

“यदि त्वनेकभार्यस्य काचित्पत्नी मृता तदा । निर्मथ्येनैव सा दाह्या तमग्निं धारयेत्पतिः” ॥ इति
तच्छौनकादिवचनविरुद्धत्वाद्दुपेक्षणीयम् । पत्न्या अंगत्वपक्षे वा समर्थनीयम् ।

कनिष्ठाविषये तु स्मृत्यन्तरे—

“कनिष्ठायां मृतायां तु विभज्याग्निं प्रदाहयेत् । शमयित्वान्यभागं तु समादध्यात्पुनः शुचिः” ॥ इति ।

अत्र विशेषः संग्रहे स्मृत्यन्तरे निरूपितः—

- “ज्येष्ठा विवाहवन्तौ चेत्कनीयस्याः करग्रहः । होमस्तयोर्भृतैका चेत्सर्वेणौपासनाग्निना ॥
 “दग्ध्वा तामन्यथा साकं पुनःसंधानमाचरेत् । कनीयस्या विवाहे तु होमश्चेष्टौक्किकानले ॥
 “मृतां दहेत्तदंशेन शिष्टैर्होमं समाचरेत् । तत्तदंशेन दाहः स्याद्युगपन्मरणे तयोः ” ॥ इति ।

५ स्मृतिरत्नकल्पकारिकयोरुक्तः—

- “लोकोग्रावितरौद्राहं कृत्वा संसृष्टवन्निमान् । तस्यैकस्यां मृतायां तु विभागोऽग्नेर्मुनीरितः ॥
 “विभज्य वन्निं प्रत्यक्षं भागयोस्तु पृथक् पृथक् । पूर्णाहुत्या विविच्याग्निमिष्ट्वा भागौ विनिर्दिशेत् ॥
 “पूर्वस्यां दक्षिणं भागमितरस्यां तथेतरम् । या तु तस्य मृता भार्या तद्भागं विनियोजयेत् ॥
 “पूर्वौपासनवन्तौ तु यस्योद्वाहः पुराकृतः । तस्यैकपत्नीमरणे कुत्सनाग्निर्विनियुज्यते ॥
 १० “ततस्तस्याः क्रियांते तु स्थितया सह भार्यया । प्रधानोद्वाहहोमं तु कृत्वा पूर्ववदाचरेत् ॥
 “एवं विज्ञाय यः कुर्यात्तरतीह स संसृतिम् । अन्यथा त्वग्निर्सात्कुर्यात् पतत्येवेति निश्चयः” ॥ इति ।
 पत्नीनां युगपन्मरणे संसृष्टस्य गृह्याग्निर्विभागमाह संग्रहकारः—
 “औपासनाग्नौ संसृष्टे समिधौ द्वे प्रतापयेत् । ‘अयं ते योनिर्ऋतव्य’ इत्येवं युगपत्ततः ॥
 “‘सप्त ते अग्न’ इति तु हुत्वा पूर्णाहुतिं ततः । ‘अच्छागिरोमतय’ इति विभज्याग्निं ततः पुनः ॥
 १५ “आजुह्वानेति समिधं प्रतिष्ठाप्य ततो हुनेत् । अयाश्च व्याहृतिश्चैव घृतं हुत्वा ततः पुनः ॥
 “एवं विभज्य चैकेन स्मार्तकर्म समाचरेत् ” ॥ इति ।

- अर्धाधाने त्वेकभार्यस्य यजमानस्य पूर्व मरणे तस्याग्नित्रेतायां पितृमेधः । पत्न्यास्त्वौपासनेन ।
 तदाहापस्तंबः—“तयोर्यः पूर्वं म्रियेत तस्याग्नित्रेतायां पितृमेधः संपद्यते यः पश्चात्तस्यौपासन” इति ।
 ‘स्त्री चैवं भर्तारि प्रमीत’ इति भारद्वाजवचनानुसारेण भर्तृमरणादूर्ध्वमपि औपासनाग्नि-
 २० परिचर्यायां सत्यां औपासनेन दाहः । अन्यथा प्रेताग्निसंधानं निर्मथ्याग्निरिति केचित् । एकभार्यस्य
 पूर्व पत्नीमरणे अग्निहोत्रेण औपासनेन च दग्ध्वा पुनः परिणीय तया सहाधानमथैनमुपोषती-
 त्यारभ्य पुरस्तात् सभ्यावसथ्याभ्यामौपासनेन चेत्यापस्तम्बेन औपासनस्य पत्नीविधानात्
 विवाहमर्थ्यनिश्चये पत्न्यास्त्रेतायां पितृमेधः । यजमानस्य त्वौपासनेन यः पश्चात्तस्यौपासने
 इति स्मरणात् । अर्धाधाने तु अनेकभार्यस्य यजमानस्य पूर्व मरणे तस्याग्नित्रेतायां पितृमेधः ।
 २५ पत्नीनां तु स्वैः स्वैरौपासनस्यांशैः । उक्तं च भाष्ये—

“अथ चेद्बहुपत्नीको ह्यर्धाधानी विपद्यते । त्रेताग्निमिस्तु दाह्यः स्यात्पत्न्यास्त्वौपासनानलैः ॥
 “प्रत्यक्षाग्निं विभज्यैव यथावदनुपूर्वशः” ॥ इति ।

- अत्र केचित् पूर्व मृतपत्न्यास्त्रेताग्निभिर्दहनविधानं पश्चान्मृतायाः औपासनाग्निना दहन-
 विधानं च सहाधिकारितापक्षे । न त्वंगतापक्षे । अत एवोक्तं भाष्यकारेण सूत्रे हि पूर्व मृतस्य
 ३० यजमानस्य वैतानिकैरौपासनेन च दहनमनुक्रांतं पत्न्यास्तु निर्मथ्येन दहनं वक्ष्यते । निर्मथ्येन
 पत्नीमिति । तत्र कथं पश्चान्मृतायाः पत्न्या औपासनसद्भावः । तस्मादौपासनवतः आहिताग्ने-
 वैतानिकैरौपासनेन च दहनं पत्न्या निर्मथ्येन तत्रांगतापक्षे सर्वाधाने अर्धाधाने वा पूर्वमृतां पत्नीं
 निर्मथ्येन दाहयित्वा विधिवदग्नीनुत्पृज्य दारसंग्रहणं कृत्वा ब्रह्मौदनपचनानंतरं औपासनाग्नि-
 मरणयोः समारोप्य मथित्वा विधिवदग्न्याधानं कुर्यात् इत्यंगत्वपक्षानुसारिण आहुः । यच्चात्र
 वेत्तव्यं तत्सर्वं यजमानप्रकरणे निरूपितम् ।

दारसंग्रहणानंतरं अग्न्याधानात्पूर्वं यजमानमरणे संग्रहकारः—

“यज्वा मृतस्त्रीक उडुह्य भार्यामग्नीनाधाय मृतो यदि स्यात् ।

“औपासने तंतुमतीमयाश्च हुत्वा समारोप्य कृतारणौ तम् ॥

“प्रेताधानं तु कर्तव्यं तत्पश्चात्पैतृमेधिकम्” ॥ इति । अत्रारण्याहरणमाह त्रिकांडी—

“नष्टेष्वग्निष्वथारण्योनीशे स्वामी म्रियेत चेत् । आहरेदरणिद्वन्द्वमाधानोक्तविधानतः ॥ ५

“ततोऽग्निशून्यप्रेतोक्तमंधनादि प्रपद्यते” ॥ इति ।

आत्मारूढानलमृतिविषये आपस्तंबः—“आत्मारूढेष्वग्निषु यजमानो म्रियेत लौकिका-
ग्निमुत्पाद्य समाधाय प्रेतस्य दक्षिणं पाणिमभिनिधाय तत्पुत्रो भ्राता वाऽन्यो वा प्रत्यासन्न-
बंधुरुपावरोहेत्युपावरोहयेत् । पुनस्त्वादित्या इत्यग्निमभिसमिंध्यादेवं सर्वेष्वग्न्युपधातेष्विति भूर्भुवः
सुवरिति सर्वप्रायश्चित्तानि च” इति । १९

अनेनैव न्यायेनात्मसारूढौपासनान्नेः कालद्वयौ उपासनातिक्रमात्पूर्वं मृतस्य दक्षिणहस्ते
अग्निमवस्थाप्य उपावरोह्य व्याहृत्यानाज्ञातत्रयेण च चतुर्गृहीतमाज्यं जुहुयात् । एवं चौपासनो-
त्पत्तिः कालद्वयातिक्रमे प्रेताग्निसंधानमेव ।

अरणिसमारोपिताग्निमृतिविषये भरद्वाजः—“यद्यात्मन्यरण्योर्वा समारूढेषु यजमानो
म्रियेतायतनानि कल्पयित्वा यजमानायतने प्रेतं निधाय गार्हपत्यायतने लौकिकाग्निमुपसमाधाय १५
प्रेतस्य दक्षिणं पाणिमभिसंगृह्य तत्पुत्रो वा भ्राता वाऽन्यो वा प्रत्यासन्नबंधुरुपावरोहजातवेद इमं
तं स्वर्गाय लोकाय वहन अजानन्नायुः प्रजां रयिमस्मासु धेह्यजस्रो दीदिहिनो दुरोण इति
लौकिकाम्नावुपावरोहयति । अरण्योर्वोपावरोह्य मंधेत् । यथरण्योः समारूढः स्यान्निर्वर्तमाने प्रेत-
मन्वारंभयित्वा इमं मंत्रं जपेत् ‘विहरणादिसमानम्’” इति ।

तत्रारण्योर्वोपावरोह्य मंधेदित्यंतमात्मसारोपणविषयम् । शेषमरणिसमारोपणविषयम् । २०
आदित्यसूक्तं प्रेतनिधानात्तमुभयत्र तुल्यम् । एवमनाहिताग्नेः समित्समारोपणे सति तन्मरणे मृतस्य
दक्षिणं पाणिमन्वारभ्य लौकिकाम्नावुपावरोह्य द्वादशगृहीतेनाज्येन तूष्णीं हुत्वा तत्कालहोमं च
कृत्वा संस्क्रुयात् । कालद्वयानतिक्रमेण द्वादशगृहीतेन होमः । किंतु व्याहृत्या अनाज्ञातत्रयेण च
पूर्ववत् जुहुयात् । समारूढौपासनान्नेर्भार्यामरणे लौकिकाम्नावुपावरोह्य दाहयेत् ।

आहिताग्नेर्देशांतरमरणे । आहिताग्नेर्देशांतरमरणे चंद्रिकायामुक्तम्—

२५

“यस्मिन्देहे स्थितो वह्निः ततोऽन्यत्र मृतो यदि । वैतानौपाधिका कार्या पूर्णाहुतिरथापि वा” ॥ इति ।
अग्निहोत्रार्थं ऋत्विजं परिकल्प्य कार्यवशाद्देशांतरं ग्रामांतरं वा गतस्य तत्र दैवान्मृतस्य लौकिकाग्नि-
दग्धस्यास्थीनि त्रेताग्निसमीपं नीत्वा तस्मिन्वैतानिके पाथिकृतीमिष्टिं पूर्णाहुतिं वा कृत्वा
प्रेतास्थिसंस्कारं कुर्यादित्यर्थः । केचिदत्र “चरुः पथिकृतः कार्यः पूर्णाहुतिरथापि वा” इति
पठित्वा व्याचक्षते । औपासने गृहे विद्यमाने देशांतरे लौकिकाग्निना दग्धस्यानाहिताग्नेरस्थीन्यादाय ३०
औपासने शृतेन चरुणा “अग्नये पथिकृते स्वाहा” इति जुहुयात् पूर्णाहुतिं वेति । पुनःसंस्कारपर्यंतं
अग्निहोत्रं जुहुयात् ।

“अथ यथाहिताग्निरन्यत्र प्रेयाद् दीप्यमानैर्ह्वयमानैरग्निभिरासीरन् यावदेवास्याग्निभिः समा-
गमयेरन् आसंस्कारादग्निं जुहुयात् । अग्निसंरक्षणार्थम्” इति बोधायनापस्तंबस्मरणात् ।

तत्र होमद्रव्यमुक्तं स्मृत्यन्तरे—

“अन्यदीयेन वत्सेन पेया गौस्तु न पयोधरा । आ शरीराद्धतेस्तस्याः पयसा होम इष्यते ।

“अन्यस्या अपि होतव्यं पयसा तदभावतः ” ॥ इति । पारिजाते तु—

“दूरे साम्निः पतिः पत्नी मृता स्यादुत साम्निका । दूरे पतिर्भुतस्तत्राप्युत्कर्षः सति चात्मजाः ” ॥ इति ।

५ साम्निरौपासनसहितः पिता दूरस्थः माता मृता अथवा साम्निकामा ता स्थिता दूरे पिता मृतः तदौरसपुत्रः अग्न्यानयनपर्यंतं संस्कारं न कुर्यात् । तदसंभवेऽस्थ्यानयनहतिपर्यंतं न कुर्यादित्यर्थः । अस्थ्याहरणासंभवे गृहे विद्यमानेनाग्निहोत्रेण प्रतिकृतिदाहमाह बोधायनः—

“अस्थीनि यथालब्धानि पर्णैस्तत्पुरुषाकृतिम् । कृत्वा तद्वतदिग्भागे दहेयुः पितृमेधतः ” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

१० “देशांतरे प्रमीतस्य नरस्यास्थि पुनर्दहेत् । अस्थ्यभावे पलाशोत्थैः वृंतैः प्रतिकृतिं दहेत् ॥

“तदभावे कुशैस्तेषां षष्ट्या च त्रिंशतैरपि । चत्वारिंशच्छिरकृत्तौ दशकंठेऽथ वक्षसि ॥

“विंशतिस्त्रिंशदुदरे शतार्धं भुजयोः पृथक् । ऊरुद्वये सप्ततिश्च पृथक् पृथगुदीरिताः ॥

“बाह्वंगुलीषु च तथा दश पादांगुलीषु च । मेढ्रे द्वादश शिश्नेऽष्टावूर्णासूत्रेण बंधनम् ” ॥ इति ।

आपस्तम्बः—“यथाहिताग्निः प्रोषितः प्रमीतो न ज्ञायेत यां दिशमभिप्रस्थितः स्यात्तामस्या-

१५ ग्निभिः कक्षं दहेयुरपि वा त्रीणि षष्टिशतानि पलाशवृंतानां तैः कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कुर्वति । पलाशवल्कलैः कुशैर्वा संधिषु संवेष्ट्य पूर्ववत् शरीरकृतिश्च । एवं शौनकादयः चत्वारिंशता शिरः कल्पयते दशभिर्ग्रीवां विशत्योरस्त्रिंशतोदरं पंचाशता पंचाशतैकैकं बाहुं ताभ्यामेव पंचभिरंगुलीरुपकल्पयते । सप्तत्या सप्तत्यैकैकं पादम् । ताभ्यामेव पंचभिः पंचभिरंगुलीरुपकल्पयते अष्टाभिः शिश्नं द्वादशभिवर्षणम् ” इति । जयंतकारिकायाम्—

२० “शरीराणि न विदेरन्देशांतरमृतस्य चेत् । दद्याच्छिरस्यशीत्यर्थं ग्रीवायां तु दशैव तु ॥

“उरसि त्रिंशतिं दद्याद्दिंशतं जठरे तथा । बाव्होर्द्वयोः शतं दद्याद्दश बाह्वंगुलीषु च ॥

“द्वादशार्धं वृषणयोरष्टार्धं शिश्न एव तु । ऊर्वोर्द्वयोः शतं दद्यात्षष्ठ्यर्थं जानुजंघयोः ॥

“दश पादांगुलीषु स्युरूर्णासूत्रेण बंधयेत् । स्नाप्यालंकृत्य तद्रूपं कुर्यात्तस्याभिमर्षणम् ” ॥ इति ।

शौनकः—“कृष्णाजिने तु पालाशवृंतैः कृत्वा नराकृतिम् । चत्वारिंशच्छिरो ग्रीव दशविंशत्युरस्यपि ॥

२५ “पंचचत्वारिंशद्बाह्वोः पंचपंचभिरंगुलौ । त्रिंशत्संख्योदरे शिश्ने बीजेऽष्टौ द्वादशक्रमात् ॥

“पंचषष्टीद्विपदयोर्द्व्यंगुलौ पंचपंचभिः । त्रिंशतानि च षष्टिश्च पालाशं वृंतमाहरेत् ॥

“अलाभे यज्ञवृक्षाणां वृंतान्यपि समाहरेत् ” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—“तावद्भिः पलाशपर्णैः शरीराकृतिरित्येके । कुशैरित्यन्ये । पर्णशरैरित्यपरे ” इति ।

पराशरोऽपि—

३० “आहिताग्निर्दिजः कश्चित्प्रवसन् कालचोदितः । देहनाशमनुप्राप्तस्तस्याग्निर्वर्तते गृहे ॥

“प्रेताग्निहोत्रसंस्कारः श्रूयतामृषिपुंगवाः । कृष्णाजिनं समस्तीर्य कुशैस्तु पुरुषाकृतिम् ॥

“षट् शतानि शतं चैव पालाशानां च वृंततः । चत्वारिंशच्छिरो दद्याच्छतं कंठे तु विन्यसेत् ॥

“बाह्वभ्यां दशकं दद्यादंगुलीषु दशैव च । शतं तु जघने दद्याद्दिंशतीरुदरे तथा ॥

“ दद्याद्दृष्टौ वृषणयोः पंच मेद्रे तु विन्यसेत् । एकविंशतिमूरुभ्यां द्विशतं जानुजंघयोः ॥
 “ पादांगुलीषु षड् दद्याद्यज्ञपात्रं ततो न्यसेत् । शम्यां शिश्वे विनिक्षिप्य अरणीमुष्कयोरपि ।
 “ जुहुं तु दक्षिणे हस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत् । पृष्ठे तूलूखलं दद्यात्पृष्ठे च मुसलं न्यसेत् ॥
 “ उरसि क्षिप्य दृषदं तंडुलाज्यतिलान् मुखे । श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं च चक्षुषोः ॥
 “ कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलं न्यसेत् । अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र निक्षिपेत् ॥
 “ असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्येकाहुतिं सकृत् । दद्यात्पुत्रोऽथ वा भ्राताऽप्यन्यो वाऽपि च बांधवः ॥
 “ यथा दहनसंस्कारं तथा कार्यं विचक्षणैः । ईदृशं तु विधिं कुर्याद्ब्रह्मलोकगतिर्भुवा ॥
 “ दहंति ये द्विजास्तं तु ते यांति परमां गतिम् ।

“ अन्यथा कुरुते कर्म त्वात्मबुद्ध्या प्रचेदितः । भवंत्यल्पायुषस्ते वै पतंति नरकेऽशुचौ ” ॥ इति ।
 यदा प्रोषित आहिताग्निः देशांतरे भ्रियते अग्निश्च स्वगृहे वसति तदानीमास्तीर्णं कृष्णाजिने १०
 पलाशवृत्तैर्देहाकृतिं कुशवंधाभिर्माय तदवयवेषु यज्ञपात्राणि निक्षिप्य ‘असौ स्वर्गाय लोकाय
 स्वाहा’ इत्याहुतिं जुहुयात् । ततः कल्पसूत्रोक्तप्रकारेण कृत्स्नं संस्कारं समापयेत् । तत्र संस्कार्यस्या-
 हिताग्नेर्ब्रह्मलोकप्राप्तिः संस्कर्तुः परमा गतिः । अयथोक्तकारिणः पंडितं मन्यस्य नरकप्राप्तिरित्यर्थः ।
 आपस्तंबस्तु—“आहिताग्निं विजनें प्रमीतं तैलद्रोण्यामवधाय शकटेनाहरंति तानि ग्राममर्यादायां
 प्रतिष्ठाप्याग्नीन्पितृमेधभांडं च निर्हरंति ” इति । गृहे अग्न्यभावे देशांतरे आहिताग्निमरणे १५
 प्रेताधानं कृत्वा दहेत् । प्रेताधानासंभवे लौकिकानलदग्धस्याहिताग्नेः प्रेताधानाहिताग्नित्रयेण
 पुनर्दहनं न तमन्येन त्रेताग्निभ्यो दहंतीति नियमात् । एवं विच्छिन्नौपासनस्यानाहिताग्नेर्मरणे
 प्रेताग्निसंधानं देशांतरे तस्य मरणे लौकिकाग्निना विधिवद्दग्धस्यापि प्रेताग्निसंधानेन पुनर्दाहः ।
 औपासनेनाहिताग्निं दहंतीति नियमात् । औपासनेन विना कृतस्याकिंचित्करत्वात् गृहे सति असति
 औपासने प्रेताग्निसंधानेन औपासनमुत्पाद्य तेन दाहे कृते सति न पुनर्दाहः । २०

“ अग्नेर्देशांतरप्राप्तिर्दूरस्थोऽपि च पुत्रकः । अग्निमुत्पाद्य कर्तव्यं दाहकर्म स्वबंधुभिः ” ॥ इति
 स्मरणात् । गृहे अग्नौ विद्यमाने देशांतरे मृतस्य लौकिकाग्निना दग्धस्य अस्थीन्याहृत्य पुनरौपासनेन
 दाहः । अस्थ्यसंभवे प्रतिकृतिदाहः । निकटदेशे मृतस्य गृहे विद्यमानमौपासनं नीत्वा तेन दाहः कार्यः ।
 औपासनानयनासंभवे लौकिकाग्निना दग्ध्वा औपासनेन पुनर्दहेत् । अस्थिसंस्कारपर्यंतं अन्यदीयेन
 द्रव्येणौपासने हावयेत् । विच्छिन्नौपासनस्य देशांतरमरणे पुत्रासंनिधानविषये लौकिकाग्निं २५
 केचिदिच्छंति । तथा च पारिजाते—

“ पुत्रो दूरगतः पित्रोः मृतिरत्र भवेद्यदि । लौकिकाग्निं भवेत्तत्र केचिदाहुर्मनीषिणः ” ॥ इति ।
 पूर्वमौपासनाग्निना दाहे केनापि निमित्तेन पुनर्दाहप्राप्तौ प्रेताग्निसंधानं पुनर्दाहनिमित्तमग्रे वक्ष्यते ।
 यच्चूच्यते— “ अग्नौ सति स्यादथ देहकृत्तिरस्थ्यस्ति चेद्भ्रिरेक्षणीयः ।

“ अनस्थिकस्याप्यशरीरकस्य विनष्टवन्हेरुदकक्रियैव ” ॥ इति । अस्यार्थः केचिदाहुः—अग्नौ गृहे ३०
 विद्यमाने सति देशांतरे मृतस्य लौकिकाग्निना दग्धस्यास्थिसंभवे गृहे विद्यमानेनौपासनेन पुनरास्थि-
 दाहः । अस्थ्यसंभवे प्रतिकृतिकल्पनेन पुनर्दाहः । विनष्टवन्हेर्विच्छिन्नाग्नेस्तु देशांतरे मृतस्य प्रेताग्निं
 संधानाहितौपासनेन दग्धस्यात एवानस्थिकस्य अस्थिसंस्काररहितस्याशरीरकस्य प्रतिकृतिसंस्कार-
 रहितस्य केवलमुदकक्रियैव इति ।

अन्ये तु इमं श्लोकमन्यथा व्याचक्षते । प्रोषितस्यानग्नेरलब्धास्थिकस्य केवलमुदकदान मात्रं न प्रतिकृतिदाहः । अग्न्यस्थिशरीराणामन्यतमस्य सद्भाव एव दाह इति तत्

“अस्थीनि यद्यलब्धानि पर्णैस्तत्पुरुषाकृतिम् । कृत्वा तद्गतदिग्भागे दहेयुः पितृमेधतः ” ॥ इति पूर्वोक्तबोधायनादिबहुस्मृतिविरोधात् ‘अनाकर्णितवार्तस्य पित्रादेः प्रोषितस्य च’ पंचदश-
५ द्वादशवर्षानंतरमग्न्यस्थिशरीरासंभवेऽपि ‘कृत्वा तत्प्रतिरूपकम्’ इति प्रतिकृतिदाहविधानात् । पुरुषाहुतिर्यस्य प्रियतमामृतसंस्कारेणामुं लोकमभिजयतीति दहनस्यावश्यकत्वस्मरणाच्चोपेक्ष्य मित्याहुः । यथोचितमत्र ग्राह्यम् ।

अतो विच्छिन्नत्रेताग्नेरस्थ्यलाभे प्रेताधानेन प्रतिकृतिदाहः । अनाहिताग्नेः प्रेताग्निसंधानेन तद्दाहः ।

प्रेताग्निसंधानविधिः । तत्र प्रेताधानस्वरूपमाह गृह्यसंग्रहकारः—“अथातः प्रेता-
१० धानविधिं व्याख्यास्यामो विच्छिन्नाग्न्यादिमरणे प्राचीनावीत्यग्न्यायतनान्युद्धृत्यावोक्ष्य विहारं कल्पयित्वा प्रेतस्य दक्षिणं हस्तरमण्योरन्वारंभयित्वा यस्याग्नयो जुवहतो मां सकामाः संकम्पयन्ते यजमानं मां संजानंतु ते हविषे सादिताय स्वर्गं लोकं प्रेतं नयन्त्विति मथित्वा गार्हपत्यायतने निधाय तूष्णीं विहृत्य दक्षिणाग्निं तत आहवनीयं प्रणीय द्वादशगृहीतेन सुचं पूरयित्वा प्रजापतिं मनसा ध्यायन्नाहवनीये जुहुयात्ततः संस्कारोपक्रमः । आत्मारूढेष्वग्निषु दक्षिणं पाणिं लौकिकेऽग्नौ
१५ विधायाध्वर्युरुपावरोहेत्यवरोहयेत् । तत्रेधाकृत्वा दाहयेत् । अरण्यारूढेषु तु मृतस्य दक्षिणेन पाणिना अराणि स्पर्शयित्वा मथित्वाऽवरोहयेत् । आत्मसारूढेष्वग्निषु पत्नीमरणे स्वयमेवावरोहयेत् । तत्रेधा कृत्वा दाहयेत् । शरीरनाशे पलाशपर्णैः समूलैः कृष्णाजिने पुरुषाकृतिं कुशैर्वेष्टयित्वा विधिवद्देहेत् । देशांतरमरणश्रवणे आसंस्कारादग्निं संक्षणार्थमग्निहोत्रं जुहुयात् । मृति-श्रवणानंतरं पाथिकृतीमिष्टिं पूर्णाहुतिं वा जुहुयात्तदर्थं विहृत्याजस्रान्कुर्यात् । या गौर्मृतवत्सा वत्सांतरेण दुह्यते तां दोहयित्वा प्राचीनावीतीं परिस्तरणदर्भान्प्रागग्रान्दक्षिणाग्रांस्तृण्णीयात् ।
२० गार्हपत्यस्य दक्षिणार्धे शीते भस्मन्यधिभ्रित्य दक्षिणत उद्वास्य सकृदेव सर्वे परिवेचनादिवर्ज्य तूष्णीं जुहुयात् । प्रेतं तैलद्रोण्यामवधाय शकटेन ग्राममर्यादामानयेन्निर्मथ्येन वा दग्ध्वाऽस्थीनि कृष्णाजिने संनह्य ब्रह्मचारी नियतभोज्यधःशायी नयेत् । त्रेताग्निं नीत्वा दहेत् ” इति ।

प्रेताग्निसंधानमाहापस्तंबः—“द्वादशगृहीतेन सुचं पूरयित्वा तूष्णीं हुत्वा प्रेतेमात्या
२५ इत्यादि कर्म प्रतिपद्यत ” इति । तद्व्याख्याने तु द्वादशगृहीतेनाज्येन व्याहृतिभिः अग्न्यश्च इति मंत्रेण अनाज्ञातत्रयेण चाग्निसिद्धिः भूर्भुवः सुवरिति सर्वप्रायश्चित्तमिदं सर्वप्रायश्चित्तं सर्वत्र क्रियत इत्याश्मरथ्य इति च अनुगतेऽपि वीतरया जुहुयादिति च । अनाज्ञातमिति तिस्रोऽनाज्ञातेति जुहुयादिति चापस्तंबेनोक्तत्वादिति । “अग्रौ नष्टे त्रयः कुच्छ्रः कर्तव्या वत्सरं प्रति ” । ँकुकुच्छ्राचरणं च तत्तदतीतकालानुगुणं कार्यम् । **बोधायनस्तु—**“अथ यदि यदि गृहस्थ-
३० स्योपासनाग्निर्विच्छिद्येत प्राणेषूत्क्रांतेषु श्रोत्रियवचनादुद्धरेत् । श्रोत्रियागारादाहृत्याग्निमुपसमाधाय संपरिस्तीर्याज्यं विलाप्योत्पूय सुक्सुवं निष्टप्य संमृज्य सुचिं चतुर्गृहीतं गृहीत्वा ‘सप्त ते अग्नः’ इति सप्त व्याहृतिभिश्च हुत्वा पूर्वं देवा अपरेण प्राणापानाविति द्वाभ्यां “मा त्वा वृक्षौ संबाधेष्वां मा त्वा वृक्षौ संबाधेयाम् ” इति च द्वाभ्याम् अग्नेभ्यावर्तिन्नाग्ने अंगिरः इति द्वाभ्यामेकैकं प्रति चतुर्गृहीतं गृहीत्वा जुहोति । न ब्रह्मा न प्रणीता न चरुः न स्विष्टकृत । अत ऊर्ध्वं पैतृमेधिकं
३५ कर्म प्रतिपद्यते ” इति ।

आश्वलायनानां तु शौनकोक्तप्रकारेण अयाश्चाग्नेरतो देवा इति द्वाभ्यां मनोज्योतिरिति व्याहृतीभिश्चतसृभिः पृथक् हुत्वाग्निसिद्धिः पंचभिर्मन्त्रैरग्निसिद्धिः ।

आश्वलायनीयकारिकायां तु अनाहिताग्नेः प्रेतस्य संस्कारविधिरुच्यते—

“स्नातः पवित्रपाणिः सन्नुपलिप्य यथाविधि । प्राणानायम्य संस्कर्ता प्राचीनावीत्यनंतरः ॥

“प्रेतनाम तु षष्ठ्योक्ता विच्छिन्नौपासनेन तु । करोमि संधानमिति होमद्रव्यं विधाय च ॥

“आग्नयौलिख्य याम्यांतमवोक्ष्याग्निं निधाय च । विपरीतं परिस्तीर्य दक्षिणे पात्रसादनम् ॥

“दर्भेषु दक्षिणाग्नेषु सादयेदेकशः क्रमात् । प्रोक्षणीं स्रुक्स्रुवौ चैवमाज्यस्थालीं यथाक्रमम् ॥

“उत्पूय प्रोक्षणीं प्रोक्ष्य पात्राणि च ततः परम् । संस्कृत्य तूष्णीमाज्यं च संभृज्य स्रुक्स्रुवौ ततः ॥

“प्रसव्यं परिधिच्याथ जुहुयाज्जातवेदसि । चतुर्गृहीतेनाज्येन ह्ययाश्चेत्यनया ऋचा ॥

“अतो देवा इति द्वाभ्यां मनोज्योति ऋचा ततः । सुवेणाथ व्याहृतिभिर्जुहुयाच्च पृथक् पृथक् ॥ १०

“ततोऽपसव्यं पर्युक्ष्य नमस्कृत्य हुताशनम् । औपासनाहुतिः सायं प्रातश्च जुहुयादृतैः ॥

“प्रेतस्य नामगोत्रादि द्वितीयांतमुदीर्य तु । पितृमेधेन विधिना तथैवौपासनवन्हिना ॥

“संकल्प्य संस्करिष्यामीत्यथैनं स्नापयेच्छवम् ।

“केवलं विद्यमानाग्ने स्नात्वा संकल्पयेद् बुधः । अस्ति चेदहुतः काले तं हुत्वैव गुरुं वदेत्” ॥ इति ।

अत्र पत्न्यसंनिधाने प्रतिकृतिमाह त्रिकांडी—

‘यस्य भार्या विदूरस्था पतिता व्याधिताऽपि वा । अनिच्छुः प्रतिकूला वा तस्याः प्रतिनिधौ क्रिया’ ॥ इति ।
दर्भादिना भार्याप्रतिनिधिं कृत्वा अग्निसंधानं कुर्यादिति । व्याहृतयः पूर्वं देवा अपरेण प्राणापानौ मा त्वा वृक्षाविति द्वाभ्यामग्नेवभ्यावर्तिन्निति चतस्र इत्यतैः षोडशाज्याहुतीर्जुहुयादिति ।

रजस्वलाद्यग्निसंधानमाह बोधायनः—

“अग्नियमाणस्य चेद्भार्या सूतिकर्तुमती तु वा । दुर्गा मनस्विनीं हुत्वा ततस्तंतुमतीमृचम् ॥

“उद्बुध्यस्व त्रयस्त्रिंशद्वाहृत्या च समस्तया । व्याहृत्या त्रिरनाज्ञातं महाव्याहृतिभिस्तथा ।

“हुत्वा चतुर्गृहीतेन सर्पिषा यास्य संस्क्रिया ” ॥ इति । दुर्गा जातवेदसे सुनवामेत्यूक् ।

मनस्वती मनो ज्योतिर्जुषताम् इत्यूक् । तंतुमती तंतुं तन्वन्निति त्रयस्त्रिंशत्तव इति । महा-

व्याहृतयः भूरग्नये च पृथिव्यै च इत्याद्याश्चतस्रः । अत्र ‘जुहुयात्तद्यमो द्वाभ्यां वरं दत्वाऽथ संस्क-

येति’ केचित्पठन्ति । तत्पक्षे तद्यमो राजा भगवान्यस्मिन्नेनमिति द्वाभ्यां हुत्वा वरं धेनुं दत्वा

संस्क्रिया कार्या । पूर्वोक्तमन्त्रेणाग्निं संधाय प्रेतेमा त्वा इत्यादि कुर्यात् ।

असंनिधाने विशेष उक्तः पितृमेधसारे—“दूरभार्ये प्रेते प्रोषितभर्तृकायां चतुर्गृहीतेनाज्येन सप्त ते अग्ने सप्त व्याहृतयः ।

ननु “बह्वहं वापि यत्कर्म स्वगृह्ये प्रतिपादितम् । तावन्मात्रे कृते सर्वः शास्त्रस्यार्थः कृतो भवेत्” ॥

इति स्मरणात् स्वगृह्ये यावदुक्तं तावदेवानुष्ठेयं अतो बोधायनीयानामेव एतदेवानुष्ठानं न

सर्वेषामिति चेन्न । स्वगृह्यानुक्तौ गृह्यांतरोक्तमपेक्षितमविरुद्धमनुष्ठेयमेव । सर्वशाखाप्रत्ययन्यायेन

साक्षात्क्षणां साक्षात्पूरणस्य कर्तुमुचितत्वात्सर्वश्रुत्युपसंहारात् श्रौतेषूक्ते यथाविधिः सर्वस्मृत्युप-

संहारात्सामर्थ्येणैव विधिरिति कात्यायनस्मरणात्—

अतो 'न जातु परशास्त्रोक्तं बुधः कर्म समाचरेत्' इत्यादिनिषेधः स्वसूत्रानुष्ठानेन परसूत्रोक्तानुष्ठानविषयः । यदाह कात्यायनः—

“स्वशास्त्राविधिमुत्सृज्य परशास्त्राश्रयं च यत् । कर्तुमिच्छति दुर्मेधाः मोघं तस्य तु तत्फलम् ॥

“यन्नाम्नातं स्वशास्त्रायां यथोक्तमविरोधि च । विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्मवत्” ॥ इति ।

५ अत एवोपनिष्क्रमणमुपनीतानामुपवीतधारणानुपाकर्मणि ब्रह्मचारिणां क्षौरं उपवीतधारणं संध्या-
वंदनगायत्रीजपादीनि आपस्तम्बानुक्तानि बोधायनादिभिरुक्तानि सर्वे शिष्टा आचरन्ति ।
स्वसूत्राभावे परसूत्रेण दाहादिस्वसूत्रोक्ता अपि दाहाद्येकोद्दिष्टपर्यन्ताः पूर्वक्रियानुष्ठापकस्वसूत्रविद-
लाभे परसूत्रेणापि कर्तव्याः । तदाह भरद्वाजः—

“अलब्धात्मीयसूत्रस्य श्राद्धान्तं परसूत्रतः । कुर्यात् सपिंडीकरणं स्वसूत्रेणैव नान्यतः” ॥ इति ।

१० अंगिरा अपि—

“सूत्रांतरेण यद्गर्धं प्रेतं तस्योचराः क्रियाः । स्वसूत्रेणैव कर्तव्याः सपिंडी तु विशेषतः” ॥ इति ।

उत्तरा दाहाद्येकोद्दिष्टपर्यन्ताभ्यः क्रियाभ्यः परा इत्यर्थः । याजुषिकाणां स्वशास्त्राविषयबोधायनसूत्र-
सद्भावे तदेव ग्राह्यम् । तथाहांगिराः—

“स्वसूत्रे विद्यमाने तु परसूत्रेण वर्तते । बोधायनमतं कृत्वा स्वसूत्रफलभावेत्” ॥ इति ।

१५ एवं स्वस्वशास्त्राविषयसूत्रांतरसंभवे तदेव ग्राह्यम् । अन्यथा 'यः स्वशास्त्रं परित्यज्य' इति पूर्वोक्त-
दोषप्रसंगात् । स्वशास्त्राविषयसूत्रालाभे 'धर्मिलोपाद्धरं धर्मलोपः' इति न्यायात् शास्त्रान्तरेणापि
दहनं कर्तव्यम् । तत्र विशेषमाह भरद्वाजः—

“यस्मिन्सूत्रे विवाहः स्यात्तेन प्रेतस्य च क्रिया । पिंडसंसर्जनादर्वाकसपिंडी तु स्वसूत्रतः” ॥ इति ।

विवाहसमये स्वसूत्रालाभे येन सूत्रेण विवाहः कृतः तेनैव सूत्रेण स्वसूत्रालाभेऽपि सपिंडीकरणाद-

२० वार्क तेन प्रेतक्रिया कार्येति कैश्चित् व्याख्यातम् । स्वसूत्रेण दाहादिश्राद्धकर्माणि कार्याणीति
पितृभेदसारे व्याख्यातम् । यथोचितमत्र ग्राह्यम् ।

“उपात्ते तु प्रतिनिधौ मुख्यार्थो यदि लभ्यते । तत्र मुख्यमनादृत्य गौणेनैव समापयेत्” ॥ इति

स्मृत्यर्थसारवचनस्यात्रापि तुल्यत्वेनान्यसूत्रेण दाहे कृते न मध्ये स्वसूत्रप्रक्रियावकाशः ।

यत्तु कात्यायनवचनम्—

२५ “अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः कार्यकारिभिः । अक्रिया च प्रोक्ता च तृतीया च यथाक्रिया ॥

“प्रधानस्याक्रियायां तु सांगं तत्क्रियते पुनः । तदंगाकरणे कुर्यात्प्रायश्चित्तं न कर्मतः” ॥ इति

तत्प्रतिपदविहितव्यतिरिक्तविषयम् । यत्तु चंद्रिकायां परसूत्रेण दाहे पुनर्दहनमुक्तम् “अनात्मीयेन

शास्त्रेण यो दग्धस्तं च शास्त्रतः” इति तत्पूर्वोक्तानेकस्मृतिविरोधाच्छिष्टाचारविरोधाच्चोपेक्षणीयम् ।

यत्तु चंद्रिकायां “कर्तुरन्येषां च संध्याकर्मणि दहनसंकल्पात्प्राक् स्नानाच्छुद्धिः

३० “आरंभात्प्राग्यदि स्नायात्तस्य शुद्धिर्भविष्यति । आरब्धे तु च संस्कारे शुद्धिस्तु दहनात्परम्” ॥ इति

स्मरणात् संकल्पात् प्राक् शुद्धिः उपवीतादिनियमश्च । स्नानाचमनप्रदक्षिणनमस्कारप्राणा-

यामानुपवीती कुर्यात् ।

“प्राणायामे नमस्कारे स्नाने चैव प्रदक्षिणे । पैतृके प्रेतकृत्येऽपि ह्युपवीतं विधीयते” ॥ इति

स्मरणात् ।

प्रेतकर्मद्वौ शुद्ध्यर्थं च मनप्राणायामावश्यककार्यौ

“कर्मवसाने कर्मादौ मृतावाचमनं पुनः । कुर्यात्स्वकर्मसिद्ध्यर्थं सर्वदा सर्वकर्मसु ॥

“ततोऽभ्यन्तरशुद्ध्यर्थं प्राणायामान्समाचरेत्” ॥ इति भरद्वाजस्मरणात् । संकल्पप्रभृति दशाहहोमात्प्राचीनेषु कर्मसु कर्ता प्राचीनावीती दक्षिणामुखश्च भवेत् । तथा शुनःपुच्छः—

“पैतृके प्रेतकृत्येषु प्राचीनावीतमिष्यते । दक्षिणाप्राश्च दर्भाः स्युः स च वै दक्षिणामुखः” ॥ ५

मनुरपि (३।२७९)—

“प्राचीनावीतिना सर्वमपसव्यमतद्रिणा । पित्र्यमा निधनात्कार्यं विधिवद्भपाणिना” ॥ आ निधनात् मरणमारभ्येत्यर्थः । तथा च बोधायनेन श्रुत्यर्थोऽभिहितः “प्राचीनावीतं पितृणामिति” ।

मृतानामेवेदमुक्तं भवतीति बोधायनीये—

“प्राचीनावीतिना कार्यं प्रेतकर्म च पैतृकम् । निवीतिनो वह्येयुस्ते ज्ञातिनोऽन्ये च वाहकाः” ॥ इति । १०

संकल्पप्रभृति प्राचीनावीतं कार्यमिति तद्व्याख्यानेऽभिहितम् । संकल्पादौ नियमः स्मृत्यन्तरेऽभिहितः—

“आवाहनेऽर्घ्ये संकल्पे पिंडदाने तिलोदके । अक्षतासनयोः पाद्ये गोत्रं नाम च कीर्तयेत्” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“स्नात्वा स्वशक्त्या द्रविणं दत्त्वा सभ्यान्प्रदाक्षिणम् । परीत्य तैरनुज्ञातः कर्म संकल्पयेत्ततः” ॥ इति ।

पितृमेधसारे संकल्पप्रकारोऽभिहितः— अमुकगोत्रममुकशर्मणं प्रेतं अमुकगोत्रममुं प्रेतमिति वा १५

अमुनाग्निना पैतृमेधिकेन विधिना संस्करिष्यामीति । ब्रह्ममेधे तु ब्रह्ममेधविधिनेति । ब्रह्ममेधसंस्कारो मोक्षकाक्षिणां श्रोत्रियाणामेव । तथा चापस्तम्बः—“उत्तरं पितृमेधं व्याख्यास्यामो यं ब्रह्ममेध”

इत्याचक्षते । अथाप्युदाहरंति

“द्विजातीनामपवर्गार्थोऽर्थतस्तत्त्वदर्शिभिः । ऋषिभिस्तपसो योगाद्देष्टितं पुरुषोत्तमम् ॥

“होतृश्च पितृमेधं च संसृज्य विधिरुत्तरः । विहितस्तु समासेन क्रतूनामुत्तमः क्रतुः” ॥ इति । २०

अत्र कपर्दिभाष्यम्—ब्रह्मविद्भ्यः कर्तव्यो ब्रह्ममेध इत्याचक्षते । अथवा ब्रह्मनिष्ठानामिति केचित् ।

ब्रह्म पिधीयत इति । अथाप्युदाहरंति श्रुतिं द्विजातीनामित्यारभ्य क्रतूनामुत्तमः क्रतुरित्यन्ता श्रुति-

रानीयते । द्विजातयो ब्राह्मणा एव । इह तेषामपवर्गो मोक्षः । न पुनर्जन्म । एतद्विधानं एभ्यः प्रयुज्यते ।

केचिदपवर्गं स्वर्गं इति वदन्ति तदयुक्तं पूर्वैर्गैव स्वर्गसिद्धेः । कैर्हृष्टम् इति संदिग्धे उच्यते ।

अर्थतस्तत्त्वदर्शिमिति । केनोपयेनेति केचित् तपसो योगात् । किमर्थं एतद्विधानमिति चेद्देष्टितुं २५

वेष्टनं प्रवेशनं प्राप्तिः सायुज्यं इत्यर्थांतरं किं वेष्टितुमिति चेत् पुरुषोत्तमं पुरुषाणामुत्तमं नारायणं

तत्प्राप्त्यर्थं तत्र पिण्डतार्थं उच्यते । द्विजातीनां मोक्षार्थं वेदशास्त्रतत्त्वज्ञैः ऋषिभिस्तपसः

प्राधान्यादेतत् विधीयत इति । किं तदिति चेत् होतृन्पितृमेधं च संसृज्य विधीयत इति ।

भाष्यांतरे तु—ब्रह्मशब्देन चतुर्होतार उच्यन्ते । ‘ब्रह्म वै चतुर्होतारः एतद्वै देवानां परमं गुह्यं

ब्रह्म यच्चतुर्होतारः’ इत्यादि श्रुतेः । (तै. २।२।१) मेधो यज्ञः । ब्रह्मसंयुक्तो मेधः चतुर्होतृसंयुक्तो ३०

दहनकल्प इति यावत् । तत्र “अपूर्वमन्ते स्यात्” इति न्यायेन होतृपितृमेधसमावेशो होतृकाण्डे-

न्ततो भवति । स एष विधिः क्रतूनां मध्ये श्रेष्ठः । उत्तमः क्रतुरिति गौणनिर्देशः । अश्वमेधादिवत् ।

विशिष्टपारलौकिकफलसाधन इत्यर्थः । पितृमेधेनापि प्रेतस्य पारलौकिकसुखावाप्तिमाहापस्तम्बः

(ध. सू. २।१।२३।११)—

“यत्तु इमं शानमुच्यते ननु कर्मणामेषोऽंते पुरुषसंस्कारो विधीयते ततः परमनंतफलं स्वर्गशब्दः श्रूयते” ३५

इति ।

श्रुतिरपि (तै. ५।२-३)—“ स एष यज्ञायुधीयजमानोजसा स्वर्गं लोकमेति ” इति ।
बोधायनोऽपि—‘ मृतसंस्कारेणामुं लोकम् ’ इति । संग्रहे—

“ खननं दहनं त्याग इति या त्रिविधोच्यते । शरीरसंस्क्रिया सा स्यात् परलोकजयावहा ॥

“ विधिः श्मशानसंयुक्तो योऽन्यः संचयनादिकः । कर्मोपयुक्तं देहस्य प्रतिपच्यर्थ एव सः ” ॥ इति ।

५ मनुरपि (२।२६)—

“ वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकाद्यैर्द्विजन्मनाम् । कार्यः शरीरसंस्कारः फलवान्प्रेत्य चेह च ” ॥ इति ।
निषेकाद्यैः श्मशानपर्यंतैरित्यर्थः ।

हारितोऽपि—“ द्विविध एव संस्कारो भवति । ब्राह्मो दैवश्च । गर्भाधानादि स्मार्तो ब्राह्मः ।
पाकयज्ञाः हविर्यज्ञाः सोमयज्ञाश्चेति दैवः । ब्राह्मसंस्कारसंस्कृतः ऋषीणां समानतां सायुज्यं
१० गच्छति । दैवेनोत्तरेण संस्कृतो देवानां समानतां सालोक्यं सायुज्यं गच्छति ” इति ।

एवं च संस्कारस्य मृतातिशयाधायतकतया संस्कारफलस्य संस्कृतगामित्वाभावात्
संस्कारिण्यामीति परस्मैपदप्रयोग एवात्र साधुरित्याहुः ।

प्रेतालंकरणम्—पुत्रादयः प्रेतं संस्नाप्य वस्त्रगंधमाल्याद्यैरलंकुर्युः । तथा च कात्यायनः—

“ धृतेनाभ्यक्तमाप्लुत्य सवस्त्रं चोपवीतिनम् । चंदनोक्षितसर्वांगं सुमनोभिश्च भूषयेत् ” ॥

१५ प्रचेताः—

“ स्नानं प्रेतस्य पुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैः पूजनं तथा । प्रेतं दहेच्छुभैर्गंधैश्चर्चितस्त्रग्विभूषितम् ” ॥ इति ।
स्मृत्यंतरे—“ पुष्पैस्तु गंधमाल्याद्यैर्माधवाग्निसमर्पितैः । यदि प्रेतमलंकुर्यात्स याति परमां गतिम् ” ॥ इति ।
गौतमः—“ स्नापयित्वाऽलंकृत्य च दक्षिणाग्रान्दर्भान्संस्तीर्य तेषु यज्ञियैः काष्ठैर्दक्षिणाग्रैर्दारुचितिं
चित्वा प्रेतस्य केशश्मश्रुलोमनखानि वापयित्वा स्नापयित्वा च ” ॥ इति ।

१७ आपस्तम्बः—“ अथास्य दक्षिणेन विहारं परिश्रिते केशश्मश्रुलोमनखानि वापयित्वाऽलंकृत्य ” इति ।

बोधायनेनापि—“ प्रेताहुत्यनंतरं वपनमुक्तम् । अत्र केचिदाहुः । आहिताग्निसंस्कारस्योपक्रमा
दाहिताग्रेरेव वपनं अनाहिताग्रेः प्रेतस्य वपनं न विद्यते “ अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्र-
स्पर्शनदूषिता ” इति शूद्रस्पृष्टस्य शवहविषो दुष्टत्वस्मरणादिति । अपरे तु सोऽयमेवं विहित
एवानाहिताग्रेः पात्रचयनेष्टकावर्जमित्यापस्तम्बादिभिरनाहिताग्रेः प्रेतस्य पात्रचयनेष्टकावर्जितस्य

१८ संभावितस्यातिदेशात् शूद्रस्पृष्टशरीरहविषो दुष्टत्वस्मरणस्य विहितव्यतिरिक्तविषयत्वात् वपना-
नंतरं स्नानेन तच्छुद्धेश्वानाहिताग्रेरपि प्रेतस्य वपनमावश्यकमिति वदन्ति । तथा च
गोपालभाष्ये—“ औपासनं हि सर्वस्यानाहिताग्रेर्गृहमेधिना भवति । दक्षिणतोऽग्रेः परिश्रिते देशे
पात्रचयनेष्टकावर्जितस्य संभावितस्य कर्मज्ञानातिदेशाच्छूद्रस्पृष्टहविषो दुष्टत्वस्मरणस्याविहितव्यति-
रिक्तविषयत्वाद्वपनानां केशश्मश्रुवापनादिसमानमिति । अत्र शिष्टानुचारानुसारेण यथोचितं ग्राह्यम् ।

१९ प्रेतनिर्हरणप्रकारः । अहतेन वाससा मुखाच्छादनमाह कात्यायनः—“ मुखे वस्त्रं
पिथायैः निःसरेयुः सुतादयः ” इति । शाखाभेदेन शवाच्छादनवस्त्रभेदमाह मनुः—

“ बह्वृचः खंडवस्त्रेण शवं प्रच्छादयेन्नरः । अखंडितेन वस्त्रेण यजुःशाखाशवं तथा ” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे तु—

२५ “ पादमात्रमवच्छाद्य मूलतोऽहतवाससा । कर्ता तदेकदेशं तु कुर्याद्वासस्तथोत्तरम् ” ॥ इति ।

आपस्तम्बः—“औदुम्बर्यामासंथां कृष्णाजिनं दक्षिणाग्रीवमधरलोममास्तीर्य तस्मिन्नेनमुत्तानं निपात्य पत्तोदशेनाहतेन वाससा प्रोर्णोति” इति । पत्तोदशेन पत्तः पादप्रदेशे दशावसानं समाप्तिदेशो यस्य वाससः तत् पत्तोदशं तेनेत्यर्थः । अत्र कृष्णाजिनमाहिताग्निविषयम् । अन्यस्यासंदीमात्रमेव “औदुम्बर्यामासंथां दक्षिणाशिरसमुत्तानं संवेश्योदग्दशेन वाससा प्रच्छाद्य” इति स्मरणादाचाराच्च । आसंथलाभे **बोधायनः**—“आसंथा तल्पेन शकटेन वा संवेष्ट्य वाससा प्रवयसो वा वहेयुः” इति । ५ ते च निवीतिनो वहेयुः । तथा च स एव—

“अथ निवीतिकार्याणि व्यवयः स्त्रीप्रजासंस्कारः प्रेतोद्वहनानि मनुष्यकार्याणि” इति । **आश्वलायनोऽपि** (४।२।९-१०)—“अन्वंचोऽमात्या अधोनिवीताः प्रवृत्तशिखाः ज्येष्ठप्रथमाः कनिष्ठजघन्याः प्राप्यैकं भूमिभागं कर्तोदकेन शमीशाखया त्रिः प्रसव्यमायतनं परिव्रजन् प्रोक्षत्यपेत-
वीत इति” । **स्मृत्यन्तरे**—“निवीतिनो वहेयुस्ते ज्ञातयोऽन्ये च वाहकाः” १०

वसिष्ठः—“औदुम्बर्यामथासंथां वहेदूर्ध्वमुखं शवम् । न ग्रामाभिमुखं नाधो नयेयुर्याम्यशीर्षकम् ॥
“वृद्धाः प्रेतस्य पुरतः स्त्रियो बालाश्च पृष्ठतः । अधः कृतोत्तरीयाः स्युः प्रविमुक्तशिरोरुहाः ॥
“गच्छेयुर्बाधवाः पश्वाच्चाग्नेः प्रेतस्य चान्तराम्” इति । **बोधायनविधौ** तु क्षीरं दधीत्युपक्रम्य पुर-
स्तादग्निस्कृतां मुक्तशिखो मध्यतः शवमिति अग्निशवयोर्मध्ये कर्ता गच्छेदित्यर्थः । **स्मृत्यन्तरे**—
“प्रेतस्य पार्श्वयोऽग्रे न गच्छेयुः कदाचन । यस्मादग्रे तु गंतूणामायुः क्षोणं पदेपदे” ॥ इति । १५
अग्रे तु संभारा नेतव्याः । तथा **चापस्तम्बः** “अग्नीन्निर्भांडमग्निहोत्रोच्छेषणं येन चान्येनार्थी भवति न हीनमन्वाहरेयुरथ तमाददते” इति । हीनं कर्मण्यनुपयुक्तं न किंचिदपि अन्वाहरेयुः । किं तु येन साधनेन कर्मण्यर्थं भवति तदेवान्वाहरेयुरित्यर्थः । **बोधायनोऽपि** “अथाग्नयोऽर्थं पात्राणि दध्याज्यं दर्भान् राजगवीयं चान्यदप्येवं युक्तम्” इति । **आश्वलायनीये** (४।२।१-२) “अथैतौ दिशमग्निं नयति यज्ञपात्राणि चान्वंचं प्रेतमयुजो मिथुनाः २०
प्रवयसः पीठचकेऽण गोयुक्तेनेत्येके” इति । **पितृमेधसारे** “अग्नेग्निमथसंभारांस्तिलांस्तंडुलां-
श्चरुं पलाशशाखां हिरण्यशकलान्याज्यं पात्राणि दर्भाश्मसिकताश्च प्रस्थाप्याथ प्रेतं निर्हरेयुः” इति ।
“न ग्रामाभिमुखं प्रेतं निर्हरेयुः” इति । अत्र **हारीतः**—
“न ग्रामाभिमुखं प्रेतं निर्हरेयुः कथंचन । निर्हरे शवहृद्व्या तु ग्रामे नश्यति वीक्षितः” ॥ इति ।
मनुः (५।९१)—

“दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् । पश्चिमोत्तरपूर्वेस्तु यथासायं द्विजातयः” ॥
पुरःश्रवणान्न ग्रामे नियमः । निर्हणे शूद्रनिषेधः स्मर्यते—
“न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण हारयेत् । अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता” ॥ इति ।
विज्ञानेश्वरः—

“यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणं काष्ठं हवींषि च । प्रेतत्वं हि सदा तस्य स चाधर्मेण लिप्यते” ॥ इति । ३०
आतुरव्यञ्जनम् । आतुरव्यञ्जनप्रकारमाह **बोधायनः**—“अथास्य भार्याः कनिष्ठ-
प्रथमाः प्रकीर्णकेश्यो ब्रजेयुः पांसूनावपमानाः” ॥ इति । स एव—“एतस्मिन् कालेऽस्यामात्याः
तिसृभिरङ्गुलीभिरुपहत्य पांसूनंसेष्वावपन्त” ॥ इति । अमात्याः ज्ञातयः । **आपस्तम्बश्च**—
“हवींषि च । प्रेतत्वं हि सदा तस्य स चाधर्मेण लिप्यते” इति ।

आतुरव्यंजनप्रकारमाह बोधायनः—“सर्वत एव सहसा प्रज्वालयेत् । ब्रह्मलोकमजैषी-
दित्येनं जनयात् ” इति । वृष्ट्यादिना चिताग्निनाशे यमः—

“यजमाने चितारूढे पात्रणासे तथा कृते । वृष्ट्याद्यभिहते चाग्नौ ततं प्रच्छिन्नयानिकाः ॥
यदि प्रैति प्रेतेऽभात्याः प्राचीनावीतिनः केशान्प्रकीर्य पांसूनावपंत” इति ।

५ पांसूनामावपनस्थानमुक्तं भाष्यकारेण “स्वमूर्धं स्वं सेषुव ” इति ।

पथि बलिविधिः । अनंतरं कर्तव्यमाह कात्यायनः—

“आमपात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्निपुरःसरम् । एकोऽनुगच्छन् तस्यार्धमर्धं पर्युत्सृजेद्भुवि ॥

“अर्धमा दहनं प्राप्तमासीनो दक्षिणामुखः । सव्यंजान् वाच्य शनकैः सतिलं पिंडदानवत्” ॥ इति ।
पिंडदानविधिना आदहनं श्मशानपर्यंतं स्वगृह्योक्तविधिना अग्नौ प्रक्षिपेदित्यर्थः ।

१० शवाग्निपतनप्रायश्चित्तम् । अत्र शवाग्निपतने प्रायश्चित्तमुक्तं संग्रहे—

“ग्रामश्मशानयोर्मध्ये पतिते तु शवानले । पुनः कर्म प्रकुर्वीत प्रेताहुतिपुरःसरम् ” ॥ प्रायश्चित्तपुरः-
सरमिति पाठांतरम् । तदा प्रायश्चित्तं कुच्छ्रद्दव्यं दत्त्वा प्रेताहुतिपूर्वकं कर्म कुर्यात् । इदं च
कृत्स्नाग्निपतने । प्रणीतार्च्यसोमस्कन्नादौ दृष्टन्यायस्यात्रापि तुल्यत्वात् । एकदेशपतने तु
तदुद्धृत्य योजयेत् ।

१५ दहनदेशनिरूपणम् । दहनदेशमाह गौतमः—

“आग्नेय्यां वाऽथ नैर्ऋत्यां दाहदेशं प्रकल्पयेत् । उद्वास्य कण्टकान् वृक्षान्वनस्पत्यौषधीरपि ॥

“ऊर्ध्वबाहुमिति याम्यं घातं प्राक् दक्षिणायनम् । पंचारत्नमिति कुर्युरधस्तात् द्वादशांगुलम् ॥

“दक्षिणाग्रान्कुशांस्तीर्त्वा तिलान्क्षिप्त्वा यथाज्ञिकं । काष्ठैरूर्ध्वमुखं दद्यान्न नम्रं तु यथा हविः” ॥ इति ।

आग्नेयां नैर्ऋत्यामिति ग्रामापेक्षयाऽभिहितम् । आश्वलायनः (४।१।६)—“भूमिभागं खानयेत् ।

२० दक्षिणपूर्वस्यां दिशि दक्षिणापरस्यां वा दक्षिणाप्रवणं प्राक् दक्षिणाप्रवणं दक्षिणाप्रत्यक्प्रवणमित्येकै
यावानुद्वाहकः पुरुषस्तावदायामं व्याममात्रं तिर्यग्वितास्त्यर्वागभिहित आकाशं स्मशानम् ” इति ।

आपस्तम्बः—“दहनदेशं जोषयते दक्षिणाप्रत्यक्प्रवणमनिरिणमसुषिरमनूषरमभंगुरमनुषहतम-
विसृद्धार्यनवछिन्नप्रवणं यस्माद्दक्षिणाप्रतीच्य आपो निःसृत्य उदीच्य एत्य महानदीमित्य प्राच्यः
संपद्यते समं वा सुभूमिं बहुलौषधिं यस्मादारात्क्षीरिणो वृक्षाः कण्टकिनश्च ” इति । यत्र तृणानि

२५ नोत्पद्यन्ते तत् इरिणं ततोऽन्यदनिरिणम् । यत्र मूषिकादिकृतसुषिरं न विद्यते तदसुषिरम् ।

ऊषराः मृद्विशेषाः । ते यत्र न विद्यन्ते तदनूषरम् । शैथिल्यरहितमभंगुरम् । यत् पुरुषांतरदहन-
चंडालनिवासादिभिरुपहतं न भवति तदनुपहतम् । यत्र विविधं द्रवणं प्रद्रादिकं न विद्यते तद्वि-
सृद्धारि । एवं लक्षणं देशं दहनाय परिगृहीयात् । यस्माद्देशादापो दक्षिणाप्रतीच्यो निःसरन्ति दक्षिणा-
प्रत्यक्प्रवणत्वाद्देशस्य तास्तथा निःसृत्य उद्गृ गत्वा महानदीमनुप्रविश्य तदुदकेन सह प्राग्गामिन्यो

३० भवन्ति तथाभूतं वा देशं गृहीयात् । समं वा देशं जोषयते । शोभना भूमिर्यस्य स सुभूमिः ।
समं वेत्यत्रापरं विशेषणम् । बहुलौषधिमिति आरादिति दूरार्थमव्ययं यतो देशादूरे क्षीरिणः वटो-
दुंबरादयो वृक्षाः कण्टकिनश्च खादिरादयः क्षीरिणः कण्टकिनश्च समीपे यस्य न सन्ति तं देशं
परिगृहीयादित्यर्थः । आश्वलायनस्तु तद्रहितदेशालाभे तेषां समूलोद्धारेण देशकृत्तिमाह ‘कण्टकि-
क्षिरिणस्तु ’ (४।१।१३) इत्यादिना । पितृमेधसारे—“उद्धृत्यावोक्ष्य हिरण्यशकलमवधाय

दर्भान्संस्तीर्य दक्षिणाग्रैर्याज्ञिकैः काष्ठैरवंशकेयैस्तृणैर्वैति ज्ञापनात् शकेयैर्वा ब्राह्मणानीतैः तुलसी-
काष्ठयुक्तां दक्षिणाप्राचीं चितिं कुर्यात् ” । **बोधायनः**—“दारुचितिं कुर्वति दक्षिणाप्राचीमेषा हि
पितृणां प्राची दिगिति विज्ञायते वायव्यमौपासनं पुरस्ताद्वा ” इति ।

तुलसीकाष्ठप्रशंसा कृता प्रल्हादसंहितायाम्—

“ शरीरं दह्यते यस्य तुलसीकाष्ठवन्निर्हना । नरो यत्कुरते पापं तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥

५

“ तीर्थं यदि न संप्राप्तं स्मरणं कीर्तनं हरेः । तुलसीकाष्ठदग्धस्य नरस्य न पुनर्जनिः ॥

“ यदेतत्तुलसीकाष्ठं मध्ये वाऽपि चितौ कृतम् । दाहकाले भवेन्मुक्तिः पापकोटिकृतस्तथा ।

“ तुलसीकाष्ठमिश्रा तु यावत्प्रज्वलिता चितिः । दह्यते तस्य पापानि कल्पकोटिकृतान्यपि ” ॥

तत्रप्रोक्तत्वादेतत्तांत्रिकविषयम् । न तु वैदिकविषयम् ।

“ न दह्यात्कुण्ठं विप्रस्तुलसीकाष्ठवन्निर्हना । यदि दह्याद्विमोहेन स विष्णोर्दाहको भवेत् ” ॥ इति १०

विष्णुधर्मोत्तरे निषिद्धत्वादित्याहुः । व्याघ्रपादः—

“ नाधोमुखं न नम्रं च दहेरन्मूलदूषितैः । अयज्ञीयसमिद्धिश्च चंडालपतिताहृतैः ॥

“ किमिकीटादिदुष्टैश्च न दहेत्तु चिरंतनैः । वस्त्रं परित्यजेदर्धमर्थं तु परिधापयेत् ” ॥ इति ।

प्रचेताश्च—“न नम्रं तु दहेद्वस्त्रं किञ्चिद्देयं परित्यजेत् ” इति । अत्र **चंद्रिकाकारः—**“अर्थं तु
श्मशानवासिने देयं परित्यजेदित्यर्थः ” इति । एवमेव **विज्ञानेश्वरः । स्मृतिरत्ने** तु व्याख्यातं १५

‘किञ्चिद्देयमिति प्रेताच्छादनवस्त्रादुत्कृतं किञ्चिद्वस्त्रसंढनं म्लेच्छचंडालादिभ्यो दद्यादित्यर्थः’ इति ।

आपस्तंबः—“ अथैनं चित्तावुपर्यध्यूह्यथास्य प्राणायतनेषु हिरण्यशकलान्प्रत्यस्यत्याज्य-
विंदून्वा ” इति **गौतमोऽपि—**“आस्थे चक्षुषोर्नासिकयोः श्रोत्रयोश्च सप्त हिरण्यशकलानाज्य-
विंदून्वा सप्तव्याहृतीर्मनसा ध्यायन्निरस्यति” इति । **कात्यायनः—**

“दक्षिणाशिरसं चित्यामुतानं तं निवेशयेत् । हिरण्यशकलान्यस्य क्षिपेच्छिद्रेषु सप्तसु ” इति । २०

बोधायनीये—“ दध्याज्यतंडुलतिलान्प्रेतस्यास्ये विनिक्षिपेत् ” इति । **आश्वलायनीये च—**

“सतिलं तंडुलं चास्थे वक्षस्यग्निं निधाय च” इति । **पितृमेघसारे—**“आदित्याभिमुखः स्थित्वा

ज्वलदुल्केनोरासिं दहेत् ” इति । **वैखानससूत्रे—**“ अग्निर्यजुर्भिः सेनेंद्रस्येति द्वाभ्यामुज्ज्वलितं

प्राङ्मुखस्तस्य वक्षसि निक्षिपेत् ” इति । **स्मृत्यंतरे—**

“ पश्चिमाभिमुखो भूत्वा गृहीत्वा त्वनलं बुधः । तत्तन्मन्त्रं समुच्चार्य शववक्षसि विन्यसेत् ” ॥ इति २५

आपस्तंबः—“ अथैनमुपोषति मैनमग्रे विदह इति पुरस्तादाहवनीयेन शृतं यदेति पश्चाद्गार्ह-
पत्येन तूष्णीं दक्षिणतोन्वाहार्यपचनेन पुरस्तात्सभ्यावसथ्याभ्यामौपासनेन च ” इति । अत्र

कपर्दिभाष्यम्—अथैनमुपोषति दहति चितेः पुरस्तादाहवनीयेन पश्चान्मैनमग्रेविदह इति
पश्चाद्गार्हपत्येन शृतं यदेति तूष्णीं दक्षिणतोन्वाहार्यपचनेन पुरस्तात्सभ्यावसथ्याभ्यामौपासनेन
चेति । **गोपालभाष्येऽपि—**उपोषणं दहनं दारुचितेरेवात्र साक्षादग्निसंयोगः कार्य इति । ३०

स्मृतिसारसुधानिधौ—

“ अग्निभिर्वाऽग्निना वाऽपि शववत्यां चितौ दहेत् । शावं चोदाहनं तस्य गतिर्नैत्यब्रवीन्मनुः ” ॥

घसिष्ठः—

“ अग्निक्षेपो नातिशवं श्रुतावाहुतिदर्शनात् । आहुत्य परिविक्षेपात्तत्कर्म विफलं भवेत् ” ॥

शातातपोऽपि—

“चित्तौ दहनमेतेषां द्विजानां सर्वसूत्रिणाम् । तद्वशाद्दहनं लब्ध्वा मृता ब्रह्म समाप्नुयुः” ॥ इति । अत्र शिष्टाचारावस्था । आदित्याभिमुख एव स्थित्वा दहेत् “सावित्र्यादिक्रियाः सर्वा आदित्याभिमुखश्चरेत्” इति सर्वकर्मसाधारण्येनादित्याभिमुखत्वस्मृतेः । स्थितिराचारसिद्ध्यर्थसिद्धा च । सूर्यं ते चक्षुः इत्युपस्थानं प्रेताभिमुखः कुर्यात् । अपरेण चित्तिं प्राङ्मुखः स्थित्वा य एतस्य पथ ५ इत्यादिभिर्जुहुयात् । प्रेतस्यापरे स्थित्वेति **बोधायनी**यादौ दर्शनादेवं मंत्रवद्गृध्वा निरवशेषमग्निं चित्तौ प्रागादिक्रमेण प्रक्षिपेत् । तथा **बोधायनः**—“सर्वत एव सहसा प्रज्वलयेत् । ब्रह्मलोकमजैषीदित्येवं जानीयात्” इति ।

चिताग्निनाशप्रायश्चित्तम् । वृष्ट्यादिना चिताग्निनाशे यमः—

- “यजमाने चितारूढे पात्राण्यासे तथाकृते । वृष्ट्याद्यभिहते चाग्नौ ततः पृच्छन्ति याज्ञिकाः ॥
१० “शेषं दग्ध्वार्धदग्धेन निर्मथ्यं तत्र कारयेत् । शेषालाभे तदा कुर्याद्दग्धशेषस्य वा पुनः ॥
“अप्सु प्रास्यन्ति शेषं तदाग्नेयास्ताः स्मृता बुधैः” ॥ इति । आग्नेयत्वमपां ‘वायोरग्निरेराप’ इति *श्रुत्यावगम्यते । स्मृत्यन्तरेऽपि—

“दह्यमाने शवे बन्धिर्नष्टो वर्षात् भवेद्यदि । चितिकाष्ठं तु निर्मथ्य तेन प्रेतं पुनर्दहेत् ॥

“अभावे चितिकाष्ठानां शेषमप्सु विनिक्षिपेत्” । प्रायश्चित्ते कृतेऽग्निनेति पाठांतरम् ।

- १५ प्रायश्चित्तमनुगतप्रायश्चित्तम् । तच्च द्वादशगृहीतेन सुचं पूरयित्वापस्तंबोक्तमित्याहुः ।
दहनानन्तरकृत्यमाह कात्यायनः—

“वस्त्रं संशोधयेदादौ ततः स्नानं समाचरेत् । सचैलं तु पुनः स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः” ॥ इति ।
ज्ञात्यादिविषयेऽपि स एव—

“अथानवेक्षमेत्यापः सर्व एव शवस्पृशः । स्नात्वा सचैलमाचम्य दधुरस्योदकं स्थले” ॥ इति ।

- २० **आश्वलायनः**—“अनवेक्षमाणा यत्रोदकमवहं भवति तत्प्राप्य” इति । अवहं प्रवाहरहितं स्थिरमिति यावत् । **आपस्तंबोऽपि**—“अनवेक्षमाणा अपोऽवगाहंते धाता पुनातु सविता पुनातु इति केशान्प्रकीर्य पांसूनोप्य” इति । अत्र कममाह **बोधायनः**—“यवीयान्यवीयान्पूर्वं पूर्वं संग्राहते” इति । **आपस्तंबः**—“धून्वने अन्वारंभणे संग्राहने संसर्पण उदकोस्पर्शन इति सर्वत्र कनिष्ठप्रथमा अनुपूर्वा इतरे स्त्रियोऽग्रे” इति । धून्वनं सिग्भिरवधून्ननं अन्वारभणं राज-
२५ गव्याः संग्राहनं कर्तृणां संसर्पणं शाखाद्वयमध्येन उदकोस्पर्शनां धाता पुनात्विति स्नानं एतेषु पंचसु कर्मसु कनिष्ठप्रथमाः स्युः कनिष्ठः सर्वेभ्योऽवरवयाः स प्रथमो एषां ते तथोक्ताः । इतरे अस्मादन्ये सकुल्याः आनुपूर्व्याः तत आनुपूर्व्यतः स्युः प्रथमापेक्षया वृद्धवृद्धतरवृद्धतमानुपूर्वेण स्युरित्यर्थः । स्त्रियोऽग्रे इति मृतस्य कुल्यानां च भार्या गृह्यन्ते । मृतस्यैव भार्या इत्यपरे । तासामपि कनिष्ठप्राथम्यं वेदितव्यम् । “अथास्य भार्याः कनिष्ठप्रथमा” इति **बोधायन**स्मरणात् ।
३० **पितृभेदसारे** तु “आनुपूर्व्यात् यथावृद्धम्” इति **भाष्यानुसारेण** व्याख्यातम् । धून्वनादिषु सर्वत्र कनिष्ठप्रथमा इतरे कनिष्ठव्यतिरिक्ता यथावृद्धकर्ता पश्चादिति । अस्यार्थः । कनिष्ठः प्रथमं ज्येष्ठो वा कनिष्ठो वा कर्ता सर्वेषां पश्चात्तयोर्मध्ये ज्येष्ठानुक्रमेण ज्ञातयः कल्प्या इति ।
आश्वलायनस्तु (४।२।९)

‘ज्येष्ठप्रथमाः कनिष्ठजघन्या’ इति सर्वतुरीयाध्वगमने तथा प्रविशेयुः ‘कनिष्ठप्रथमा ज्येष्ठजघन्या’ इति ।

- ३५ ग्रामप्रवेश इति ।

बृहद्विष्णुः—

“संस्कृत्य बन्धौ पितरं दृष्ट्वा ज्योतिस्ततो रविम् । स्त्रीबालान् स्वपुरः कृत्वा वृद्धो गच्छेज्जलाशयम्” ॥

स्मृत्यन्तरे—

“शवं दग्ध्वा यथान्यायं दृष्ट्वा ज्योतिर्दिशः क्रमात् बालान् दारान् पुरस्कृत्य गच्छेत् प्रेतमनीक्षकः” ॥ इति

यथास्वगृहं यथाचारमत्र व्यवस्था । अत्र सर्पिडाश्च वस्त्रसंशोधनपूर्वकं त्रयोदशनिमज्जनं कुर्युः । ५

“अस्पृश्यस्पर्शनि चैव त्रयोदश निमज्ज्य च । आचम्य प्रयतः पश्चात् स्नानं विधिवदाचरेत्” ॥ इति

भरद्वाजस्मरणात् । उशानः—

“अनुगम्य मृतं प्रेतं ज्ञातीनप्यनुमृत्य च । स्नात्वा घृतं च भक्षित्वा पुनः स्नानं समाचरेत्” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—“शवानुगमने क्षौरं पुनः स्नानं विधीयते । आर्द्रवस्त्रं परित्यज्य शुष्कवस्त्रेण मार्जनम् ॥

“सप्तवाताहतं वस्त्रं शुष्कवस्त्रेतिपादितम् । आर्द्रं वाऽपि द्विजातीनामाहृतं गौतमादिभिः ॥ १०

“नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमुच्यते । तर्पणं त्रिविधस्यापि ह्यंगत्वेन प्रकीर्तितम्” ॥ इति ।

अत्र कचिदपवादश्चंद्रिकायामुक्तः—

“अजीर्णेऽभ्युदिते बांते त्वश्रुपाते क्षुरे भवेत् । स्नानं नैमित्तिकं ज्ञेयं देवर्षिपितृवर्जितम्” ॥ इति ।

पुनःस्नाने तु तर्पणमुक्तं **स्मृत्यर्थसारे—**

“अस्पृश्यस्पर्शनस्नाने नाघमर्षणतर्पणे । अजीर्णेऽभ्युदिते क्षौरे पुनःस्नाने तु ते स्मृताः” ॥ इति । १५

पितृमेधसारे—“येषित्सु स्नात्वा ग्रामं प्रविष्टासु ज्ञातयोऽन्ये च त्रयोदशवारं निमज्ज्याग्निं

स्पृष्ट्वा घृतं प्राश्य पुनः स्नायुः” ॥ इति । अत्र **कवषः—**

“प्रवेशनादिकं कार्यं दाहकेनैव न क्वचित् । अनुगंता च वोढा च पुनः स्नात्वा च येषिताम् ॥

“अनुगम्य शवं बुध्वा स्नात्वा स्पृष्ट्वा हुताशनम् । सर्पिः प्राश्य पुनः स्नात्वा प्राणायामैर्विशुध्यति” ॥ इति ।

कथंचिदघृताद्यभावे

“अग्न्यभावे घृताभावे सचैलं स्नानमाचरेत् । अभिमंता तु गायत्र्या दशकृत्वो यथाविधि ॥ २०

“अर्धीजलिमपः पीत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते । वर्जनीयं त्वहोरात्रं जपहोमार्चनादिकम्” ॥ इति

स्मृत्यन्तरे प्रतिपादितं द्रष्टव्यम् । अस्नात्वा ग्रामं न प्रविशेयुः

“अस्नात्वा चेद्विशेदं ग्रामं श्मशानाद्बुद्धिपूर्वकम् । त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्यादमृत्याऽन्हाद्विशुध्यति” ॥

इति स्मरणात् ।

२५

ज्ञातिवपनविधिः—

शुद्ध्यर्थं स्नानानंतरं ज्ञातीनां वपनं विदधाति **बोधायनः—**

“सचैला दक्षिणाभिमुखाः समुत्तिका आप्लवंते । एकस्मिन्कालेऽस्यामात्याः केशश्मश्रूणि वापयेयुः” ॥ इति ।

अत्र स्नानानंतरं वपनविधानात्

“अशुद्धान्वयमप्येतान् अशुद्धस्तु यदि स्पृशेत् । विशुध्यत्युपवासेन तथा कृच्छ्रेण वा पुनः” ॥ इति ३०

अशुद्धस्य शुद्धादिस्पर्शे प्रायश्चित्तस्मरणाच्च न स्नानात्पूर्वं वपनं कुर्युः ।

आपस्तम्बः (१।३।१०।५) — “तेषु चोदकोपस्पर्शनं तावतं कालमनुभाविना च परिवापनम्” ॥ इति ।

काश्यपः—“संत्यज्य विधिवत्प्रेतं यज्ञेषु तु हविर्यथा । केशश्माश्रवादि वपनं कुर्युरत्रानुभाविनः” ॥ इति

स्मृतिरत्नमाधवीयादौ व्याख्यातम् । अनु पश्चाद्भवति जायतं इति पुत्राः कनिष्ठभ्रातरश्च ।

अथवा अनुभाविन इति पुत्रा एव निर्दिश्यन्ते

“ गयायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरीमृतौ । आधानकाले सोमे च वपनं सप्तसु स्मृतम् ” ॥
इति स्मरणादिति । गृह्यपरिशिष्टेऽपि—“एतद्वपनं संस्कृष्टव्यतिरिक्तज्ञात्यादीनामनित्यम्” ॥ इति ।
विज्ञानेश्वरस्तु अनुभावशब्दार्थमाह—“अनुपश्चाज्जायन्ते शावदुःखमनुभवन्तीति वा । अनुभाविनः
५ कनिष्ठभ्रातरः सपिंडाश्च ” इति । तथा स्मृत्यंतरे—

“ ज्येष्ठानां तु सपिंडानां श्वश्रूश्चशुरयोस्तथा । ज्येष्ठस्वसुश्च तद्भर्तुः वपनं मरणे भवेत् ” ॥
प्रथमगर्भजाता स्वसा तच्छेद्वेदोच्यते । तद्भर्तृमरणे वपनमितरत्र नेति व्याख्यातारः ।
अन्यत्रापि—

“ कनिष्ठो ज्ञातिराद्याहे केशश्मश्रूणि वापयेत् । सनखानि सरोमाणि दशमेऽहनि वापयेत् ” ॥ इति ।

१० संग्रहेऽपि—

“ भ्रातरस्त्वनुजाः पुत्रा ज्ञातयश्च सपिंडकाः । विध्यया सह जाताश्च वापयेयुः परस्परम् ” ॥ इति
अत्र केचिदाहुः । वपनं द्विविधं दहनांगं शुद्ध्यर्थं च । दहनांगं दाहकस्यैव प्रथमदिने भवति । दाहदिने
वपनविधानं च संस्कृष्टज्ञात्यादिविषयम् । शुद्ध्यर्थं तु सर्वसाधारणं दशमदिने एव ज्ञातीनां कर्तुं
भवति । तथा च ‘ नापितकर्माणि च कारयन्त एष प्रथमोऽलंकार ’ इति दशमेऽह्नयेव आप-
१५ स्तब्धेन ज्ञातीनां वपनमुक्तमिति । अन्ये तु “यावदशौचमुदकम्” इति विष्णुस्मरणात् (१९।१४)
“ क्षुरकर्मपूर्वकत्वाच्चोदकक्रियायाः “ एतस्मिन्कालेऽमात्या अस्य केशश्मश्रूणि वापयन्त ” इति
बोधायनेन दहनकालोत्तरं स्नानानंतरमेव मृतज्ञातीनां वपनविधानात् प्रथमदिनेऽपि सर्वज्ञातीनां
क्षुरकर्मेत्याहुः । अत्र यथास्वगृह्यं यथादेशाचारं व्यवस्था । चंद्रिकायाम्—

“ पौत्राभावे प्रपौत्रो वा तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः । केशानां वपनं कृत्वा पैतृमेधिकमाचरेत् ” ॥ इति ।

२० एतदुदकक्रियाधौर्ध्वदेहिकोपलक्षणम्

“ अकृत्वा वपनं मूढः प्रेतकर्म प्रवर्तते । उदकं पिंडदानं च श्राद्धं चैव हि निष्फलम् ॥

“ पवनं दहनात्पूर्वं कुर्याच्चेत् पितृघातकः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वपनं दहनात्परम् ” ॥ इति
स्मरणात् । श्रीधरीये च—

“ रात्रौवपि च दाहांतं कृत्वा चैवोदकक्रियाम् । श्वोभूते वपनं कार्यमेष धर्मः सनातनः ” ॥ इति ।

२५ गार्ग्योऽपि—“ शौक्रे वारे निशायां च प्रेतक्षौरं विवर्जयेत् ” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरेऽपि—

“ बीजानां वापनं क्षौरं वास्तुकर्म कृषिं तथा । रात्रौ तु न प्रकुर्वीत कुर्वन्क्षिप्रं विनश्यति ॥

“ वपनं नेष्यते रात्रौ श्वः कार्या वपनक्रिया ” ॥ इति । चंद्रिकायाम्—

“ दग्ध्वा रात्रौ तु पिंडांतं कुर्याद्वपनवर्जितम् । अदाहकानामन्येषां श्वोभूते वपनं भवेत् ” ॥

३० संग्रहेऽपि—

“ भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिंडाः शिष्य एव वा । कनिष्ठो दहनं कुर्वन्केशश्मश्रूणि वापयेत् ॥

“ रात्रावपि च दग्धानां कार्या चैवोदकक्रिया । वपनं नेष्यते रात्रौ श्वस्तथा वपनक्रिया ” ।

बृहस्पतिः—

“शुक्रवर्गा विवर्ज्याः स्युः तस्य लम्पग्रहेक्षणाः । कालहोरादिशुक्रस्य शावेऽवश्यं विवर्जयेत्” ॥ इति ।

पद्मतौ—

“श्राद्धे च शावक्षौरे च शुभाः काला अशोभनाः । वर्जयेच्छौक्रजन्मानि श्राद्धे स्त्रीसुतयोरपि” ॥
इत्यादीनि शुक्रवारे रात्रौ च वपननिषेधपराणि वचनानि पुत्रव्यतिरिक्तसंस्कर्तृविषयाणि ज्ञाति- ५
विषयाणि च ।

“मातापित्रोर्गुराश्चैव दाहकस्य विशेषतः । तदैव वपनं कार्यं रात्रावपि विधेर्बलात्” ॥ इति स्मरणात् ।

पुत्रस्य रात्रौ वपनविधिः स्मृत्यन्तरे—

“शुक्रवारे च रात्रौ च शावे च दशमे दिने । रात्रिदाहे तदा कुर्यात् क्षौरं पिंडोदकक्रियाम् ॥

“मातापित्रोस्थान्येषां श्वोभूते वपनं भवेत्” ॥ इति । अन्यत्रापि—

१०

“रात्रौ दग्ध्वा प्रमीतानां वपनं न कदाचन । रात्रावपि च कर्तव्यं मातापित्रोर्गुरीमृतौ” ॥ तथा

“शुक्रवारे च रात्रौ च दर्शे संक्रमणे तथा । क्षौरं कुर्वीत पुत्रस्तु ज्ञातीनामपरेऽहनि” ॥ इति ।

तथा—“शौके च वारे निशि वा मृतिः स्यात् क्षौरं न कुर्यात्तनयस्तु कुर्यात् ।

“कुर्युः सपिंडाश्च तथा परेद्युर्यद्वा तृतीयेऽप्यथ सप्तमे वा” ॥ अन्यत्रापि—

“शौके वा निशि वा दाहे पुत्रस्यैव तु वापनम् । सपिंडानां परेद्युर्वा तृतीये सप्तमेऽन्वि वा” ॥ इति । १५

तथा—“प्रथमेऽहनि कर्तव्यं श्रुरकर्म प्रयत्नतः । तृतीये पंचमे वाऽपि सप्तमे वाऽप्रदानतः” ॥

आ प्रदानतः एकोद्दिष्टात्मागित्यर्थः । गौतमश्च (१४।३७)—“प्रथमतृतीयपंचमसप्तमनवमेषूदक-
क्रिया” इति । श्रुरकर्म पूर्वं कृत्वा उदकक्रियाया अयुंश्च दिनेषु वपनानंतरमुदकक्रिया कार्येत्यर्थः ।

अखण्डादर्शे च—

“अनुसक्तेशो यः पूर्वं स द्वितीयतृतीययोः । पंचमे सप्तमे वाऽन्वि दशहे वाऽपि वापयेत्” ॥ इति । २०

एवं च पुत्रस्य शुक्रवारे रात्रावपि वपनं इतरेषां तु संस्कर्तृणां पूर्वदिनस्य दुष्टत्वे तत्रालस्यादिना
असंभवे वा द्वितीयाद्युक्तदिनेषु वपनपूर्वकमुदकदानं संस्कर्तृव्यतिरिक्तज्ञातीनां दशमदिनात्पूर्वं
वपनमुदकदानं च वैकल्पिकं सर्वेषां दशमदिने नित्यमिति विवेकः । रात्रौ यामद्वयानन्तरं
पुत्रस्यापि वपननिषेधः । पुत्रस्य रात्रौ वपनं यामद्वयमध्य एव न तु यामद्वयात्परम् ।
तदुक्तं श्रीधरीये—

२५

“रात्रौ यामद्वयादर्वाकर्तुर्वै वपनं भवेत् । अन्येषां तु सपिंडानां श्वोभूते वपनक्रिया” ॥ इति ।

अत्र कर्तृग्रहणं पुत्रव्यतिरिक्तस्यापि दाहकस्य वपनप्राप्त्यर्थं न पुत्रांतरव्यावृत्त्यर्थमिति पितृमेध-
सारकृता व्याख्यातं तदुक्तम्—“शौके च वारे निशि वा मृतिः स्यात् क्षौरं न कुर्यात्तनयस्तु
कुर्यात्” इत्यादिपूर्वोक्तवचननिचयेन तनयव्यतिरिक्तस्य संस्कर्तुः निशि वपनस्य कंठवेण
निषिद्धत्वाद्वात्रावपि विधेर्बलादिति निशि पुत्रस्य वपनविधानवदितरस्यापि तद्विधानाभावाच्च ३०
यामद्वयमध्ये सर्वपुत्राणां गर्भवतामपि वपनं समानम् । तत ऊर्ध्वं निषेधोऽपि स्मर्यते—“रात्रौ
यामद्वयादूर्ध्वं पुत्रोऽपि न वपेत्ततः” इति । शुक्रवारे निशि वा प्रोषितपितृमृतिः श्रवणे यामद्वय-
मध्येऽपि पुत्रोऽपि वपनमतिक्रान्तप्रेतकृत्यं च न कुर्यात् । तथा बृद्धहारीतः—

“शुक्रवारेऽप्यतिक्रान्ते मातापित्रोस्तथैव च । संध्यारात्र्योस्तथा क्षौरं प्रेतकार्यं च नाचरेत्” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

“प्रत्यक्षमरणे पित्रोर्न पश्येत्तिथिवारभम् । परोक्षे सूक्ष्मतः पश्येन्मृतौ तु तिथिवारभम्” ॥ इति । ज्ञातीनां सन्निधाने वपनमितरत्र विकल्पः । संनिधाने सपिंडमरणे वपनं इतरत्र विकल्प इत्याह बोधायनः—

५ इतरेषु । वापयेरन्निवर्तयेरन्वा ” इति । स्मृत्यन्तरे—

“संनिधाने सपिंडानां वपनं स्याद्गुरोर्मृतौ । महागुरूणां सर्वत्र दाहकस्यागुरोरपि” ॥ असंनिधाने निषेधः स्मर्यते—

“संनिधाने सपिंडानां वपनं तु विधीयते । असंनिधाने सर्वत्र वपनं न विधीयते” ॥ इति । असंनिधाने यदाकदाचिद्गूरुस्थज्ञातिमृतिश्रवणे वपनं न कुर्यात् । किंतु तिलोदकमेव कुर्यादिति १० केचिद्वाचक्षते । अन्ये तु असंनिधाने निषेधवचनं ज्ञातीनां प्रथमदिनक्षौरविषयम् । दशमदिने क्षौरमस्येव । दशमदिनादूर्ध्वं श्रवणेऽपि वपनं तर्पणं चास्येवेति । अपरे तु सन्निधाने दशमदिनक्षौरे वारादिद्रोषो नास्ति । असन्निधाने तु अनिषिद्धदिने पूर्वं कर्तव्यं न तु दुष्टे दशमदिने इत्याहुः । शिष्टाचारादिह व्यवस्था । मातृपितृविषये तु स्मृत्यन्तरम्—

“देशांतरे स्थितः पुत्रः श्रुत्वा पितृविपर्ययम् । कृत्वा तु वपनं दत्त्वा दशाहांतं तिलोदकम् ॥

१५ “सपिंडीकरणश्राद्धं कुर्यादिकादशेऽहनि” । संग्रहे—

“दारकर्मणि मृतौ च सूतके यागदीक्षितविधौ नृपेष्टतः ।

“कन्यकाकटककुंभधन्वगे भास्करे च वपनं विधीयते ॥

“विवाहदीक्षामध्ये तु ज्ञातीनां मरणे सति । त्रिंशत्तिलोदकं कार्यं क्षुरकर्म न विद्यते” ॥ विवाहदीक्षामध्ये मातृपितृमरणे तु संस्कर्तुर्वपनमस्ति । “मातुर्दशाहमध्ये पितृमरणे संस्कर्तुर्वपनं न” २० इत्युक्तम् । स्मृत्यन्तरे—

“पितुर्दशाहमध्ये तु माता च निधनं गता । तत्रैव वपनं कार्यं विपरीते न कारयेत्” ॥ संग्रहे—

“पितुर्दीक्षांतरे सूनोर्माता यदि विपद्यते । वपनं चापि कुर्वीत मातुः कुर्यात्क्रियां ततः ॥

“मातुर्दीक्षांतरे चैव पिता मरणमाप्नुयात् । दहनादिक्रियाः कुर्याद्वपनं नैव कारयेत्” ॥

२५ अत्र दीक्षांतर इत्युक्तत्वादशाहानंतरमपि पितृमरणे संस्कर्तुर्वपनं न मातृमरणे तु वपनमस्तीत्युक्तं भवति । अन्यविषयेऽपि तत्रैवोक्तम्—

“मातापित्रोर्मृताब्दे तु यदन्योऽपि विपद्यते । वपनं नैव कुर्वीत तस्य दाहादिकं चरेत्” ॥ इति । स्मृत्यन्तरे—

“पितृदीक्षांतराले तु मात्रर्थं वपनं भवेत् । मात्रंतरे तु पित्रर्थं अन्यार्थमपि नाचरेत्” ॥ इति ।

३० पितृमेघसारे—“पित्रोर्मृताब्दे पितृव्यादिमरणे न वपेत्” इति । यत्तु कैश्चिदुक्तम्—

“स्वपुत्रमरणे चैव स्वभार्यामरणे तथा । स्वयं यदि दहेत्तत्र केशश्मश्रूणि वापयेत्” ॥ इति तद्बहुस्पृतिविरुद्धत्वात् शिष्टाचारविरोधाच्चोपेक्षणीयम् । यदाह वृद्धमनुः—

“भार्यापुत्रकनिष्ठानां शिष्याणां च यवीयसाम् । संस्कर्तुर्वपनं नैव यदि कुर्यात् कुलक्षयः” ॥

कात्यायनश्च “मृतावनुपनीतानां वपनं न कदाचन । मृतावपि कनिष्ठानां वपनं न विधीयते” ॥

१५ अनुपनीतानां पितृव्यादीनामिति शेषः ।

उपनीतानां तेषां मृतौ वपनं स्मर्यते—

“यवीयसां पितृव्याणां संस्कर्तुर्वपनं भवेत्” इति ।

पितृव्यग्रहणं मातुलङ्घ्यश्रुततत्पत्नीनामप्युपलक्षणम् । एतच्च पितृव्यादीनां संस्कर्तुर्वपनम् । संस्काराभावे तु वयोऽधिकपितृव्यादिमरणे वपनं तेषां पत्नीनां यवीयसीनामपि मरणे वपनम् । वयोऽधिकज्ञातीनां याः पत्न्यः तासां कनीयसीनामपि मरणे वपनम्—

५

“पतिवयसः स्त्रियः स्युः पतीनामिव वापनम् । पूर्वजावरजा वापि क्षौरं साधारणं स्मृतम्” ॥ इति वपनविधानात् आपस्तवेन च “पतिवयसस्त्रिय” इति (१।१४।२१) । नमस्कारादौ विधानादिति केचिदाहुः । अन्ये तु पितृव्यादिमरणे वयोधिकानां वपनं नास्ति । न्यूनवयस्कतत्पत्नीमरणेऽपि वपनं नास्तीत्याहुः । तदुक्तं प्रयोगसारे—

“मातुलस्य पितृव्यस्य इवश्रुत्यावरायुषः । वपनं नैव कर्तव्यमाशौचं तु विधीयते” ॥ इति । १०

बार्हस्पत्येऽपि—

“मातुलानां पितृव्याणां इवश्रुताणां पितृष्वसुः । मातृणामनुजातानां तथैव ज्येष्ठयोषिताम् ॥

“वपनं नैव कर्तव्यमाह पाराशरो मुनिः” इति । स्मृत्यन्तरेऽपि—

“यवीयसां पितृव्याणां इवश्रुताणां च तत्स्त्रियाम् । न कुर्यात्क्षुरकर्मणि कुर्याच्चेत्कुलनाशनम्” ॥ इति । एतानि वपननिषेधवचनानि संस्कर्तुर्व्यतिरिक्तविषयाणि

१५

“ज्यायानपि पितुः पत्न्या यदि संस्कारमाचरेत् । क्षुरकर्म तथा कार्यं ह्यथान्य ह्युदकक्रियाम् ॥

“यवीयसां पितृव्याणां संस्कर्तुर्वपनं भवेत्” ॥ इति विशेषस्मरणात् । यथाशिष्टाचारमत्र व्यवस्था ।

गर्भिणीपतिविषये वपनविधिः । अंतर्वद्विषये यमः—

“अंतर्वताऽपि कर्तव्यं पित्रोर्मरण एव तु । नान्येषां वपनं कार्यं भ्रूणहत्यासमं भवेत्” ॥ इति ।

पित्रोर्मरणे संस्कर्तुर्व्यतिरिक्तेनापि अंतर्वताऽपि पुत्रेण वपनं कर्तव्यम् । अन्येषां मरणे अंतर्वता २० वपनं न कार्यमित्यर्थः । ‘पित्रोर्मरण एव तु’ इत्युपलक्षणम्

“गयायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृतौ । आधाने सोमयागे च गर्भवानपि वापयेत्” ॥ इति स्मरणात् । स्मृत्यन्तरे—

“आधाने यज्ञदीक्षायां मातापित्रोर्गुरोर्मृतौ । गर्भवान्वपनं कुर्यान्नान्यत्रेति व्यवस्थितिः” ॥ इति ।

गर्भवतो मातामहादीनां संस्कर्तुर्वपनमाहात्रिः—

२५

“मातामहपितृव्याणां मातुलाग्रजयोर्मृतौ । इवश्रुताचार्ययोरेषां पत्नीनां च पितृष्वसुः ॥

“मातृष्वसुर्भगिन्याश्च गर्भवानपि वापयेत्” ॥ इति । गौतमः—

“मातामहे च तत्पत्न्याः मातुले पूर्वजे मृते । गुरौ च गुरुपत्नीषु गर्भवानपि वापयेत् ॥

“दाहको वपनं कुर्यान्नान्यथेति व्यवस्थितिः” ॥ इति । स एव—

“अपुत्रस्य पितृव्यस्य ज्येष्ठस्याप्यसुतस्य च । अंतर्वत् दहनं कुर्वन्केशश्मश्रूणि वापयेत्” ॥ इति । ३०

स्मृत्यन्तरेऽपि—

“मातामहस्य तत्पत्न्याः मातृणां मरणे सति । पितृष्वसुर्भगिन्याश्च दहने गर्भवान्वपेत् ॥

“मातरं पितरं ज्येष्ठमाचार्यं श्वशुरं विना । न कुर्याद्वपनं तत्र गर्भवान्सांस्थितस्य तु” ॥ इति ।

वृद्धमनुः—

“दहनं वपनं वाऽपि प्रेतस्यान्यस्य गर्भवान् । न कुर्याद्वपनं तत्र कुर्यादेव पितुः सदा ॥

३५

“ज्येष्ठस्य चानपत्यस्य मातुलस्यासुतस्य च” ॥ इति । मातुलग्रहणं मातामहादेरुपलक्षणम् । एवं च मातापितृमरणे अंतर्वतामनंतर्वतामपि संस्कृतृणामसंस्कृतृणां च वपनं समानम् । माता-महादिदहने गर्भवतो दौहित्रादेर्वपनं संस्काराद्यकरणे तु गर्भवतो वपनं नास्ति । आशौच-मात्रमेव भवति अनंतर्वतो दौहित्रादेर्मातामहादिसंस्काराकरणेऽपि वपनमस्तीति निर्णयः ।

५ अत्र स्मृत्यंतरम्—“ज्येष्ठस्वसृणां जनकस्वसृणां मातृस्वसृणामपि तत्पतीनाम् ।

“मातामहस्यैव पितामहस्य तदीयपत्न्योर्वपनं हि वैधम्” ॥ इति । अत्र तत्पतीनामित्येतत् शिष्टसमाचाराभावात् उपेक्ष्यमित्याहुः । अन्यत्रापि—

“ज्येष्ठानां तु सर्पिडानां श्वश्रूस्वशुरयोस्तथा । ज्येष्ठस्वसुश्च तद्भर्तुर्मरणे वपनं भवेत् ॥

“श्वश्रूस्वशुरयोर्नाशे पूर्वं भार्या मृता यदि । आशौचं दिनमात्रं स्याद्वपनं नैव विद्यते ॥

१० “तत्संततेः स्याद्वयहं वपनं च विधीयते” ॥ इति । तथा—

“मातामहपितुः पित्रोस्तत्पत्न्या ऋत्विजस्तथा । एतेषां वपनं कुर्यान्न चेत्स ब्रह्मघातकः” ॥ इति । स्मृत्यंतरे—

“भ्रातरः पितरः पुत्राः ज्ञातयश्च सर्पिडकाः । विद्यया सह जाताश्च वापयेयुः परस्परम्” ॥ इति ।

दशाहवपनविधिः । प्रसंगाद्दशाहवपनमुच्यते । तत्र वसिष्ठः—

१५ “ज्ञातयः सप्तमादवाक् कनिष्ठा दशमेऽहनि । वापयेयुश्च ते सर्वे कर्ता तु सह सर्वदा” ॥ इति ।

सप्तमादवांगित्युक्तत्वात्तदूर्ध्वभाविनां समानोदकानां वपनाभावोऽर्थसिद्धः । समानोदकानां संस्कृतृत्वे तु वपनमस्त्येव । “सर्पिडो वाऽसर्पिडो वा संस्कर्ता वापयेत् द्विजः” इति स्मरणात् । देवलः—

“दशमेऽहनि संप्राप्ते स्नानं ग्रामाद्ग्रहिर्भवेत् । तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च” ॥ इति ।

वृद्धशातातपः—

२० “शावे च सूतके चैव द्वितीयेऽहनि । क्षौरं चेन्न प्रकुर्वीत तस्मात्केशेषु लीयते” ॥

चंद्रिकायाम्—

“जनने मरणे चैव वपनं दशमेऽहनि । आतस्मान्नाधिकारी स्यादाशौचं सर्वदा भवेत्” ॥

जनने दशमदिने पितुरेव नान्येषां वपनम्

“प्रथमेऽहनि कर्तव्यं वपनं मृतबंधुभिः । दशाहे वपनं कार्यं सूतके च तथा पितुः” ॥ इति स्मरणात् ।

२५ अखंडादर्श—

“दंपती शिशुना सार्धं सूतके दशमेऽहनि । क्षौरं कुर्युस्ततः पूताः स्नानदानादिकर्मसु ॥” अत्र लोके समाचाराभावात् मातुर्वपनं नापि शिशोः किंतु पितुरेव वपनं कैमुतिकन्यायेन प्रतिपादितम् ।

व्याघ्रपादः—

“वपनं यो न कुरुते सूतके दशमेऽहनि । मृतौ वा पितरस्तस्य मज्जंति नरकेऽशुचौ” ॥

३० श्रीपतिः—“आज्ञया नरपतेर्द्विजन्मनां दारकर्म मृतसूतकेषु च ।

“बंधमोक्षमखदीक्षणेष्वपि क्षौरमिष्टमसिलेषु चोद्धुषु” ॥

स्मृत्यंतरे—“केशानाश्रित्य तिष्ठति मृतौ सूतौ च किल्बिषाः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दशाहे वपनं स्मृतम् ॥

“सूतके मृतके चैव वपनं दशमेऽहनि । यो न कारयते मोहादनर्हः सर्वकर्मसु ॥

“कूले चतुष्पथो वापि महावृक्षस्य संनिधौ । केशश्मश्चादिवपनं कुर्यान्नानुभाविनः” ॥ इति ।

दशमेऽहन्यान्दहोममभिधायाहापस्तंबः—“नापितकर्मणि च कारयंत एष प्रथमोऽलंकारः” इति । अत्र शांतिकर्मनंतरं वपनविधानेऽपि क्रमस्याविवक्षितत्वात् पूर्वमेव कर्तव्यमित्युक्तं पितृमेधसारे । वपनस्य शुद्ध्यर्थत्वाच्छुद्धस्यैव शांतिकर्मण्यधिकारात् शांतिकर्मनंतरं भोजनसदृवाशयनोपदेशाद्भुक्तस्य वपननिषेधाद्धोमाधायनाश्वलायनादिषु तथा दर्शनाच्च शांतिकर्मणः प्रागेव वपनं कर्तव्यमित्युक्तम् । अन्ये तु अभिधानक्रमेणापस्तंबिनां शांतिहोमकर्मनंतरमेव वपनमित्याहुः । ५

भाष्यकारेण कषादिना व्याख्यातम् “अधोभागस्य वपनमलंकारः” इति । तथा श्रीधरीये—

“मृताहे केशवपनं दशाहे शेषवापनम् । अशोभनमनायुष्यं मृताहे शेषवापनम् ” ॥ इति । अत्र शुद्धिनिर्णयकारः—“इह केचिदनभिज्ञा दशाहे अशेषवापनमिति पदच्छेदं कृत्वा सर्वांगक्षौरं दशमदिने वदति तत्र युक्तम् । भाष्यकारेण ‘अधोभागस्य वपनमलंकारः’ इत्युक्तत्वात्” ॥ इति । तथा च स्मृत्यंतरम्—

“प्रथमेऽहनि यः कुर्याच्छिरोवपनमेव तु । अतीते दशरात्रे तु ह्यधोवपनमाचरेत्” ॥ इति । दशरात्रे दशरात्रकर्मण्यतीत इत्यर्थः । अन्यत्रापि—

“शावे क्षौरं सपिंडानामुदकाप्लुतिपूर्वकम् । कर्तव्यं केशवपनं शेषं स्याद्दशमेऽहनि ” ॥ दशमेऽहन्येव शेषवपनस्य विधानात् ततः पूर्वं विषमदिनेषु केशश्मश्रुमात्रवपनं कर्तव्यम् । यैस्तु ज्ञातिभिः प्रथमाहादिषु नवमदिनपर्यंतेषु आलस्यादिना वपनं न कृतं तैर्दशमाहे सर्वांगवपनं १५ कर्तव्यमिति केचित् । अन्ये तु प्रथमं केशवपनं कृत्वा स्नात्वा तिलोदकं दत्त्वा पश्चात्कर्त्रा सह शेषवपनं कर्तव्यमिति व्याचक्षते । वर्णविशेषे तु अङ्गविशेषवपनं स्मर्यते—

“आ कंठाद्वापयेद्विप्र आ नामे राजवैश्ययोः । श्मश्रुमात्रं हि शूद्रस्य वपनं प्रथमेऽहनि” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—“कंठादूर्ध्वं वपेदाद्ये शेषं तु दशमेऽहनि” ॥ इति । तथा—

“रात्रौ दग्ध्वा तु पिंडांतं कुर्याद्वपनवर्जितम् । स्वस्तदा केशवपनं शेषस्य दशमेऽहनि ” ॥ इति । २०

सर्वांगवपनं दशमदिन उक्तं स्मृत्यंतरे—

“आशौचान्ते तु सर्वांगवपनं श्रुतिचोदितम् । ब्रह्मचारिकुमाराणां कंठादूर्ध्वेण शुध्यति ॥

“यस्य केशाः शिरोजाता दशमेहऽन्यवापिताः । आशौचं तस्य केशेषु लीयते नात्र संशयः ” ॥

अन्यत्रापि—

“दशाहेऽश्मानमुत्थाप्य शांतिहोमं समाचरेत् । सर्वांगवपनं चात्र कर्तव्यं स्नानतः परम्” ॥ इति । २५

पुत्रविषयेऽविशेषोऽपि स्मर्यते—

“कायेद्वपनं पित्रोर्मृतौ पुत्रः समस्तकम् । दशमेऽहनि सर्वांगमधोवपनमेव वा ॥

“कनिष्ठो ज्ञातिराद्याहे केशश्मश्रूणि वापयेत् । सनस्वानि सरोमाणि दशमेऽहनि वापयेत् ” ॥ इति ।

तथा—

“कुर्युः पुत्राः सपिंडाश्च सर्वांगं दशमे दिने । अशुचित्वान्न पूर्वशुर्नापरेषुः कथंचन ” ॥ इति । ३०

एवं च प्रथमदिने केशश्मश्रुमात्रवपनं दशमदिने तु सर्वांगं वपनं अधोवपनं वा विकल्पेन भवतीति दशमदिने वपने कालादिदोषो न विचारणीयः

“दशाहे वपनं कुर्याच्छुद्धयर्थं मृतसूतके । मासक्षतिथिवाराणां दोषो नास्तीति शाकलः” ॥ इति स्मरणात् । व्याघ्रपादोऽपि—

“शावे च सूतके चैव दशाहे वपनं स्मृतम् । तिथिवारक्षीदोषाणामनवेक्षेति गौतमः” ॥ इति । ३५

वसिष्ठोऽपि—

- “वैधे कर्मणि तु प्राप्ते कालदोषं न चिंतयेत् । सद्यः क्षौरं प्रकुर्वीत मातापित्रोर्मृतौ तथा ॥
 “जाते सोमे तथा तीर्थे व्रते चांद्रायणेऽपि” ॥ पितृमेधसारे—“मृतिजन्मनो-
 दशाहे ज्ञातीनां पुत्रस्य वपने तत्कालमासर्क्षतिथिवारादि न किञ्चिच्चिंत्यम्” ॥ इति ।
 १५ अत्र केचिदाहुः—दशमदिने क्षौरं ज्ञातीनां शुक्रवारमात्रं वर्ज्यं तदा नवमदिने कर्तव्यम् ॥
 “शुक्रस्य वासरे क्षौरं शावे चेद्दशमे दिने । कुलक्षयकरं ज्ञेयं ततः पूर्वं समाचरेत्” ॥ इति
 स्मरणात् । पुत्रस्य शुक्रवारेऽप्यस्ति वपनम्
 “शुक्रवारे च वपनं कर्तव्यं दशमेऽहनि । मातापित्रोरथान्येषां वपनं स्याद्दिनांतरे ॥
 “शुक्रवारे च रात्रौ च दर्शे संक्रमणे यदि । क्षौरं कुर्वीत पुत्रस्तु ज्ञातीनामपरेऽहनि” ॥ इत्यादि
 १६ स्मरणात् । असंनिधाने दशाहानंतरश्रवणे तु “अतिक्रान्ते दशाहे तु विषमाहः प्रशस्यते”
 इत्याद्युक्ते अनिषिद्धे काले कर्तव्यम् । “परोक्षे सूक्ष्मतः पश्येन्मृतौ तु तिथिवारभम्” ॥ इति ।

स्मरणात्—

- पुत्रजनने पित्रा दशाहात्प्राक् न कार्यं तदूर्ध्वं चनघार्थम् ।
 “अशुचित्वाच्च पूर्वद्युर्नापरेद्युः कदाचन । दशमेऽहनि वै क्षौरं कुर्याद्देवाविचारयन्” ॥ इति
 १५ मासतिथिवाराद्यविचारेण दशमाह एव वपनविधानात् ।
 यत्तु “पितृमासेषु चतुर्षु स्त्री प्रसूता भवेद्यदि । वपनं नैव कुर्वीत पुंसि जाते तु वापनम्” ॥ इति तत्
 “जनने मरणे चैव वपनं दशमेऽहनि” इत्यादिपूर्वोक्तवचनजातेन जननमात्रावलंबनेन दशाहे
 वपनविधानाच्छिष्टाचाराभावाच्चोपेक्ष्यमित्याहुः ।

गर्भिण्योर्भार्ययोरेकस्याः प्रसवे ।

- २० “गर्भिण्योः पत्न्योः यद्येका प्रासविष्ट भर्ता क्षौरं न कुर्यात् जातकर्मादि तु कुर्यात् ।
 “भार्ये यस्य तु गर्भिण्यौ एका भार्या प्रसूयते । वपनं नैव कुर्वीत जातकर्मादि कारयेत्” ॥ इति
 स्मरणात् । सवर्णज्येष्ठभार्याप्रसवे तु वपनमुक्तं षट्धर्मिये—
 गर्भिणीष्वसवर्णासु सवर्णा चेत्यप्रसूयते । तदा तु वपनं कार्यं न कुर्याच्चित्पतत्यधः ॥
 “द्वे यस्य भार्ये गर्भिण्यौ ज्येष्ठा भार्या प्रसूयते । तदा तु वपनं कार्यमन्यथा भ्रूणहा भवेत्” ॥ इति ।

२५ अपराकैऽपि—

- “गर्भिण्यौ यस्य भार्ये द्वे एका चेत्यप्रसूयते । वपनं नैव कुर्वीत कुर्याच्चिद्भ्रूणहा भवेत्” ॥
 इत्येतदसवर्णासु प्रसूतासु विधीयते । “सवर्णविषये कुर्यादन्तर्धानपि वापनम्” इति ।

मातृपितृदीक्षामध्ये पत्नीप्रसवे । मातापितृदीक्षामध्ये पत्न्योः प्रसवे वपनम् । ततो
 वत्सरशेषं केशधारणं च स्मर्यते—

- ३० “मध्ये तु पितृदीक्षायां गर्भिणी स्त्री प्रसूयते । क्षुरकर्म तदा कुर्यात्तच्छेषं केशधारणम्” ॥ इति ।
 पद्धतौ—
 “मातापित्रोर्द्विजः कुर्याद्द्वर्भवानपि वापनम् । पश्चात्प्रसूतौ पत्न्याश्च तच्छेषं केशधारणम्” ॥ इति ।
 स्मृत्यंतरे—

“स्वमातृपितृदीक्षायां मध्ये भार्या प्रसूयते । दशाहे वपनं कृत्वा पुनर्दीक्षां च कारयेत्” ॥ इति ।

अत्र केचिदाहुः—सर्पिंडीकरणानंतरं दीक्षामध्ये पत्न्याः प्रसवे वपनं ततः पूर्वं प्रसवे वपनं नास्ति ॥
“सर्पिंडीकरणादूर्ध्वं पित्रोः संवत्सरादधः । कर्तव्यं वपनं पुत्रे जाते संवत्सरेऽपि वा ” ॥ इति
स्मरणात् । पितृमरणाब्दे केशधारणादिनियमः—“पत्नीप्रसवाभावे प्रथमाब्दिकपर्यंतं पुत्रस्य
केशधारणं कर्तव्यम् ” । यदाह व्यासः—

“षण्मासान्वर्जयेत्क्षौरं तैलतांबूलयोषितः । ज्येष्ठादीनां मृतिप्राप्तौ मातापित्रोस्तु वत्सरम्” ॥ इति । १५
अत्रादिशब्देन पितृव्यमातामहादयो गुरवो गृह्यन्ते । अत्रिः—“षोडशोद्वाहगर्भाब्दे पित्रन्त्याब्दे क्षुरं
त्यजेत् ” ॥ इति । श्रीधरीये—

“षष्ठाब्दे द्वादशाब्दे च विवाहाब्दे तथैव । च मातापित्रोर्मृताब्दे च वपनं नैव कारयेत् ” ॥
स्मृत्यंतरेपि—

“चौलाब्दे च विवाहाब्दे ह्यौपनायनिके तथा । मातापित्रोर्मृताब्दे च क्षौरं नैव समाचरेत् ” ॥ इति । १०
अन्यत्रापि—

“मातापित्रोर्मृतिं प्राप्तौ वत्सरं केशधारणम् । वापयेद्यदि मूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत् ” ॥ इति ।
संग्रहेऽपि—

“मातापित्रोर्मृताब्दे च विवाहाब्दे तथैव च । न केशवपनं कार्यं गर्भिण्यां च कुलस्त्रियाम्” ॥ इति ।
अत्र केचिदाहुः—एतानि मातापितृमृताब्दे वपननिषेधवचनानि संवत्सरसर्पिंडीकरणाभिप्रायाणि । १५
तच्च केशधारणं ब्रह्मचर्यादिनियमेन सह कर्तव्यम् । द्वादशाहादिसर्पिण्ड्ये तदूर्ध्वं न केशधारण-
नियमः । अभ्युदयेच्छायां तु नियमेन सह कर्तव्यम् । तथा च बृहस्पतिः—

“पित्रोर्मृतौ तदारभ्य सर्पिंडीकरणात्पुरा । योषितं तैलतांबूलं क्षौरं च लवणं मधु ॥

“कांस्यं पराश्रमध्वानं वर्जयेद्वतधावनम् । कालभेजी च दर्भेषु अधःशाय्यप्रतिग्रहः ॥

“गंधपुष्पादिहीनश्च अल्पाशी च व्रतं चरेत् । प्राक्सर्पिंडीकृतेर्गच्छेत् स्त्रियं प्रेतस्य दाहकः ॥ २०

“रेतसः कर्दमाब्धौ तु पितृन्प्रेतं च मज्जयेत्” ॥ इति । शुद्धिनिर्णयेऽपि “महागुरुमरणे संवत्सरांत
नित्यं तिलोदकं नियमेन मासिकं च कृत्वा व्रती केशधारणं च संवत्सरांते सर्पिंडीकरणं कुर्यात्” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरेऽपि—

“सर्पिंडीकरणादूर्ध्वं न केशं धारयेत् द्विजः । यदि धारयते विद्वान्ब्रह्मचर्येण धारयेत् ” ॥ इति । १०

“अन्यथा हृदये तेषां तत्केशः शंकुवद्भवेत् । रेषांसि तस्य पित्रादीन् पितृन्प्राशयते यमः” ॥ इति । २५
अत्र ब्रह्मचर्यं कृतावप्यगमनम्

“मातापित्रोर्मृतौ सूनुरर्वाकू संवत्सराद्यदि । मैथुनं तु समासाद्य प्राजापत्यं समाचरेत् ॥

“यदि शुक्रांतसंयोगः कुच्छ्रं चांद्रायणं चरेत् । आहितो यदि गर्भः स्याद्ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ” ॥ इति
स्मरणात् । स्मृत्यंतरेऽपि—

“अवर्जयित्वा तैलादीन्केशमात्रं तु धारयेत् । तस्य वैवस्वतो राजा केशान्प्राशयते पितृन् ॥ ३०

“केशधारणमध्ये तु पत्नीगर्भं दधाति चेत् । रेतसा तत्पितृणां तु वृत्तिर्भवति सर्वदा ” ॥

शुद्धिनिर्णये—

“व्रतांते विधिवत्पित्रोः कृत्वाऽब्दिकमथो द्विजः । क्षौरं कुर्याच्छुभे तारे कृत ऊनाब्दिकेऽपि वा ” ॥

अग्निः—

“यदि कर्ता व्रतस्थः स्यादब्दांते चाब्दिके कृते । अनुकूले दिने क्षौरं कृत्वा तत्तु विसर्जयेत्” ॥ इति स्मृत्यन्तरे च—“ततः समाप्ते व्रतबंधकाले कृत्वा तु सांवत्सरिकं यथावत् ।

“ततः सुपुण्ये शुभदे मुहूर्ते क्षौरं यथावद्विदधीत विद्वान्” ॥ इति । ब्रह्मचर्यादिनियमेन सह केशधारणं कृत्वा वत्सरांते सपिंडीकरणानंतरमाब्दिकं कृत्वा अनिषिद्धकाले वापयेत् । द्वादशाहादि-सापिंड्येऽपि सत्यामभ्युदयेच्छायां नियमेन सह केशधारणं कुर्वन् सांवत्सरिकमाब्दिकं यथावत्कृत्वा “पित्रोर्मृत्यब्ददीक्षांते त्याज्यं मासचतुष्टयम् ।

“कन्याकर्कटकुंभेषु चापमासि चतुष्टये । केशखंडं गृहस्थस्य पितृन्प्राशयते यमः” ॥ इत्युक्त-प्रत्यवाय्येऽहिते शुभे काले क्षौरं कुर्यादिति व्याचक्षते । अन्ये तु संवत्सरसपिंडीकरणे ब्रह्मचर्यादि-नियमेन सहैव केशधारणमवश्यं कर्तव्यम् । ततः पूर्वं सापिंड्ये सपिंडीकरणानंतरं न ब्रह्म-चर्यादिनियम आवश्यकः । सति तु ब्रह्मचर्यादौ अभ्युदयः । केशमात्रधारणं तु आब्दिकपर्यंत-मित्याहुः । तथा च स्मृत्यन्तरे—

“वत्सरांतेऽथ मध्ये वा सपिंडीकरणं यदा । क्षौरं कृत्वा ततः कुर्यात्तच्छेषं धारयेत् द्विजः” ॥ इति । द्वादशाहन्यतिरिक्तकालेषु क्षौरपूर्वकं सपिंडीकरणं कृत्वा ततो वत्सरशेषं केशं धारयेदित्यर्थः ॥

१५ तत्रैव—“कृते सपिंडीकरणे तु पित्रोर्न ब्रह्मचर्यं परिरक्षणीयम् ।

“तद्रक्षणे चापि महत्फलं स्यान्नितर्तने च स्वल्पेऽपि न दोषः” ॥ इति ब्रह्मचर्यनिवर्तने स्वल्पेऽपि न दोषः । ‘मातापित्रोस्तु वत्सरम्’ इत्यादिवचनानुसारेण केशमात्रधारणमिति व्याचक्षते । अत्र पितृमेधसारकृता मातापित्रोरित्यविशेषस्मरणात् पुत्रत्वाविशेषात्संकोचस्या-भावाच्च सर्वेषामपि पुत्राणां पित्रोर्मरणे संवत्सरं केशधारणादिव्रतं भवतीत्युक्तम् । अपरे तु—

२० “सर्वैरनुमतिं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् । द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥

“नवश्राद्धं सपिंडत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि” ॥ इत्यादिवचनैर्वश्राद्धादिसोदकुंभश्राद्धांतप्रथमाब्दिकपूर्वकदिनावसानकृत्येषु ज्येष्ठस्यैव कर्तृत्व-विधानात् तन्न्यायेन वत्सरांतकेशधारणादिनियमेष्वपि तथैवोचितत्वात्

“यदि कर्ता व्रतस्थः स्यात् कृत्वाब्दिकमधो द्विजः । कृत्वा तु सांवत्सरिकं यथावत्” २५ इत्यादिभिः मुख्यकर्तुरेव वत्सरांते वपनविधानाच्च केशधारणनियमोऽपि तस्यैवेत्याहुः । आहिताग्निविषये । आहिताग्नेर्विशेषमाहापशुतंबः—“पर्वणि केशश्मश्रूणि वापयतेऽप्यल्पशो लोमानि वापयत इति वाजसनेयकम्” ॥ इति । स्मृत्यन्तरेऽपि—

“पित्रोर्मृताब्दे गर्भाब्दे सदा पर्वणि पर्वणि । आहिताग्निर्वपेत्केशाच्च वपेदितरस्तयोः” ॥ आहिताग्निः पर्वणि पर्वणि वपेत् । इतरः अनाहिताग्निः तयोः पितृमृताब्दगर्भाब्दयोर्न वपेदित्यर्थः ।

३० श्रीधरीयेऽपि—

“केशान् मासत्रयादूर्ध्वं गर्भवान्धारयेत् द्विजः । यज्वा तु पर्वणि क्षौरं कारयेदाहिताहते” ॥ इति । आहिताहते आधानाहते । आधाने तु पूर्वव्यतिरिक्तकालेऽपि गर्भवान्क्षौरं कारयेदित्यर्थः । केचित्तु ‘कारयेद्विहिताहते’ इति पठित्वा व्याचक्षते—विहितं गर्भनिमित्तकेशधारणं मातृपितृमृतिनिमित्त-केशधारणं च । तन्निमित्तद्वयं विना यज्वा पर्वणि क्षौरं कारयेदिति । एवं व्याख्याने पूर्वोक्तवचन-

३५ विरोधः स्यात् । यथोचितमत्र ग्राह्यम् ।

सपिण्डीकरणनिमित्तक्षौरम् । सपिण्डीकरणनिमित्तक्षौरमुक्तं स्मृत्यन्तरे—

“द्वादशाहे यज्ञ पित्रोः सपिण्डीकरणं भवेत् । तत्र क्षौरं न कर्तव्यं त्रिपक्षादिषु कारयेत् ” ॥

त्रिकाण्डश्रामपि—

“सपिण्डीकरणार्थं च क्षुरकर्म विधीयते । क्षुरकर्म न कर्तव्यं द्वादशाहसपिण्डने ॥

“द्वादशाहात्परं क्षौरं शुभकाले समाचरेत् । वत्सरांतेऽथ मध्ये वा सपिण्डीकरणं यदि ॥ ५

“क्षौरं कृत्वा तु तत्कुर्यात्तच्छेषं धारयेत् द्विजः ” ॥ इति । पितामहश्च—

“अकृत्वा वपनं यस्तु वत्सरांते सपिण्डनम् । कुर्याद्यदि पुनः कार्यमित्युवाच पितामहः ” ॥ इति ।

अत्र गर्भवतो वपननिषेधः स्मर्यते—

“पित्रोः संवत्सरादूर्वाक् सपिण्डीकरणं यदि । गर्भिण्यां न तु भार्यायां तच्छेषं धारयेद्विजः ” ॥ इति ।

भार्यायां गर्भिण्यां सापिण्ड्यनिमित्तं क्षौरं न कुर्यात् । किंतु सापिण्ड्यं कृत्वा वत्सरशेषं धारयेदित्यर्थः । १०

प्रसंगात् क्षौरविषयमन्यदप्युच्यते । पद्धतौ—

“षष्ठ्यष्टमीप्रतिपदस्तिथयश्च रिक्ता वर्ज्याः शशांकगुरुसोमजभागवाणाम् ॥

“वारांशकोदयविलोकनमिष्टमाहुः क्षौरे तु कर्मणि न शौकमुशंति शवे ” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—“श्राद्धे च भान्वर्कसुतारवारे मासाधिके शुक्रगुरोश्च मौढ्ये ।

“चन्द्रक्षये विष्टिविषोर्दिनान्ते क्षौरं यदि स्यात् कुलनाशहेतुः ” ॥ इति ।

१५

“प्रातर्मुहूर्तादूर्वाग्यः क्षुरकर्म समाचरेत् । स पितृन् पातयत्याशु नरके रोमदण्डके ॥

“आद्यन्तयोराश्रमिणोर्वपने सर्वदा विधिः । मध्यमाश्रमिणोर्हेतोर्विना कर्तनमुच्यते ॥

“यन्मास्येवाब्दिकश्राद्धं यदि पित्रोर्भवेदिह । प्राक्पिण्डदानात्तन्मासि वपनं न समाचरेत् ” ॥

इत्याश्वलायनः । संग्रहेऽपि—

“मासेषु कन्याकटककुम्भचापेषु वर्जयेत् । अशुभक्षे कृते क्षौरे क्षिप्रं कुर्यात्पुनः शुभे ॥

२०

“दग्धान् केशान्पंचगव्यक्षालितानथ वापयेत् । तथैव वपनं मूर्ध्नि कृकलासः पतेद्यदि ॥

“यस्मिन्मासि मृताहः स्यात्तन्मासं पक्षमेव वा । क्षौरकर्म न कुर्वीत परात्रे च रतिं त्यजेत् ॥

“वापयेत्र कृतोद्वाहो वर्षं वर्षार्धमेव वा । भुंजीत पार्वणं नैव दर्शश्राद्धं च वर्जयेत् ॥

“न विवाहदिने क्षौरं प्रशस्तं निशि काम्यया । अन्तर्वता न कर्तव्यं पूर्वं वा पंचमेऽन्धि वा ॥

“एकोदराणां पुत्राणां पितुश्चैकदिने तथा । क्षुरकर्म न कर्तव्यं तथैव श्राद्धभोजनम् ॥

२५

“क्षुरकर्म न कुर्वीत चौलादूर्ध्वमृतुत्रयम् । तथैवोपनयादूर्ध्वमुपाकर्म विना क्वचित् ॥

“केशान्मासत्रायदूर्ध्वं गर्भान्वापयेद्यदि । गर्भध्वंसेन तत्तुल्यं ब्रह्महत्यासमं भवेत् ॥

“आहिताग्नेर्द्वयं पर्वं द्वादशी च प्रशस्यते । भूपकोष्ठौ विना सर्वकेशलोमानि वापयेत् ॥

“दिमुण्डने तु संप्राप्ते कथं क्षौरं विधीयते । मंत्रेण विधिवत्कुर्यात्पश्चात्क्षौरं समाचरेत् ” ॥ इति ।

इति वपनविधिः ।

३०

नग्नप्रच्छादनश्राद्धम् । मृतदिने वपनस्तनानन्तरं ग्रामं प्रविश्य गृहद्वारे संकल्प्य

नग्नप्रच्छादनश्राद्धं दद्यात् । तथा च स्मृत्यन्तरे—

“ज्ञातिभिश्चाद्र्वासाभिः सह बालपुरःसरे । नग्नप्रच्छादनं कृत्वा सप्रदीपं विशेषहम् ” ॥ इति ।

अश्वत्थोऽपि—“सोदकवाससो ग्रामं प्रविश्य नग्नप्रच्छादनार्थं कांस्यपात्रं वस्त्रं घृततंडुलपर्ण-
पात्राणि ब्राह्मणाय दद्यात्” इति । चंद्रिकायाम्—

“नग्नप्रच्छादनश्राद्धं स्नानान्ते तु मृतेऽहनि । घटे तंडुलसंपूर्णे वाससा परिवेष्टिते ॥

“विधाय कांस्यपात्रेण तस्मिन्नाज्यं विनिक्षिपेत् । हिरण्यं तत्र निक्षिप्य यथाविभवसारतः ॥

५ “कुलीनाय दरिद्राय विष्णुं च मनसा स्मरन् । प्रेतमुद्दिश्य संपूज्य ब्राह्मणं तु विसर्जयेत्” ॥ इति ।

व्यासः—

“वासस्तंडुलमप्पात्रं प्रदीपं कांस्यभाजनम् । दहनानंतरं दद्यान्नग्नप्रच्छादनं हि तत्” ॥ इति ।

शुद्धिनिर्णये—“दशदिनपर्याप्ततंडुलपूरितं कुम्भं कांस्यपात्रेण पिधाय तण्डुलार्धपरिमाणतिल-
माषमुद्रलवणघृतव्यञ्जनसहितं दीपपात्रं हिरण्यनववस्त्रसहितं प्रेतमुद्दिश्य नवश्राद्धविधिना

१० सोदकुम्भं कार्यम्” ॥ इति । स्मृत्यर्थसारे—

“वासस्तंडुलमप्पात्रं कांस्यमुद्दीपनं घृतम् । दहनानंतरं दद्यात्स तु नग्नपरिच्छदः” ॥ इति ।

अत्र दहनानंतरमेव नग्नप्रच्छादनविधानात् तदनंतरमुदकदानमिति गम्यते । तथा च स्मृत्यंतरे—

“नग्नप्रच्छादनं कर्म कुत्वैवमथ वेश्मनः । प्रवेशनादि कुर्याच्च ततो गर्तं गृहाद्वहिः” ॥ इति ।

गर्तं जलाशयमुदकदानार्थं गच्छेदित्यर्थः । यत्तु नारदेन कर्मवैपरीत्यमुक्तम्

१५ “स्नात्वा दग्ध्वा पुनः स्नात्वा तोयं दद्याद्यथोचितम् । नग्नप्रच्छादनं दद्याद्भोजनेन सह द्विजः” ॥ इति
न तथेह शिष्टाचारोऽस्ति । देशविशेषे तथैव चरन्ति । श्रीधरीये—

“नग्नप्रच्छादनं दद्याद्भोजनेन सह द्विजः । सुवर्णं सोदकुम्भं च सवस्त्रं वेदपारगे ॥

“तदैव देयं तद्विप्रे न द्वितीयेऽह्नि कारयेत्” । भोजनेन सह तंडुलैः सहेत्यर्थः ।

रात्रिशेषमाह जातुकार्णिः—

२० “तिलोदकं तथा पिंडं नग्नप्रच्छादनं नवम् । रात्रौ न कुर्यात्संध्यायां यदि कुर्यान्निरर्थकम्” ॥ इति
नवं नवश्राद्धम् । रात्रौ दहनानंतरं नग्नप्रच्छादनादिकं न कार्यं किंतु परेऽहनि कर्तव्यमित्यर्थः ।
यत्तु कात्यायनवचनम्—

“रात्रौ दग्ध्वा तु पिंडांतं कुर्याद्वपनवर्जितम् । श्वो भूते वपनं तत्र केशमात्रं विधीयते” ॥ इति
एतच्च द्विवारब्धसंस्क्रियाविषयम् । “यदि वा स्याद्विवारंभः शेषं संसाधयेन्नृशि” इति स्मरणात् ।

२५ पुत्राणां तु राज्यारब्धसंस्कारेऽपि तदैव कर्तव्यम् ।

“रात्रिदाहे तदा कुर्यात्क्षौरं पिंडोदकक्रियाम् । मातापित्रोरथान्येषां श्वोभूते वपनं भवेत्” ॥ इति
स्मरणात्—

उदकदानविधिः । नग्नप्रच्छादनश्राद्धानंतरकृत्यमुक्तं पितृमेघसारे—

“नवं वासस्तिलान्दर्भानुदकुम्भमिति संभृत्य तीर्थं गत्वा स्नात्वा तीरकृते कुण्डे कर्ता

३० संकल्प्य प्रेतमावाह्य आयाहि प्रेत इति शिलां स्थापयेत् । अथ ज्ञातयो दक्षिणामुखाः स्नात्वोक्त-
क्रमेण संकल्प्य सव्यं जान्वाच्यामुकगोत्रायामुकशर्मणे प्रेतायैतद्वास उदकं ददामीति त्रिगुणभुग्नं
नवं वासः सदृशं सङ्कृत्पीड्येयुः । एवं स्नात्वा स्नात्वा त्रिः पीड्येयुः । अशक्तौ त्रिर्निमज्ज्य
संकल्प्य त्रिर्वासोदकं तिलोदकांजलींश्च दद्यात्” इति ।

अत्रापस्तम्बः—“केशान्प्रकीर्य पांसूनोप्य एकवाससो दक्षिणामुखाः सकृदुन्मज्ज्योत्तीर्य सव्यं जान्वाच्य वाससः पीडयित्वोपविशन्त्येवं त्रिस्तप्रत्ययं तिलमिश्रमुदकमुत्सृज्य तूष्णीमेत्याकाल-मभोजनं कर्तुः ” इति । उपविशन्ति उपविश्य पीडयेयुः । न प्रव्हीभूय स्थित्वा वा तत्प्रत्ययं गोत्रनामग्रहणपूर्वमित्यर्थः । **आह्वलायनः** “सकृन्निमज्ज्य त्रीनुदकाञ्जलीन् दद्यात् ” इति ।

बोधायनः—

“केशानोप्य ततः स्नात्वा त्रिर्दयुरुदकाञ्जलिम् । दर्भेषु तिलसंमिश्रं एतत्ते उदकं त्विति ” ॥

व्यासोऽपि—

“शवं दग्ध्वा यथान्यायं दृष्ट्वा ज्योतिर्दिशस्तथा । बालान् दारान्पुरस्कृत्य गच्छेत्प्रेतमनीक्षकः ।

“शुद्धमस्फुटितं श्लक्ष्णं श्यामं लोहितमेव वा । पाषाणं तत आदाय गत्वा तत्र महाजलम् ॥

“सचैलं दंडवत्स्नात्वा मलं प्रक्षाल्य वर्ष्मजम् । पुनः सचैलं स्नात्वाऽथ वाग्यताः सुसमाहिताः ॥ १०

“वृद्धपूर्वाः सगोत्राश्च बांधवाश्च सहोदकाः । सपिंडाश्च क्रमात्पूर्वाः प्राचीनावीतिनस्तथा ॥

“दक्षिणाभिमुखा भूत्वा दक्षिणाग्रकुशेषु हि । पाषाणं तत्र निक्षिप्य कृत्वा तु पुरतोऽवटम् ॥

“नामगोत्रे समुच्चार्य प्रेतस्तृप्यत्विति ब्रुवन् । गते सकृत्प्रसिंचेयुस्तिलपूर्णजलाञ्जलिम् ।

“पित्रोस्तु यावदाशौचं तावत्कुर्याज्जलाञ्जलिम् ” ॥ इति । **कात्यायनोऽपि—**

“तथानवेक्षमेत्यापः सर्व एव शवस्पृशः । स्नात्वा सचैलमाचम्य दयुरस्योदकं स्थले ॥

“गोत्रनामपदान्ते च तर्पयामीत्यनन्तरम् । दक्षिणाग्रात् कुशान् कृत्वा सलिलं तु पृथक् पृथक् ” ॥ इति ॥

पैठीनसिरपि—“प्रेतं मनसा ध्यायन्दक्षिणामुखस्त्रीनञ्जलीन्निनयेत् ” इति ।

प्रचेताः—“नदीकूलं ततो गत्वा शौचं कृत्वा यथार्थवत् । वस्त्रं संशोषयेदादौ ततः स्नानं समाचरेत् ॥

“सचैलं तु पुनः स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः । पाषाणं तत आदाय विप्रो दद्याज्जलाञ्जलीन् ॥

“द्वादश क्षत्रिये दद्याद्वैश्ये पंचदश स्मृताः । त्रिंशच्छूद्राय दातव्याः ततः संप्रविशेद् गृहम् ॥ २०

“ततः स्नानं पुनः कार्यं गृहशौचं च कारयेत् ” ॥ इति ।

स्मृतिरत्ने—“अपसव्ये ततः कृत्वा वस्त्रयज्ञोपवीतके । दक्षिणाभिमुखैर्विप्रैर्देयं तोयाञ्जलित्रयम् ” ॥ इति ।

वस्त्रं निष्पीडनवस्त्रमिति व्याचक्षते । **वसिष्ठः—**“सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वीरन् ” इति ।

प्रचेताश्च—“प्रेतस्य बांधवा यथावृद्धमुदकमवतीर्य नोत्कर्षेयुरुदकांते प्रसिञ्चेयुः । अपसव्ययज्ञोपवीत-

वाससो दक्षिणामुखा ब्राह्मणस्योदङ्मुखाः प्राङ्मुखाश्च राजवैश्ययोः ” इति । ज्ञातिभिर्वपन- २५

पूर्वकमेवोदकं देयम् । “प्रदयुर्ज्ञातयः सर्वे क्षौरं कृत्वा तिलोदकम् ” इति **स्मरणात्** । **प्रचेताश्च—**

“वपनं कृत्वा स्नात्वाैकवस्त्राः प्राचीनावीतिनो दक्षिणामुखाः अवटे संदर्भे जलाञ्जलीन्दयुः ” इति ।

अंगिराः—“सतिलं दर्भेष्वसावेतत् इति जलाञ्जलीन् दयुर्बालपुरःसराः सपिंडाः ” इति । यथावृद्धं

बालपुरःसरा इत्येतयोर्थथास्वगृहं यथाशिष्टाचारं व्यवस्था ।

एतच्चोदकदानं यावदाशौचं कार्यम् । तथा च व्यासः—

“प्राचीनावीतिनो नामगोत्राभ्यां दक्षिणामुखाः । जलं प्रेताय मध्याह्ने दयुर्यावदशुद्धता ” ॥

यावदाशौचमित्यर्थः । **विष्णुश्च** (१९।२३)—“यावदाशौचं तावत्प्रेतस्य उदकं पिबेच्च दयुः ” इति ।

अत्र विशेषमाहापस्तम्बः—“एवमहरहरञ्जलिनैकोत्तरवृद्धिरैकादशाहात् ” इति । कर्ता ज्ञातयश्च

प्रथमदिने त्रीनञ्जलीन् दद्याद्वितीये चतुस्तृतीये पंच एवं दशमदिनपर्यन्तमेकोत्तरवृद्ध्या दद्युः । संभूय पंचसप्तत्यञ्जलयो भवन्ति । अञ्जलेरेव एकोत्तरवृद्ध्यभिधानात् वास उदके नास्त्येकोत्तर-वृद्धिः । तत्तु प्रत्यहमा दशाहात् त्रिरेव दद्युः । प्रचेताश्च—

“दिने दिनेऽञ्जलीन् पूर्णान् प्रदद्यात्प्रेतकारणात् । तावद् वृद्धिश्च कर्तव्या यावत् पिण्डः समाप्यते” ॥ इति ।

५ यावत् दशमपिण्डः समाप्यते तावदञ्जलिवृद्धिः कार्येत्यर्थः । यत्तु “प्रथमतृतीयपंचमसप्तमनवमेषू-दकक्रिया” इति गौतमस्मरणात् (१४।३६) तदापाद्विषयमित्युक्तं पितृमेघसारे

“संकटेष्वयुग्माहेषु दशमाहे वा दद्युः” इति स्मृतिरन्वभाधवीयादिषु व्यवस्थांतरं दर्शितम् अयुग्मेषु दिनेषु त्रीन्त्रीनञ्जलीन् दद्यात् । “प्रथमतृतीयपंचमसप्तमनवमेषु उदकक्रियेति” गौतमस्मरणात्—

१० “प्रथमेऽह्नि तृतीये पंचमे सप्तमेऽपि वा । नवमे चांबुनि स्नानं कृत्वा दद्यात्तिलोदकम्” ॥ इति विष्णुपुराणे वचनाच्च—प्रेतस्य तापोपशान्तिविशेषापेक्षया तु प्रतिदिनमप्येकोत्तरवृद्ध्या उदक-दानं कार्यम् । “दिने दिनेऽञ्जलीन् पूर्णान्” इति प्रचेतःस्मरणादिति । एकोत्तरवृद्ध्या श्राद्धमपि कर्तव्यमित्युक्तं श्रीधरीये—

“श्राद्धमेकोत्तरं वृद्ध्या कर्तव्यं तु दिने दिने । अवसानाद्वलीनां तु द्विगुणं प्रत्यहं परे” ॥ इति ।

१५ एकोत्तरं यथा भवति तथा बलीनामवसानपर्यन्तं दशमदिनपर्यन्तं श्राद्धं कर्तव्यम् । परे अन्ये प्रत्यहं द्विगुणं जलाञ्जलिभ्यो देयमित्याहुरिति शेषः । स्मृत्यंतरे च—

“एकोत्तरं यथाशक्ति भुक्तिं दद्याद्दिने दिने । दशकं वा शतं वापि सहस्रं वासहेमकम् ॥

“देयं विप्रस्य तत्पुत्रैर्यथा लाभं यथाविधिः” ॥ इति । अत्र पुत्रैरिति संस्कृतृणामुपलक्षणम् ।

यः संस्कर्ता स एवैकोत्तरवृद्धिश्राद्धं कुर्यात् । अशक्तौ स्मृत्यंतरोक्तं पक्षांतरं द्रेष्टव्यम् । एतच्च

२० एकोत्तरवृद्धिश्राद्धं पिंडबलिप्रदानानंतरं कर्तव्यम् ।

यावदाशौचं प्रत्यहमेकमेव तिलाञ्जलिं दद्यादित्याह याज्ञवल्क्यः (प्रा. ३-४)—

“सप्तमादशमाद्वाऽपि ज्ञातयोभ्युपयन्त्यपः । अप नः शोशुचदधमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥

“सकृत्प्रसिञ्चत्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः” इति ब्राह्मपुराणेऽपि—

“नामगोत्रे समुच्चार्य प्रेतस्तृप्यत्विति ब्रुवन् । गते सकृत्प्रसिञ्चेयुस्तिलपूर्णं जलाञ्जलिम्” ॥ इति ।

२५ पक्षांतरमप्युक्तं तत्रैव—

“यद्वा शताञ्जलीन् दद्यात्प्रथमे ह्येकमञ्जलिम् । द्वितीये त्र्यञ्जलींश्चैव तृतीये पंच सप्त च ॥

“चतुर्थे पंचमदिने नव दद्याच्च षष्ठके । सप्तमे चाऽष्टमे चापि दद्यादेकादशाञ्जलीन् ॥

“त्रयोदशाञ्जलिं दद्यान्नवमे तु तथा दिने । दद्याच्च सप्तदशकान्दशमे ह्येकविंशकान् ॥

“सातत्यञ्जलयः केचित्रीणि सप्त च पंच च” ॥ इति । आश्वलायनः (४।४।९)—“सकृदुन्मज्ज्य

३० तिलोदकाञ्जलीन् दत्त्वा तस्य गोत्रनाम गृहीत्वोत्तीर्य” इति । संग्रहेऽपि—

“सपिंडा ज्ञातयस्त्रिखिरेकैकोत्तरमग्निदः । समानोदास्तर्पयन्ति नित्यमेकैकमञ्जलिम्” ॥ इति ।

पैठीनसिः—

“दक्षिणामुखस्त्रीनुदकाञ्जलीन्निनयेत् । शवदाहाहःप्रभृत्येकादशेऽह्नि विरमेत्” इति ।

अत्र तिलोदकसंख्या यथास्वगृहं यथाकुलाचारं व्यवस्थापनीया । सपिंडानां त्र्यहोदकसमा-

पने प्रथमदिनाद्यष्टमदिनपर्यन्तोदकमष्टमे दिने कृत्वा नवमदशमदिनयोस्तत्तद्विनोदकं दद्यात् । तथैवाष्टमदिनपर्यन्तं वासोदकं पिण्डं चाष्टमदिने कृत्वा नवमदशमयोस्तत्तद्विनवासोदकं पिण्डं च दद्यात् । पितृभेषसारे—“दशाहान्तस्त्रयहतरपणेऽष्टमे द्विपंचाशत् नवमेऽष्टेकादश दशमे द्वादशाञ्जली-
नष्टमेऽष्टौ पिण्डान् नवमदशमयोरेकैकं दद्यात् ” इति । अतिक्रान्ते दशाहे ज्ञातीनां त्र्यहादुदकदाने व्यवस्था दर्शिता तत्रैव—“द्वादशाद्यदिवसे द्वितीये त्रिंशत् तृतीये त्रयस्त्रिंशदुदकाञ्जलीन् दद्यात् ।
आद्येऽह्नि कर्ता त्रीन्पिण्डान्द्वितीये चतुरः तृतीये त्रीन्द्वयोर्द्वे द्वे नव श्राद्धे तृतीयेऽह्नि एकोद्दिष्टाहे
चैकैकं नवश्राद्धं दद्यात् ” इति । श्रीधरीयेऽपि—

“दशाहान्तः सपिण्डानां त्र्यहात्तु तिलतर्पणे । अष्टमादिद्विपंचाशत् एकादशद्वादशाञ्जलीन् ॥
“द्वादशप्रथमेऽह्न्येव द्वितीये त्रिंशदुच्यते । त्रयस्त्रिंशत्तृतीयेऽह्नि निर्गते दशमेऽहनि ” ॥ इति ।

संग्रहेऽपि—

“अग्निवेदाध्वयः पिण्डास्तथा वासोदकं दश । आदित्यस्त्रिंशदित्येवं त्रयस्त्रिंशत्तिलोदकम्” ॥ इति ।

पारस्करः—

“प्रथमे दिवसे देयाध्वयः पिण्डाः समाहितैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं ततः ॥
“तृतीये तूदकं दत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् । एकोद्दिष्टं चतुर्थेऽह्नि सापिण्ड्यं च ततः परम्” ॥ इति ।

अखण्डादर्शेऽपि—

“असपिण्डो यदि दहेत् द्वितीये त्वस्थिसंचयः । तृतीये तूदकं दत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥
“एकोद्दिष्टं चतुर्थेऽह्नि मरणात्तु विधीयते ।

“सपिण्डीकरणं यत्तु द्वादशेऽह्नि विधीयते । तत्पंचमदिने कुर्यादसपिण्ड इति स्थितिः ” ॥ इति ।
एतच्च पक्षिण्याशौचिकवृत्तसंस्कारे वेदितव्यम् । अहं योनिबंधूनामाशौचं दहनादिष्विति । एतेषां
संस्कर्तृत्वे त्रिरात्राशौचस्मरणात् । “यावदाशौचं तावत्प्रेतस्योदकं पिण्डं च दद्युः ” इति विष्णु- २०
स्मरणाच्च । अत्र चोदकसंख्या आदित्यस्त्रिंशदित्येवं त्रयस्त्रिंशत्तिलोदकमित्युक्तप्रकारेणैव
कर्तव्यः । यत्तु—

“असपिण्डो यदि दहेत् द्वितीये त्वस्थिसंचयम् । एकोद्दिष्टं तृतीयेऽह्नि मरणात्तु विधीयते” ॥
इत्येतत् बंधुवृत्तसंस्कारविषयम् । संचयनमुदकस्याभ्युपलक्षणम् । तच्च द्वितीये दिने पंच-
सप्तत्यात्मकम् । मातामहादिसंस्कारे दौहित्रादीनां दशाहमाशौचं क्रिया च ।

“पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नास्ति धर्मतः” इत्यादिस्मरणादसंस्कृतृणां समानोदकानां
त्रिरात्राशौचिनां त्र्यहादेव उदकसमापनम् । तच्च स्वाशौचकाल एव कर्तव्यम् । स्वाशौचकाल
अकृतोदकस्य समानोदकस्य पश्चादुदकदानेऽपि आशौचमनुष्ठेयमित्याहुः । उदकसंख्या च
आदित्यस्त्रिंशदित्युक्तप्रकारेण सपिण्डवदेवेति केचित् ।

स्मृत्यन्तरे—“सकृत्प्रसिञ्चत्युदकं सप्तत्यञ्जलयः क्वचित् । यद्वा शताञ्जलीन् दद्यात् ” ॥ इति । ३०
पक्षत्रयमाश्रित्य सोदकानामुदकदानमुक्तम्—

“त्रिरात्राशौचिनो दद्युः प्रथमेह्यञ्जलित्रयम् । द्वितीये चतुरो दद्यात्तृतीये त्र्यञ्जलीस्तथा” ॥

“सप्तत्यञ्जलिपक्षे तु प्रथमे च द्वितीयेके । एकैकविंशतिं दद्यात्तृतीये शेषतः शुचिः ॥

“त्रिरात्राशौचिनः कुर्युः प्रथमे त्रिंशदञ्जलीन् । चत्वारिंशत् द्वितीयेऽह्नि त्रिंशद्द्व्युस्ततः शुचिः” ॥ इति । समानोदकानां प्रेतनिर्हारे विशेष उक्तो भृगुणा—

“शावे च सूतेकं शुद्धिस्त्रयहाडुदकदयिनाम् । शववाहं च कुर्याच्चेद्दशाहान्ता भवेत्क्रिया” ॥ इति । स्मृत्यन्तरेऽपि—

५ “समानोदका कुर्वीरन्संस्कारं दशरात्रतः । दशाहान्तेन शुद्धिः स्यादित्याह भगवान् भृगुः” ॥ इति । मांडव्यः—

“सपिंडो वाऽसपिंडो वा कर्ता चेद्वपनं स्मृतम् । आशौचं दशरात्रं स्यात्पंचसप्तति तर्पणम् ॥

“आशौचं तु त्रिरात्रं स्यादन्यथा वपनं न हि” ॥ इति ।

“त्रिंशत्तिलोदकं कुर्यात्समानोदकसंस्थितौ” इति । असपिंडः समानोदकः । अन्यथा संस्काराकरण

१० इत्यर्थः । तिलपरिमाणमुक्तं विष्णुपुराणे—

“तिलैः सप्ताष्टभिर्बाऽपि समवेतं जलाञ्जलिम् । भक्तिमग्नः समुद्दिश्य भूत्यस्माकं प्रदास्यति” ॥ इति । अज्ञातिभिरपि कचिदुदकदानकर्तव्यम् । तदाह याज्ञवल्क्यः (प्रा. ४)—

“एवं मातामहाचार्यप्रेतानामुदकक्रिया । काम्योदकं सखिप्रत्तास्वस्त्रीयश्चशुरात्विजाम्” ॥ इति । प्रत्ता परिणीता दुहितृभगिन्यादिः । अपुत्राणां मातामहादीनां सपिंडवदुदकदानं नित्यं कार्यं सख्या-

१५ दीनां तु कामतः । न नित्यतया । अकरणे प्रत्यवायाभावात् । स्मृत्यन्तरेऽपि—“पतितस्योदकं कार्यं सपिंडैर्बाधवैर्बाहिः” इति ग्रामाद्वहिरैकदिने कार्यम् ।

पिण्डदानविधिः । संकटविषये तीरकुण्डतर्पणानंतरकृत्यमुक्तं पितृमेधसारे “अथोदकुंभमाहृत्य कर्ता गृहद्वारे कुण्डेऽश्मानं विधाय प्रेतमावाह्य संकल्प्य सव्यं जान्वाच्य दक्षिणामुखस्त्रिर्वास उदकं दत्त्वा दीपं प्रज्वाल्य संकल्प्य कुण्डसन्निधौ दर्भेषु मार्जयतां मम प्रेते इति सकृदपो मार्जयित्वा

२० कुक्कुटांडप्रमाणं मुष्टिप्रमाणं वा फलमूलशाक्युक्तं तिलमिश्रं पिंडं ‘अमुकगोत्रामुकशर्मन्प्रेत इदं पिंडमुपतिष्ठस्व’ इति प्रेताय पिंडबलिं च दत्त्वा पूर्ववन्मार्जयित्वा पात्रसंक्षालनतोयेन त्रिः प्रसव्यं परिषिच्य तमप्सु विसर्जयेत् । अपि वा संकटेषु तीरकुण्डतर्पणान्ते पिंडं दद्यादेवमन्त्रं पिंडमेकैकं दद्यादाश्राद्धतीरकुण्डपाषाणे वा पिंडं दद्यादिति केचित् । अत्र सांख्यायनः “गृहद्वारे वामपार्श्वे कुण्डं तदुपर्यश्मानं च निधाय कनिष्ठपूर्वाः स्त्रीप्रथमा वास उदकं पिंडयेयुरिति । अत्र त्रिर्वास

२५ उदकं देयं न तिलोदकं विध्यभावात्तथा शिष्टाचाराच्च ।

यद्यपि ‘नित्यं मृतस्य पुत्रैस्तु भार्यया च यथाविधि । दशाहान्तं द्विरावृत्त्या कर्तव्या चोदकक्रिया’ । इत्याश्वलायनस्मृतिरस्ति तथापि शिष्टाचाराभावादुपेक्ष्यम् । अखंडादर्श—

“ततो गृहं समागम्य चरुं कुर्यात्स्वयं ततः । द्विः प्रक्षाल्य तु तद्व्यं कर्तव्यं श्रपणं ततः ॥

“आदाय दक्षिणानाग्रांस्तु दर्भान् संस्तीर्य विन्यसेत्”

३० शंखः—“दूर्वा प्रवालमग्निं वृषभं चालभ्य गृहद्वारे प्रेताय पिंडं दत्त्वा पश्चात्प्रविशेयुः” ॥ इति । श्रीधरीये—

“वामपार्श्वे गृहद्वारे शिलास्तिस्रो निधाय च । तासु वस्त्राणि संपीड्य सायं प्रातर्बलिं हरेत्” ॥ इति । वामपार्श्वे गृहामुखगतस्येति कैश्चिद्वाख्यातम् । तथा च स्मृत्यन्तरे—

“द्वारस्य दक्षिणे पार्श्वे बाहिः कुर्याद्यथावटम् । एकमश्मानमादध्यादिष्टकां वाऽग्रजन्मनाम् ॥” इति ।

गृहाद्बहिः अंकण इति यावत् । गृहद्वारवामपार्श्वदक्षिणपार्श्वयोर्विकल्प इत्यन्ये । शिलात्रयस्थापनं बोधायनानां नियतम् । तेषां शिलात्रयस्थापनस्य सायंप्रातर्बलिदानस्य च विधानादितरेषां “एकमश्मानमादध्यात् शिलास्तिन्नो निधाय च ” इत्यनयोर्विकल्पः । अंगिराः—

“बहिः पिंडप्रदानं स्यात्कर्षू खात्वा विधानतः । गंधमाल्योदकेनार्च्यं दद्याद्भेष्ववाङ्मुखः ” ॥

ब्रह्मपुराणेऽपि—

“ग्रामाद्बहिः शुचौ देशे गोमयेनोपलेपिते । लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्य स्नात्वा पात्रेण तैजसा ॥

“मृन्मयेनापि कर्तव्यं श्रपणं पितृयज्ञवत् । अभिघार्य तदुद्वास्य पुनरप्यभिघार्य च ॥

“पाषाणं पुरतः स्थाप्य वाग्यतो दक्षिणामुखः । दक्षिणाग्रान्कुशांस्तीर्य दद्यात्तेषूदकं सकृत् ॥

“नामगोत्रे समुच्चार्य पिंडं दद्यादमंत्रकम् । पुनस्तत्रोदकं दद्याद्गंधपुष्पैरर्थांचयेत् ॥

“धूपदीपौ तथा दद्यादेवं दशदिनेषु तु । अशक्तौ प्रथमेऽह्नि स्यात्पंचमे दशमेऽपि वा ॥

“त्रिरात्राशौ च उत्पन्ने त्रयः पिंडा दशैव तु । उदकं पिंडदानं च पुनरप्युदकं नयेत् ॥

“वायसेभ्यो बलिं दद्याद्वैवस्वतवरं स्मरम् । अग्नौ जले वा निक्षिप्य स्नात्वा शश्वद् गृहं व्रजेत्” ॥ इति ।

प्रेतपिंडव्यतिरिक्तं बलिं वायसेभ्यो दत्त्वा तं प्रेतपिंडं च रूपाकाम्नौ जले वा निक्षिप्य स्नायादित्यर्थः ।

वैवस्वतवरश्च उत्तररामायणे महाभारते चोक्तः—

“ये च मद्दिषया नाम मानवाः क्षुधिता भृशम् । त्वयि भुक्ते तु वृत्तास्ते भविष्यन्ति सर्वाधवाः” ॥ इति । १५

विष्णुः (१९।७)—“प्रेतस्योदकनिर्वापं कृत्वा एकं पिंडं च कुशेषु दद्युः । यावदाशौचं तावत्प्रेतस्य उदकं पिंडं च दद्युः ” इति । विज्ञानेश्वरीये—

“नवभिर्दिवसैर्दद्यान्नव पिंडान्समाहितः । दशमं पिंडमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत् ” ॥ इति ।

प्रत्यहमेकैकपिंडाभिप्रायेण पारस्करोऽपि—

“ब्राह्मणे दशपिंडास्तु क्षत्रिये द्वादश स्मृताः । वैश्ये पंचदश प्रोक्ता शूद्रे त्रिंशत् प्रकीर्तिताः” ॥ इति । २०

स्मृतिरत्ने—“प्रेतेभ्यस्तु स्वर्णेभ्यः पिंडान् दद्युर्दशैव तु” इति दशपिंडस्मरणात्प्रत्यहमेकपिंडविधानाच्च एकस्मिन्नेव काले पिंडदानं ‘सायंप्रातर्बलिं हरेत्’ इति वचनेन सायंबल्यर्थं द्वितीयमपि पिंडं शिष्टा आचारन्ति । प्रचेताः—

“दक्षिणाग्राश्च दर्भाः स्युः स च वै दक्षिणामुखः । द्वारदेशे प्रदातव्यो न देवायतने कचित् ॥

‘वाग्यतः प्रयतश्चैव संतिष्ठेत्पिंडसंनिधौ । ततोऽवशिष्टं पिंडस्य नद्यां तु प्रक्षिपेच्च तत् ” ॥ इति । २५

शंखश्च—“भूमौ माल्यं पिंडं पानीयमुपले वा दद्युः” इति । यत्तु—“प्रेतपिंडं बहिर्दद्याद्दर्भमंत्र-विवर्जितम्” इति तदनुपनीतविषयम् । “असंस्कृतानां भूमौ पिंडं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु ” इति प्रचेतःस्मरणात् । स्मृत्यर्थसारे—

“कुक्कुटांडप्रमाणं तु पिंड इत्यभिधीयते । अंगुष्ठपर्वमात्रं स्यादवदानमिति स्थितिः” ॥ इति ।

आश्वलायनः—

“यत्र स्युर्बहवः पिंडास्तत्र बिल्वफलोपमाः । यत्र चैको भवेत्पिंडस्तत्राश्वसुरसंमितः ” ॥

स्मृत्यन्तरे—

“प्रायः पित्र्येषु पिंडाः स्युर्मनेन बदरोपमाः । सर्वत्र सुदृढा हि स्युर्वर्तुलाः श्राद्धकर्मसु ॥

“प्रेतःपिण्डस्तु दैर्घ्येण द्वादशांगुल उच्यते । स्थूल्येन चैकपिण्डस्य सदृशः स्याद् दृढः शुभः” ॥ इति ।
एकपिण्डस्य सदृशः अश्वसुरसदृश इत्यर्थः ।

पराशरः—“पिण्डं प्रदीयते साग्रदर्भेषु तु गुडेन वा । पयसा फलमूलैश्च मिश्रितं दक्षिणामुखः ॥

“प्रेताय नामगोत्राभ्यां प्रदद्यान्मुष्टिसंमितम् । तूष्णीं प्रसेकं पुष्पं च धूपदीपं तथैव च” ॥ इति ।

५ स्मृत्यन्तरेऽपि—

“कपित्थफलवच्चाब्दे पिण्डं दद्याच्च पार्ष्णि । धात्रीफलप्रमाणेन गयाश्राद्धे महालये ॥

“नारिकेलप्रमाणेन एकोद्विष्टे सपिण्डेन । अन्यश्राद्धेषु सर्वेषु कुक्कुटाण्डप्रमाणतः” ॥ इति ।

व्यासः—

“द्विहायनस्य वत्सस्य विशत्यास्ये यथा सुखम् । तथा कुर्यात्प्रमाणं तु पिण्डानां व्यासभाषितम्” ॥ इति

१० बोधायनश्च—“कुक्कुटाण्डप्रमाणं मुष्टिप्रमाणं वा तिलमिश्रिपिण्डं प्रदाय गंधपुष्पधूपदीपान्
दत्त्वा संक्षालनेनापसव्यं परिषिच्य प्रेतपिण्डमप्सु विसर्जयेत्” ॥ इति । विसर्जनप्रकार-
माहापस्तंबः—

“आकाशं गमयेत्पिण्डं जलस्थो दक्षिणामुखः । पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणादिक् तथैव च” ॥ इति ।
आशौचन्हासेऽपि दश पिण्डानाह शातातपः—

१५ “आशौचस्यापि च हासे पिण्डान् दद्याद्दशैव तु । प्रथमे त्रीन्द्रितीयेऽह्नि चतुरस्त्रींस्त्वृतीयके” ॥ इति ।
उदकदानवत्पिण्डदानं न सर्वैः कार्यं अपि तु संस्कत्रैव । तदाह संवर्तः—

“पूर्वाह्णे वाऽपराह्णे वा तोयमाशौचगामिभिः । संस्कत्रैव बलिर्देयः स हि प्रेतस्य बांधवः” ॥ इति ।

पिण्डद्रव्यादिनियमः । पिण्डद्रव्यनियममाह शुनःपुच्छः—

“शालिना सक्तुभिर्वाऽपि शाकेनाप्यथ निर्वपेत् । प्रथमेऽहनि यद् द्रव्यं तदेव स्याद्दशाह्निकम्” ॥ इति ।

२० कर्तुनियमो गृह्यपरिशिष्टेऽभिहितः—

“असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् । प्रथमेऽहनि यः कुर्यात्स दशाहं समापयेत्” ॥ इति ।
स्थाननियम उक्तः स्मृत्यन्तरे—

“एकत्र निक्षिपेत् कर्ता दश पिण्डान्समाहितः । स्थानभेदे महान् दोषः पिण्डभुक् नरकं व्रजेत्” ॥
पिण्डभुक्प्रेतः । अन्यत्रापि—

१ “द्रव्यभेदे महान् हानिः कर्तृभेदे त्वनर्थता । स्थानभेदे महादोषस्त्रिभेदं न तु कारयेत्” ॥ इति ।
शिलादिविपर्ययसि स्मृत्यन्तरे—

“वस्त्रपाषाणकुंभानां स्थाल्याः कर्तुर्विपर्यये । पूर्वदत्तोदकं कुर्यात्पुनरित्याह देवलः” ॥ इति ।
स्मृत्यर्थसारे—

“उत्तरीयशिलापात्रकर्तृद्रव्यविपर्यये । पूर्वदत्ताजलान्पिण्डान्पुनरित्याह गौतमः” ॥ उत्तरीय-

१० वास उदकार्थं नववस्त्रं पात्रं वा स उदकादिदानाय जलाहरणार्थं नवघटश्चरुस्थाली वा ॥
तत्रैव—

“आद्यदेशादन्यदेशे प्रेतपिण्डं क्षिपेद्यादि । पूर्वदत्तान्प्रेतपिण्डान्पुनरित्याह शाकलः” ॥

स्मृत्यन्तरे—

“आशौचमध्यं पाषाणं यदि नश्येच्छिलान्तरे । पूर्वदत्ताञ्जलीन् पिण्डान् पुनरित्याह कुण्डिनः” ॥ इति ।

अन्यत्रापि—“स्थापितं प्रेतपाषाणं आ दशाहान्न चालयेत् ।

“देशक्षोभे महापतौ स्थापितं चोद्धरेद्यदि । प्राणायामत्रयं कृत्वा संस्पृश्य व्याहृतीर्जपेत् ॥

“यदि नष्टं हतं वापि पाषाणं प्रथमाह्निकम् । पाषाणमन्यमादाय पूर्वदत्तांशु निक्षिपेत् ” ॥ इति ।

संग्रहेऽपि—“शिलाविनाशे सति वा ततोऽन्यामायातु मंत्रेण निधाय कुण्डे ॥

“यमाय सोमं सुनुतेति मंत्रादाज्याहुतिलौकिक एव वन्हौ ” ॥

शिलाविनाशे अन्यां शिलाम् ‘आयातु देवः सुमनोभिः’ इति वाक्यद्वयात्मकमंत्रेण स्थापयित्वा ‘यमाय सोमम्’ इति लौकिकाम्नौ जुहुयादित्यर्थः ।

तत्रैव—

“शिलान्तरे स्थापिते तु दृष्टा नष्टशिला यदि । यमे इवेति मंत्रेण तां च न्यस्याथ तर्पयेत् ” ॥ इति ।

अगस्त्यः—

“राजकार्यनियुक्तानां वैश्यानां चातिपात्तिषु । पाषाणमुद्धरेन्मध्ये बलिकर्म समापयेत् ” ॥ इति ।

पारस्करः—

“गृहीत्वा प्रेतपाषाणं गच्छेत् देशविपर्यये । अपकुष्यापि कुर्वीत न त्वेतदवशेषयेत् ॥

“उदकं पिंडदानं च दशाहभ्यंतरं तु यत् । समापयेद्दशाहे तत्सर्वं पूर्ववदाचरेत् ॥

“अस्थिसंचयनादूर्ध्वं विच्छिन्ने तर्पणादिके । आरब्धे यदि पित्रोश्च पुनः संक्षिप्यते व्यहात्” ॥ इति । १५

स्मृत्यंतरे—

“यदि नष्टो मृतो वापि कर्ता ह्यन्यं समाश्रयेत् । तेनैव कारयेत्सर्वं उदकाद्याः सपिंडनम् ॥

“प्रथमेऽहनि यः कर्ता नारी वा पुरुषोऽथ वा । आ दशाहं प्रकुर्वीत पिंडदानोदकक्रियाम्” इति ॥

स्मृत्यर्थसारे—

“वायसैः सेविते पिंडे शुना शूद्रेण दूषितः । पुनः कर्म प्रकुर्वीत तस्यावृत्तिं विपर्ययेत् ” ॥ इति । २०

विपर्यये उत्तरीयादिविपर्यये । अंगिरास्तु—

“पिंडं काकादिपक्षिभ्यो जंतुरन्यः स्पृशेद्यदि । कुच्छ्रत्रयं चरित्वाथ पुनः पिंडं च निर्वपेत्” ॥ इति ।

जंतुः श्वादिः । काकादिस्पर्शने कुच्छ्रभावाः । पुनः पिंडनिर्वाणमेवेत्यर्थः । स्मृतिरत्ने—

“स्वचंडालादिभिः स्पृष्टः पिंडो यद्युपहन्यते । प्राजापत्यत्रयं कृत्वा पुनः पिंडं समाचरेत् ॥

“मार्जारमूषकस्पृष्टे पिंडे च विदलीकृते । पुनः पिंडः प्रदातव्यस्तेन पाको न तत्क्षणात्” ॥ इति । २५

गृहद्वारपार्श्वे कुंडविदलादिभिः प्रावृत्य प्रत्यक्द्वारां दक्षिणद्वारां वा कुटीरां कृत्वा माल्याद्यैरलंकृत्य पृथक्पृथक् मृन्मये पात्रे प्रेतात्र स्नाहीति जलं पिबेति क्षीरं कुंडोपरि शिष्ये स्थापयेत् ।

तथा चाश्वलायनकारिका—“आधायाश्मानमेकं तु भूषयेदथ वेष्टयेत् ।

“तस्योपरि निधातव्यं क्षीरं नीरं च पात्रयोः । यावद्दशाहमाकाशे पथि श्रमनिवृत्तये ” ॥ इति ।

पारस्करश्च (३।१०) “प्रेतात्र स्नाहीत्युदकं पिबेति क्षीरमिति” । याज्ञवल्क्योऽपि (प्रा. १।७)— ३०

“जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये ” इति अत्र विज्ञानेश्वरः (पृ. १७० पं. १८-१९)

‘जलं क्षीरं च पात्रद्वये पृथक् पृथक् आकाशे शिष्यादावेकाहं स्थापनीयम् । विशेषानुपादानात् प्रथमेऽहनि कार्यम्” इति । माधवीयेऽपि—प्रथमेऽहनि प्रेतमुद्दिश्य जलं क्षीरं चाकाशे शिष्यादौ पात्रद्वये स्थापनीयमिति । अन्ये तु प्रथमदिनमारभ्य क्षीरं जलं चैकैकाहमेवावस्थितं यथा भवति

तथा प्रत्यहं नवं नवं जलं क्षीरं च स्थापनीयम् । शिष्टाचारश्चैवमिति व्याचक्षते । एवमेतास्मिन्कुण्डे आ दशाहं वास उदकत्रयमेतत्समीपे दर्भास्तृते पिंडबलिप्रदानं च कार्यम् ।

प्रेतशरीरोत्पत्तिक्रमः । दशाहपिंडदानेन प्रेतस्य शरीरोत्पत्तिर्भवति । यदाह ऋष्यशृंगः—

“प्रथमेऽहनि यत् पिंडः तेन मूर्धाऽभिजायते । चक्षुः श्रोत्रे नासिके च द्वितीयेऽहनि जायते ॥

५ “भुजौ वक्षस्तथा ग्रीवा तृतीयेऽहनि जायते । नाभिस्थानं गुदं लिङ्गं चतुर्थेऽहनि जायते ॥

“ऊरू तु पंचमे ज्ञेयौ षष्ठं चर्म प्रजायते । सप्तमे तु सिराः सर्वा जायन्ते नात्र संशयः ॥

“अष्टमे तु कृते पिंडे सर्वरोमाण्यनंतरम् । नवमे वीर्यसंपत्तिर्दशमे क्षुत्परिक्षयः ॥

“दशमेन तु पिंडेन वृत्तिः प्रेतस्य जायते । आशौचांते तपः सम्यक् पिंडदानं समाप्यते ॥

“ततः श्राद्धं प्रदातव्यं सर्ववर्णेष्वयं विधिः । एकोद्विष्टात्पिशाचत्वं पितृत्वं पिंडयोगतः ” ॥ इति ।

१० **आतुराश्वासनविधिः** । पिंडोदकदानानंतरं बांधवैराश्वासनं कार्यम् । तथा च याज्ञवल्क्यः (प्रा. ७) —

“कृतोदकान्समुचीर्णान् मृदुशाङ्गुलसंस्थितान् । स्नातानपवदेयुस्तानितिहासैः पुरातनैः ” ॥ इति ।

इतिहासस्तु तेनैव दर्शितः (प्रा. ८-१०) —

“मानुष्ये कदलीस्तम्भे निःसारे सारमार्गणम् । करोति यः स मूढो वै जलबुद्बुदसान्निभे ॥

“पंचधा संभृतः कायो यदि पंचत्वमागतः । कर्मभिः स्वशरीरोत्थैस्तत्र का परिदेवना ॥

१५ “गंत्री वसुमती नाशं उदधिर्देवतानि च । फेनप्रख्यः कथं नाशं मर्त्यलोको न यास्याति ” ॥ इति ।

कात्यायनोऽपि—

“एवं कृतोदकान्सम्यक् सर्वान्शाङ्गुलसंस्थितान् । आप्लुतान्पुनराचातान्वदेयुस्तेऽनुशायिनः ॥

“मा शोकं कुरुतानित्ये सर्वस्मिन्प्राणधार्मिणि । धर्मं कुरुत यत्नेन यो वः सह करिष्यति ” ॥

रामायणेऽपि—

२० “सर्वे क्षयांता निचयाः पतनांता समुच्छ्रयाः । संयोगा विप्रयोगांता मरणांतं च जीवितम् ।

“यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद्भयम् । एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम् ।

“यथाऽगारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वाऽवसीदति । तथाऽवसीदन्ति नरा जन्ममृत्युवशं गताः ॥

“अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह । आयूंषि क्षपयंत्याशु ग्रीष्मे जलमिवाशयात् ॥

“यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे । समेत्य च व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन ॥

२५ “एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च । समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विना भवः ” ॥ इति ।

भारतेऽपि (शां. प. अ. भ. गी.) —

“जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च । तस्मादपरिहार्यं ऽर्थं न त्वं शोचितुमर्हसि ” ॥ इति ।

शोके दोषोऽपि याज्ञवल्क्येन दर्शितः (प्रा. ११) —

“श्लेष्माश्रु बांधवैर्मुक्तं प्रेतो भुंक्ते यतोऽवशः । अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः प्रयत्नतः ” ॥ इति ।

३० **आतुराश्वासनानंतरकृत्यं तेनैवोक्तम् (प्रा. १२-१३) —**

“इति संश्रित्य गच्छेयुर्गृहं बालपुरःसराः । विदूष्य निंबपत्राणि नियता द्वाखिवेश्मनः ॥

“आचम्याग्न्यादिसलिलं गोमयं गौरसर्षपान् । प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाऽश्मनि पदं शनैः ” ॥ इति ।

अपरो विशेषः शंखेन दर्शितः—“दूर्वा प्रवालमग्निं वृषभं चालभ्य गृहद्वारे प्रेताय पिंडं दत्वा पश्चात्प्रविशेयुः ” ॥ इति । **सांख्यायनः—**“यास्मिन्देशे प्राणा उत्क्रान्ताः तास्मिन्देशे गोमयेनोप-

लिप्य दूर्वा तंडुलानुदकमिश्रान्प्रकीर्य स्वस्ति वोऽस्तु गृहाणां शेषे शिवं चास्त्विति फलं समभिमुखान्ति ॥ इति । पैठीनसिः—

“गृहं गत्वा स्थिता द्वारि सर्पिरग्न्यश्मगोमयान् । प्रविशेर्युर्गृहं स्पृष्ट्वा संविशेयुः कटोपरि ॥ इति ।

एकोत्तरवृद्धिनवश्राद्धानि । अथैकोत्तरवृद्धिश्राद्धं पूर्वोक्तं दद्यात् । यस्मिन्दिने यावन्त्युदकाञ्जलि-
दानानि तावन्ति श्राद्धानि आयरूपेण प्रत्यहं देयानि । अथ संकल्प्य आयरूपेण सदक्षिणं ५
नवश्राद्धमेकं दद्यात् । एवमेकादशाहात् विषमेषु दिनेषु षण्णवश्राद्धानि दद्यात् । तदाहंगिराः—

“प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पंचमे सप्तमे तथा । नवमैकादशे चैव षण्णवश्राद्धमुच्यते ॥ इति ।
वसिष्ठोऽपि—

“सप्तमेऽह्नि तृतीये च प्रथमे नवमे तथा । एकादशे पंचमे च नव श्राद्धानि षड् दिशेत् ॥
यत्तु देवलवचनम्—

“तृतीये पंचमे वाऽपि सप्तमे नवमे तथा । अहन्येकादशे चैव नवश्राद्धानि पंच वै ॥ इति
तदाश्वलायनविषयम् । तथा च शिवस्वामी

“नव श्राद्धानि पंचाहुराश्वलायनशाखिनः । आपस्तंबाः षडित्याहुर्विभाषामैतरेयिणः ॥

विभाषां पंचषड्वेति विकल्पमैतरेयिण आहुँरिति शेषः । बोधायनः—“मरणादिविषमेषु दिनेषु
एकैकं नव श्राद्धानि कुर्यात् । आ नवमाद्यत्र नवमं विच्छिद्यते एकादशेऽहनि तत्कुर्यात् ॥ इति ॥ १५

श्रीधरीये—“तृतीये पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा । यदत्र दीयते जंतोस्तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥

भविष्यत्पुराणे

“नवसप्तविंशां राज्ञां नव श्राद्धान्यनुक्रमात् । आद्यंतयोर्वर्णयोस्तु षडित्याहुर्महर्षयः ॥ इति ।

कालादर्शे—

“आ द्वादशाहान्मरणात् विषमेषु दिनेषु षट् । नवश्राद्धान्यनुतिष्ठेदकोद्दिष्टविधानतः ॥ २०

“केचित्पंचैव नवमं भवेदंतरितं च यत् । एकादशेऽह्नि तत्कुर्यादिति स्मृतिकृतो विदुः ॥

“दैवादन्तरितं पूर्वं उत्तरेण सहाचरेत् ॥ इति । एवं च क्षत्रियाणां नव श्राद्धानि सप्त वैश्यानां

नव विप्राणां शूद्राणां च षट् । तत्राप्याश्वलायनीयानां बोधायनीयानां च पञ्च । आपस्तंबिनां षट् ।

ऐतरेयिणां पंच षड्वेति विकल्पः । इतरेषां सर्वेषां चत्वारि पंच षड्वेति व्यवस्था । अत्रांतराये

कण्वः—“नवश्राद्धे मासिके च यद्यदंतरितं भवेत् । तदुत्तरत्र स्वातंत्र्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥ २५

“नवश्राद्धममंत्रं तु पिंडोदकविवर्जितम् ॥ इति । स्मृत्यंतरे च—

“नवश्राद्धं तु यत्रोक्तं दिने स्यान्न कृतं यदि । एकोद्दिष्टदिने कार्यमत्र दोषो न विद्यते ॥ इति ।

अखंडादर्शे च—

“न तिथिर्न च नक्षत्रं न ग्रहो न च चंद्रमाः । कुर्यादेव नवश्राद्धं प्राप्तमेकादशेऽहनि ॥ इति ।

नवश्राद्धे वर्ज्यनक्षत्राण्याह वसिष्ठः—

“विशाखारोहिणीयाम्यपौष्णादित्योत्तरात्रयम् । अष्टौ वर्ज्या नवश्राद्धे पुनर्मरणदा र्थतः ॥ इति ।

गार्ग्यः—

“नंदायां भार्गवादिने चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु । यदि कुर्यान्नवश्राद्धं कुलक्षयकरं भवेत् ॥

सुबोधे च—

“स्वांतीजन्मसुनंदायां चतुर्दश्यां भृगोर्दिने । यदि कुर्यान्नवश्राद्धं कर्त्ता यमपुरं व्रजेत् ॥ ३५

१ स-अव । २ ग-पाठः; क्ष-तन्तव । ३ क्ष-आहुति । ४ स-पंचमे नवमे चैव तृतीये ।

५ ग-यदि । ६ गख-यिनः । ७ गक्ष-स्वत्रि ।

गार्ग्यश्च—

“शौके च बुधवारे च गुरोः सोमस्य वारयोः । एतेषु कुर्वतः श्राद्धं कर्तुर्मरणमादिशेत् ॥

“स्वजन्मक्षेत्रिपदक्षेषु नंदायां भृगुवासरे । धातृपौष्णभयोः श्राद्धं न कर्त्तव्यं कुलक्षयात् ॥

“प्रत्यरंवधनक्षत्रं कर्तुस्तु विपदं तथा । चंद्राष्टमं च शंसन्ति जन्मादीनि विवर्जयेत् ॥”

५ इत्यादि सर्वं मातृपितृव्यतिरिक्तविषयं कालातिक्रमविषयं च

“परोक्षे सूक्ष्मतः पश्येत्प्रत्यक्षे तु न किञ्चन । वैधे कर्मणि तु प्राप्ते कालदोषं न चिन्तयेत् ॥” इति

स्मरणात् । अत्रायं क्रमः—दाहानंतैरं स्नात्वा केशानुप्लवाऽऽलुत्य गृहं समेत्य नम्रप्रच्छादनं दत्त्वा

निमज्ज्योदकं तीरकुण्डे प्रदाय उदकुंभमाहृत्य गृहद्वारकुण्डे वास उदकपिंडबलीन्प्रदाय स्नात्वा

गृहं समेत्य निबपत्रं विदश्याश्मादीन्सृष्ट्वा एकोत्तरवृद्धिश्राद्धं नवश्राद्धं च दद्यात् । इति ।

१० आशौचिनां नियमः । आशौचिनां नियमो मनुना दर्शितः (५।७३)—

“अक्षारलवणाक्षाः स्युर्निमज्जेयुश्च तेऽन्वहम् । मांसाशनं च नाश्रियुः शयीरश्च पृथक् क्षितौ” ॥ इति

मार्कंडेयः—

“क्रीतलब्धाशनाश्चैव भवेयुः सुसमाहिताः । न चैव मांसमश्रीयुर्वजेयुश्च न योषितम् ॥” इति ।

गौतमोऽपि (१४।३४-३९)—“अधःशय्यासना ब्रह्मचारिणः सर्वे नैर् मार्जयीरन् । न मांसं

१५ भक्षेयुः । आ प्रदानान्नवमे वाससां त्यागोऽन्त्ये त्वन्त्यानाम् ॥” इति । माधवीये व्याख्यातम्—

प्रदानमिहैकोद्दिष्टश्राद्धं वाससां त्यागस्तु प्रक्षालनार्थं रजकार्पणं अंत्यं दशममहः । तत्रान्त्या-

नामत्यन्तपरित्याज्यानां वाससां त्याग इति । तथा च बृहस्पतिः—“नवमे वाससां त्यागो

नखरोम्णां तथाऽन्तिमे ॥” इति । देवलोऽपि—

“दशमेऽहनि संप्राप्ते स्नातुं ग्रामाद्द्विर्व्रजेत् । तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च” ॥ इति ।

२० याज्ञवल्क्यः (प्रा. १६)—

“क्रीतलब्धाशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक्पृथक् । पिंडयज्ञावृता देयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम् ॥” इति ।

मरीचिः—

“प्रथमेऽहनि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा । ज्ञातिभिः सह भोक्तव्यं एतत्प्रेतेषु दुर्लभम् ॥” इति ।

विष्णुपुराणे (३।१३।११-१२)—“दिवा च नक्तं भोक्तव्यं अमांसं मनुजर्षभ ।

२५ “दिनानि तावदिच्छातः कर्त्तव्यं ज्ञातिभोजनम् । प्रेतस्तृप्तिं तथा याति बंधुवर्गेण भुञ्जता ॥” इति ।

अंगिराः—“नाश्रियुस्तद्दिने सर्वे औरसाद्याः सपिंडकाः ।

“दशरात्रं भवत्येते लवणक्षारवर्जिताः । तैलतांबूलहीनाश्च एकमुक्ता जितेंद्रियाः” ॥ इति ।

वासिष्ठश्च (४।१४-१५)—

“गृहात्प्रजित्वा अधप्रस्तरे त्र्यहमनश्चत आसीरन् क्रीतेनोत्पन्नेन वा वर्त्तेरन्” ॥ इति । अधप्रस्तर

३० आशौचिनां शयनासनार्थं कृतस्तृणमयः करः । उत्पन्नमयाचितलब्धम् । आश्वलायनोऽपि

(४।४।१४-१६)—

“नैतस्यां रात्र्यामन्नं पचेरन्क्रीतेनोपलब्धेन वा वर्त्तेरन् । त्रिरात्रमक्षारलवणाः स्युर्द्वादशरात्रं

वा महागौ ॥” इति । आपस्तंबः—“अनशनानध्ययनाधःशय्योदकोपस्पर्शानन्याकालिका-

न्यनूचानेषु च ब्रह्मं ब्रह्मं षडहं द्वादशाहं वा महागुरुष्वनशनवर्जं संवत्सरं मातरि पितर्या-
चार्यं इत्येके न अशयनानध्यनवर्जं यावज्जीवं प्रेतपत्न्युदकोपस्पर्शनमेकभक्तमधःशय्यां ब्रह्मचर्यं
क्षारलवणमधुमांसवर्जनं च ” ॥ इति । **बोधायनश्च—**

“संवत्सरं मातरि पितर्याचाये ” । इति । “त्रिरात्रमक्षारलवणाभभोजनमधःशयनं ब्रह्मचर्यं ब्रह्मं
षडहं द्वादशाहं वा संवत्सरं गुरुष्वेवमघोदकमितरेषु त्रिरात्रं यावज्जीवं प्रेतपत्नी ” इति । ५
अस्थिसंचयनम् । तत्र पारस्करः—

“चतुर्थेऽहनि विप्रस्य षष्ठे वैक्षितिपस्य तु । अष्टमे दशमे वाऽस्थिसंचयः शूद्रवैश्ययोः ” ॥ इति ।
श्रीधरीये तु—“चतुर्थे पंचमे चैव नवमैकादशे तथा । अस्थिसंचयनं कार्यं वर्णानामनुपूर्वशः ” ॥
स्मृत्यंतरेऽपि—

“चतुर्थे पंचमे चैव सप्तमे नवमे तथा । अस्थिसंचयनं कार्यमित्येवं विष्णुरब्रवीत् ” ॥ १०
संग्रहेऽपि—

“चतुर्थे संचयः कार्यो ब्राह्मणस्याथ पंचमे । राज्ञो वैश्यस्य सप्ताहे शूद्रस्य नवमे दिने ” ॥ इति ।
विष्णुरपि (१९।१०-११)—“चतुर्थे दिवसे अस्थिसंचयनं कुर्युः । तेषां गंगाभसि प्रक्षेपः” ॥ इति ।
स्मृतिरत्नेऽपि—

“एकाहमुपवासः स्यादश्रियुर्लब्धमेव वा । गत्वाऽरण्ये चतुर्थेऽहनि पूर्वाह्ने त्वस्थिसंचयः ” ॥ इति । १५
स्मृतिरत्नेऽपि—

“दिवैव तर्पणं कुर्यान्नापराह्णेऽस्थिसंचयः । न रात्रौ न च संध्यायां तस्मात्पूर्वाह्ण एव सः ” ॥ इति ।
संग्रहे—

“चतुर्थेऽहनि विप्राणामस्थिसंचयनं मतम् । पूर्वाह्णः शुभदः प्रोक्तो मध्याह्ने मध्यमः स्मृतः ॥

“अपराह्णं च रात्रिं च वर्जयेदस्थिसंचये ” ॥ **अन्यत्रापि—**

२०

“वर्णाशौचं त्रिधा कृत्वा प्रथमे संचयः स्मृतः । द्वितीयभागे विप्राणां संचयो मध्यमः स्मृतः ॥

“तृतीयभागे हीनं स्यादस्थिसंचयनं तथा ” ॥ **श्रीधरीये—**

“अस्थिसंचयनं कार्यं पूर्वाह्णे तु शुभावहम् । मध्याह्ने मध्यमं प्रोक्तमपराह्णे विनाशनम् ” ॥ इति ।

विष्णुपुराणे (३।१३।४)—“चतुर्थेऽहनि च कर्तव्यं भस्मास्थिसंचयनं नृप ” ॥ इति ।

आपस्तम्बः—“अपरेद्युस्तृतीयस्यां पंचम्यां सप्तम्यां वाऽस्थीनि संचिन्वन्ति ” इति । अपरेद्युः २५
परस्मिन्दिवस इत्यर्थः । तृतीयस्यामित्यादि चानन्तरोक्तद्वितीयदिवसापेक्षया वेदितव्यम् । न त्वाद्य-
दिवसापेक्षया । अत एव **भाष्यकारेण** तृतीयस्यामित्यादिषु व्युष्टायामित्यध्याहारः कृतः ।
तथा **बोधायनः (गृ. सू. १।१४।१)—**

“संचयनमेकस्यां व्युष्टायां तिसृषु वा पंचसु वा सप्तसु वा ” इति । एवं बहुस्मृतिविहितत्वात्
ब्राह्मणस्य चतुर्थेऽहन्येव संचयो युक्तः । कथंचित्तदसंभवे **कात्यायनः—**

३०

“अपरेद्युस्तृतीये वा चतुर्थे पंचमेऽपि वा । अस्थिसंचयनं कुर्याद्दिने तद्गोत्रजैः सह ” ॥ इति ।

आश्वलायनः—“चतुर्थे पंचमे वाऽस्थिसंचयः सप्तमेऽहनि वा ” ॥ इति ।

संग्रहे—“अस्थिसंचयनं युग्मे दिने प्राक्नवमाद्भवेत् । केचिद्विषम एवात्र व्युष्टे तत्रेत्यनुक्तिः” ॥

व्यासः—“बुधसोमौ शुभौ ज्ञेयौ मध्यमौ गुरुभार्गवौ । अकारमंदा निंबाः स्युः प्रशस्तं विषमेऽहनि ॥

“द्वितीयश्च चतुर्थश्च शुभदौ युग्मवासरौ ॥

“प्रशस्तातिथिवाराणां नक्षत्राणामसंभवे । अस्थिसंचयनं कार्यं द्विजवाक्यानुशासनात् ॥

“यस्मिन्कस्मिन्दिने वाऽपि नैवाशौचं विलंबयेत् । आशौचादूर्ध्वभावी चेत्पुनर्दहनमाचरेत्” ॥ इति ।
स्मृत्यंतरे—

५ “अस्थिसंचयनं कर्म दशाहादूर्ध्वभावि चेत् । अस्थीनि पुनराहृत्य दाहयेद्याज्ञिकैः पुनः ॥

“पिंडोदकं नवश्राद्धं पुनः कुर्याद्यथाविधि” ॥ इति । एतत्पुनर्दहनविधानं द्वादशाहसपिंडी-
करणाभिप्रायम् । द्वादशाहादित्यतिरिक्तकालांतरसापिंड्ये तु दशाहादूर्ध्वमपि सपिंडीकरणात्
प्राक्शुभदिने संचयः कार्यः । “सपिंडीकरणात्पूर्वमस्थिसंचयनं भवेत्” इति स्मरणात् ।

तथा चाश्वलायनः (४।५।१)—“संचयनमूर्ध्वं दशम्यां कृष्णपक्षस्यायुजास्वैकनक्षत्रे” इति ।

१० बोधायनोऽपि (१।१४।१)—

“एकस्यां व्युष्टायां त्रिषु पंचसु वा सप्तसु वा नवसु वैकादशसु वा युग्मा रात्रीरर्धमासान्मासा-
चतून्संवत्सरं वा संपाद्यास्थि संचिनुयुः” ॥ इति । गृह्यपरिशिष्टे (३।७)—

“अस्थिसंचयनं संवत्सराते चेत्सापिंड्यमूर्ध्वं दशम्या अयुजासु तिथिष्वपि वा द्वादशाहे सापिंड्यं
चेदंतर्दशाहे चतुर्थषष्ठाष्टमदशमाहेष्वेकनक्षत्रे” इति । अत्र दाहादिदिनसंख्याऽहिताग्नेः । अन्येषां

१५ मरणादि दाहादि वा । तथा च ब्राह्मपुराणे—

“अनाहिताग्नेर्मरणादाहिताग्नेस्तु दाहतः । अस्थिसंचयनं कुर्युः स्वशास्त्रोक्तविधानतः” ॥ इति ।

“अनग्निमत उत्क्रान्तेः साग्नेः संस्कारकर्मणः । शुद्धिः संचयनं दाहान्मृताहस्तु तिथिः^३ स्मृता” ॥ इति ।
स्मृत्यंतरे च—

“अनग्नेर्मरणात्साग्नेराशौचं दाहतः परम् । तयोः संचयनं दाहान्मृताहस्तु तिथिः स्मृता” ॥ इति ।

२० अस्थिदाहे प्रतिकृतिदाहे वा सद्यः संचयः कार्यः

“चतुर्थेऽहनि विप्राणामस्थिसंचयनं भवेत् । अस्थनां प्रतिकृतेर्दाहे सद्यः संचय इष्यते ॥

“यदा पलाशवल्काद्यैः कृत्वा प्रतिकृतिं दहेत् । भस्मास्थिवत्संचिनुयात् सद्योमंत्रान् जपेत्तु वा” ॥ इति
स्मरणात् । विष्णुः—“पलाशशरीरं दग्ध्वा समूह्यांभासि क्षिपेत्” इति । सद्य एव मंत्रजपं
कृत्वा भस्मोद्धृत्यांभासि क्षिपेदित्यर्थः ।

२५ पुनःसंस्कारविषयविशेषे संचयनिषेध उक्तः स्मृत्यंतरे—

“अतीते द्वे तु संस्कारे एकाहात्पिंडमर्पयेत् । श्राद्धं दद्यात् द्वितीयेऽह्नि तृतीयेऽह्नि सपिंडनम् ॥

“नास्थिसंचयनं कुर्यान्न च चर्माधिरोहणम् । पुत्रादीनां तु कर्तव्यं पुनःसंस्कारकर्मणि” ॥ इति ।

अत्र आदिशब्देन दौहित्रादयो गृह्यन्ते । तद्यतिरिक्तसंस्कर्तृविषये अब्दात्परतः पुनःसंस्कारे सति
संचयनमंत्रजपोऽपि न कार्य इति गम्यते । स्मृत्यंतरे—

३० “त्रिवर्षादि दहेदेनमेकव्रतबंधनात् । पंचमाद्यस्थिसंचयनं श्राद्धं कुर्याच्चतुर्दिने” ॥ इति ।
पंचमाब्दात्पूर्वं नास्थिसंचयनमित्यौचित्यार्थकोऽर्थः ।

गर्गः—“अंतर्दशाहे संप्राप्ते दर्शे पिंडान्समापयेत् । अस्थिसंचयनं चैव दर्शात्पूर्वं समाचरेत् ॥

“प्रथमेऽह्नि द्वितीयेऽह्नि यदि दर्शस्तदैव हि । अस्थिसंचयनं कुर्यादित्येषा वैष्णवी स्मृतिः” ॥ इति ।

दर्शग्रहणं संक्रांतरप्युपलक्षणम् ।

१ खग-युगमासु । २ ‘दशमाहवर्ज्यमेकनक्षत्रेषु’ इति मुद्रितपाठः । ३ क्ष-यथातिथिः ।

४ क्ष-दीनां । ५ ग-त्य ।

अत्र श्वादिदृषणे स्मृत्यन्तरम्—

“श्वसूकरशृगालाद्यैर्ग्रामसूकरकुक्कुटैः । श्वास्थिभस्मदेहानां स्पर्शनं चेत्प्रमादतः ॥

“गव्यैः प्रक्षाल्य कृच्छ्राणां त्रितयं च समाचरेत्” ॥ इति । अन्यत्र तु—

“श्वैर्भिर्गर्दिभचंडालैः श्वास्थि स्पृश्यते यदि । पंच पंच चतुःपंच कृच्छ्राणां त्रितयं चरेत्” ॥ इति ।
पंचपंचेति पंचविंशतिः । चतुःपंचेति विंशतिः । पंचविंशतिं विंशतिं त्रीन्प्राजापत्यैकृच्छ्रान्श्वादि-
स्पर्शं यथाक्रममाचरेदित्यर्थः । अन्यत्राशौचिस्पर्शं कृच्छ्रत्रयं “अस्थिनामाशौचिसंस्पर्शं कृच्छ्राणां
त्रितयं चरेत्” इति स्मरणात् ।

अस्थिनिक्षेपः । खननप्रकारमाह बोधायनः—“पुरुषसंमितं गजसंमितं वा गतं स्वात्वा तस्मिन्न-
स्थिकुंभमवधाय पुनरभ्यर्च्य पुरीषमुत्तिकैभिः प्रच्छादयेत् । तद्यावद्वसति तावत्स्वर्गो महीयते” इति ।

कात्यायनः—

“शमीपलाशशाखाभ्यां उद्धृत्यास्थि तु भस्मतः । आज्येनाभ्यज्य गव्येन सेचयेत् गंधवारिणा ॥

“मृत्पात्रसंपुटे कृत्वा वस्त्रेण परिवेष्ट्य वा । देशे तु कुशदर्भाढ्ये निखनेदक्षिणामुखः” ॥ इति ।

वैखानसे—“चिताया दक्षिणे पार्श्वे जानुदघ्नं स्नात्वा गतं कुम्भं निदध्यात्” इति । स्मृत्यन्तरे च—

“प्रेतस्यास्थीनि संचित्य कुम्भे तानि निधाय च । घृतेन गंधतोयैश्च सिक्त्वा कुंभं निधापयेत्” ॥ इति ।

ब्राह्मे—“अस्थीन्यादाय कुंभे तु स्थाप्य गतं विनिक्षिपेत् ।

“आविकाजिनवस्त्रैश्च क्षौमकौशेयपट्टकैः । कुशरज्ज्वा दृढं बध्वा गंगांसि विनिक्षिपेत् ॥

“अधमर्षणसूक्तं तु यावन्मज्जति तज्जपेत् ॥

“यावदस्थि मनुष्याणां गंगातोयेषु तिष्ठति । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते” ॥ इति ।

पाद्मे च—

“अस्थ्नां कृत्वाऽथ च संशुद्धिं केशवाद्यैश्च नामभिः । पंचगव्येषु निक्षिप्य गंधाद्यैः संप्रपूजयेत् ॥ ३०

“द्विजानुज्ञामवाप्यैव गंगायां सुसमाहितः । संकल्प्य प्रयतस्तस्य चोच्चरन्गोत्रनामनी ॥

“अधमर्षणसूक्तेन धर्मायैव नमोऽस्त्विति । विसर्जयेत्ततोऽस्थीनि यावन्मज्जति तज्जपेत्” ॥ इति ।

ब्राह्मपुराणे—“अस्थीनि मातापितृमातुलादेर्दशाश्वमेधे तु नरो नभस्ये ।

“कृष्णाष्टम्यां पंचगव्यैर्निषिच्य हिरण्यमध्वाज्यतिलैर्विकीर्य ॥

“पुण्ये तु मृत्पिण्डपुटे निधाय नमोऽस्तु धर्माय इति ब्रुवंश्च ।

“क्षिपेज्जले पितृतीर्थे” निमज्ज्य स्नात्वाऽथ सूर्यं प्रयतः प्रपश्येत् ॥

“यथाशक्त्या दक्षिणां चापि दत्वा पितृन्सर्वान्ब्रह्मलोकं नयेत्सः” ॥ इति । मात्स्ये—

“गृहीत्वाऽस्थीनि गंगायां निक्षिपेत् भुवि वा क्षिपेत् । तीर्थांतरे कुरुक्षेत्रे देशे वा सकुशे शुचौ” ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

“गंगायां यमुनायां च कावेर्यां वा शुतद्रुतौ । सरस्वत्यां विशेषेण अस्थीनि विमुजेत्सुतः” ॥ इति । ३०

ब्रह्मवैवर्ते—

“कावेरीतीरवासी च तत्र दग्धो मृतोऽपि वा । कुतांबुसिंचितैस्थिर्वा धूतपाप्मा दिवं व्रजेत्” ॥ इति ।

शांडिल्यः—

“द्वारवत्यां सेतुबंधे गोदावर्यां च पुष्करे । अस्थीनि विमुजेद्यस्य स मृतो मुक्तिमाप्नुयात्” ॥ इति ।

संग्रहे—

“स्त्रिया अनाहितग्नेश्च कुंभांतस्थोऽस्थिसंचयः । निवापांतो हविर्यज्ञयाजिनः सोमयाजिनः ॥

१ क्ष-बहि । २ ग-त्यादि । ३ क-पुरीषेण । ४ ग-तीर्थेन भक्त्या । ५ क्ष-संचिता ।

“पुनर्दाहावधिलोष्टाचिरेरग्निचितैः पुनः । निवापो न पुनर्दाहो^३ लोष्टचित्यां न चोभयम् ॥
 “केचिन्निवापमिच्छन्ति ह्युभयत्राविरोधि^४ तत्” इति । अयमर्थः । अनाहिताग्नेः आहिताग्न्या-
 हिताग्निपत्नीनां च पलाशमूले वा कुंभं निधायेत्येवमन्तमेव कर्तव्यम् । कर्ष्वादि तदंगत्वात्क्रियत
 एव । हविर्यज्ञयाजिनो निवपनांतं सोमयाजिनः पुनर्दहनान्तं कर्तव्यम् । महाग्निचितः काटकाग्नि-
 ५ चितश्च लोष्टचयनांतमिति ।

अस्थिसंचयने वारादिदोषः । अस्थिसंचयने वारनक्षत्रनिषेधो यमेनोक्तः—

“आर्भौमार्कवारेषु तिथियुग्मेषु वर्जयेत् । वर्जयेदकपादक्षे द्विपादक्षेऽस्थिसंचयम् ॥

“प्रदातुजन्मनक्षत्रे त्रिपादक्षे विशेषतः” ॥

स्मृतिरत्ने—“नन्दायां भाग्वि^५र्के च चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु । बार्हस्पत्ये तथा श्रेष्ठे पुष्ये हस्ते तथैव च ॥

१० “नास्थिसंचयनं कुर्यात्कुलक्षयकरं हि तत् ॥

“फलगुनीद्वयमाषाढद्वयं प्रोष्ठपदद्वयम् । षड्भ्योऽन्यत्र तु नक्षत्रे ह्यस्थिसंचयनं भवेत्” ॥ इति ।

गार्ग्यः—

“भद्रे त्रिपदनक्षत्रे भृग्वंगारबृहस्पतौ । दहनं मरणं चास्थिसंचयनं त्रिगुणं भवेत्” ॥

स्मृत्यंतरे—

१५ “गुरुशुक्रारश्न्येकं नन्दायां च त्रिजन्मसु । उत्तराहस्तचित्रासु पुष्ये नैवास्थिसंचयः” ॥ इति ।

श्रीधरीये—

“अस्थिसंचयनं कार्यं जन्मत्रयविवर्जितम् । पूर्णायां च विशेषेण नन्दायां च विवर्जयेत्” ॥ इति ।

प्रतिपदषष्ठ्येकादशयो नन्दाः ।

आत्रेयः—“कालेऽल्पदोषे कुर्वीत त्याज्यं दोषाधिके शुभम्” इति । श्रीधरीये च—

२० “दिवसं गुणदोषाभ्यां संपृक्तं हि परस्परम् । केवलं गुणयोगो हि देवानामपि दुर्लभः” ॥

हारीतः—

“कुर्वीत सर्वकर्माणि ब्राह्मणानामनुज्ञया । ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञानात् दोषो नश्येदसंशयम्” ॥ इति ।

गार्ग्यः—

“शुक्रादिशुभवाराश्च नन्दाश्चैव चतुर्दशी । उत्तरात्रयरोहिण्यः पूर्णचंद्रश्च जन्म च ॥

२५ “एतेष्वपि च कर्तव्यं मातापित्रोर्विशेषतः । अन्येषां नातिदोषः स्यात् प्रत्यक्षमरणे नृणाम्” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—

“जन्मत्रयं संचयने श्राद्धे च दहने गुरोः । नैव दोषावहं प्रोक्तं अन्येषामपि सर्वदा” ॥ इति ।

प्रत्यक्षं तु मातापितृव्यतिरिक्तविषये शौर्कं वर्ज्यमेव । “शौर्कं पित्रोर्न दोषाय” इति पित्रोरेवा-
 वर्जनीयत्वस्मरणात् । “सर्वदा शुक्रवारस्तु वर्जनीयः प्रयत्नतः” इति स्मरणाच्च ।

३० स्मशानाग्न्यनुगतौ प्रायश्चित्तम् । स्मशानाग्न्यनुगातिप्रायश्चित्तमाह संग्रहकारः—

“नष्टे शावानले भस्म संस्पृष्टारणिमन्थनम् । लौकिकाग्न्याहुतिः स्मार्त्ते सर्वचित्तं द्वयोःसंमम्” ॥ इति ।

आहिताग्नेर्मथिताग्निरनाहिताग्नेर्लौकिकाग्निः । उभयत्र सर्वप्रायश्चित्तं सममित्यर्थः ।

अत्र विशेषमाह बोधायनः—“अथ यद्युपनयनाग्निर्विवाहाग्निर्जातकर्माग्निः स्मशानाग्निरा-
 चतुर्थीदा पंचमादा दशाहादास्थिसंचयनारुद्धासि तस्य ‘अपहता असुरा’ इति प्रोक्ष्य क्षिप्रं भस्म-

१ ग-ति । २ ग-तः । ३ ग-हे । ४ ग-धतः । ५ ग-ग्न्यनाहिता । ६ खग-भौमार्कमन्द ।
 ७ ग-द्राच । ८ क्ष-शोक्रियम् । ९ क्ष-श्वारणिबंधनम् । १० क्ष-द्विधा ।

समारोपणं 'अयं ते योनिर्ऋत्विग्यः' इति समिधि समारोप्य लौकिकामिमाहृत्य समिधमादधाति आजुव्हान "उद्धुध्यस्वाम्" इति द्वाभ्यां संपरिस्तीर्यायाश्चाग्ने पंचहोता ब्राह्मण एकहोता च मनस्वती मिंदा च महाव्याहृतिभिर्व्याहृतयश्च प्रायश्चित्तं जुहुयादिति" ।

सूत्रमिदं व्याख्यातं पितृमेधसारकुता—“यदि श्मशानाग्निरनुगतः स्यात्ततः संकल्प्य अपहता असुरा इति तद्भस्म प्रोक्ष्य 'अयं ते योनिर्ऋत्विग्यः' इति समिधि समारोप्य लौकिकामिं प्रतिष्ठाप्य ५
आजुव्हान 'उद्धुध्यस्वेति' द्वाभ्यां तां समिधमाधाय परिस्तीर्याज्यं दर्वी च संस्कृत्य परिबिच्य 'अयाश्चाग्निर्होतेति' द्वाभ्यां 'ब्राह्मण एकहोता' इत्यनुवाकेन च प्रतिवाक्यचतुष्टयं 'मनोज्योति-
र्जुषतां' 'यन्म आत्मन' इति द्वाभ्यां 'भूरग्नये चेति' चतुर्व्याहृतिभिश्च हुत्वाऽग्निं परिबिच्य
ततः कर्म प्रतिपद्यत" इति ।

कारिका च—“उपायनाग्नौ च विवाहवन्हौ शवानले सूतकपावके च ।

१०

“शांतेपहत्यापहतेति मंत्रात् शंनेदेव्याद्भिरवोक्ष्य भस्म ॥

“तद्भस्म चारोप्य समिध्ययंत आजुव्ह उद्धुध्य ऋचोर्द्वयेन ।

“लौक्यानेले तां समिधं निधाय परिस्तराज्योत्पवनानि कृत्वा ॥

“अयाश्च पंच होता च ब्राह्मण एकहोता दश । मनस्वती च मिंदा च महाव्याहृतयस्तथा ॥

“वारुणस्तंतुमत्यश्च हुत्वा तंत्रं प्रयोजयेत्” ॥ इति ।

१५

यद्यस्थिप्रवाहहृतं प्रतिकृतिदाहो वा तत्रास्थ्यभावात्कथं संचय इत्यपेक्षायामुक्तं संग्रहे—

“अस्थिसंचयनात्पूर्वं प्रवाहेण हृतं यदि । अस्थिप्रतिकृतिं कृत्वा तद्देशान्मृदमाहरेत् ॥

“अस्थिवत्संचयेद्विद्वान्लोष्ठं वा भस्म वा ततः । प्रमाणमस्थिवत्कृत्वा तन्मंत्रं तु जपेद्बुधः” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे च—

“जले प्रवाहे कूले वा तीरे वाऽथ सरिद्धते । जलोधे वाऽस्थिनाशे तु तन्मंत्रं तु जपेद्बुधः” ॥ इति । २०

विज्ञानेश्वरीये—“अस्थिसंचयने योगो देवानां परिकीर्तितः ।

“प्रेतीभूतं तथोद्दिश्य यः शुचिर्न करोति चेत् । देवतानां तु यजनं तं शपेत्पथ देवताः” ॥ इति ।

देवताश्चात्र श्मशानवासिनः । तत्र पूर्वदग्धाः “श्मशानवासिनो देवाः शवानां परिकीर्तिता”

इत्यंगिरःस्मरणात् । अतः तान् देवान् चिरमृतं प्रेतं चोद्दिश्यापूपादिभिः पूजाकार्येत्युक्तं भवति ।

प्रेतीभूतमित्युक्तेः सपिंडीकरणात् प्रागेव संचयः कार्य इति सिद्धम् । २५

प्रभूतबलिः । दशमेऽन्हि प्रेतस्य महती क्षुद्भवति । तन्निवृत्तिः प्रभूतेन बलिना भवति ।

स च दशमदिनपिंडोदकदानात्पूर्वं कार्यः

“तिलोदके च पिंडे च प्रदत्ते दशमेऽहनि । अश्मनोत्थापनं कृत्वा ततः प्रेतं विसर्जयेत्” ॥ इति

पिंडदानादनन्तरमेव अश्मोत्थापनस्मरणात् । दशमे क्षुत्परिक्षयः “दशमेन तु पिंडेन वृत्तिः

प्रेतस्य जायते” इति स्मरणात् । भुक्तभोजनवचुष्यस्य बलिदानायोगादित्याहुः । अखंडादर्शे तु— ३०

“अत्रोदकपिंडबलिप्रदानात्प्रेतवृत्तिः । प्रेतवृत्त्या संततिवृद्धिर्भवति” इति । प्रत्यहं यत्पिंडोदकदानं

दशमाहे यच्च प्रभूतबलिदानं ताभ्यां प्रेतस्य वृत्तिर्भवतीत्यर्थः । एवं च प्रभूतबलिदानेनापि प्रेतस्य

वृत्तेः पिंडोदकदानप्रभूतबलिदानयोः पौर्वापर्ये अनियम इति केचित् ।

यत्तु कैश्चिदुच्यते—“मंदारगुरुवारेषु दशाहे समुपस्थिते । बलिं प्रभूतं दद्याच्चेत्कुलक्षयकरं भवेत्” ॥ इति तन्मातापितृव्यतिरिक्तविषयमित्येके । पितृमेधसारे विशेषः—“नात्र वारादिदोष-चिंताबलेः शुभिवृत्त्यर्थत्वादशाह एव तद्भावात्तत्पूर्वं प्रभूतबलिप्रदानस्य निरर्थकत्वात्पिंडोदकदानाद-दोषात् स्मृतिघ्ननिषेधाच्च सर्वेषां दशाहे एव प्रभूतबलिर्देयः । प्रेतस्य शुभिवृत्त्या कुलं वर्धते ।

५ अतः प्रत्यक्षविषये शुक्रादिवासरेऽपि पिण्डोदकदानवत् सर्वेषां दशाहे प्रभूतबलिर्देय एव । ‘वैधे कर्मणि तु प्राप्ते कालदोषं न चिंतयेत्’ इति वसिष्ठस्मरणात् ॥ इति । यत्तु कीलदापेऽभिहितम् “आरवारे च सौरे च गुरुवारे च भार्गवे । पाषाणस्थापनोत्थानं संचयश्च कुलक्षयः” ॥ इति तन्मातापितृव्यतिरिक्तविषयमिति । अतिक्रान्तोर्ध्वदेहिकविषयं च

“पाषाणस्थापने श्रेष्ठा मन्दार्कगुरुवासराः । उत्थापने न शौक्रीया मातापित्रोर्गुरोः शुभाः ॥

१० “परोक्षे सूक्ष्मतः पश्येत्प्रत्यक्षे न विचारयेत्” इति ॥ स्मरणात् ।

अन्तर्दशाहे दर्शादिसंभवे । यदा दशाहमध्ये दर्शापातः तदा दर्श एवोत्तरतंत्रं पिंडोदक-दानादिरूपं समापयेत् । तदाह ऋष्यशृंगः—

“आशौचमंतरा दर्शो यदि स्यात्सर्ववर्णिनः । समाप्तिं प्रेततंत्रस्य कुर्युरित्याह गौतमः” ॥

पैठीनसिरपि—

१५ “आद्यंतावेव कर्तव्याः प्रेतपिंडोदकक्रियाः । द्विरंदवे तु कुर्वाणः पुनःशावं समश्नुते” ॥ इति ।

भविष्यत्पुराणे च—

“प्रवृत्ताशौचतंत्रस्तु यदि दर्शं प्रपद्यते । समाप्य चोदकं पिंडं स्नानमात्रं समाचरेत्” ॥ इति । एतत्सूर्यसंक्रांतेरप्युपलक्षणम् । तथा च श्रीधरीये—

“त्यजेत्संक्रमणं भानोः मध्यतः प्रेतकार्यतः । नो चेतत्कर्तृनाशः स्यादर्शश्चेत्तत्कुलक्षयः” ॥ इति ।

२० स्मृतिरत्ने—

“दर्शः संक्रमणं वापि दशाहांतर्थादा भवेत् । तावदेवोत्तरं तंत्रं समाप्यमिति निश्चयः” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे च—

“दशाहमध्ये दर्शश्चेत्तत्र सर्वं समापयेत् । द्विचंद्रदर्शने दोषो महानित्यवधार्यताम् ॥

“चंद्रद्वये यदाऽज्ञानात्प्रेतकर्म समापयेत् । नोपतिष्ठति तत्सर्वं दातुः कुलविनाशनम्” ॥ इति ।

२५ अन्यत्रापि—

“चंद्रद्वये बलिर्नैव देयः प्रेतस्य वृत्तये । यदि दद्यात् द्विचंद्रे तत् दातुः कुलविनाशनम्” ॥ इति ।

पद्धतौ—

“अंतर्दशाहे संप्राप्ते दर्शं पिंडान्समापयेत् । अस्थिसंचयनं तत्र दर्शात्पूर्वं विधीयते” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे च—

३० “अथोर्ध्वं कृष्णपक्षस्य दशम्यां संस्थिते सति । तदानीं संचयेदश्रां न चतुर्थेऽह्नि संचयः ॥

“त्रयोदशी कलामात्रतिथौ यस्य मृतिर्भवेत् । नातिक्रम्य सिनीवालीं कुर्यात्पिंडोदकक्रियाम्” ॥

चतुर्दशीयुक्तमावास्यादिने चतुर्दशीसमयमरणेऽपि अमावास्यायां दाहसंचयोदकादि समापनीयम् ।

तदुक्तम्—

“चतुर्दशीक्षणमृतिस्तदा दर्शो भवेद्यदि । पिण्डोदकं दशाहान्नं तस्मिन्नेव दिने क्षिपेत्” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे च—

“उदयं याति चादित्ये पूर्वमिश्रां चतुर्दशीम् । संप्राप्य संस्थिते विप्रे कृष्णपक्षस्य तं दहेत् ॥
“अमायां वा मृतिर्यस्य तस्यां संस्कारकल्पना । तस्यां संचयनं कुर्यात् शेषं चैव यथायथम्” ॥ इति ।

स्मृतिरत्ने—

“चतुर्दशीमृतः कश्चित्ततः प्राप्नोत्यमातिथिः । पिंडोदकं दशाहांतं तस्मिन्नेवाहनि क्षिपेत् ” ॥ इति । ५

स्मृत्यन्तरेऽपि—

“इंद्रक्षये यदा मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा । उदकं पिंडदानं च तदा सर्वं समापयेत् ” ॥ इति ।

प्रचेताः—

“प्रथमेऽहन्यमावास्या तत्रोदकबलिं हरेत् । अथवा तत्प्रभृत्येव जलं पिंडांस्तु दापयेत् ” ॥ इति ।
दर्शमरणे तदुत्तरादिनमारभ्य वा पिंडोदकदानं कुर्यात् । दर्शसंक्रमयोर्दुष्टत्वादिति व्याख्यातारः । १०
अन्ये तु अंतर्दशाहे यदा कदाचिदर्शसंभवे उदकादि समापनीयं तदुत्तरादिनमारभ्य वा कार्य-
मिति व्याचक्षते । तदयुक्तम् । ‘प्रथमेऽहन्यमावास्या’ इति प्रकृतत्वादमावास्यामरणविषयस्यैव
विकल्पस्य प्रतीतिः ‘प्रथमेऽह्नंजलित्रयम्’ इत्यादिना प्रथमदिनप्रभृति अविशेषेण उदकदानादि-
विधानाद्दर्शदिः पूर्वमिवारभ्य दर्शदौ समापनीयम् । तत्रालस्यादिनारब्धे सति दर्शसंक्रान्त्यनंतर-
दिनमारभ्य दिनत्रयेणैकेन वा दिनेन समापनीयमित्याहुः । दर्शसंक्रमयोस्तु संचयनं कृत्वैव १५
समापनीयम् । तथा कात्यायनः—

“प्रथमेऽह्नि तृतीये वा यदा दर्शो भवेत्तदा । अस्थिसंचयनं कुर्यादिति विष्णुस्मृतौ स्मृतम्” ॥ इति ।
दशाहमध्ये संक्रांतिरित्यादिभिः संक्रमणस्यापि त्याज्यत्वस्मरणेन दर्शतुल्ययोगक्षेमत्वात्
संक्रमणेऽप्येवमेव ग्राह्यम् । दशाहमध्ये तयोर्यौगपद्ये दर्शं समापयेत् “प्राप्ते दर्शं संक्रमे च दर्श
एव समापयेत् ” इति स्मरणात् । संग्रहेऽपि—

२०

“यदि संक्रमदर्शो तु दशाहाम्यन्तरे यदा । मातापित्रोर्विनाऽन्येषां दर्शेनैव समापयेत् ” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“अमाया च मृतिर्यस्य तद्विने दहनं भवेत् । चंद्रस्य दर्शनात्पूर्वं दर्शं पिंडान्समापयेत् ॥

“अमायां च मृतं देहं प्रथमायां दहेद्यदि । उदकं पिंडादानं च सदशाहं समापयेत् ” ॥ यत्तु—

“अमायां मरणं यस्य तस्य पिंडोदकक्रिया । आ दशाहात्प्रतिदिनं कारयेत्स्मृतिशासनात्” ॥ इति २५
तदपि प्रथमाहनाभिप्रायं अन्यथा पूर्वोक्तवचनविरोधापत्तेः । उशना अपि—

“द्विचंद्रदर्शने यावद्वलिपिंडक्रिया भवेत् । द्विचंद्रदर्शने दोषो महानित्यवधार्यताम् ” ॥ इति ।

अखंडादर्शे—

“अष्टमांशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चंद्रमाः । अमावास्याष्टमांशे च पुनः क्षीणो भवेदणुः ” ॥

तेन अमावास्याष्टमांशात्प्रागेव पिंडोदकापकर्षः कार्यः । अन्यथा द्विचंद्रत्वप्रसंगात् । दिनद्वयेऽ- ३०
प्यमावास्यासद्भावे मध्याह्नव्यापिन्यां तस्यां श्राद्धदिने वा अष्टमांशात्प्राकर्तव्यः । संक्रांतावपि
तत्समयात्पूर्वं मध्याह्ने वा समापनीयम् । अनार्थविषयेऽपि स्मृत्यन्तरे—

“चंद्रक्षये मृतोऽनाथो दग्धश्चेदुदकार्थिनः । संचयोदकदानानि तस्मिन्नह्नि समापयेत् ” ॥ इति ।

एतानि वचनानि मातापितृव्यातिरिक्तविषयाणि ।

दशाहमध्ये दर्शादिसंभवे मातापितृविषये—

“मातापितृविषये तु पितुर्मातुर्गुरोर्भृतौ । पिण्डं दद्यात् दशाहान्तं इतरेषां समापयेत् ” ॥

श्रीधरीयेऽपि—“द्विचन्द्रदर्शने दोषो मातापित्रोर्न विद्यते ” । श्लोकगौतमः—

“अंतर्दशाहे दर्शश्चेत्तत्र सर्वं समापयेत् । पित्रोस्तु यावदाशौचं दद्यात्पिण्डान् जलाञ्जलीन्” ॥ इति ।

५ यमोऽपि—

“अर्वागदशाहात्पित्रोस्तु कुहूर्यादि तदा भवेत् । द्विचन्द्रदोषो नास्त्यत्र कर्तव्या तु क्रिया सुतैः” ॥ इति ।

स्मृतिरत्ने—

“दशाहाम्यन्तरे पित्रोः सिनीवाली यदा भवेत् । अतीत्यैव च कर्तव्यं पुत्रेणान्येन नेष्यते ” ॥

बृहस्पतिः—

१० “अन्तर्दशाहे दर्शश्चेत्पितुर्मातुर्गुरोर्भृतौ । पिण्डं दद्यात् दशाहान्तमितरेषां समापयेत् ” ॥

श्रीधरीये—

“द्विचन्द्रदर्शने दोषो मातापित्रोर्न विद्यते । मध्ये पिण्डं समाप्तिश्चेत्कुलक्षयकरी भवेत् ” ॥

अन्यत्रापि—

“दशाहमध्ये संक्रांतिदर्शो वाऽथ भवेद्यदि । तोयं पिण्डं समाप्यैव तद्दिने नौरसेतैः ॥

१५ “बलिद्विचंद्रदृष्टश्चेद्धिनस्ति शवदाहकम् । चंद्रद्वयेऽपि कर्तव्या मातापित्रोर्बलिक्रिया ” ॥

वरदराजीये—“दर्शं प्रेतदिनेषु सत्यपि तथा दद्याद्दर्शाहं सुतः ” इति । स्मृत्यन्तरे—

“अंतर्दशाहे दर्शश्चेत्पिण्डनिर्वापणादिकम् । सपिण्डो वर्जयेत्पुत्रः कुर्यात्पिण्डोदकक्रियाम् ” ॥ इति

संग्रहे—

“अंतर्दशाहे दर्शश्चेच्छिष्टं पिण्डोदकादिकम् । मातापित्रोर्विनाऽन्येषां दर्श एव समापयेत् ” ॥

२० अन्यदपि—

“दशाहाम्यन्तरे दर्शः संक्रमो वा भवेद्यदि । मातापित्रोर्दशाहांतं यथाविधि समापयेत् ” ॥

विश्वामित्रो—“आशौचमध्ये विधुसंक्षयश्चेत् दद्युर्दशाहं तिलवारिपिण्डम् ।

“पुत्रीसुतो दत्तक औरसश्च शेषाः सुतास्तत्र समापयेयुः ” ॥ इति ।

मातापितृविषये विशेषो गालवेनोक्तः—

२५ “पित्रोराशौचमध्ये तु यदि दर्शः समापयेत् । तावदेवोत्तरं तत्रं पर्यवस्येऽयहात्परम् ” ॥ इति ।
पित्रोराशौचमध्ये तु त्रिरात्रात् परम् यदि दर्शः समापयेत् तदैवोत्तरं तत्रदर्शं समापयेत्
नार्वाक् दर्शापात इत्यर्थः । स्मृतिरत्ने कालादर्शोऽपि—

“दर्शो दशाहमध्ये स्यादूर्ध्वं तत्रं समापयेत् । त्रिरात्रादुत्तरं पित्रोर्भृताविति विनिश्चयः ” ॥ इति ।

तथा “दशाहमध्ये दर्शश्चेत्तत्र सर्वं समापयेत् । अस्थिसंचयनादूर्ध्वं पित्रोरपि समापयेत्” ॥ इति ।

३० अत्र चंद्रिकास्मृतिरत्नमाधवीयकालादर्शादिषु प्रौढनिबंधनेषु व्यवस्था कृता—मातापितृव्यति-
रिक्तविषये यदा कदा वा दर्शापाते ऊर्ध्वतंत्रं समापयेत् । मातापितृविषये तु त्रिरात्रादुत्तरं दर्शापाते
ऊर्ध्वतंत्रं समापयेत् “पित्रोस्तु यावदाशौचं दद्यात्पिण्डं जलाञ्जलीन्” इत्यादीनि दशाहसमापन-
प्रतिपादकवचनानि त्रिरात्रात् पूर्वं दर्शापाते वेदितव्यानि । अयहात्परमिति गालवादिभिर्विशेषि-
तत्वादिति । अत्र चंद्रिकादौ औरसादिसर्वपुत्रसाधारण्येन अविशेषेण व्यवस्थोक्ता । अन्यैस्तु

३५ पितृमेधसारकृदादिभिर्नवीनैर्व्यवस्थान्तरमुक्तम् । पर्यवस्येऽयहात्परमित्यादीनि मातापितृविषयेऽपि

त्रिरात्रादुत्तरं दर्शसंभवे समाप्तिप्रतिपादकानि गालवादिबचनानि दत्तौरसपुत्रिकापुत्रव्यतिरिक्त-
गौणपुत्रकर्तृकोदकसमाप्तिपराणि ।

“तोयं पिंडं समाप्येतत्तद्दिने नौरसेतरैः” “शेषाः स्तुः तास्तत्र समापयेयुः” इत्यादिभिस्त्रयहमध्ये दर्श-
संभवे तेषामपि पिंडोदकसमापने प्राप्ते “पर्यवस्येत् त्र्यहात्परम्” इत्यादीनि तद्विषयाण्येवावतिष्ठन्ते ।
एवं च “द्विचंद्रदर्शने दोषो मातापित्रोर्न विद्यते । मध्ये पिंडसमाप्तिश्चेत्कुलक्षयकरी भवेत् ॥ ५

“पित्रोस्तु यावदाशौचं दद्यात्पिंडं जलांजलीम्” ॥ इत्यादीनि त्रिरात्रादूर्वाग्विषयाणीति
संकोचोऽपि न कर्तव्यः । तेन दशाहमध्ये त्रिरात्रादूर्वागूर्ध्वं वा दर्शसंक्रमणसंभवे पुत्रव्यतिरिक्तस्य
कर्तुः ज्ञातीनां च दर्शसंक्रमणयोरेव समापनम् । दत्तौरसपुत्रिकापुत्रव्यतिरिक्तपुत्राणां त्रिरात्रादूर्ध्वं
दर्शादौ सति समापनं त्रिरात्रादूर्वाक् दर्शापाते तु तेषां न समापनम् । दत्तौरसपुत्रिकापुत्राणां
तु यदाकदाचिद्दर्शादौ सति न तत्र समापनं किंतु दशाह एव पिंडोदकादिसमापनमिति यथो- १०
चितमिह द्रष्टव्यम् । ज्ञातीनां पुत्रेण सह समापनमुक्तं रत्नावल्याम्—

“संक्रातिर्वाऽथ दर्शो वा मध्ये चेत् ज्ञातिभिः सुतः । उदकं पिंडदानं च दशाहान्ते समापयेत्” ॥ इति ।
तथाऽन्यदपि—

“कर्ता यदा समाप्नोति तदानीं तु सपिंडकाः । ज्ञातिभिस्तत्समाप्तिश्चेन्मध्ये तेषां कुलक्षयः” ॥ इति ।
सपिंडकाः समाप्नुयुरिति शेषः । १५

पुत्रव्यतिरिक्तकर्तृविषये ज्ञातीनां समापनमाह शंखः—“प्रथमेऽहन्यनारभ्य कर्त्रा सह तिलोदकम् ।

“यदि पश्चाच्च कर्तारस्तेऽन्तर्दशे तु संक्रमे । कुर्युर्नान्तर्गते दर्शे संक्रमे दशमेऽहनि” ॥ इति ।
अयमर्थः—प्रथमेऽहन्यनारभ्य कुर्वता कर्त्रा सह यदा ज्ञातयः क्रियारंभं न कुर्वन्ति यदा च कर्तारः
दर्शदिर्ध्वं क्रियारंभं कुर्वन्ति तत्र उभयत्र ज्ञातयः अंतर्दशाहे दर्शे संक्रमे वा समापनं कुर्युः ।
दर्शादूर्ध्वमारभ्य कुर्वता कर्त्रा सह न दशमेऽहनीति स्मृत्यन्तरे— २०

“प्रथमेऽहनि कर्त्रा ये न कुर्वन्ति तिलोदकम् । तैर्ज्ञातिभिश्च दर्शादौ समाप्येतौरसेतरैः” ॥
औरसेतरैः कर्तृभिः सह ज्ञातीनां समापनमित्यर्थः । संग्रहेऽपि—

“दशाहमध्ये संक्रांतौ प्रेतकर्म समापनम् । सहैव ज्ञातिभिः कुर्यादौरसाऽन्यैश्च कर्तृभिः” ॥ इति ।
प्रेतकर्मसमापनमित्युक्तत्वादेकोत्तरवृद्धिश्राद्धं नवश्राद्धमपि दर्शे अपकृष्य समापनीयमिति केचित् ।

अन्ये तु “तोयं पिंडं समाप्येतत्तद्दिने नौरसेतरैः” इत्यादिभिः पिंडोदकयोरेवापकर्षणस्मरणा- २५
न्नास्ति नवश्राद्धापकर्षः । तत्तद्दिनेष्वेकादशे वा दिने नवश्राद्धानि कर्तव्यानि । एकोत्तरवृद्धि-
श्राद्धानि तु अपकृष्य समापनीयानि ।

“श्राद्धमेकोत्तरं वृद्ध्या कर्तव्यं तु दिने दिने । अवसानाद्वलीनां तु द्विगुणं प्रत्यहं परे” ॥ इति
पिंडोदकोपक्रममावसानविशिष्टत्वात्संनियोगाशिष्टन्यायाच्चेत्याहुः । शिष्टाचारादिह व्यवस्था । किंच

“प्रथमेऽहनि कर्त्रा ये न कुर्वन्ति तिलोदकम् । तैर्ज्ञातिभिश्च दर्शादौ समाप्येतौरसेतरैः” ॥ इति ३०
कर्तृभिः सह ज्ञातीनां समापनमित्यर्थश्च ज्ञायते ।

पाषाणोत्थापनम् । पाषाणोत्थापनं दशाह एव कुर्यादित्याह शंखः—

“आदौ मध्ये तथाऽन्ते य उदकादि समापयेत् । स एव दशमे कुर्यात्पाषाणोत्थापनादिकम्” ॥

षट्त्रिंशन्मते—

“प्रेतकार्याणि सर्वाणि मध्ये यदि समापयेत् । तथापि दशमेऽन्त्येव पाषाणोत्थापनं स्मृतम्” ॥ इति । ३५

प्रचेताः—

“उदकं पिंडदानं च प्रतिकुप्य समापयेत् । उत्थापनं दशाहे स्यादन्यथा कुलनाशनम्” ॥ इति ।
उत्थापनं प्रभूतबलेरप्युपलक्षणम् । यदाह **संग्रहकारः—**

“दशाहमध्ये त्वथ दर्श आगते समापिते कर्माणि पारलौकिके ।

१० “उत्थापनं भूतबलिर्दशाहे मध्ये कृतं चेत्कुलनाशहेतुः” ॥ इति । **स्मृत्यन्तरे—**

“अंतर्दशाहे दर्शश्चेत्पिंडशेषं समापयेत् । उत्थापनं शांतिहोमं दशमेऽन्धि समाचरेत्” ॥ इति ।

जाबालिः—

“अंतर्दशाहे दर्शे वा संक्रमे वा समाप्य तु । वपनं शांतिहोमं च दशाहांते समाचरेत् ॥

“तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दशाहे वपनं विदुः” इति । ज्ञातीनामपि वपनमाह **प्रचेताः—**

१० “ज्ञातयः सप्तमादर्वाकनिष्ठा दशमेऽहनि । वापयेयुश्च ते सर्वे कर्तुभिः सह सर्वदा” ॥ इति ।
शांतिहोमकाले वपनमाहापस्तंबः ()—“नापितकर्माणि च कारयंत एष प्रथमोऽलंकारः” इति ।
अंतर्दशाहे समापने केशवपनपूर्वमेवोदकं देयम् । “प्रदयुर्ज्ञातयः सर्वे क्षौरं कृत्वा तिलोदकम्” इति
स्मरणात् । “वपनं कृत्वा स्नात्वैकवस्त्रा जलांजलीन् दद्युः” इति **प्रचेतःस्मरणात्** ।

“अकृत्वा वपनं मूढः प्रेतकर्म प्रवर्तते । उदकं पिंडदानं च श्राद्धं चैव च निष्फलम्” ॥ इति

१५ **स्मरणाच्च** । एवं चांतर्दशाहसमापने ज्ञातीनां प्रथमदिने कंठादुपरि वपनाकरणे तर्पणात्पूर्वं कर्तव्य-
मेव । दशमदिनेऽपि शांतिहोमकाले शेषवपनं सर्वांगवपनं कार्यम् । बालादेः संस्कारादिप्रेतकृत्यं
बालाद्याशौचनिरूपणे सविस्तरं प्रतिपादितम् । **अन्तर्दशाहागतपुत्रविषये । पारस्करः—**

“पुत्रस्यासंनिधाने यः पिंडदाने प्रवर्तते । तत्संनिधौ प्रवृत्तोऽपि संत्याज्यः पिंडदस्ततः” ॥ इति ।

अत्र पिंडशब्दः नवश्राद्धैकोत्तरवृद्धिश्राद्धोपलक्षकः । तथा च **स्मृत्यन्तरेऽपि—**

२० “मुख्यकर्त्रागमेऽन्यस्तु प्रवृत्तोऽपि क्रियां त्यजेत् । ततस्तु कर्म कुर्वीत संस्कर्ता विमुजेत्ततः ॥

“पुनस्तिलोदकं पिंडं नम्रप्रच्छादनं तथा । नवश्राद्धप्रदानादि सर्वं कर्म समाचरेत्” ॥ इति ।

श्रीधरीये—

“दशाहकर्मण्यारब्धे संस्कारादौ कनीयसा । ज्येष्ठोऽथ त्वंतरागच्छेत्सोऽस्य शेषं समापयेत्” ॥ इति ।

कनिष्ठेन सोदरेण भिन्नोदरेण वा दाहादिप्रेतकृत्ये आरब्धे संचयात्पूर्वं परं वा आगतो ज्येष्ठः पुत्रः

२५ कनिष्ठकृतस्य प्रेतकृत्यस्य शेषं समापयेदित्यर्थः । तत्र संचयात्पूर्वमागतश्चेदुत्तकेशः संचयनमतीत-
कालोदकपिंडांश्च एकदा कृत्वा ततस्तात्कालिकपिंडोदकनवश्राद्धाद्येकोद्दिष्टांतं स्वकाले कृत्वा
द्वादशाहे सापिंड्यं च कुर्यात् । संचयात्परमागतश्चेदततः कालपिंडोदकमात्रमेकदा कृत्वा तत्काल-
पिंडोदकाद्येकोद्दिष्टांतं स्वस्वकाले कृत्वा श्रवणादिनमारभ्य दशाहाशौचमनुष्ठायानंतरमावृत्ताद्य-
मासिकादीन्युक्तकाले कृत्वा त्रिपक्षादौ सापिंड्यं कुर्यात् । न द्वादशाहे । तत्र तस्याशौचसंभवात् ।

३० तथा च **स्मृत्यन्तरे—**

“श्रुणोत्यनिर्दशं पुत्रः पित्रोस्तु मरणं यदि । मृताहात्प्रेतकार्यं स्यात्तस्य शुद्धिर्दशाहतः” ॥ इति ।

दशाहमध्ये संचयादूर्ध्वं यदि पितृमरणं शृणोति तद्विषयमिदं दशाहाशौचम् ।

“पित्रोर्मृतौ चेद्दूरस्थः श्रुत्वा पितृविपर्ययम् । पुत्रः शुध्येद्दशाहेन संचयात्प्राक्तु शेषतः” ॥ इति

स्मरणात् । अन्येन संस्कारे कृते संचयात्पूर्वमागतः पुत्रः पुनर्दहनादि सर्वं कृत्वा दशाहशेषेण

शुध्येत् । कनिष्ठेन कृते दाहे न पुनर्दाहः किं तु संचयादि सर्वं कृत्वा शेषेणैव शुध्येत् । तदुक्तं स्मृतिरत्ने—

“अन्येन यस्य संस्कारः कृतस्तस्यात्मजः पुनः । कुर्यादेव यथाशास्त्रमन्यथा किल्बिषी भवेत्” ॥ इति ।
देवलश्च—

“पुनर्दहनमारभ्य श्राद्धांतं पैतृमेधिकम् । कृत्वांते प्रेतरूपस्य सपिंडीकरणं चरेत्” ॥ इति । ५
अत्र पुनर्दाहे चिताग्निनाशे तदनुगतप्रायश्चित्तविधिनाग्निमुत्पाद्य पुनर्दहनाविधिनास्थ्याऽदि संस्कृत्य एकादशाहे एकोद्दिष्टं द्वादशाहे सपिंडीकरणं च कुर्यादित्यर्थः । स्मृत्यंतरे च—

“मंत्रवत्संस्कृतस्यापि ह्यसमाप्तोदकस्य तु । अस्थिसंचयनादर्वावपुनर्दाहो विधीयते ॥

“अस्थिसंचयनादूर्ध्वमसमाप्तोदकस्य तु । पुनर्दाहं विना तत्र पिंडदानोदकक्रिया” ॥ इति ।
अन्यत्रापि—

१०

“अस्थिसंचयनादर्वागागतो यदि पुत्रकः । ततस्तु कर्म कुर्वीत संस्कर्ता विमृजेत्तदा ॥

“विमृष्टो भोजयित्वांस्ते ब्राह्मणांश्च विशुध्यति” ॥ इति । कर्म पुनर्दहनादिकर्म । अंते संस्कर्तुः स्वाशौचांते विमृष्टः शुद्ध्यर्थं ब्राह्मणान्भोजयेदित्यर्थः । अथादन्येन संस्कारे संचयने च कृते संचयनात्परमागतेन पुत्रेण दाहादि न कार्यम् । अतीतपिंडोदकदानं नम्रप्रच्छादनादिकं अवशिष्टदिनप्रेतकृत्यं चेत्युक्तं भवति । अन्येन कृते दाहे संचयात्पूर्वमागतोऽपि पुत्रव्यतिरिक्त- १५ मुख्यकर्ता पुनर्दाहं न कुर्यात् । संचयनोदकाद्येव कुर्यात् ।

“पुनर्दाहक्रियाः सर्वा मातापित्रोर्विशेषतः । इतरेषां तु सर्वेषां पुनर्दाहस्तु नेष्यते” ॥ इति पराशरस्मरणात् ।

असपिण्डादिदाहकानां मुख्यकर्तृसमागमे विधिः । असपिण्डश्चेद्दाहकर्ता तस्य संचयनात्पूर्वं मुख्यकर्तृसमागमे सत्यनंतरमाशौचमुदकदानं च नास्ति । संचयनात्परं मुख्यकर्तृदर्शने प्रेतान्नभोजने २० च दशाहाशौचमुदकदानं च कार्यम् । पक्षिण्याशौचिनस्तु असपिण्डदाहे संचयात्पूर्वं मुख्यकर्तृदर्शने त्रिरात्रमाशौचम् । संचयनानंतरं तद्दर्शने दशरात्रमाशौचमुदकदानं चास्ति । समानोदकादिषु त्रिरात्राशौचिषु सपिण्डेषु वा दहनं कर्तृषु सत्सु संचयनात्पूर्वं परं वा मुख्यकर्तृदर्शने दशाहमाशौचमुदकदानं च भवति । अन्यत्सर्वं निवर्तते । अत्र संवादवचनानि । मनुः (५।१०१-१०२)—

“असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बंधुवत् । अनदन्नन्नमह्नैव न चेत्तास्मिन्गृहे वसन् ॥ २५

“यद्यन्नमत्यधवतः स दशाहेन शुध्यति” ॥ इति । शंखः—“त्रियहं येनिबंधूनामाशौचं दहनादिषु” आशौचमुदकस्याप्युपलक्षणम् । यावदाशौचमुदकमिति संस्कर्तुरुदकस्मरणात् । स्मृत्यंतरे च—

“अज्ञातिं च नरं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् । ज्ञातीनां दर्शनाच्छुद्धिः संचिते दशरात्रकम्” ॥ इति ।

मांडव्यः—

“शावे च सूतके चैव त्र्यहादुदकदायिनः । शवदाहं तु कुर्याच्चेद्दशाहांता भवेत् क्रिया” ॥ ३०

भरद्वाजः—

“यः समानोदकं प्रेतं वहेद्वाऽथ दहेत्तु वा । तस्याशौचं दशाहं स्यादन्येषां च त्र्यहं विदुः” ॥ अन्येषां योनिबंधूनामित्यर्थः ।

गृह्यपरिशिष्टे—

“असमोत्रः समोत्रो वा यदि स्त्री वा यदि पुमान् । प्रथमेऽहनि यः कर्ता स दशाहं समापयेत्” ॥ इति दशाहमध्ये मुख्यकर्तार्यागतेऽपि दौहित्रः समानोदकादिः सपिंडो वा संस्कर्त्ता दशाहमुदकमात्रं समापयेत् । पिंडादिकमन्यत् सर्वं विमृजेदित्यर्थः । अतः संस्कर्त्ता विमृजेत्तत इत्यनेनास्य न ५ विरोधः । तथा च पारस्करः—

“पुत्रो भ्राताऽथ शिष्यो वा अन्यो वा ब्राह्मणः सदा । प्रथमेऽहनि यः कर्ता कुर्यादिवाप्रदानतः ॥

“एतैरारब्धपिंडस्य यथागच्छंति वै सुताः । तेऽपि कुर्युस्तु पूर्वोक्तपिंडदानं जलं तथा ” ॥ इति ।

पुत्रः कनिष्ठपुत्रः । अन्यो वा सपिंडः समानोदकादिः । अपां प्रदानं अप्रदानम् । आ अप्रदानादाऽ-

प्रदानतः । अभिविधावाकारः । दशमदिने देयोदकदानपर्यंतमिति यावत् । पूर्वोक्तपिंडदानं संस्कर्त्ता

- १० पूर्वदत्तानां पिंडानां दानं तथा जलं तिलवारीति । एतदुक्तं भवति । कनिष्ठपुत्रभ्रात्रादिः संस्कर्त्ता स्वस्वाशौचपर्यंतं मुख्यकर्त्रागमेऽप्युदकदानमात्रं दद्यात् । अंतरासमागतो मुख्यकर्ता तु अतीतदिन-विहितपिंडोदकान्येकदा दत्त्वा तात्कालिकानि शेषाणि प्रेतकार्याणि च तत्काले कुर्यादिति । ननु “तेऽपि कुर्युस्तु पूर्वोक्तपिंडदानं जलं तथा ” इति पारस्करवचनस्य ‘ज्येष्ठोऽथ वांतरा गच्छेत् सोऽस्य शेषं समापयेत्’ इति श्रीधरीयवचनेन विरोध इति चेन्नैवम् । श्रीधरीयवचन-
१५ प्राप्तातीतपिंडोदकदाननिषेधस्य आर्थिकत्वेन दौर्बल्यांतेऽपि कुर्युरिति पिंडोदकदानस्य कंडोक्त-त्वेन प्राबल्यात् ।

“उत्तरीयशिलापात्रद्रव्यकर्तृविपर्यये । पूर्वदत्तांजलीन्पिंडान्पुनरित्याह गौतमः” ॥ इति कर्तृविपर्यये दत्तपिंडोदकानां पुनर्विधानाच्च । यत्तु शातातपः—

“अन्यगोत्रोऽप्यसंबन्धः प्रेतस्याग्निं ददाति यः । उदकं पिंडदानं च स दशाहं समापयेत्” ॥ इति ।

- २० तस्यार्थः—दशाहनिर्वर्तनीयं पंचसप्ततिसंख्याकं उदकं पिंडदशकं च मुख्यकर्त्रभावे स्वाशौचान्ते समापयेदिति । यद्वा प्रेतान्नभोजने सति दशाहेन उदकादि समापयेदिति । अत एव स्मृत्यन्तरम्—

“असपिंडो यदि दहेत् द्वितीये त्वस्थिसंचयः । एकोद्दिष्टं तृतीयेऽन्हि मरणानु विधीयते” ॥ इति । अस्थिसंचयग्रहणं तिलोदकादेरप्युपलक्षणम् । एतच्च प्रेतान्नभोजनरहितासपिंडविषयम्

“यः प्रमीतमलंकुर्याद्द्विहोदय दहेत् द्विजम् । स शुद्धचत्येककालेन कालशेषं बहिर्वसेत् ॥

- २५ “ग्रामे वसन् दिनाच्छुध्येत् त्र्यहात्येतद्गृहे वसन् । निर्हृत्य यो मृत्तान्नं च भुंक्ते स तु दशाहतः” ॥ इति स्मरणात्—“ग्रामे वसन् दिनाच्छुध्येत्” इत्येतद्ग्रहणानंतरं मुख्यकर्तृसमागमे सति संचयनादि-प्रेतक्रियाया अकरणे वेदितव्यम् । मुख्यकर्तृभावे प्रेतक्रियाया करणे तृतीयदिनविहितैकोद्दिष्टेन शुद्धिः । “एकोद्दिष्टां एव स्यात्संस्कर्तुः शुद्धता त्वघात्” इति बोधायनेन संस्कर्तुरैकोद्दिष्टा-तेनैव शुद्धिस्मरणात् । प्रेतान्नभोजनेन तु दशाहतः शुद्धिः क्रिया चेति ज्ञेयम् ।

- ३० दशमदिनागतमुख्यकर्तृविषयः । कनिष्ठादिना संस्कारादिनवदिनपर्यंतप्रेतकृत्ये कृते सति दशमदिनेवागते मुख्यकर्ता उत्तकेशो नवभिर्दिवसैर्देयांस्तिलोदकपिंडानेकदैव दत्त्वा प्रभूतबालं दत्त्वा तत्कालोदकं दशमपिंडं च दत्त्वा सर्वांगवपनं शेषवपनं वा कृत्वा शांतिहोमं परिसमापयेत् । ततः श्रवणदिनमारभ्य दशाहाशौचस्य सत्त्वेऽपि मरणदिनमारभ्य एकादशदिने आद्यश्राद्धं कृत्वा आशौचानंतरमुक्तकाले आवृत्ताद्यश्राद्धादीनि कृत्वा त्रिपक्षे सपिंडनं कुर्यात् ।

तथा च स्मृत्यन्तरम्—

“नवभिर्दिवसैर्दद्यान्नवपिंडान्समागतः । दशमं पिंडमुत्सृज्य रात्रिशेषेण शुध्यति” ॥ इति ।
दशमदिने समागतो मुख्यकर्त्ता नवभिर्दिवसैर्दद्यान्नवपिंडान् दत्वा दशमं च पिंडं दत्वा रात्रि-
शेषेण पुत्रव्यतिरिक्तकर्त्ता विशुध्यतीति । पुत्रोऽपि आशौचस्य सत्वेऽपि एकोद्दिष्टाधिकारी भव-
तीत्यर्थः । यदाह शंखः—

“आद्यश्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि । कर्तुंस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः” ॥ इति ।
रात्रिशेषेण शुध्यतीत्यन्यथा कैश्चिद्वाख्यातम् । रात्रिशेषेण शुद्धिस्मरणादिदं संचयात्प्रागागतज्येष्ठ-
पुत्रविषयं ‘संचयात्प्राक्तु शेषतः’ इति दशाहशेषेण तस्यैव शुद्धिस्मरणादिति । तदसाधु । संचया
त्प्रागागतज्येष्ठपुत्रविषयत्वरूपविशेषस्य तत्राप्रतीतिः । संचयात्पूर्वं परं वा दशमदिने आगतमुख्य-
कर्तृमात्रस्याविशेषेण पिंडोदकसमापनप्रतीतिः । ‘रात्रिशेषेण शुध्यतीति’ एतस्य च दशमदिना- १०
गतस्य मुख्यकर्तुः पुत्रव्यतिरिक्तस्य

“विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यर्निदशम् । यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्” ॥ इति
दशमदिनोत्तरकालमाशौचाभावेन मुख्यार्थत्वसंभवात्पुत्रस्य श्रवणादिदशाहाशौचसत्वेऽपि दशाह-
पिंडोदकसमापनेन एकोद्दिष्टार्थे शुद्धिप्रतिपादनपरत्वेनाप्युपपत्तेः । अतः सर्वोऽपि दशमदिनागतो
मुख्यकर्त्ता स्वोचितं प्रेतकर्म तस्मिन्नहनि कृत्वा मरणाद्येकादशदिने आद्यैकोद्दिष्टमाशौचापगमा- १५
नंतरं विहितकालेषु आवृत्ताद्यमासिकादीनि च कुर्यात् । ननु

“श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत् । पुत्रः शुध्येद्दशाहेन संचयात् प्राक् तु शेषतः” ॥
इत्यादिना संचयात्परं मृतिश्रवणे पुत्रस्य दशाहमाशौचविधानाद्यावदाशौचं पिंडोदकविधानाच्च
दशमदिनश्रवणे तदादिदशाहोदकदानप्रसंगः । ततश्च ‘नवभिर्दिवसैर्दद्यात्’ इति दशाहे पिंडसमा-
पनवचनं पुत्रव्यतिरिक्तमुख्यकर्तृविषयं वा अकृतास्थिसंचयनविषयं वा स्यात् २०

“सपिंडीकरणात्पूर्वमस्थिसंचयनं भवेत् । एकादशाहे मासांतं वाऽस्थिसंचयनं भवेत्” ॥
इत्यादिभिः सपिंडीकरणात्पूर्वमस्थिसंचयनस्य विहितत्वादिति चेन्न

“श्रुणोत्यनिर्देशं पुत्रः पित्रोस्तु मरणं यदि । मृताहातेप्रेतकार्यं स्यात्तस्य शुद्धिर्दशाहतः” ॥ इति वचनेन
अंतर्दशाहश्रवणे तदादिदशदिनाशौचस्य सत्त्वेऽपि मृतदिनादिदशाहत एव प्रेतकार्यसमापनस्य
कंठतः प्रतिपादनात् । अपवादभूतेन “यावदाशौचं प्रेतस्योदकम्” इति (१९।१३) विष्णु- २५
वचनस्य दशाहानंतरश्रवणादिविषयांतरसंभवादुत्सर्गस्य बाधनात् ।

एकादशेऽग्निह अपराह्णात्पूर्वमागतपुत्रविषये । पैठीनासिः—

“दशरात्रे व्यतीते तु पित्रोश्चेदौर्ध्वदेहिकम् । पुत्रः कुर्यात्तदाशौचं दशरात्रमिति स्मृतम्” ॥ इति ।
अत्र पितृमेघसारकृत—“कृते दशाहकृत्ये श्रुत्वैकादशाहे त्वागतः पुत्रः उत्तमः एकोद्दिष्टं कृत्वा
दशाहतिलोदकं दद्यात् । अकृते दशाहकृत्येऽनिर्देशाहे पित्रोर्मृतिश्रुतौ श्रुताहादिदशाहांतमुदकादि ३०
कृत्वा एकादशाहे एकोद्दिष्टं कृत्वा त्रिपक्षे सपिंड्यं कुर्यात्” इति । अकृते दशाहकृत्ये
दशदिनरात्रावागतोऽपि

“शुक्रवारेऽप्यतिक्रान्ते मातापित्रोस्तथैव च । संध्यारात्र्योस्तथा क्षौरं प्रेतकार्यं च नाचरेत्” ॥ इति ।

“दिवैव तर्पणं कुर्यान्नापराह्णे तु संचयः” इति द्वाहदिनव्यतिरिक्तदिने रात्रौ उदकदानादिनिषेधा-
त्तत्त उत्तरं दशाहकृत्यं परिसमाप्य एकादशाहे आद्यश्राद्धं कुर्यात् । ३५

अयमत्र पितृमेघसारकृतोऽभिमतः पैठीनसिवचनार्थनिष्कर्षः—अन्येन सपिंडादिना कृते दहनादिदशाहकृत्ये संचयात् प्रागेकादशाहे पितृमृतिं श्रुत्वा समागतः पुत्रः पुनर्दहनादि सर्वं तदा कृत्वा एकोद्दिष्टं च कृत्वा तदारभ्य दशरात्राशौचानुष्ठानमुदकं च कुर्यात् । संचयनात्परमेकादशाहे आगतः वृषोत्सर्जनपूर्वकाद्यैकोद्दिष्टं कृत्वा तदारभ्याशौचमुदकमात्रं च कुर्यात् ।

५ कनिष्ठेन तु दशाहकृत्ये कृते संचयात्पूर्वं परं वा आगतो ज्येष्ठपुत्रः

“प्रेतकृत्ये तु निर्वृत्ते पुत्र एकादशोऽहनि । आगते तद्दिने त्वाद्यं पिंडोदकसमापनात्” ॥ इति वचनेन वृषोत्सर्जनमेकोद्दिष्टं च कृत्वा तत् आरभ्य दशाहशौचानुष्ठानमुदकमात्रं च कुर्यान्न पिंडदानम् ।

“मुख्यकर्ता विदेशस्थः काले काले श्रुतो यदि । तिलवारि प्रकुर्वीत पिंडदानं विवर्जयेत्” ॥ इति स्मरणात् । काले एकोद्दिष्टकाले एकादशाह इति यावत् । अकाले एकादशाहानंतरकाल इत्यर्थः ।

१० अत्र सर्वत्र त्रिपक्षादौ सपिंडीकरणम् । अकृते दशाहकृत्ये आगतदिनमारभ्य दशाहकृत्यं परिसमाप्य एकादशाहे एकोद्दिष्टं त्रिपक्षादौ सापिंड्यं कुर्यादिति । अन्ये तु पैठीनसिवचनमन्यथा व्याचक्षते—दशरात्रे व्यतीते एकादशदिने पित्रोर्धृतिश्रवणे पुत्रः तदा तस्मिन्नेवाहनि और्ध्वदेहिकं वपनपूर्वकं परिसमाप्य एकोद्दिष्टं कृत्वा एकादशाहमारभ्याशौचमात्रमनुतिष्ठेन्न तिलोदकमिति । तन्मन्दं “कनीयसा कर्मसमापितं चेच्छ्राद्धात्पुरो ज्येष्ठसमागतश्चेत् ।

१५ “तस्मिन्दिने श्राद्धमेकं समाप्य पश्चाद्दशाहात् तिलोदकं च ॥

“कृतक्रियेऽपि पितरि दशाहं सूतकी भवेत् । दद्यात्तिलोदकं पुत्रः सपिंडीकरणं पुनः ॥

“मुख्यकर्ता विदेशस्थः काले काले श्रुतो यदि” इत्यादिभिः षट्त्रिंशन्मतादिवचनैरेकोद्दिष्टानंतरमप्युदकदानविधानात् ।

“कनिष्ठादिकृतसापिंड्यस्य ज्येष्ठेन पुनःकरणम् । यथेकोद्दिष्टान्तं पुत्रोऽन्यो वा

२० कुर्यात् विदेशस्थः पुत्रः श्रुत्वा वपनं कृत्वा दशाहमुदकमात्रं दद्यात् । सपिंडीकरणं चान्यकृतं कनिष्ठकृतं वा पुनः कुर्यात् । अत्र गार्ग्यः—

“कृतक्रियेऽपि पितरि दशाहं सूतकी भवेत् । दद्यात् तिलोदकं पुत्रः सपिंडीकरणं पुनः” ॥

वृद्धशातातपः—

“अग्रजो वाऽनुजो वाऽपि पित्रोरवगतो मृतिम् । वापयित्वाऽथ केशादीन्सचैलमवगाहयेत् ॥

२५ “आ दशाहं ब्रह्मचारी दत्वा चैव तिलोदकम् । सपिंडीकरणं कुर्यादन्येन च कृतं यदि” ॥ इति ।

अग्रजस्तिलोदकं दशाहं दत्वा अन्यकृतमपि सपिंडीकरणमेकादशाहे पुनः कुर्यात् । अनुजस्तु दशाहं तिलोदकमात्रं दद्यादित्यर्थः । माधवीये—

“देशांतरे स्थितः पुत्रः श्रुत्वा पितृविपर्ययम् । कृत्वा तु वपनं दत्वा दशाहांतं तिलोदकम् ॥

“सपिंडीकरणश्राद्धं कुर्यादेकादशोऽहनि” ॥ इति । एकोद्दिष्टस्य पूर्वमन्येन कृतत्वादेका-

३० दशाहे पुनस्तस्य विधानाभावात्तत्र सपिंडीकरणमेव कुर्यात् । न पुनः षोडशश्राद्धानीत्यर्थः ।

एतच्च एकादशाहे सपिंडनं पुनःकरणविषयम् । अन्यथा त्रिपक्षादावेव कुर्यात् । षट्त्रिंशन्मते—

“आगतो ज्येष्ठपुत्रस्तु प्रेतकृत्ये समापिते । एकादशोऽह्नि सापिंड्यमुक्तकालव्यतिक्रमे” ॥ इति

प्रेतकृत्ये सपिंडीकरणांतकृत्य इत्यर्थः । चंद्रिकायाम्—

“ज्येष्ठेन वा कनिष्ठेन सपिंडीकरणे कृते । देशांतरगतानां तु पुत्राणां हि कथं भवेत् ॥

३५ “श्रुत्वा तु वपनं कृत्वा दशाहांतं तिलोदकम् । ततः सपिंडीकरणं कुर्यादेकादशोऽहनि ।

“द्वादशाहेन कर्तव्यमिति शातातपोऽब्रवीत् ” । सर्वज्येष्ठः पुनः कुर्यादित्यर्थः । शातातपः—

“श्रवणाहे न कुर्वीत भोजनं मैथुनं तथा । दशाहांतेऽनुजः कुर्यात्पार्वणश्राद्धमादरात् ॥

“ज्येष्ठः सपिंडीकरणं पुनः कुर्यात् कृतं यदा ” ॥ इति । अन्येन कृते एकोद्दिष्टातकृत्ये अनंतर-
मागतोऽनुजः दशाहमुदकं दत्वा दशाहांते एकादशाहे अग्रजासंनिधाने पार्वणं सपिंडीकरणं
कुर्यात् । तत्कृतमपि सापिंड्यमग्रजः पुनः कुर्यादित्यर्थः । स्मृत्यंतरे— ५

“कृते श्राद्धे ज्येष्ठपुत्र आगच्छेत्तु कथं भवेत् । तिलोदकं तु निर्वर्त्य त्रिपक्षे तु सपिंडनम् ॥

“कनिष्ठेनैव विधिवत् सपिंडीकरणे कृते । ज्येष्ठेनापि च कर्तव्यं सपिंडीकरणं पुनः ॥

“विभक्तो वाऽविभक्तो वा मातापित्रोः सपिंडनम् । कथंचिदनुजः कुर्याद्भूयः कुर्यात्तदग्रजः” ॥ इति ।
ज्ञात्यादिना सापिण्ड्यान्ते कृते ज्येष्ठासंनिधाने सर्वे विभक्ताः पुत्राः एकादशाहे सापिंड्यं पुनः
कुर्युः । पश्चादागतो ज्येष्ठोऽपि पुनः कुर्यात् इत्याह बृहस्पतिः— १०

“सपिंडीकरणं पित्रोः पितृयज्ञविधानतः । पुत्राः सर्वे पृथक्कुर्युर्यदा ज्येष्ठो न कारयेत् ।

“अग्रजेन कृतं कर्म नानुजेन पुनः कृति ” इति । सर्वे ज्येष्ठसंनिधाने विभक्ता अपि पृथक् न
कुर्युः । ज्येष्ठ एक एव कनिष्ठानुमत्या संपृक्तद्रव्येण सापिंड्यं पुनः कुर्यात्

“नवश्राद्धं सपिंडत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि ” ॥ इति

स्मरणात् । अविभक्तविषये तु अन्यकृते सपिंडीकरणे सर्वज्येष्ठासंनिधाने विद्यमानेषु ज्येष्ठ १५
एव पुनः कुर्यान्न सर्वे । ज्येष्ठोऽपि श्रुत्वा पुनः कुर्यात्

“ज्येष्ठे संनिहिते वार्ते वर्तमाने क्रियांतरे । पित्रोः पुत्रेण कर्तव्यं द्वितीयेनानुजेन वा ॥

“सर्वैरनुमतिं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् । द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥

“ज्येष्ठः सपिंडीकरणं पुनः कुर्यात्कृतं यदा ” ॥ इत्यादिस्मरणात् ।

वत्सरान्ते मातापितृमृतिश्रवणम् । स्मृत्यंतरम्— २०

“पितरि प्रोषिते प्रेते पुत्रः कुर्यात्क्रियादिकम् । संवत्सरेऽप्यतीतेऽपि दशरात्रं यथाविधि ” ॥ इति ।

पुराणे—

“पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः । श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत्” ॥ इति ।

विज्ञानेश्वरीये च (पृ. १७९ पं. १२-१३)—

“महागुरुनिपाते तु आर्द्रवस्त्रोपवासिना । अतीतेऽब्देऽपि कर्तव्यं प्रेतकार्यं दशाहतः ” ॥ इति । २५

स्मृत्यर्थसारे च—“मातापितृमरणे दूरदेशेऽपि वत्सरादूर्ध्वमपि पुत्रः श्रुत्वा श्रवणादिनादि स्वजात्युक्त-
दशाहाद्याशौचं कुर्यात् । अतीतवत्सरप्रेतस्य प्रथमवत्सरविहितसोदकुंभानुमासिककेशधारणादीनां
द्वितीयवत्सरे कर्तव्यताविधानादर्शान्तात् न कार्याणि । मृतमासे मृततिथौ वाऽऽब्दिकश्राद्धमेव ।
मृतमासाद्यज्ञाने तत्तत्काले कार्यम् । अनतीतवत्सरप्रेतकृत्ये त्वाब्दिकपर्यंतं स्वे स्वे काले शिष्टानि
ऊर्ध्वभावीनि सोदकुंभानुमासिकानि कृत्वा मृतमासतिथावाब्दिकं कुर्यात् । ३०

“अस्थनापलाशवृत्तैर्वा दग्ध्वा तु विधिपूर्वकम् । एकादशे द्वादशे वा मासिकानि सपिंडनम् ॥

“कृत्वा तु पुनरावृत्त्या मासिकानि तु तद्दिने । यावदाब्दिकपर्यंतमिति शातातपोऽब्रवीत् ” ॥ इति ।

शतकेऽपि—

“दशरात्रं सदा पित्रोः परोक्षमरणश्रुतौ । त्र्यहं मातृसपत्न्यास्तु दशाहं वत्सरादधः ॥

“कृतौर्ध्वदेहिकेऽत्यब्दे दिनं तस्याख्यहं तयोः ” ॥ इति । ३५

शतककृतैवैतत् व्याख्यातम्—वत्सरमध्ये तत्परं वा मातापित्रोरसंनिधानमरणे सर्वेषामपि पुत्राणां दशाहमाशौचम् । सपत्नीमातुस्तु असमक्षमृतौ श्रुतायां वर्षात्परं त्र्यहमेव । तत्पूर्वं तु दशाहम् । अत्र विशेषः । ज्येष्ठेन कृते और्ध्वदेहिके अब्दे चातिक्रांते तस्याः सपत्नीमातुः परोक्षमरणश्रवणे दिनम् । तयोर्मातापित्रोस्तच्छ्रुतौ कनिष्ठस्य त्र्यहम् ।

- ५ “पितरि प्रोषिते प्रेते पुत्रो देशांतरं गतः । कृतक्रिये त्रिरात्रं स्याद्दशाहमकृतक्रिये ” ॥ इति वत्सरा-
दूर्ध्वश्रवणे कृतक्रिये त्रिरात्रविधिः कनिष्ठविषय एव । ज्येष्ठस्य तु
“कृतक्रियेऽपि पितरि दशाहं सूतकी भवेत् । दद्यात्तिलोदकं पिंडं सपिंडीकरणं पुनः ” ॥ इति
दशाहविधानात् कृतस्यापि सपिंडीकरणस्य पुनः करणविधानसामर्थ्याज्ज्येष्ठविषयत्वमस्यावगम्यते ।
तथा च पैठीनासिः—

- १० “प्रोषितभ्रातृमरणे दत्तपिंडोदकक्रिये । त्रिरात्रं सूतकं तत्र दशाहं पुत्रभार्ययोः ” ॥ इति ।
कृतक्रियेऽपि पितरि भर्तारि च ज्येष्ठपुत्रभार्ययोर्दशाहमित्यर्थः । एवं च वत्सरादूर्ध्वं पितृमृतिश्रवणे
ज्येष्ठपुत्रः दशाहमाशौचमुदकं चानुष्ठाय कृतमपि सपिंडीकरणं पुनः कुर्यात् । कनिष्ठपुत्रस्तु
कृतक्रिये त्रिरात्रमाशौचं उदकमात्रं च कुर्यादिति ।

- अत्र केचिदाहुः—“संवत्सरे व्यतीतेऽपि दशरात्रं यथाविधि” इत्यादीनि वत्सरादूर्ध्वं श्रवणे दशाह-
१५ प्रतिपादकवचनानि अकृतक्रियपितृविषयाणि । ‘कृतक्रिये त्रिरात्रं स्यात्’ इति वचनं वत्सरादूर्ध्वं
पितृमरणश्रवणे कृतक्रिये पितरि ज्येष्ठादीनां सर्वेषामपि पुत्राणामविशेषेण त्रिरात्राशौचोदकदान-
प्रतिपादनपरम् । “कृतक्रियेऽपि पितरि दशाहं सूतकी भवेत् । अग्रजो वाऽमुजो वाऽपि” इत्यादीनि
कृतक्रियविषये दशाहाशौचप्रतिपादकानि वत्सरात्पूर्वं पितृमरणश्रवणविषयाणि ।

- यच्चोक्तम्—“सपिंडीकरणं पुनः” इति पुनःकरणविधानसामर्थ्येन कृतक्रियेऽपि पितरीति
२० दशाहाशौचज्येष्ठपुत्रविषयत्वमवगम्यत इति तदपि न । अन्येन कृतक्रियपितृविषये पुत्रमात्रस्य पुनः-
सपिंडीकरणविधानोपपत्तेः । सामर्थ्याभावेन ज्येष्ठैकविषयत्वाप्रतीतिः । एवं च वत्सरादूर्ध्वं कृतक्रिय-
पितृमरणश्रवणे ज्येष्ठपुत्रोऽपि त्रिरात्राशौचमुदकं चानुष्ठाय चतुर्थदिने सापिंड्यं कुर्यात् । वत्सरात्
पूर्वं मृतिश्रवणे सर्वेऽपि पुत्रा दशाहाशौचमुदकं च कुर्युः । ज्येष्ठपुत्रस्तु कृतमपि सापिंड्यं एका-
दशाहे पुनः कुर्यादिति यथोचितमत्र दृष्टव्यम् ।

- २५ सपत्नीमातृविषये । सपत्नीमातुर्वर्षात्पूर्वं मृतिश्रवणे सर्वेऽपि पुत्रा दशाहमाशौचमुदकं
च कुर्युः । वर्षात्परं मृतिश्रवणे त्र्यहम् । तथा वरदराजीये—

“प्रागब्दाज्जननीसमं दिशतु तत्प्रेतोदकादिक्रियाम् ।

“तस्माच्चूपरि गौणमातृमरणं श्रुत्वा सदाधं त्र्यहम्” ॥ इति । विज्ञानेश्वरीये च (पृ. १७९ पं. १५-१६)—

“पितृपत्न्यामतातायां मातृवच्च द्विजोत्तमः । संवत्सरेऽप्यतीतेऽपि त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ” ॥ इति ।

- ३० सपत्नीमातुरौरसपुत्रासंनिधाने भिन्नोदरेण कृते दाहादौ तदागतौरसपुत्रः स्वकनिष्ठकृते याव-
दत्तावदेव कुर्यात् ।

“वह्नीनामेकपत्नीनामेका चेतुत्रिणी भवेत् । सर्वास्तास्तेन पुत्रेण पुत्रिणीर्मनुरब्रवीत् ” ॥ इति
तेन तस्याः पुत्रित्वाभिधानात् । संग्रहेऽपि—

“भिन्नोदरकृते कृत्ये दाहाद्ये त्वागतौरसः । स्वकनिष्ठकृते यावत्तावदेवाचरेत्तदा” ॥ इति ।

- ५ सपिंडीकरणं भिन्नोदरज्येष्ठकृतमपि कनिष्ठोऽप्यौरसः पुनः कुर्यात् स्वकनिष्ठकृते यावदित्युक्तत्वात् ।

प्रोषितभ्रातृविषये ।

भ्रातृविषये पैठीनसिः—

“प्रोषितभ्रातृमरणे दत्तपिण्डोदकक्रिये । त्रिरात्रं सूतकं तत्र दशाहं पुत्रभार्ययोः” ॥ इति ।
अत्र विशेषमाह गालवः—

“कृतोदके तु षण्मासात्पक्षिण्याशौचमिष्यते । अर्घं^१ च त्रिदिनं ग्राह्यं अकृतोदे दशाहिकम्” ॥ इति । ५
षण्मासादूर्ध्वं भ्रातुरर्घं पक्षिणीत्यर्थः । तथा च स्मृत्यन्तरे—

“भ्रातुर्देशान्तरमृतौ षण्मासाद्वत्सरादघः । दशरात्रं त्रिरात्रं स्याद्दशाहं दाहकस्य तु” ॥ इति ।
दाहकस्य भ्रातुः । अन्यत्रापि—

“देशान्तरमृतिर्यत्र त्वनुजाग्रजयोः श्रुता । षण्मासाद्वत्सरादर्वाद्दशाहं त्र्यहमाचरेत्” ॥ इति ।
ज्ञात्यादिविषये ‘मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्’ इत्युक्तमाशौचमुदकं च ज्ञेयम् । १०

अपुत्रसपिण्डमरणविषये । अपुत्रस्य सपिण्डस्याकृतसंस्कारस्यैकादशाहात्परं मरण-
श्रवणे पुनर्दहनं कृत्वा यावत् स्वाशौचं उदकं च पिण्डं च दत्वा आशौचान्तेएकोद्दिष्टं परदिने
सापिण्ड्यं च कुर्यात् । अब्दात्परं श्रवणे एकाहेन पुनर्दहनपिण्डोदकानि समाप्य द्वितीये श्राद्धं
तृतीये सपिण्डनं च कुर्यात्
“अतीतिऽब्दे तु संस्कारे एकाहात्पिण्डमर्पयेत् । श्राद्धं दद्यात् द्वितीयेऽन्हि तृतीयेऽन्हि सपिण्डनम्” ॥ इति १५
स्मरणात्—

कृतप्रेतकृत्यविषये पिण्डनिषेधः । कृतप्रेतकृत्यस्य सपिण्डस्य मरणश्रवणे उदकमात्रं
दद्यात् । न तु पिण्डान् । एकोद्दिष्टसापिण्ड्ये च कुर्यात् । कृतैकोद्दिष्टस्य सपिण्डादेर्मरणश्रवणे उदकं
सापिण्ड्यं च कुर्यात् । अन्येन कृतमपि सपिण्डीकरणं सपिण्डदौहित्रादिः पुनः कुर्यात् । कनिष्ठादिना
निर्वृत्तपिण्डोदकादिदशाहकृत्यस्य पित्रादेरेकादशदिनादौ मरणश्रवणे ज्येष्ठादिर्मुख्यकर्ता यावत्स्वा- २०
शौचमुदकमात्रं दद्यात् । न तु कनिष्ठादिकृतपिण्डादिदशाहकृत्यं पुनः कुर्यात्
“मुख्यकर्ता विदेशस्थः काले काले श्रुतौ यदि । तिलवारि प्रकुर्वीत पिण्डदानं विसर्जयेत् ॥
“कृतक्रियेऽपि पितरि दशाहं सूतकी भवेत् । दद्यात्तिलोदकं पुत्रः सपिण्डीकरणं पुनः” ॥ इत्यादि-
पूर्वोदाहृतवचनैरुदकमात्रस्य पुनर्विधानात् पिण्डदानस्य च निषेधात् ।
ननु “मुख्यकर्ता विदेशस्थो मातापित्रोर्मृतौ यदि । संवत्सरे व्यतीतेऽपि कुर्यात्प्रेतक्रियां तदा” ॥ इति २५
वचनात् दाहादि सर्वं मुख्यकर्त्रा कर्तव्यमिति चेन्न । अन्यकृतस्यात्र पुनः कर्तव्यत्वाप्रतीतिः ।
चिरकालातिक्रमेऽपि पित्रोर्देशाहोदकक्रियाविधिपरत्वात्

“देशान्तरस्थौ पितरौ मृतौ चेदन्योऽपि कुर्यादखिलं च पित्र्यम् ।

“दाहं विना तानि पुनस्तु पित्रोज्येष्ठस्तु कुर्यादनुजैः सपिण्डम्” इति वचनात्दाह-
व्यतिरिक्तं सर्वं पुनः करणीयमिति चेन्न । अस्यातिक्रांतविषयत्वाप्रतीतेर्दशाहमध्यागतमुख्यकर्तृ- ३०
विषयत्वेन चरितार्थत्वात् । तथा च स्मृत्यन्तरे—

“मुख्यकर्त्रागमेऽन्यस्तु प्रवृत्तोऽपि क्रियां त्यजेत् । ततस्तु कर्म कुर्वीत संस्कर्ता विसृजेत्ततः ॥

“पुनस्तिलोदकं पिण्डं नग्नप्रच्छादनं तथा । नवश्राद्धप्रदानानि सर्वं कर्म समाचरेत्” ॥ इति ।

पारस्करोऽपि—

“एतैरारब्धपिण्डस्य यथागच्छन्ति वै सुताः । तेऽपि कुर्युस्तु पूर्वोक्तपिण्डदानं जलं तथा” ॥ इति । ३५

अतो दशाहमध्ये मुख्यकर्त्रागमे वचनबलादाहव्यतिरिक्तं पूर्वकृतं सर्वं कृतं तेन पुनः कार्यम् । संचयनं तु न पुनः कार्यम् । कृतेनैवास्थिसंचयनेन उत्तिष्ठ प्रेत प्रेहीत्यादिमंत्रार्थसिद्धेः पुनःकरणस्य निरर्थकत्वात् । पिण्डादिवत्तस्य पुनःकरणे वचनाभावाच्च । दशाहमध्ये कनीयसा कृतस्यापि पिण्डोदकव्यतिरिक्तनम्रप्रच्छादनादेर्न पुनःकरणम्

५ “दशाहकर्मण्यारब्धे संस्कारादौ कनीयसा । ज्येष्ठोऽथ त्वंतरागच्छेत्सोऽस्य शेषं समापयेत् ” ॥ इति स्मरणात् । दशाहानंतरमागतेन तु मुख्यकर्त्रा पिंडदानादि वर्ज्यमुदकमात्रं यावदाशौचं देयम् । एकोद्दिष्टादिकमूर्ध्वकृत्यं च तेन कार्यम् । तथा पितृभेदसारे—“प्रारब्धे केनचित्प्रेतकृत्ये मुख्यकर्ता-तरागतो दाहं विना सर्वं कुर्यात् । कृतं नास्थिसंचयनं पूर्वप्रवृत्तश्चोदकमात्रं अन्योऽपि दद्यात् । यद्येकोद्दिष्टांतं पुत्रोऽन्यो वा कुर्याद्विदेशस्थः पुत्रः श्रुत्वा वपनं कृत्वा दशाहमुदकमात्रं दद्यात् ।

१० ज्येष्ठः कृतमपि सापिंड्यमेकादशाह एव पुनः कुर्यात् ” इति । स्मृत्यंतरे—

“ कनिष्ठेन कृतं सर्वं श्राद्धांतं च यथाक्रमम् । ज्येष्ठपुत्रः समायातः तद्दिनानि दशाहतः ॥

“ पाषाणस्थापनं पिंडं विनैवोदकमाचरेत् ” ॥ इति ।

विश्वादर्शे —“ यः कुर्यात्प्रथमेऽन्हि संस्कृतिविधिं ज्ञातेस्तदन्यस्य वा ।

“ श्राद्धांतं सकलं स एव चरतु ज्ञात्यादिकेऽप्यागतेः ।

१५ “ज्येष्ठासंनिधितः कनीयसि पितुः कुर्वाण एव क्रियाः ।

“ श्रुत्वोपस्थित एव चेदथ चरेज्ज्यायास्तदूर्ध्वक्रियाः ॥

“ यत्पित्रोर्मरणादिकं दशदिने तस्मिन् गते ज्यायसः । पश्चात्तच्छ्रवणप्रभृत्युपरताशौचप्रवृत्तावपि ॥

“ ज्यायानेव तदूर्ध्वमाचरतु तच्छ्राद्धादिमिश्रांतकं । तत्तत्कर्मणि शुद्धिस्मरदसौ तात्कालिकीं देवलः ” ॥ इति । मिश्रं सपिण्डीकरणम् । उक्तेषु सर्वेषु वचनेषु दशमदिनादूर्ध्वं कृत-

२० दशाहकृत्यस्य पित्रादेर्मरणश्रवणे पिण्डदानादेरविधानादुदकदानमात्रमेकोद्दिष्टादूर्ध्वकृत्यं चेति बहुस्मृतिसंमतम् । शतकव्याख्यानादौ तु देशांतरस्थौ पितरौ मृतौ चेदिति वचनमन्यथा व्याख्यातम् । पुत्रव्यतिरिक्तेनान्येन सपिंडादिना दाहादिसापिंड्यान्तकृत्ये कृते अनंतरमागतः पुत्रः दाहं संचयनं च विना पाषाणस्थापनं नम्रप्रच्छादनं प्रेतशब्दनवश्राद्धैकोत्तरवृद्धिश्राद्धवास-उदकतिलोदकपिंडबलिप्रदानषोडशसपिंडादीनि पुनश्च कुर्यात्

२५ “दाहं विना तानि पुनश्च सर्वम् ” इत्यविशेषणाभिधानात् ।

“ कृतक्रियेऽपि पितरि दशाहं सूतकी भवेत् । दयात्तिलोदकं पिंडं सपिण्डीकरणं पुनः ” ॥ इति

पुनःपिण्डदानस्य विधानाच्च अनुजैः कृते सपिण्डीकरणान्तकृत्ये ज्येष्ठपुत्रः उदकमात्रं सपिण्डनं च पुनः कुर्यात् । न तु सपिंडादीनि । कनिष्ठकृतदशाहकृत्यादिविषये उदकदान-सपिण्डीकरणव्यतिरिक्तं पिंडादिकं न कर्तव्यमिति । अत्रैवार्थे

३० “मुख्यकर्ता विदेशस्थः काले काले श्रुतो यदि । तिलवारि प्रकुर्वीत पिण्डदानं विवर्जयेत् ” ॥

“ कृतक्रियेऽपि पितरि ” इत्यादीनि पूर्वोक्तानि वचनानि योजितानि । स्मृत्यंतरे च—

“न शिला न मृदा स्नानं न प्रेतं न च वासकम् । नम्रं पिंडं न दातव्यं दर्भस्तंबे तिलोदकम्” ॥ इति ।

प्रेतं प्रेतशब्दोच्चारणम् । वासकं वास उदकम् । नम्रं नम्रप्रच्छादनम् । दर्भस्तंबे तिलोदकं न कार्यम् । दर्भस्तंबास्तरणरहितस्थले कर्तव्यमित्यर्थः । तथा चंद्रिकायाम्—

३५ “ज्येष्ठेन वा कनिष्ठेन सपिंडीकरणे कृते । देशांतरगतानां तु पिंडदानं कथं भवेत् ॥

“श्रुत्वा तु वपनं कृत्वा दशाहांतं तिलोदकम् । ततः सपिंडीकरणं कुर्यादेकादशेऽहनि” ॥ इति ।
पिंडदानं सपिंडीकरणं ज्येष्ठेन पितुः सपिंडीकरणांतप्रेतकृत्ये कृते कनिष्ठः पितृमृतिं श्रुत्वा दशाहांतं
तिलोदकं दद्यात् । कनिष्ठकृते तु तस्मिन् ज्येष्ठः श्रुत्वा वपनं कृत्वा दशाहांतं तिलोदकमात्रं
दद्यात् । न तु पिंडान् । तत एकादशाहे सपिंडीकरणमेव कुर्यात् । न त्वेकोद्दिष्टमित्यर्थः ।
एवं स्मृत्यर्थविप्रतिपत्तौ शिष्टाचाराव्यवस्था ।

५

अयमत्र निष्कर्षः—अन्येन संस्कारादौ कृते अंतर्दशाहे संचयात्पूर्वमागतः पुत्रः पुनर्दाह-
विधिनाऽस्थ्यादि दग्ध्वा शिरोवपनं कारयित्वा संचयननग्नप्रच्छादनातीतदिनकृतवास उदक-
तिलोदकपिंडदानैकोत्तरवृद्धिनवश्राद्धानि तदानीमेव पुनः कृत्वा तात्कालिकमुदकपिंडाद्येकोद्दिष्टांतं
तत्तत्काले कृत्वा स्वकाले पंचदश श्राद्धानि सपिंडीकरणं च कुर्यात् । संस्कर्ता तु यावत्स्वा-
शौचमाशौचांत्यादिने वा दशाहशेषे देयं तिलोदकमात्रं दत्वा आत्मशुद्ध्यर्थं ब्राह्मणान्भोजयेत् । ५
संचयात्परमागतश्चेद्दाहसंचयनवर्ज्यं नग्नप्रच्छादनातीतपिंडोदकनवश्राद्धादि कृत्वा तात्कालिको-
दकाद्येकोद्दिष्टांतं कृत्वा श्रवणदिनमारभ्य दशाहाशौचमनुष्ठाय वृत्ताद्यमासिकादीनि उक्तकाले
कृत्वा त्रिपक्षादौ सापिंड्यं कुर्यात् । संस्कर्ता तु पूर्ववदेव कुर्यात् । कनिष्ठेन तु दाहादिप्रेतकृत्ये
कृते संचयनात्पूर्वं परं वा आगतो ज्येष्ठपुत्रः अतीतकाली नोदकपिंडमात्रमेकदा दत्वा
तात्कालिकोदकाद्येकोद्दिष्टांतं कुर्यात् । संचयनात्पूर्वमागतश्चेत् द्वादशाहेसापिंड्यं कुर्यात् । १५
तत्परमागतश्चेच्छ्रवणदिनमारभ्य दशाहाशौचमनुष्ठाय त्रिपक्षादौ सापिंड्यं कुर्यात् । संस्कर्ता
कनिष्ठस्तु पक्षद्वयेऽपि तिलवारिमात्रं दशाहांतं कुर्यात् । कनिष्ठेन कृते दशाहकृत्ये दशमदिन-
रात्रवेकादशाहे वाऽपरिणहंतपूर्वमागतो ज्येष्ठपुत्रः सर्वांगवपनं कृत्वा वृषोत्सर्जनाद्येकोद्दिष्टं च कृत्वा
तदारभ्य दशाहाशौचमनुष्ठाय उदकमात्रं च दत्वा त्रिपक्षादौ सापिंड्यं कुर्यात् । कनिष्ठेनासमापिते
तु दशाहकृत्ये गतदिनमारभ्य दशाहकृत्यं सर्वं परिसमाप्य एकादशे एकोद्दिष्टं त्रिपक्षादौ २०
सापिंड्यं कुर्यात् । अन्येन सपिंडादिना दशाहकृत्ये कृते संचयात्पूर्वं दशमदिनरात्रौ एकादशदिने वा
समागतः पुत्रः पुनर्दहनवपनाद्येकोद्दिष्टांतान्येकादशाहे कृत्वा दशाहाशौचानंतरं उक्तकाले आवृत्ताद्य-
मासिकादीनि कृत्वा त्रिपक्षादौ सापिंड्यं च कुर्यात् । संचयात्परमागतश्चेद्वपनं कारयित्वा
वृषोत्सर्जनाद्येकोद्दिष्टं च कृत्वा दशाहाशौचमुदकमात्रं चानुष्ठाय त्रिपक्षादौ सापिंड्यं कुर्यात् ।
अपुत्रस्य कृतसंस्कारस्य अंतर्दशाहे संचयात्पूर्वं परं वा समागतो दायभाग् मुख्यकर्ता अतीत- २५
कालीनोदकपिंडमात्रमेकदा पुनर्दत्वा तात्कालिकोदकपिंडदानसंचयननवश्राद्धानि सपिंडीकरणां-
तानि उक्तकाले कुर्यात् । अत्र संचयनात्पूर्वमागतस्य मुख्यकर्तुः दहनव्यतिरिक्तस्य नग्नप्रच्छादनादेः
कृतस्य पुनःकरणमस्तीति केचित् । अत्र पक्षद्वयेऽपि संस्कर्ता दशाहांते तदेयं तिलोदकमात्रं
स्वाशौचांतं कृत्वा शुद्ध्यर्थं ब्राह्मणभोजनं कारयेत् । स च दायभागेकादशाहे आगतः अन्येन दशाह-
कृत्ये कृते तात्कालिकैकोद्दिष्टं वृषोत्सर्गपूर्वकं कृत्वा अत्याशौचविधिना आशौचमुदकं चानुष्ठाय ३०
त्रिपक्षादौ सापिंड्यं कुर्यात् । अत्रापि संचयात्पूर्वमागतविषये नग्नप्रच्छादनादि पूर्वकमेकोद्दिष्टमिति
केचित् । अकृते तु दशाहकृते दाहव्यतिरिक्तं सर्वं तदैव कृत्वा तात्कालिकवृषोत्सर्गैकोद्दिष्टे च
कृत्वा स्वाशौचमनुष्ठाय उक्तकाले सापिंड्यं कुर्यात् । अकृतेऽप्यस्थिसंचयने यत्र पुनर्दाहाभावः
तद्विषये संनिहिते पूर्वचित्तिदेशे तं समीक्ष्यांतर्दशाह आगतो मुख्यकर्ता तत्संचयनमंत्रान्मोतोऽप-
हतास्थिन्यायेन पठेत् । यद्येकोद्दिष्टांतं पुत्रोऽन्यो वा कुर्याद्विदेशस्थः पुत्रः श्रुत्वा वपनं कृत्वा दशाह- ३५

मुदकमात्रं दद्यात्सर्पिंडीकरणं चान्यकृतं कनिष्ठकृतं वा एकादशाहे पुनः कुर्यात् । संचयात्परमागत-
श्चेत् वपनं कारयित्वा वृषोत्सर्जनाद्येकोद्दिष्टं च कृत्वा दशाहाशौचमुदकदानं चानुष्ठाय त्रिपक्षादौ
सर्पिण्डनं कुर्यात् । अग्रजासंनिधाने अनुजः सर्पिंडीकरणं कुर्यात् । अग्रजः कृतमपि पुनः
कुर्यात् । अग्रजासंनिधाने विभक्ताः कनिष्ठाः पृथक्कुर्युः । अग्रजोऽपि पुनः कुर्यात् । अविभक्ताश्चे
५ द्विधमानेषु ज्येष्ठः कुर्यात् । सर्वज्येष्ठः पुनः कुर्यात् । वत्सरानंतरं मातृपितृमरणश्रावणे पुत्रवत्
दशाहं सपत्नीमातुर्दाहं कृतक्रिये पितरि पुत्राणां त्रिरात्रं अकृतक्रिये तु दशरात्रं कृतक्रिये ज्येष्ठस्य
दशरात्रं कनिष्ठानां दशरात्रमिति केचित् । पत्न्या भर्तृमरणश्रावणेऽपि पुत्रवद्दशाहं सपत्नीमातुर्दाहादि-
कृत्ये भिन्नोदरेण कृते अंतर्दशाहागतौरसपुत्रः स्वकनिष्ठकृते यावद्विहितं तावदेव कुर्यात् ।
सपत्नीमातुः वर्षात्पूर्वं मृतिश्रावणे दशाहमाशौचमुदकं च वर्षात्परं तु श्रावणं त्र्यहं भिन्नोदरज्येष्ठ-
१० कृतं सर्पिंडीकरणं च औरसः पुनः कुर्यात् । भ्रातुर्देशांतरमरणश्रावणे षण्मासात्पूर्वं दशरात्रं
ततः परं त्रिरात्रं कृतोदके तु तस्मिन्षण्मासात्पूर्वं त्रिरात्रं ततः पक्षिणी उदकं च वर्षात्परं तु श्रावणे
दाहकस्य तु भ्रातुर्दशाहं कनिष्ठादिना कृतक्रियस्य पित्रादेरेकादशदिनादौ मरणश्रावणे मुख्यकर्तु-
रुदकमात्रमेव अतीतप्रेतकृत्यं कार्यं न पिंडादिकं सर्वमिति केचित् कनिष्ठकृतपिंडादेर्निवृत्तिः
दहनसंचयव्यतिरिक्तस्यान्यकृतस्य प्रेतकृत्यस्य पुनः करणमस्तीत्याहुः ।

१५ पुनर्दाहविधिः । अथ पुनर्दाहविषयः । अपराकै—

“मंत्रवत्संस्कृतस्यापि असमाप्तोदकस्य तु । अर्वागदशदिनादूर्ध्वं पुनर्दाहो विधीयते” ॥ दशदिनादूर्वा-
गसमाप्तोदकस्येत्यन्वयः । शातातपः—

“एकोद्दिष्टं सुतः कुर्यान्मृतस्यैकादशोऽहनि । तत्र श्राद्धं न कुर्याच्चेत्पुनः संस्कारमर्हति ” ॥ इति ।
बृहस्पतिः—

२० “एकादशोऽहनि यच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं समाचरेत् । यदि कौर्यान्न कुर्वीत पुनः संस्कारमर्हति ” ॥ इति ।
वसिष्ठः—

“यत्कृतं प्रेतमुद्दिश्य नवश्राद्धादिकं क्वचित् । अकृतं तद्विजानीयादेकोद्दिष्टं विना कृतम्” ॥ इति ।
एतत्सर्वमकृतास्थिसंचयनविषयम् । तथा च स्मृत्यंतरे—

“मन्त्रवत्संस्कृतस्यापि ह्यसमाप्तोदकस्य तु । अस्थिसंचयनादूर्वाकपुनर्दाहो विधीयते ॥

२५ “अस्थिसंचयनादूर्ध्वमसमाप्तोदकस्य तु । पुनर्दाहं विना तत्र पिंडदानोदकक्रिया ” ॥ इति ।
संग्रहेऽपि—

“मन्त्रवत्संस्कृतस्यापि ह्यकृतास्थिसंचयस्य तु । आद्यश्राद्धस्य विच्छेदे पुनर्दाहो विधीयते ” ॥ इति ।
निमित्तांतरमुक्तं स्मृत्यंतरे—

“अमन्त्रपूर्वं दग्धानामद्भवैकल्यशेषिणाम् । चण्डालादिहतानां च पुनर्दहनमाचरेत् ” ॥ इति ।

३० आदिशब्दान्नासिर्दंष्ट्रिस्वेच्छादयो गृह्यन्ते । नारदश्च—

“मंत्रं विना तु यद्गन्धं प्रेतं तस्य पुनःक्रिया । मन्त्रसंस्कारयुक्तस्य न कुर्यात् दहनं पुनः” ॥

न कुर्यादित्येतत्कृतास्थिसंचयनविषयम् । पितृमेधसारे—“विधिवत्संस्कारेऽप्यनस्थिसंचये
यद्युदकक्रिया विच्छिद्येतैकोद्दिष्टं वा तदा पुनर्दाहः । यद्यस्थिसंचयः कृतः स्यान्न पुनर्दाहः ।
अन्यत्सर्वं कुर्यात् । तथांगदाहवैकल्येऽपि पुनर्दाहः । यदि गृह्याग्निनाऽप्यमन्त्रवद्दाहोऽन्याग्निना वा

विधिवत्पुनर्दाहोऽस्थीन्याहृत्य कार्य इति । अस्थिसंचयने कृते उदकाक्रियाया एकोद्दिष्टस्य च स्वस्वकाले अकरणेऽपि न पुनर्दाह इत्यर्थः । तथा सुधीलोचने—“अनाहिताग्नेर्दाहस्य कुम्भ-निधानांतत्त्वादुत्तिष्ठ प्रेहि प्रद्रवौकः कृणुष्व परमे व्योमन्निति मंत्रार्थसिद्धेर्विधिवत्कृतस्य पुनर्दाहा-योगाच्च अनस्थिसंचय एव पुनर्दाहः । अत एव कृतेऽस्थिसंचये त्र्यहात्प्रेतक्रिया स्मर्यते—
“अस्थिसंचयनादूर्ध्वं विच्छिन्ने तर्पणादिके । आरब्धे यदि पित्रोश्च पुनः संक्षिप्यते त्र्यहात् ” ॥ इति ५
गृह्याग्निना अमंत्रवद्दाहे पूर्वोद्दाहृतवचनेन अयथाकृतमकृतमिति न्यायेन च पुनर्दाहः सिद्धः । औपासनेनाहिताग्निं दहेदिति नियमात् “अनौपास्येन यो दग्धः तं दहेदन्विना पुनः ” ॥ इति वचनाच्च लौकिकाग्निना विधिवद्दाहेऽपि तस्याकिंचित्करत्वात् सत्यौपासने तेन पुनर्दाहः कार्यः । असति तस्मिन्विधिवदग्निं संधाय पुनर्दाहः कार्यः । “अथ यद्याहिताग्निरन्यत्र प्रेयाद् दीप्यमानै-र्हूयमानैरग्निभिराप्तिरन्यावदेवास्याग्निभिः समागमयेरन्ना संस्कारादग्निं जुहुयात् । अग्निसंरक्षणार्थम् ” १०
इति बोधायनापस्तंबादिभिर्दाहांतमग्निसंरक्षणस्मरणेन पुनर्दाहसिद्धेः । ‘शरीरदायादाहाय वाऽग्नयो भवन्ति’ इति श्रुतेर्विनियोगांतराभावाच्च स्वाध्यायाग्नित्यागस्य चोपपातकत्वोक्तेश्च तेनैव दाहः कर्तव्यः । यच्चान्यद्वक्तव्यं तदग्निरूपणावसरे प्रतिपादितमधस्तात् । “अनात्मीयेन शास्त्रेण यो दग्धस्तं च शास्त्रतः ” इति वचनं

“अलब्धात्मीयमूत्रस्य श्राद्धांतं परमूत्रतः । कुर्यात् सपिंडीकरणं स्वसूत्रेणैव नान्यतः ” ॥ इति १५
भरद्वाजादिबहुस्मृतिविरोधादुपेक्ष्यमिति पूर्वमेवोक्तम् ।

तंत्रप्रविष्टस्य तंत्रमार्गेण पुनः संस्कार उक्तः आगमे—

“सर्वेषामेव वर्णानामाशौचांतं यथाक्रमम् । अन्त्येष्टिं विधिवत्कुर्युः तत्पुत्राश्चौरसादयः ” ॥ इति ।
तत्रैव—

“वैदिकं तु पुरा कृत्वा पश्चाच्छेषं समाचरेत् । ये मृता दीक्षितास्तेषां श्राद्धद्वयमुदाहृतम् ॥ २०

“पूर्वं तु वैदिकं श्राद्धं कुर्यात्तत्र ततः परम् ” ॥ इति । आहिताग्नेर्मंत्रवद्दाहाभावे पुत्रा-दीनामाशौचमुदकादिकं च नास्ति । किं तु पुनर्दाहसमय एव तेषामाशौचमुदकादिः च उक्तं चंद्रिकायाम्—

“आहिताग्नेस्तु विधिवद्दाहांतं नास्ति चेत्तदा । आशौचग्रहणं नास्ति दाहाद्याशौचमिष्यते ” ॥ इति ।
दाहाद्याशौचं पुनर्दाहाद्याशौचम् । तच्च दशाहम् । तथा पारस्करः— २५

“आहिताग्नेस्तु दहनाद्दशाहाशौचमिष्यते । अनाहिताग्नेर्मरणात्पुनर्दाहो यदा भवेत् ” ॥

पैठीनासिः—“आहिताग्निश्चेत्प्रवसान्निभ्यते पुनःसंस्कारं कृत्वा शाववच्छौचमिष्यते ” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरेऽपि—

“दशाहांतं सपिंडानां मृतौ प्रेतक्रिया भवेत् । पुनर्दाहे त्रिरात्रं स्याद् यष्टुः पित्रोर्दशाहतः ” ॥ इति ।
अनाहिताग्नेः पुनःसंस्कारे सपिंडानां त्रिरात्रम् । यष्टुः आहिताग्नेः पुनःसंस्कारे सपिंडानां दशाहं ३०
पित्रोश्च पुनःसंस्कारे पुत्राणां दशाहतः क्रियेत्यर्थः । स्मृत्यर्थसारेऽपि—“आहिताग्नेर्विधिद्वहना-भावे आशौचग्रहणं नास्त्येव । पुनःसंस्कारे दाहाद्याशौचमपि पूर्णम् । यावद्विधिना न संस्कारः तावत्पुत्रादीनां मुख्यकर्तृणां संध्यादिकर्मलोपो नास्ति । शुभं कर्म न कर्तव्यम् । मुख्यकर्त्रसंभवे शेषदिनाच्छुद्धिः । अतोते सूतके पुनःसंस्कारश्चेत् तदितरज्ञातीनां शुभं कर्म च कर्तव्यम् ।

अनाहिताग्नेर्विधिवद्दहनाभावे तदानीमाशौचग्रहणं कृताकृतं दशाहानंतरमरणश्रवणे दाहात्पूर्वं व्यहाद्याशौचं नास्ति । पुनःसंस्कारः सूतकमध्ये चेच्छेषदिनाच्छुद्धिः । अतीते सूतके पुनः संस्कारश्चेत्पूर्वमगृहीताशौचस्य पुत्रस्य पत्न्याश्च दशाहमाशौचम् । गृहीताशौचयोः पुत्रपत्न्योस्त्रिरात्रम् । पत्न्योः पुनःसंस्कारे पत्युश्चैवं सपत्न्योर्मिथश्चैवं गृहीताशौचानां कृतोदकानां सर्पिडानां

५ पुनराशौचं नास्ति । अकृतोदकानां पुनरेकाहमिति । चंद्रिकायाम्—

“विदेशस्थो गृही यावद्विधिना नैव संस्कृतः । पुत्रादीनां तु संध्यादिकर्मलोपो न विद्यते” ॥ इति ।

यत्तु—

“अकृत्वा प्रेतकार्याणि नित्यनैमित्तिकान्यपि । न कुर्यात्तावदाशौचं यावत्प्रेतस्य मोक्षणम्” ॥ इति तत् नित्यनैमित्तिकशुभकर्मव्यतिरिक्तविषयम्

१० “अकृते ज्ञातिसंस्कारे न कुर्यादात्मनः शुभम् । कुर्यादेव शुभं कर्म मुख्यसंस्कर्तृसंभवे” ॥ इति स्मरणात् । दाहमंतरेणाप्याशौचाचरणमुक्तं स्मृत्यंतरे—

“पुत्रः पित्रोस्तु संस्कारं प्रमादान्न करोति चेत् । ज्ञातीनां दशरात्रं स्यात्तदूर्ध्वं सूतकं न हि ॥

“नित्यकर्माणि कुर्वीत स्मृत्युक्तानि तथैव च” ॥ इति । अन्यच्च—

“वंशजानामसंस्कारे सूतकं तु कथं भवेत् । दशाहात्परतः शुद्धिर्ज्ञातीनां च विशेषतः” ॥ इति ।

१५ एतत् द्वयं दत्ततिलोदकज्ञातिविषयम् । पुत्रविषये वसिष्ठः—

“प्रमीतपितृकः पित्रोरौर्ध्वदेहिकमाचरेत् । यदि कर्तुमशक्तश्चेदाशौचनियमान्वितः ॥

“आदशाहादथोर्ध्वं वा यदा कार्यक्षमस्तदा । त्रिरात्रं समतिक्रम्य श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥

“दाहकस्य तदाशौचमितरेषां न विद्यते” ॥ इति । इतरेषां दत्तोदकसर्पिडानामित्यर्थः । गृहीताशौचानां अदत्तोदकानां सर्पिडानामुद्दाननिबन्धनमाशौचमुक्तं स्मृत्यंतरे—

२० “पूर्वगृहीताशौचानां पुनर्दहने त्वधम् । तस्मिन्नुदकदातृणामाशौचं मनुरब्रवीत्” ॥ इति ।

“मरणादिगृहीतस्य त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते” ॥ इति पुत्रस्य त्रिरात्राशौचविधानात् ज्ञातीनामेकरात्रमिति न्यायतः सिद्धमिति व्याख्यातारः । कृते तु मन्त्रसंस्कारे आरब्धे चोदके कर्त्रा दैवादसमापितं सति तदानीं ज्ञातिभिरुदकाशौचयोगृहीतयोः पुनर्दहनसमये ज्ञातीनामाशौचं नास्ति । पुनस्तर्पणमात्रमस्तीति केचित् । पारस्करः—“आशौचे वर्तमाने तु तच्छेषेण विशुध्यति ॥

२५ “गते त्वाशौचदिवसे पुनर्दाहो यदा भवेत् । मरणादिगृहीतस्य त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥

“अगृहीतस्य पुत्रस्य संपूर्णाशौचमेव हि” ॥ इति ।

संग्रहे—“अशौचांतः कीकसादेः प्रदाहे शोषाच्छुद्धिस्तद्विधेश्चेत्त्रिरात्रम् ।

“पुत्रस्यापि प्रागवस्य ग्रहश्चेन्नो चेत्तस्याप्यत्र संपूर्णमाहुः” ॥ इति । कीकसमस्थि । आदिशब्देन पर्णादिप्रकृतिर्गृह्यते । तथा

३० “अस्था पलाशवृत्तैर्वा दग्ध्वा तु प्रतिरूपकम् । पित्रोर्दशाहमाशौचमन्येषां तु त्रिरात्रकम्” ॥ इति ।

अन्यच्च—“नरं पर्णमयं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् । मातापित्रोर्दशाहं स्यादस्थिदाहे तथैव च” ॥ इति ।

“संस्कृताग्नौ देहत्पश्चाद्दशरात्रं तु सूतकम् । इतरेषां त्रिरात्रं स्यात् ज्ञातीनामपि सूतकम्” ॥ इति ।

देवलः—

“दग्ध्वास्थि पित्रोः पुत्रस्तु दशाहमशुचिर्भवेत् । तयोः प्रतिकृतिं दग्ध्वा शाववच्छौचमिष्यते” ॥

शाववद्दशाहाशौचमित्यर्थः । पुत्रस्य दशाहविधानं अगृहीताशौचविषयम् । गृहीताशौचस्य पुत्रस्य मरणदिगृहीतस्य 'त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते' इति त्रिरात्रस्मरणात् । स्मृत्यन्तरे—

“ दग्ध्वाऽस्थि पित्रोः पुत्रस्तु दशाहं सूतकी भवेत् । तयोः प्रतिकृतिं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ” ॥
अस्थिदाहे पुत्रस्य दशाहविधानमगृहीताशौचविषयम् । प्रतिकृतिदाहे त्रिरात्रविधानं गृहीताशौचविषयम् । अन्ये तु पुत्रस्य गृहीताशौचस्यास्थिदाहे दशाहं प्रतिकृतिदाहे त्रिरात्रमिति ५
व्याचक्षते । पुराणेऽपि—

“ अस्थ्यभावे पलाशोत्थैः पर्णैः कार्यं शरीरकम् । एवं पूर्णमयं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ” ॥

षडशीतौ—

“ अंतर्दशाहे दाहे तु शेषतः शुचयोऽखिलाः । बहिर्दशाहदाहे तु दाहादित्रिदिनं मतम् ॥
“ प्रागाशौचग्रहाभावे ज्ञातीनां त्रिदिनं समम् । प्रागग्रहे तु त्र्यहं कर्तुरन्येषां तु न विद्यते ॥ १०

“कर्ता च तनयः पूर्वं ग्रहे पूर्णं तथोदितम्” इति । अयमत्र निष्कर्षः—आहिताग्नेः पुनर्दाहाद्येव पुत्रस्य सपिण्डानां चाशौचग्रहणमुदकदानादि प्रेतकृत्यं च भवति । दाहात्पूर्वं नास्त्येव । अनाहिताग्नेस्तु पुनर्दाहात्पूर्वमाशौचग्रहणमुदकदानं च विकल्पितम् । दशाहमध्ये आहिताग्न्यनाहिताग्न्योः पुनः संस्कारे सति संस्कारदिनादूर्ध्वं दशरात्रावशिष्टमेवाशौचमुदकादिकं च भवति । न पुनर्दाहादि-
दशाहम् । यदि दशाहात्परं पुनर्दाहः स्यात्तत्राहिताग्नेः पुनर्दाहादिदशाहमाशौचमुदकं च पुत्रस्य १५
सपिण्डानां च समानम् । अनाहिताग्नेस्तु पुनर्दाहे पूर्वमगृहीताशौचस्य पुत्रस्य दशाहमाशौचं उदकादिक्रिया च भवति । गृहीताशौचस्य पुत्रस्यास्थिदाहे प्रतिकृतिदाहे च त्रिरात्रमाशौच-
मुदकक्रिया च अगृहीताशौचानां सपिण्डानामस्थिदाहे प्रतिकृतिदाहे च त्रिरात्राशौचमुदकं च भवति । गृहीताशौचानामदत्तोदकानां सपिण्डानामुदकदाननिमित्तमेकाहमाशौचं दत्तोदकानां तु न पुनराशौचोदकदाने भवतः । कर्ता पश्चादुदकसमापने क्रियमाणे पूर्वमगृहीताशौचानां अर्द्धतो- २०
दकानां सपिण्डानामुदकदानमात्रं भवति । नाशौचमिति केचित् । अन्ये तु दशाहादूर्ध्वमस्थिदाहे अगृहीताशौचानां सपिण्डानां दशाहं गृहीताशौचानां त्रिरात्रं प्रतिकृतिदाहे अगृहीताशौचानां त्रिरात्रम् । गृहीताशौचानां नाशौचं अस्थिदाहे पुत्राणां गृहीताशौचानामगृहीताशौचानां च दशरात्रमित्याहुः । तथा च संग्रहकारः—

“ यज्वायज्वपुनर्दाहे शिष्टाहं यद्यघाद्बहिः । दशाहं त्र्यहमाशौचं पूर्णं प्राक्चेदघाग्रहः ॥ २५

“ अस्थिदाहे प्रतिकृतिदाहे तु त्र्यहमित्यधम् । सपिण्डानां सुतानां तु दशरात्रमिहेष्यते ” ॥ इति
“ भ्रातुर्देशांतरमृतौ षण्मासाद्वत्सरादधः । दशरात्रं त्रिरात्रं स्याद्दशाहं दाहकस्य तत् ” ॥ इति
दाहकस्य भ्रातुः दशाहाशौचविधानात् द्वादशाहे सापिण्ड्यम् ।

अनेकसपिण्डपुनर्दाहविधिः । संग्रहकारः—

“ मृतानां तु सपिण्डानां काले बहुतिथे गतौ । तान्सर्वान्सह संस्कुर्यात् त्रिरात्रेण यथाविधि ॥ ३०

“ एकोद्दिष्टं चतुर्थेऽन्दि तेषां पिण्डं पृथक् पृथक् । सपिण्डीकरणं तेषां सहैव पृथगेव वा ” ॥ इति ।
संघातमृतानां कालभेदेन वा मृतानां सपिण्डानां एकचित्यां समानतंत्रेण पुनःसंस्कारः कार्यः ।
सापिण्ड्यं तु उद्देश्यभेदे पृथक् कुर्यात् । अन्यथा सह कुर्यादित्यर्थः । एतच्च पितृव्यतिरिक्त-
विषयम् । त्रिरात्रेण समापनविधानात्पित्रोः सपिण्डानां च देशांतरमरणश्रवणे पूर्वं पित्रोः सापिण्ड्यांतं
कृत्वा अनंतरमन्येषां पुनर्दाहारं क्रमेण कुर्यात् । ३५

स्मृतिचंद्रिकायाम्—

“यथेककर्तृकं श्राद्धमनेकं चैकवासरे । दैवं पित्र्यं च तंत्रं स्यान्निमित्तं प्रतिपूरुषम्” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—

“बहूनामेकवंश्यानामेको यदि च दाहकः । एकस्मिन्दिवसे कुर्यादेकतंत्रमिहेष्यते” ॥ इति ।

५ तथा—

“भिन्नकाले मृता ये च वंश्याः पूर्वमसंस्कृताः । एकस्मिन्नन्दि चैतेषां सह संस्कारमाचरेत्” ॥
पूर्वमसंस्कृताः अनुपनीताः ।

दुर्मृतपुनःसंस्कारः । संघातदुर्मृतपुनःसंस्कारविषये स्मृत्यंतरे—

“दुर्मृतानां च वंश्यानां काले बहुतिथे गते । तान्सर्वान्सह संस्कुर्यादेकचित्यां पुनः सुधीः” ॥ इति ।

१० दुर्मृतस्य पुनःसंस्कारकालमाह देवलः—

“ये मृताः पापमार्गेण तेषां संवत्सरात्परम् । नारायणबलिं कृत्वा कुर्यात्तत्रौर्ध्वदेहिकम् ॥

“अब्दान्ते वाथ षण्मासे पुनः कृत्वा तु संस्कृतिम् । त्रिरात्रमशुचिर्भूत्वा श्राद्धं कुर्याच्चतुर्दिने” ॥ इति ।
एतत् दुर्मृतपुनर्दाहे त्रिरात्रविधानं मातापितृविषयम् । अन्येषां दुर्मृतानां पुनर्दाहे एकरात्रम् ।
तदाह गंगः—

१५ “वर्षातीतपुनर्दाहे एकाहात्पिण्डमर्पयेत् । श्राद्धं दद्याद्वितीयेऽन्दि तृतीयेऽन्दि सपिण्डनम् ॥

“नास्थिसंचयनं कुर्यान्न च चर्माधिरोहणम् । पुत्रादीनां तु कर्तव्यं पुनः संस्कारकर्मणि” ॥ संग्रहे—

“असंस्कारे कुलीनस्य पुनरन्यस्य चेन्मृतिः । यस्य स्यात्तस्य संस्काराद्येकोद्दिष्टांतामाचरेत् ॥

“ततः पूर्वं मृतस्यात्र कुर्याद्वै संस्क्रियादिकम् । सपिंडीकरणं तत्र पूर्वशेषं तु कारयेत् ॥

“दुर्मृतस्य क्रियाहीनकाले पुंसवनं चरेत् । पित्रोराब्दिककालस्तु यदा वाऽपि भवेत्तदा ॥

२० “तयोस्तदेव कुर्वीत नान्येषां पुरतो भवेत्” ॥ इति । दुर्मृतिमध्ये मृतस्यैकोद्दिष्टांतं कृत्वा दुर्मृतस्य सपिण्डनं कृत्वा पश्चादेतस्य सपिण्डनं कुर्यात् । संस्कारात्पूर्वं पुंसवनं पित्रोराब्दिकं च कर्तव्यमित्यर्थः । दुर्मृतिलक्षणं पुनःसंस्कारकालस्तत्प्रायश्चित्तं च दुर्मृताशौचनिरूपणे प्रतिपादितम् ।
प्रोषितस्य द्वादशाब्दादूर्ध्वं संस्कारविधिः ।

यस्य प्रोषितस्य वृत्तान्तो न श्रूयते तस्य द्वादशाब्दादूर्ध्वं प्रतिकृतिदाहपूर्वकं विधिवदौर्ध्वदेहिकं

२५ कुर्यात् । प्रतिकृतिस्वरूपमधस्तात्प्रतिपादितम् । अत्र बृहस्पतिः—

“यस्य न श्रूयते वार्ता यावद्द्वादशवत्सरम् । कुशपुत्रैकदाहेन तस्य स्यादवधारणम्” ॥ इति ।
तच्च नारायणबलिपूर्वकं कर्तव्यम् । स्मृत्यंतरे—

“द्वादशाब्दात्परं तेषां तृतीयादब्दतोऽपि वा । नारायणबलिं कृत्वा क्लृप्तदेहेऽथ संस्कृतिम्” ॥

कुर्यादिति शेषः । त्र्यहादेव सा क्रिया कार्या । “नरं पर्णमयं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्” ॥ इति

३० स्मरणात् । पितृविषये विशेषमाह जातुकार्णिः—

“पितरि प्रोषिते यस्य न वार्ता नैव चागतिः । ऊर्ध्वं पंचदशार्द्धात्कृत्वा तत्प्रतिरूपकम् ॥

“कुर्यात्तस्य च संस्कारं यथोक्तविधिना ततः । तदानीमेव सर्वाणि प्रेतकार्याणि संचरेत्” ॥ इति ॥

प्रतिरूपकं पलाशवृत्तादिनिर्मितप्रतिकृतिः । यथोक्तविधिना दशरात्रं पिंडोदकदानादिविधिपरशास्त्र-
क्रमेण तदानीमेव पंचदशसु वर्षेषु गतेषु षोडशे वर्षे उक्तकाल एव प्रेतकार्याणि कुर्यात् । न

३५ कालविलंबः कार्य इति केचिद्वाचक्षते ।

तथा च स्मृत्यन्तरम्—

“ पितरि प्रोषिते प्रेते पुत्रः कुर्यात्क्रियादिकम् । संवत्सरे व्यतीतेऽपि दशरात्रं यथाविधि ” ॥ इति ।

तथा च—“ अतीतेऽब्देऽपि कर्तव्यं प्रेतकार्यं दशाहतः ” इति । पितृमेधसारेऽपि—“ पित्रोस्तु पंचदशादूर्ध्वं दशाहाद्विधिवदौर्ध्वदेहिकं कुर्यात् ” इति । अन्ये तु

“ कुर्यात्तस्य च संस्कारं यथोक्तविधिना ततः । तदानीमेव सर्वाणि प्रेतकार्याणि संचरेत् ” ॥ इति ५
जातुकर्णिवचनमन्यथा व्याकुर्वते । यथोक्तविधिना पितृमेधविधिना प्रतिकृतिसंस्कारं कुर्यात् । सर्वाणि प्रेतकार्याणि नम्रप्रच्छादनादीनि प्रभूतबलिपाषाणोत्थापनान्तानि तदानीमेव तस्मिन्नेव दिने संचरेत् । कुर्यादिति ‘संवत्सरे व्यतीतेऽपि दशरात्रं यथाविधि’ इत्यादिवचनं अनाकर्णित-
वार्ताव्यतिरिक्तपितृमृतिविषयं तस्मिन्नेव दिने सर्वाणि प्रेतकार्याणि कुर्यादित्येतत्पितृव्यतिरिक्त-
विषयेऽपि समानमिति वदन्ति तदयुक्तं ‘कृतक्रिये त्रिरात्रं स्यादशाहमकृतक्रिये’ इत्यादिदशाह- १०
प्रतिपादकपूर्वोक्तवचनविरोधात् । अतः पितृविषये दशाहं इतरविषये त्रिरात्रमित्येव युक्तम् । पितृविषयेऽपि नारायणबलिपूर्वं और्ध्वदेहिकं कार्यम् । कालादर्श—

“ अनाकर्णितवार्तस्य प्रोषितस्य पितुः सुतः । ऊर्ध्वं पंचदशादूर्धादौर्ध्वदैहिकमाचरेत् ॥

“ अन्येषां द्वादशाब्दात्पूर्वमुक्तैव या तिथिः ” ॥ इति । अनाकर्णितवार्तस्य अश्रुतकुशल-
वार्तस्य प्रोषितस्य देशांतरगतस्य पितुः और्ध्वदैहिकं सुतः पंचदशादूर्धादूर्ध्वं पंचदशसंवत्सरेषु १५
गतेषु कुर्यात् । अन्येषां पितृव्यतिरिक्तानां पितृव्यभ्रातृपुत्रादीनां द्वादशाब्दादूर्ध्वं पैतृमेधिकमा-
चरेत् । पूर्वमुक्तैव या तिथिरिति प्रोषितस्य प्रत्याब्दिकश्राद्धे या तिथिः पूर्वमुक्ता पैतृमेधिका-
नुष्ठानेऽपि तस्य सैव ग्राह्येत्यर्थः ।

मासाद्यज्ञाने विधिः । तथा च कालादर्श—

“ मासाज्ञाने दिनज्ञाने कार्यमाषाढमाघयोः । मृताहे तद्दिनाज्ञाने मासाज्ञाने तु तत्कुहूः ॥ २०

“ कृष्णा चैकादशी ग्राह्या त्वज्ञाने ह्युभयोरपि । प्रवासमासदिवसौ ग्राह्यावेकैकशस्तयोः ॥

“ अज्ञानेनंतरो न्यायः सर्वाज्ञानं यदा भवेत् । श्रवणाहे तदा कुर्यात्तन्मासेदुक्षयेऽपि वा ” ॥ इति ।
यदा मरणमासो न ज्ञातः मरणदिनं तु ज्ञातं तदा आषाढे माघमासि वा मृताहे प्रत्याब्दिकं
कुर्यात् । तदाह बृहस्पतिः—

“ यदा मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनमेव तु । तदा ह्याषाढके मासि माघे वा तद्दिनं भवेत् ” ॥ इति । २५
भविष्यत्पुराणे तु—

“ दिनमेव विजानाति मासं नैव तु यो नरः । मार्गशीर्षेऽथ वा भाद्रे माघे वाऽथ समाचरेत् ” ॥ इति ।

आश्वलायनः—

“ मासे त्वज्ञायमाने तु माघः कार्यो मनीषिभिः । पक्षे त्वज्ञायमाने तु दैवे पित्र्ये सितासितौ ” ॥ इति ।

यदा मासो विज्ञातः मरणदिनं तु न ज्ञातं तदा तत्कुहूः तन्माससंबन्धिन्यमावास्या वा कृष्णैकादशी ३०
वा ग्राह्या । तदाह बृहस्पतिः—

“ अज्ञातो हि मृताहश्चेत्प्रोषिते संस्थिते सति । मासश्चेत्प्रतिविज्ञातः तद्दर्शं स्यात्तदाऽब्दिकम् ” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“ प्रत्यब्दं प्रतिमासं च मृतेऽहनि तु या क्रिया । तदहर्विस्मृतिप्राप्तौ दर्शं वा श्रवणेऽपि वा ” ॥ इति ।

अत्र श्रवणनक्षत्रविधानं क्षत्रियविषयं ‘नक्षत्रे क्षत्रियाणां स्यात्’ इत्याश्वलायनस्मरणात् । ३५

मरीचिरपि—“श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अविज्ञाते मृतेऽहनि । एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे मृतेऽहनि ॥” इति । मृतेऽहनि यत् कर्तव्यं तत्कृष्णैकादश्यां कर्तव्यमित्यर्थः । उभयोर्मरणमासदिनयो-
रप्यज्ञाने प्रवासमासदिवसौ ग्राह्यौ । तदाह बृहस्पतिः—

“दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः । प्रवासमासदिवसौ ग्राह्यौ पूर्वोक्तया दिशा ॥” इति ।

- ५ पूर्वोक्तयेति तयोरेकैकशः अज्ञाने अनन्तरोक्तन्यायः स्वीकार्यः । अयमर्थः—यदा प्रवासमासो न विज्ञातः दिवसस्तु ज्ञातः तदाषाढादौ मृताहे कार्यम् । यदा प्रवासमासो विज्ञातः दिवसस्तु न विज्ञातः तदा प्रवासमाससंबन्धिनि दर्शे तत्कृष्णैकादश्यां वा कुर्यात् । यदा सर्वाज्ञानं भवेन्मरण-
मासो मरणदिवसः प्रवासमासः प्रवासदिवसश्च न ज्ञातो भवेत् तदा मरणश्रवणदिने कुर्यात् । तत्रासंभवे श्रवणमाससंबन्धिनि दर्शे कुर्यात् तथा प्रचेताः—“अपरिज्ञाते अमावास्यायां श्रवण-
१० दिने वा ॥” इति । स एव—“अपरिज्ञातेर्घृताहे श्रवणतिथौ तिथिविस्मरणे तन्मासवर्तिन्याममा-
वास्यायां सांवत्सरिकं कुर्यात् । श्रवणतिथिस्मरणे मासास्मरणे च मार्गशीर्षे माघे वा तस्यामेव तिथौ कुर्यात् । यत्र श्रवणमपि नास्ति अनाकर्णितवार्तस्य द्वादशाब्दात्पञ्चदशाब्दाद्वापरं क्रियमाणे दाहादिप्रेतकृत्ये तद्विषये उक्तं चंद्रिकायाम्—

“मासस्थितिर्वा प्रस्थानदिनं वा श्रवणे न चेत् । यस्मिन्दिने तु संस्कारः क्षयाहस्तदिनं भवेत् ॥” इति ।

- १५ सर्वाज्ञाने संस्कारकालीनमासपक्षतिथयो ग्राह्या इत्यर्थः । तत्राषाढादीनामन्यतममासो ग्राह्यः । तिथिश्चामावास्या कृष्णैकादशी च पूर्वोक्ता ग्राह्या । कृष्णाष्टम्यामपि दहनं प्रत्याब्धिकं च कार्यमित्याह पराशरः (३१४)—

“देशांतरगतो विप्रः प्रवासात्कालकारितात् । देहनाशमनुप्राप्तस्तित्थिर्न ज्ञायते यदि ॥

“कृष्णाष्टमी त्वमावास्या कृष्णा चैकादशी च या । उदकं पिंडदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ॥” इति ।

- २० तीर्थयात्रादिना केनचिन्निमित्तेन देशांतरगतस्य विप्रस्य चिरकालं बहुदेशपर्यटनादि संपादितायास-
बाहुल्याच्च कापि देहनाशो भवति । अत एव तन्मरणतिथिर्न ज्ञायते मरणवार्ता यदाकदाचि-
च्छ्रुता भवति । तत्र तदीयाशौचस्वीकारो दहनतिलोदकपिंडदानोपक्रमआदिकं चेत्येतदुभयं कृष्णाष्टम्यादितिथिषु तिसृष्विच्छया कस्यांचित्तिथौ कर्तव्यम् । तस्यामेव तिथौ प्रत्याब्धिकं च कर्तव्यम् । द्वादशाहृत्यं च दशाब्दादूर्ध्वं क्रियमाणेऽप्येता एव तिथय इत्यर्थः ।

- २५ कृतौर्ध्वदेहिकस्य पुनरागममने पंचदशाब्दं द्वादशाब्दं वा वार्तानाकर्णने मरणनिश्चया-
दौर्ध्वदेहिके कृते जीवन्यदि समागच्छेत्तदा कर्तव्यमाह बृहस्पतिः—

“जीवन्यदि समागच्छेद्घृतकुंभे नियोज्य तम् । उद्धृत्य स्नापयित्वाऽस्य जातकर्मादि कारयेत् ॥

“द्वादशाहं व्रतं च स्यान्निरात्रमथवाऽस्य तु । स्नात्वोद्धेत तां भार्यामन्यां वा तदभावतः ॥

“अग्नीनाधाय विधिवद्वात्यस्तोमेन यजयेत् ॥

- ३० “तथैन्द्राग्नेन पशुना गिरिं गत्वा च तत्र तु । इष्टिमायुष्मतीं कुर्यादीप्सितांश्च क्रतूस्ततः ॥” इति ।
जातकर्मादीत्यादिशब्देन नामकरणान्नप्राशनचौलानि गृह्यन्ते । व्रतं ब्रह्मचर्यं स्नानं समावर्तनं आयुष्मतीष्टिः ‘अग्नय आयुष्मते पुरोडाशमष्टकपालम्’ इत्याम्नायते ।

पितृमेघसारे—“यदि प्रेतकृत्यसंस्कृतः कश्चिदागच्छेत् घृतपूर्णकुंभे त्रिरात्रमेकरात्रं वा निधाय शुभे लग्ने समुत्थाप्य जातकर्माद्यैर्विधिवत्संस्कृत्य मेखलाजिनदंडभिक्षाचर्याव्रतवर्ज्यं

यथावदुपनीतः कस्मिंश्चिद्विरौ द्वादशाहं त्र्यहं वा नियत उपोष्यागत्य पूर्वभार्या तदभावेऽन्या-
मुद्वहेत् । अथास्मच्चरुणाऽनाहिताग्निमायुष्मत्येष्ट्या आहिताग्निं संस्कुर्यात् ” इति ।

गृह्यपरिशिष्टे—

“य एवाहिताग्नेः पुरोडाशास्त एवानाहिताग्नेश्चरवः ” इति । **कालादर्शोऽपि—**

“यथागच्छेत्पुमान्जीवनपैतृमेधिकसंस्कृतः । घृतकुंभे स्थापयित्वा तमुत्थाप्य शुभक्षणे ॥ १५

“संस्कृतं जातकर्मवैरुपनीतं विधानतः । द्वादशाहं त्रिरात्रं वा विहितोपोषणव्रतम् ॥

“गिरावागत्य पूर्वी वा तदभावेऽपरां स्त्रियम् । ऊढ्वं तं च संस्कुर्याच्चरुणायुष्मतेन च ” ॥ इति ।

आयुष्मदग्निदेवताकेन चरुणा अनाहिताग्निं संस्कुर्यादित्यर्थः । **स्मृत्यन्तरेऽपि—**

“घृतकुंभे निषाद्यैनं त्र्यहमेकाहमेव वा । समुत्थाप्य शुभे लग्ने जातकर्मादि कारयेत् ” ॥ इति ।

आपस्तम्बः “यद्येतस्मिन्कृते पुनरागच्छेद्धृतकुंभादुन्मग्नस्य जातकर्मप्रभृति द्वादशरात्रव्रतं १०

चरित्वा तथैव जाययाग्निनाधाय पूर्वभुक्ताया भार्याया पाणिग्रहणं विधीयते अग्न्याधेयं कुर्वन्ति

व्रात्यपशुना वा यजेत गिरिं वा गत्वा अग्नये कामायेष्टिं निर्वपेदीप्सितैः क्रतुभिर्यजेत् ” इति ।

शौनकः—

“दहनादिसर्पिंश्च्यते कृते सत्यागते पुनः । यज्ञकाष्ठान्मथित्वाऽग्निं कृत्वा चाग्निमुखं तथा ॥

“विष्णुर्योनिमिति द्वाभ्यां चरुं हुत्वा यथाविधि । हुत्वा पुरुषसूक्तेन स्त्रुवेणाज्येन प्रत्युचम् ॥ १५

“आश्वलायनगृह्येण कृत्वा पुंसवनादिकम् । विवाहमपि कुर्वीत पूर्वया भार्यया सह ॥

“आधानं पूर्ववत्कृत्वा सायंप्रातर्हुतं तथा । सदृशपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वा विष्णुं सदा स्मरेत् ॥ इति ।

आश्वलायनः—“उपेतपूर्वस्य कृताकृतं केशवपनं मेधाजननं चानिरुक्तं परिदानं कालश्च

तत्सवितुर्वृणीमह इति सावित्री ” इति । **बोधायनः—**

“वपनं मेखलादंडौ भैशाचर्यवतानि च । निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ” ॥ इति । २०

पुनःसंस्कारः पुनरुपनयनम् । पुनर्विवाहविषये **स्मृत्यन्तरम्—**

“न दानं नैव वरणं न प्रतिग्रहणं तथा । त्रिरात्रं च व्रतं न स्यात्पुनरुद्वाहकर्मणि ” ॥ इति ।

एकस्मिन्नेव दिने शेषहोमांतं कर्तव्यमित्यर्थः ।

पुनःसंस्कारकालः । नारदः—“मृत्यनंतरतो नृणां बलिर्दातुं न शक्यते ।

“यैः कैश्चित्कारणैर्विद्वान्दद्यात्तत्र बलिं क्रमात् । प्रोष्ठपन्मासि माघे वा बलिं दद्याद्यथोदितम् ” ॥ इति । २५

स्मृत्यन्तरे तु—

“अकालमरणे मुक्त्वा षाण्मासात्कुंभकार्मुकौ । कन्याकुलीरप्रातेऽर्के पुनःसंस्कार इष्यते ” ॥ इति ।

अकालमरणं दुर्मरणम् । **अन्यत्रापि—**

“आषाढप्रोष्ठपान्माघांमार्गशीर्षा विशेषतः । चत्वार ईरिता मासाः पुनःसंस्कारकर्मणि ” ॥ इति ।

चापमासस्य निषेधमाह **गार्ग्यः—**

“रवौ चापगते नृणां पुनःसंस्कारकर्म चेत् । पितरो नरकं यान्ति कर्ता तु क्षयमश्नुते ” ॥ इति ।

अन्यच्च—

“दुष्टेष्वेतेषु मासेषु पुनःसंस्कारकर्म चेत् । आत्मस्त्रीपुत्रवित्तानां हानिर्भवति हि ध्रुवम् ” ॥ इति ।

एतेषु कर्कटकन्याकुंभमासव्यतिरिक्तमासेष्वित्यर्थः । नक्षत्रादीन्याह **गार्ग्यः—**

“अनूराधे च मूले च श्रविष्ठावारुणे तथा । हस्ते च त्वाष्ट्रनक्षत्रे पुनःसंस्कारमाचरेत् ॥
 “कुजवारे च सौरे च जीववारे च भार्गवे । नंदायां चैव भद्रायां रिक्तायां पर्वणोस्तथा ॥
 “न कुर्यात्पुनःसंस्कारं कुर्याच्चेत्कुलनाशनम् ” ॥ इति ।

बृहस्पतिः—

५ “कन्यां कुम्भगते सूर्ये कृष्णपक्षे विशेषतः । पंचम्याः परतः श्रेष्ठा आ पंचम्याः सितेऽपि च” ॥ इति ।
 बृहस्पतिः—

“कृष्णपक्षः शुभः प्रोक्तः पंचम्यापरतस्तथा । अंत्यत्रिविभागः शस्तः स्याद्विशेषात्प्रेतकर्मणि ॥
 “आद्यभागे च कर्तव्यं सितपक्षे च संकटे ” ॥ इति । संकटो विहितकालालाभः ॥
 स्मृत्यंतरे—

१० “अब्दादुपरि संस्कार उत्तरायणमिष्यते । सर्वदा कृष्णपक्षः स्यात्पुनःसंस्कारकर्मणि ” ॥ इति ।
 गार्ग्यः—

“चित्रा श्रविष्ठा हस्तश्च स्वाती श्रवणमश्वयुक् । मघा मैत्रं च तिष्यं च वारुणं सोमदैवतम् ॥
 “एकादशैताः कथिताः प्रशस्ताः प्रेतकर्मणि । प्रेताधिपतिदेवत्वाद्भरणी कैश्चिदिष्यते ॥
 “ज्येष्ठा च मंगलाभावात् संकटेषु तयोः क्रिया ” ॥ इति ।

१५ श्रीधरीये— “भरणी यमदेवत्वात्प्रशस्तात्प्रेतकर्मणि । अमंगलसमग्रत्वाज्ज्येष्ठाऽप्यत्र विधीयते ॥
 “नंदायां भार्गवादिने चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु । कुर्वतः प्रेतकार्याणि कुलक्षयकराणि तु ” ॥
 वसिष्ठश्च—

“आग्नेयमार्द्रा सार्पं च त्रयः पूर्वाश्च नैर्ऋतम् । ज्येष्ठा च भरणी चैव निदितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥
 “एतत्सर्वमतिक्रान्ते तत्काले न तु दोषकृत् ” ॥ इति । पञ्चतौ—

२० “नंदां भद्रां कलितिथिमिलापुत्रशुक्रार्थवारान्नक्षत्रं च त्रिपदममराचार्यशुक्रेन्दुलग्नम् ॥
 “त्यक्त्वा पापग्रहबलवशात्प्रेतकार्याणि सर्वाण्याहुर्दोषो न हि बहुमतः प्राप्तकाले भृतस्य ” ॥ इति ।
 कलितिथिः चतुर्दशी । इलापुत्रः भौमः । आर्यः बृहस्पतिः ।

तत्रैव— “नक्षत्राण्यमृतान्याहुरास्थिताः शुभैर्ग्रहैः । शुक्रवीक्षितराश्यादि किञ्चित्सर्वं विगर्हितम् ” ॥

“सर्वदा शुक्रवारगुरुवारश्च गर्हितः” । इति अतीतपिंडोदकास्थिसंचयनादौ प्रातिस्विकनिषेधोऽपि

२५ तत्र तत्रोक्तः । स्मृत्यंतरे—

“प्रत्यक्षमरणे पित्रोर्न पश्येत्तिथिवारभम् । परोक्षे सूक्ष्मतः पश्येत्स्वजन्मतिथिवारभम् ॥

“अन्येषां नातिदोषः स्यात्प्रत्यक्षमरणे नृणाम् ” ॥ इति । अन्यत्रापि—

“जन्मत्रयं संचयने श्राद्धे च दहने पितुः । नैव दोषावहं प्रोक्तमन्येषामपि सर्वदा ” ॥ इति ।

अन्येषां पिबृव्यतिरिक्तानामपि तत्काले दहनादिप्रेतकृत्येषु न दोष इत्यर्थः । यदि कालादिक्रमे

३० प्रेतकृत्यं चिकीर्षेत्तत्र तिथिवारादिकं सूक्ष्मतः पश्येत् । तदाह गार्ग्यः—

“प्राप्तकालमतिक्रम्य कुर्याद्यदि बलिक्रियाम् । तस्यैव वारनक्षत्रातिथिराश्यांशकादयः ” ॥ इति ।

संग्रहेऽपि—

“अधमासे हरेः सुप्तौ मौढ्ये च गुरुशुक्रयोः । नातीतपितृमेधः स्यात् गंगां गोदावरीं विना ” ॥

अन्यच्च—

“सुरासुरगुरोर्मौढे कृष्णस्वापे मलिम्लुचे । नातीतपितृमेधः स्यात्तत्काले न तु दोषकृत्” ॥ कृष्णस्वाप इति कन्याकर्मकटव्यतिरिक्तविषयम् । “कन्या कुलीरे प्राप्तेऽर्के पुनःसंस्कार इष्यते” इति शृंगगाहितया तत्रातीतप्रेतकार्यविधानात् ।

सर्वोऽपि निषेधस्त्रिपक्षादूर्ध्वविषयः । संग्रहकारः—

“अर्वाक् त्रिपक्षात् प्रेतस्य पुनर्दहनकर्मणि । न कालनियमो ज्ञेयो न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः” ॥ इति ।

ततश्च त्रिपक्षादर्वाकपुनर्दहनकर्म मृतिश्रवणदिने कार्यमिति सिद्धम् । यत्तु स्मृत्यन्तरवचनम्—

“प्रेतस्य वत्सरादर्वाग्यदा संस्कारमिच्छति । न कालनियमो ज्ञेयो न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः” ॥ इति ।

अत्र संस्कारशब्दः सपिण्डीकरणविषयः न पुनःसंस्कारवाचीति व्याख्यातारः ।

स्मृतिसंग्रहे—“पुनर्दाहे दिनं शोध्यमाशौचात्परतो बुधैः । नन्दात्रयोदशी शुक्रशनिवारौ च वर्जयेत् ॥ १०

“पातान्त्यपरिधान् घोरान् विष्टि चैव विवर्जयेत्” ॥ इति ।

पुनः संस्कारादौ विहितकालातिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्तं स्मृत्यन्तरे—

“संस्काराणां तु सर्वेषां कालो यद्यतिपद्यते । प्राजापत्यं चरेन्मासे ततोऽप्येव प्रकल्पयेत्” ॥ इति ।

मासद्वये प्राजापत्यद्वयम् । एवं मासत्रयादौ कल्प्यम् । मासाभ्यन्तरेऽपि प्राजापत्यं कर्तव्यम् ।

तथा स्मृत्यर्थसारे—“निमित्तश्चाद्धे हीने संस्कारकालातिक्रमे च प्राजापत्यं कुर्यात्” इति । ११

दशाहमध्ये ज्ञातिमरणे संस्कर्तुर्विशेषः । दशाहमध्ये पुनर्ज्ञातिमरणे संस्कर्तुर्विशेषमाह

नारदः—

“अन्तर्दशौहे चेत्कर्तुः पुनः प्रेतस्य संस्कृतिः । तस्माच्छुद्धिः पूर्वशेषादेकाद्विष्टं यथोदितम्” ॥ इति ।

अन्तर्दशौहे चेत्कर्तुरिति स्मरणात् त्र्यहयाशौचमध्ये दशाहाशौचिदाहे पूर्वेण न समाप्तिरिति गम्यते ।

हारीतोऽपि—

“दाहकार्यद्वयं स्याच्चेत्कर्तुर्नैक्ये विशेषतः । तोयं पिष्टं समाप्येत पूर्वणैव द्वितीयकम्” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

“अन्तर्दशौहे तत्कर्तुः पुनः प्रेतस्य कर्मणि । पूर्वणैव समाप्तिः स्यादेकोद्विष्टं यथोदितम्” ॥ इति ।

तत्तदेकादशदिने एकोद्विष्टमित्यर्थः । अन्यत्रापि—

“कर्ता दशाहे प्रेतस्य शवदाहं चरेत्पुनः । पूर्वण शुद्धिः स्यादेव पित्रोरन्यत्र तद्भवेत्” ॥ इति । २५

तथा चांगिराः—

“दाहकस्त्वा दशाहात्तु शवदाहं चरेद्यदि । पूर्वणैव विशुद्धिः स्यात्पित्रोस्तद्विवसाद्भवेत्” ॥

संग्रहे च—

“पित्रान्यनंतरानेकान्दग्ध्वा पूर्वाघतः शुचिः । पितरौ च दहेत्तत्र दशाहाच्छुद्धिरभिदे” ॥ इति ।

दक्षः—“मृताशौचनिमित्ते द्वे दहनं मरणं तथा । ज्ञातीनां मरणादेव दहनाद्दाहकस्य तु ॥ ३०

“अन्यं दग्ध्वा दशाहांतः शुद्धिः पूर्वाघशेषतः” ॥ इति ।

संवर्तः—

“पूर्वकर्ता दशाहं तु पितरौ चेद्दहेत्पुनः । पूर्वण शुद्धिर्नैव स्यात्पित्रोस्तद्विवसाद्भवेत्” ॥ इति ।

एवं च ज्ञात्यघमध्ये ज्ञातिदाहे कुते सति दाहकस्य दाहादिदशाहेन उदकपिष्टदानसमाप्तिः ।

दाहादिदशाहमाशौचं च । दाहकव्यतिरिक्तसपिंडानां पूर्वायशेषत एव शुद्धिरुदकसमाप्तिश्च । दाहकस्य पुनर्जात्यंतरदाहे पूर्वदाहादिदशाहशेषेण एव शुद्धिः । दशमदिने तदन्त्ययामे वा दाहे सति 'अहःशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः' इति स्मरणात् पूर्वदशाहानंतरं द्वित्रिदिनाशौचस्य सत्वेन तदाशौचान्ते उदकादिसमाप्तिः । "अशौचांते तैतः सम्यक् पिंडदानं समाप्यते" इति ५ मरीचिस्मरणात् । एकोद्दिष्टं तत्तदेकादशाहे 'एकोद्दिष्टमशुद्धोऽपि' इति स्मरणात् । सपिंडीकरणं तु त्रिपक्षे कार्यम् । दशाहात्पूर्वमृतौ दाहकस्य सपिंडस्य द्वादशदिने आशौचाभावेऽपि आद्यश्राद्धपर्यन्तस्य एककर्मत्वात् पश्चान्मृतैकोद्दिष्टात्पूर्वं पूर्वमृतस्य द्वादशाहे सपिंड्यं न कार्यम् । पित्रोस्तु दाहे दाहकस्यान्येषामपि पुत्राणां पितृमरणादिदशाहेनैव शुद्धिरुदकदानादिसमाप्तिश्च न पूर्वदाहकदशाहशेषेणेति । दीपिकायां तु—

१० "जनकस्य जनन्याश्च भार्याया भर्तुरेव च । पुत्रस्य दुहितुश्चैव जनने मरणेऽपि च ॥

"स्वकालेनैव शुद्धिः स्यात् शेषं न्यायो न विद्यते" ॥ इति । ज्ञात्यधमध्ये पुत्रजनने पित्रोर्दशाहत एव शुद्धिः । भार्यादिमरणे तत्प्रातियोगिनामपि स्वकालत एव शुद्धिः । न पूर्वशेषेणेत्यर्थः ।

अन्तर्दशाहे मातापितृमरणसंनिपाते । मातापितृमरणयोरन्यदिनात् पूर्वं अन्त्यदिने

५ वा मिथः संनिपाते विशेषमाह शंखः—

"मातर्यग्रे प्रमीतायामशुद्धे म्रियते पिता । पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पक्षिणीम्" ॥ मात्राशौचमध्ये पितृमरणे सति पितृदशाहेन शुद्धिः पित्राशौचमध्ये मात्राशौचसंनिपाते पूर्वाशौचानन्तरं मात्राशौचं पक्षिणीमात्रमुदकादिकं च कुर्यादित्यर्थः । तथा च स्मृत्यंतरे—

"मात्राशौचस्य मध्ये तु पिता च म्रियते यदि । पितृमरणमारभ्य पुत्राणां दशरात्रकम् ॥

१० "पित्राशौचस्य मध्ये तु यदि माता प्रमीयते । दशाहात्पैतृकादूर्ध्वं मात्रवं पक्षिणी भवेत्" ॥ इति । मातर्यग्रे प्रमीतायां तदाशौचमध्ये यदि पित्रा म्रियेत तदा पितृमरणादिनमारभ्य दशाहत एव उदकदानादिप्रेतकृत्यं पित्र्यं निर्वर्त्य पितृमरणाद्येकादशदिने आद्यश्राद्धं कुर्यात् । पित्राशौचमध्ये मातृमरणाद्येकादशदिने मातुराद्यश्राद्धं अशुद्धोऽपि कुर्यात्

"आद्यश्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादिकादशेऽहनि । कर्तुंस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः" ॥ इति

२५ देवलस्मरणात् । पितर्यग्रे मृते सति तदाशौचमध्ये यदि माता म्रियते तदा

"जनकस्य मृतेर्मध्ये जननी मरणं यदि । पित्राशौचं समाप्तिः स्यान्मात्राशौचं तु पक्षिणीम्" ॥ इति पित्राशौचांत्यदिन एव मातुरपि पिंडोदकसमाप्तिस्मरणात् । पित्राशौचमध्ये मातुरपि दशाहकृत्यं परिसमाप्य पितुरेकादशदिने आद्यश्राद्धं निर्वर्त्य पित्राशौचानंतरमपि मातुः पक्षिण्याशौचमनुष्ठाय मातृमरणाद्येकादशदिने तस्या आद्यश्राद्धं कुर्यात् । ननु

३० "आशौचांते ततः सम्यक्पिंडदानं समाप्यते । ततः श्राद्धं प्रदातव्यं सर्ववर्णेष्वयं विधिः" ॥ इति मरीचिस्मरणात् । तथा "आशौचापगमे एकोद्दिष्टम्" इति विष्णुवचनाच्च मातुः पक्षिण्याशौचानंतरदिने एकोद्दिष्टं कर्तव्यमिति चेन्न "एकोद्दिष्टं यथोदितम्" इति स्मरणात् । तथा च माधवीयकालादर्शादौ ततः आशौचानंतरमेकादशेऽहनि ब्राह्मण एकोद्दिष्टश्राद्धं कुर्यादिति मरीच्यादिवचनार्थोऽभिहितः । तथा च पैठीनसिः—

३५ "एकादशेऽहनि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् । चतुर्णामपि वर्णानां सूतकं तु पृथक्पृथक्" ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यश्च (आ. २५६)—

“ मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् । प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि ” ॥ इति ।
अतः पितृमृतिदशाहमध्ये मातृमरणे पितृदशाहानंतरं पक्षिण्याशौचमनुष्ठाय मातृमरणाद्येकादशाहे
मातुरेकोद्दिष्टमिति निर्णयः । पूर्वमृतयोः पित्रोः त्रिपक्षे सापिण्डीकरणविधिः । सापिण्डीकरणं तु
पूर्वमृतयोर्द्वयोरपि त्रिपक्षे कार्यम् । तथा च द्वादशाहे सापिण्ड्यं निषेधति लौगाक्षिः—

“ पितर्युपरते पुत्रो मातुः श्राद्धं निवर्तयेत् । मातुर्यपि च वृत्तायां पितुः श्राद्धं निवर्तयेत् ” ॥
मात्राशौचमध्ये पितरि मृते मातुः श्राद्धं सापिण्डीकरणं द्वादशाहे न कुर्यात् । पितुस्तु तद्द्वादशाहे कुर्यात् ।
“ मातुर्दशाहमध्ये तु पिता यस्य प्रमीयते । पैतृकं तु यथाकालं पितुः सर्वं समापयेत् ॥
“ततो मातुस्त्रिपक्षादौ शेषं कर्म समाचरेत्” इति स्मरणात् । तथा पितृदशाहमध्ये मातृमृतौ पितुः
सापिण्ड्यं निवर्तयेत् । द्वादशाहे न कुर्यात् । किंतु त्रिपक्ष एव मातुः सापिण्ड्यं पक्षिण्याशौचाप- १०
गमे द्वादशाहे कुर्यादित्यर्थः । देवलोऽपि—

“ एकाग्रमरणे पित्रोरन्यस्यान्यदिने मृतौ । सापिण्डनं त्रिपक्षे स्यादनुयानमृतिं विना ” ॥ इति ।
पित्रोरेकस्याग्रे मृतौ अन्यस्यान्यदिने मृतौ पूर्वमृतस्य पूर्वमृताया वा सापिण्ड्यं त्रिपक्षे कुर्यात् ।
अनुयानमृतिं विना अनुमरणं विनेत्यर्थः ।

अनुमरणे सापिण्ड्यकालः । अनुमरणे तु पतिर्मरणदिनादुत्तरदिनमरणे तद्द्वादशाह एव १५
सापिण्ड्यं कुर्यात् । तथा च कालादर्शः—

“ पित्रोः संघातमरणे मातुरन्यत्र वा दिने । अनुयानमृतौ श्राद्धं यथाकालं समाचरेत् ” ॥ इति ।
दिनान्तरे मातुरनुमरणे द्वादशाहं सापिण्ड्यं कुर्यादित्यर्थः । पितृमेधसारेऽपि—“ संघातानुमृत्यो-
रन्यत्र न पित्रोस्तंत्रतः कुर्यान्नान्यैः सह वा पित्राशौचे माता मात्राशौचे पिता वा संस्थितः
सन्मृतिः पूर्वं स्यात्तत्सापिण्ड्यं त्रिपक्ष एवेति देवल ” इति । तथैवैकाग्रमरणे पित्रोरिति देवलवचनं २०
तेन व्याख्यातम् । पित्रोरन्यतरद्वादशाहमध्येऽन्यतरमृतौ पूर्वमृतस्य पूर्वमृताया वा सापिण्डनं त्रिपक्ष
एव भवति । अनुमरणे तु पितृद्वादशाहे सहैवेत्यर्थः । इति ।

दम्पत्योः सहमृतौ क्रमः । यदि दंपत्योः सह मृतिः स्यात्प्राक्दाहाद्वाऽन्यतरमृतिः
स्यात्तदा सहैव दाहादिक्रियाः कुर्यात् । यदाह हारीतः—

“दंपत्योः सह मृत्यौ तु सह दाहादिकाः क्रियाः । प्राग्दाहाद्यग्निनाशे च तद्वर्ध्वं तु पृथक् क्रिया ” ॥ इति । २५
त्रिकांडी च—

“ मृते भर्तरि दाहात्प्राक् तत्पत्नी च मृता यदि । पत्न्यां वा प्राक् प्रमीतायां दाहादर्वाक्पतिमृतः ॥

“ तत्र तंत्रेण दाहः स्यात् तन्मंत्रे द्वित्वमूहयेत् ” ॥ पुलस्त्यः—

“ दुर्मृतः सुमृतो वापि पिताग्रे यद्यसंस्कृतः । कालान्तरे मृता माता तस्या दाहादिकाः क्रियाः ॥

“ पत्या सहैकचित्यां तु दहेदौपासनादुभौ ” ॥ इति । स्मृत्यंतरेऽपि—

“दम्पत्योः सह मृत्यौ तु पितृमेधक्रिया सह । कुंडमेकं पृथक्पिंडे जलांजलिशिला मता ” ॥ इति ।

संश्रहेऽपि—

“ एककाले मृतौ पित्रोः पितृमेधक्रिया सह । उदकं पिण्डदानं च श्राद्धं कुर्यात्पृथक् पृथक् ॥

“ सापिण्डीकरणं चैव सहैव पृथगेव वा । एकगते जले दद्याच्छ्राद्धं चैकदिने द्वयोः ॥

“सह चर्माधिरोहश्च शांतिहोमं समाचरेत् । तंत्रेण श्रवणं कुर्यात् श्राद्धं कुर्यात्पृथक् पृथक् ॥
“तत्र द्वयोर्निमित्तौ द्वौ ब्राह्मणावितरैः सह ” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—“दंपत्योः सह संस्कारो मृतावनुमृतावपि ।

“उदकादिसपिंडांतं प्रेतकार्याणि यान्यपि । कुर्यात्समानतंत्रेण सांवत्सरिकमेव च ” ॥ इति ।

५ संग्रहे च सांवत्सरिकस्य समानतंत्रत्वस्मरणमापद्विषयम् । तदग्रे वक्ष्यते । अन्यत्रापि—

“प्रदक्षिणमुपस्थानं चरुकार्यं चितिस्तथा । संचयस्तर्पणं गर्तः सपिंडीकरणं सह ” ॥ इति ।

संग्रहे च—

“पित्रा सहैव मातुश्च मात्रा सह पितुस्तथा । सपिंडचं तनयैः कार्यं निमित्तार्थं पृथग्भवेत् ” ॥ इति ।

तथा—

१० “समानपिंडयोगानां सपिंडीकरणं सह । तंत्रेण पितृवर्गस्य निमित्तं प्रतिपूरुषम् ” ॥ इति
बहुस्मृतिसंमतत्वात्सपिंडीकरणमपि सहैव कर्तव्यम् । अतः पृथगेवेत्येदनादरणीयम् । निमित्तो-
द्देशेन क्रियमाणं प्रेतैकप्रयोजननिमित्तभोजनं पृथग्भवति । एतच्चोपलक्षणम् । श्रुतृष्णानिवर्तकं
जलांजलिपिंडप्रदानसोदककुंभश्राद्धनवश्राद्धैकोत्तरवृद्धिश्राद्धषोडशश्राद्धवृषोत्सर्गादिकं प्रेतवृत्तिकरं
प्रेतहोमार्घ्यभोजनपिण्डदानदक्षिणादिकं च पृथक् कर्तव्यम् । तंत्रोपकारकं चितिकुंडशान्तिहोम-

१५ पाकवैश्वदेवपितृविष्णुवरणादिकं पृथक् न कर्तव्यम् । तथा चांगिराः—

“दंपत्योः सह मृत्यौ तु सह स्याद्बह्वह्निक्रिया । पृथक्पिण्डोदकादीनि यथाविधि समाचरेत् ॥

“चरुकुंडचिताशांतिसंचयान् तंत्रतश्चरेत् । अग्निं श्रवणहोमौ चेत्युपस्थानं च तंत्रतः ” ॥ इति ।

पितृमेघसारेऽपि—“हिरण्यकलशनग्नप्रच्छादनवासस्तिलोदकपिंडैकोत्तरवृद्धिनवश्राद्धसोदकुंभ-
वृषोत्सर्गषोडशश्राद्धानीति पृथक्पृथक्भवन्ति । चरुकुंडं चितिः कुंडमस्थिसंचयनं शान्तिहोमश्च

२० तंत्रम् । एकोद्दिष्टसपिंडीकरणादिषु निमित्तवरणहोमौ पृथग्भवतः । पाकहोमवैश्वदेवतादि तंत्रम् ” इति ।

यमः—“अस्थिसंचयनाद्वर्गभर्तुः पत्नी मृता यदि । तस्मिन्नेवानले दाह्या यदि चाग्निर्न शाम्यति ॥

“उदकादि सपिंड्यंतं तयोः कार्यं सहैव तु । शांतेऽग्नौ पुनरेवास्याः पृथक् चित्यादि कारयेत् ” ॥ इति ।

पितामहपितामह्योर्मरणेऽपि सह संस्कारादिकमाह संवर्तः—

“पितामहो यस्य मृतः चिरकालमसंस्कृतः । पितामही च प्रमीता तयोर्दाहादिकं सह ” ॥ इति ।

२५ हिरण्यशकलनिधानादिकं सर्वं पितुः पूर्वं कृत्वा प्राक्मृताया अपि मातुः पश्चात् कुर्यात् ।

तथा च काष्णाजिनिः—

“पित्रोः श्राद्धे समं प्राप्ते नवे पर्युषितेऽपि वा । पितुः पूर्वं सुतः कुर्यादन्यत्रासत्तियोगतः ” ॥ इति ।

अत्रासत्तियहणं दाहाद्युपलक्षणम् । तत्पूर्वकत्वाच्छ्राद्धस्य अन्यत्रासत्तियोगतः पितृभ्यामन्यत्र
ज्ञात्यादिषु आसत्तियोगतः प्रत्यासत्तिक्रमात्कुर्यादित्यर्थः ।

३० पितृव्यतिरिक्तानां संघातमरणे दाहादिक्रमः । अत्र ऋष्यशृंगश्च—

“भवेद्यदि सपिंडानां युगपन्मरणं तदा । संबंधासक्तिमालोच्य तत्क्रमाच्छ्राद्धमाचरेत् ” ॥ इति ।

स्मृतिरत्नेऽपि—

“सकुन्निभ्यते बहवः कर्ता चैकस्तथैव च । अंतरंगक्रमेणैषामुदकादि समाचरेत् ” ॥ इति ।

कालादर्श—

“पत्नीभ्रातृसुतादीनां सपिंडानां यदि क्रमात् । संघातमरणं तत्र तत्क्रमाच्छ्रान्दमाचरेत् ॥
“युगपन्मरणं तत्र संबंधासत्तियोगतः” ॥ इति । आदिशब्देन पुत्रपौत्रभ्रातृपुत्रस्नुषास्वसृणां ग्रहणम् ।
पत्न्यादीनां मध्ये बहूनां द्वयोर्वा एकस्मिन्दिने संघातमरणं यदि स्यात् तत्र तत्क्रमान्मरणक्रमा-
दाहादिकं कुर्यात् ।
“कृत्वा पूर्वमृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः । तृतीयस्य ततः कुर्यात् संनिपाते त्वयं क्रमः” ॥ इति ५
ऋष्यशृंगस्मरणात् ।

पत्न्यादीनां सपिंडानां युगपन्मरणं यदि स्यात्तत्र संबंधस्यासत्तिवशात्क्रमेण श्रान्दं कुर्यात् ।
पत्नीपतिलक्षणसंबंधस्यासन्नत्वात्पत्न्याः प्रथमं कुर्यात् । अनंतरमुभयप्रतियोगिकसंबन्धभाजः
पुत्रस्य अनंतरं पितृव्यवहितसंबंधभाजः पौत्रस्य तदनंतरं भ्रातुः । अत्र पौत्रभ्रात्रोर्यद्यपि पितृव्यवधानं १०
समानं तथापि पौत्रस्य स्वशरीरावयवान्वयस्य विद्यमानत्वाद्भ्रातृतोऽपि प्रत्यासत्तिः । ततो भ्रातृ-
पुत्रस्य ततः पुत्रद्वारासंबंधभाजः स्नुषायाः । तदनुगोत्रान्तरप्रवेशेन व्यवधानभाजः स्वसुः । एवं च
एकस्मिन्दिने क्रमेणैतेषां संघातमरणे मृतिक्रमेण दाहादिकाः क्रियाः पृथक्कुर्यात् । युगपन्मरणे तु
उक्तसंबंधक्रमेण दाहादिकं पृथक्कुर्यादिति कालादर्शीटीकायां व्याख्यातम् । स्मृतिरत्ने मरणानु-
क्रमपरिज्ञाने मृतिक्रमेण तदपरिज्ञाने संबंधासत्तिक्रमेणेति व्यवस्था दर्शिता । तथा च तत्रैव— १५
“अंतरंगक्रमेणैषामुदकादि समाचरेत् । मरणं क्रमशो दृष्ट्वा मरणानुक्रमेण तु ॥

“समानमिदमुद्दिष्टमन्येषामग्रजं विना । अन्येषामग्रजस्यापि समवायेऽग्रजः प्रभुः ॥

“अग्रजस्यापि पित्रोश्च संपाते पितरौ प्रभू” ॥ इति ।

मृतिक्रमापरिज्ञाने संबंधासत्त्यपरिज्ञाने च वयोधिकसपिंडादेर्दाहादिक्रियाः प्रथमतः कार्याः

“यथेककाले पुरतः संस्कार्यास्तु वयोऽधिकाः । बहुत्वेऽप्येवमेव स्यादुदकं च दिने दिने” ॥ इति २०
स्मरणात् । अनेन पुरतः संस्कारविधानात् मातापितृव्यतिरिक्तानां सर्वेषां दाहादिकृत्यं सपिंडी-
करणं च सर्वं पृथक्पृथगेवेत्युक्तं भवति । तथा च देवलः—

“पित्रोरुपरतौ पुत्रः श्रान्दं कुर्यात् द्वयोरपि । अनुवृत्तौ च नान्धेषां संघातमरणेऽपि च” ॥ इति ।

पित्रोर्मरणे अनुमरणविषये संघातमरणे च दाहादिकं सहैव कुर्यात् । अन्येषां संघातमरणे सह न
कुर्यादित्यर्थः । अन्ये तु ज्ञात्यादिसंघातमृतिविषये सहैव दाहादिक्रियां वदन्तः स्मृत्यन्तर- २५
मुदाहरन्ति—

“स्मृतानामेकवंश्यानामेको यदि च दाहकः । एकस्मिन् दिवसे कुर्यादेकचित्यां समाहितः” ॥ इति ।

अन्यच्च—

“एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः । एककुण्डे शिलाभेदे तेषां पिण्डं पृथक् पृथक् ॥

“सपिण्डीकरणं तेषां सहैव पृथगेव वा । निमित्तार्थं पृथक्कुर्यादन्यत्सर्वं सह क्रिया” ॥ इति । ३०

सहसापिण्ड्यमेकोद्देश्यत्वविषयम्

“समानपिण्डयोगानां सपिण्डीकरणं सह । निमित्तपिण्डमेकैकं दत्त्वा तैः संमृजेत्क्रमात्” ॥ इति

स्मरणात् । पितृमेधसारे—“यद्यनेकेषामेकदिने मृतिः स्यात्पत्नीपुत्रपौत्रभ्रातृतपुत्रस्नुषास्वसृणां
संख्यातक्रमादाहादिक्रियाः पृथक् पृथक् कुर्यादन्येषां मृतिक्रमात्” इति ।

तत्रैव—

“पत्न्यादीनामन्येषां च संघातमरणे पत्न्यादिपूर्वमन्येषामुभयेषामपि पितृपूर्वं पित्रोर्मृताब्दे पत्न्यादि-
सापिण्ड्यं त्रिपक्षे ” इति । लोकाक्षिः— “ पित्रोर्द्वयोर्दशाह एव सापिण्ड्यमन्येषामेकोद्दिष्टान्तं
कृत्वा तत्तद्वत्सरान्ते मासिकैः सह सापिण्ड्यं कुर्यात् इति भृगुः ” । पत्न्यादीनां तद्यति-
५ रिक्तानां च मृतौ पूर्वोक्तन्यायेन पत्न्यादीनां पूर्वं कृत्वा तद्यतिरिक्तानां पश्चान्मृत्तिक्रमेण कुर्यात् ।
पित्रोः पत्न्यादीनां तद्यतिरिक्तानां च संघातमरणे पितृपूर्वं पत्न्यादीनां कुर्यात् । ‘ पितृपूर्वं सुतः
कुर्यादन्यत्रासत्तियोगतः ’ इति । लोकाक्षिः— ‘ पत्नीपुत्रस्नुषापौत्रभ्रातृतत्पुत्रका अपि ।
“ पितरौ च यदैकस्मिन्त्रियेरन् वासरे तदा । आद्यमेकादशे कुर्यात् त्रिपक्षे तु सापिण्डनम् ” ॥ इति ।

अत्र व्यवस्थामाह वृद्धहारीतः—

१० “संघातमरणे पित्रोर्द्वादशाहे सपिण्डनम् । कुर्यात्पुत्रस्तदन्येषां त्रिपक्षे कारयेद्बुधः” ॥ अन्येषां पत्न्या-
दीनामित्यर्थः । तेषामेव मातापितृमृतिवत्सरमध्ये त्रिपक्षादौ सापिण्ड्यं विदधाति ऋष्यशृङ्गः—
“ पत्न्याः पुत्रस्य तत्पुत्रभ्रात्रोस्तत्तनयस्य च । स्नुषास्वस्रोश्च पित्रोश्च संघातमरणं यदि ॥

“ अर्वागब्दान्मातृपितृपूर्वं सापिण्ड्यमाचरेत् ” ॥ इति । भृगुरपि—

“माता भ्राता च तत्पुत्रः पत्नी पुत्रः स्नुषा स्वसा । एषां मृतौ चरेच्छ्राद्धमन्येषां न पुनः पितुः” ॥ इति ।

१५ पितृर्मृताब्दे एषामेव श्राद्धं सपिंडीकरणं कुर्यात् । नान्येषामित्यर्थः । ऋष्यशृङ्गोक्तपत्न्यादिसप्त-
व्यतिरिक्तानां पित्रोर्मृताब्दे पितृभ्यां सहैकदिने वा मृतानां दाहाद्येकोद्दिष्टान्तं तत्तत्काले मृत्तिक्रमा-
त्कृत्वा तत्तद्वत्सरांतदिने मासिकैः सह सापिण्ड्यं कुर्यात् । अत्र भृगुः—

“ पित्रोर्मृताब्दे श्राद्धांतं कृत्वाऽन्येषां यथाविधि । मासिकैः सह सापिण्ड्यं वत्सरांतं समाचरेत् ” ॥

वत्सरांतं इति नियमात्ततोऽर्वाक् न मासिकानुष्ठानम् । कालादर्शे—

२० “ पत्न्यादीनां च पित्रोश्च संघातमरणं यदि । अर्वाक्संवत्सरात्पित्रोः सापिण्ड्यं न समाचरेत् ॥

“ संघातमरणेऽन्येषां पित्रोश्च दहनादिकम् । कृत्वा संवत्सरस्यांतं कुर्वीत सह पिण्डनम् ” ॥ इति ।

तथा देवलः—

“ महागुरुनिपाते तु प्रेतकार्यं यथाविधि । कुर्यात्संवत्सरादर्वाग् नैकोद्दिष्टं न पार्वणम् ” ॥

पित्रोर्मृतौ संवत्सरादर्वाक्पत्न्यादिव्यतिरिक्तानां प्रेतकार्यं दाहाद्येकोद्दिष्टांताः पूर्वाः क्रियाः
२५ यथाविधि कुर्यात् । एकोद्दिष्टमासिकानि पार्वणं सपिंडीकरणं च न कुर्यादित्यर्थः । एतदेवाभि-
प्रेत्य स्मृत्यंतरे—

“ पितरौ प्रमीतौ यस्य देहस्तस्यांशुचिर्भवेत् । न दैवं नापि पित्र्यं च यावत्पूर्णे न वत्सरः ” ॥

लौकाक्षिरपि—

“ अन्येषां प्रेतकार्याणि महागुरुनिपातने । कुर्यात्संवत्सरादर्वाक् श्राद्धमेकं तु वर्जयेत् ” ॥ श्राद्धं

३० मासिकं सपिंडीकरणम् । ननु

“ पत्नी चैव सुतो भ्राता स्नुषा चैव विपद्यते । तत्र श्राद्धानि कुर्वीत न पित्रोर्मृतयोरपि ” ॥ इति
जाबालिस्मरणात् पत्न्यादीनामपि सापिण्ड्यनिषेध इति चेन्न । द्वादशाहे तन्निषेधपरत्वात्संवत्सरा-
दर्वाक्निषेधपरत्वे त्रिपक्षे तु सपिण्डनमिति लौकाक्ष्यादिवचनविरोधापत्तिः । अतः पत्न्यादीनां
पित्रोर्मृताब्दे पितृसापिण्डनानंतरमरणे तत्तद्द्वादशाहे सपिंडीकरणम् । पत्न्यादीनां पित्रोश्च संघात-

मरणे पत्न्यादीनां त्रिपक्षे । पित्रोस्तु द्वादशाहे । अन्येषां पित्रोर्मृताब्दे मरणे तत्तद्वत्सरांते मासिकानि सपिंडीकरणं चेति निर्णयः ।

अनुमरणविधिः । अनुमरणविषये विष्णुः (अ. २५ सू. ४)—

“ भर्तरि प्रेते ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं वा ” इति ॥ स्मृत्यंतरे च—

“ साध्वीनामेव नारीणामग्निप्रपतनादृते । नान्यो धर्मोऽस्ति विशेषो मृते भर्तरि कर्हिचित् ” ॥ इति । ५
हारीतोऽपि—

“ मातृतः पितृतश्चैव यत्र चैषा प्रदीयते । कुलत्रयं पुनात्येषा भर्तारं याऽनुगच्छति ” ॥ स्मृत्यंतरे—

“ सार्तवा सूतिका वाऽपि भर्तानुमरणोत्सुका । सद्यः शुद्धिमवाप्नोति भर्तुः पापापहारिणी ” ॥

अन्यच्च—

“ बालापत्या तु या नारी सूतिका वा रजस्वला । सर्वासामपि च स्त्रीणां एष साधारणो विधिः ” ॥ इति । १०
यच्चौर्वचनम्

“ बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टार्तव एव च । रजस्वला राजसुते नारोहंति चित्तां शुभे ” ॥ इति । यदपि

“ बालापत्या तु या नारी भर्त्रा सह न सा व्रजेत् । रजस्वला न गच्छेत्तु गर्भं तु गर्भिणी इति ” ॥

अत्र पितृमेधसारकुता व्यवस्थापितं षोडशीग्रहणाग्रहणवत् विधिनिषेधदर्शनात् यद्यपि तुल्य-
विकल्पः प्राप्नोति तथापि भर्तानुमरणोत्सुकेति वचनात् पुत्रक्षेत्रधनधान्यादिमनस्कायाः पातिव्रत्य- १५
धर्महीनायाः संसारदुःखबन्धुनियोगाद्युपाधितो विषण्णाया वा प्रतिषेधो द्रष्टव्यः इति ।

अन्ये तु भर्तानुमरणोत्सुका “ नमस्कृत्य चितारूढं भर्तारं तु प्रसन्नधीः ” “ आरुह्य पत्नी
निधनं गता चेदेकां चितिं निर्मलधीः स्वभर्त्रा ” इत्यादिवचनेषूपोत्तेर्मरणोत्सुका प्रसन्नधीर्निर्मलधी-
रित्यादिपदैर्देहादिवियोगकलंकरहिताया एवानुमरणाधिकारप्रतिपादनात् बालापत्या रजस्वलेत्यादि-
विशेषणोपादानवैयर्थ्यप्रसंगाच्च पितृमेधसारोक्तं न युक्तं निषेधवचनं तु भिन्नचित्या- २०
रोहणविषयं तच्च क्षत्रियादिविषयम् । तथा च क्षत्रियादिस्त्रीणां रजस्वलादीनामनुमरणनिषेधः
“ रजस्वला राजसुता ” इति राजसुतां प्रत्येव तन्निषेधादित्याहुः ।

अपरे तु बालापत्यारजस्वलादेः सामान्येन विधानात्प्रतिषेधाच्च रजस्वलायाः तुल्य-
विकल्पः । भिन्नचित्यारोहणविषयत्वे प्रमाणाभावाद्रजस्वला राजसुता इति राजसुतासंबोधन-
मात्रेण विषयविशेषात्प्रतीतेरित्याहुः । गर्भिण्यास्तु निषेध एव । ततश्च गर्भिणीं विना बालापत्या २५
सूतिका रजस्वला दृष्टार्तवाश्च ब्राह्मण्य एकचित्यारोहणं कुर्युः । सूतिका रजस्वला च तत्तदुक्त-
शुद्धिप्रकारेण शुद्धाः कुर्यात् । यत्तु चंद्रिकायामुक्तम्—

“ भर्तारमनुगच्छन्त्या रज उत्पद्यते यदि । तैलद्रोण्यां विनिक्षिप्य लवणे वा मृतं पतिम् ॥

“ त्रिरात्राद्ग्रहणं कुर्युर्बाधवास्तु तया सह । श्राद्धं चैकदिने कुर्यात् द्वयोरपि हि निर्णयः ” ॥ इति ।

तद्बाधवा इत्यभिधानादपत्यहीनसंस्कृष्टविषयमित्येके । अपरे तु—

“ भर्तारमनुगच्छन्ती पत्नी चेत्सार्तवा यदि । तैलद्रोण्यां विनिक्षिप्य लवणे वा मृतं पतिम् ॥

“ चतुर्थेऽहनि संस्कर्त्यापुत्रादिस्तं सहैतया । शवः पर्युषितस्तस्य प्रायश्चित्तं तदा भवेत् ” ॥

अस्मिन्पक्षेऽप्ययं भर्तुर्देशाहेनापि गच्छन्तीति पुत्रवत्त्वेऽपि चतुर्थेऽहनि पित्रोः संस्कारविधानात्सम-
विकल्प इत्याहुः । स्मृत्यंतरे—

“ मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेत् ज्वलनं गता । न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव शुद्ध्यति ॥

“सार्तावा सूतिका चैव भर्त्रानुमरणोत्सुका । पूर्ववस्त्रं परित्यज्य शवकर्माणि कारयेत् ॥

“सपत्न्योरनुगच्छन्त्योरेका यदि रजस्वला । चतुर्थेऽह्नि सहैवाभ्यां तस्य दाहो विधीयते ॥

“एकचित्यां समारूढा यदि भार्या दिनान्तरे । भर्तुर्मृताहे कर्तव्यमभिन्नं मनुरब्रवीत् ॥” इति ।

वसिष्ठः—

५ “दह्यमानं तु भर्तारं या नारी त्वनुगच्छति । मरणादि भवेच्छ्राद्धं दहनादि तयोर्न तु ॥

“भर्त्रा सहैव शुद्धिः स्याच्छ्राद्धं चैकदिने भवेत् ॥” यत्तु

“या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत् । सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत्” ॥ इति

यदपि—“मृतानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या अनुशासनात्” इत्यादि तत्सर्वमपि ब्राह्मण्या अनुगमन-
निषेधप्रतिपादकवचनं पृथक्चित्यारोहणविषयम् । “पृथक् चितिं समारूढ्य न विप्रा गंतुमर्हति”

१० इति विशेषस्मरणात् । तथा च

हारीतः—

“भर्त्रा सहानुमरणमा चंडालं विधीयते । पृथक् चितिर्वा राजादेर्न विप्रायाः पृथक् चितिः” ॥ इति ।

क्षत्रियादीनां पृथक्चित्यारोहणं देशांतरविषयम् । संनिधौ तु एकचित्यारोहणमेव

“देशांतरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम् । निधायोरसि सञ्चरन् प्रविशेज्जातवेदसम्” ॥ इति

१५ स्मरणात् । इदं च मुमुक्षुविषये त्याज्यमेव । तथा च श्रुतिः—“तस्माद्ध्वेयो न प्रागायुषः स्वः कामी

प्रेयात्” इति । अस्यार्थो विज्ञानेश्वरोणाभिहितः (पृ. २४ पं. १६)—“स्वर्गफलोद्देशेनायुषः

प्रागायुःक्षयो न कर्तव्यो मोक्षार्थिना इति । अतः मोक्षमनिच्छन्त्या स्वर्गार्थिन्या अनुगमनं युक्तम् । इतरकाम्यानुष्ठानवत्” इति । सर्वमेतत्स्त्रीधर्मनिरूपणे सविस्तरमधस्तात्प्रतिपादितम् ।

एकचित्यारोहणक्रमः । एकचित्यारोहणप्राकारस्तु हेमाद्रादावुक्तः—

२० “अथानुमरणे पत्नी स्नात्वा भर्त्रा सहैव तु । पथस्तुरीयमासाद्य सिग्वतैरुपवीज्य च ॥

“नमस्कृत्य चितारूढं भर्तारं तु प्रसन्नधीः । प्रदक्षिणं परीत्याथ भर्तुर्दक्षिणमाविशेत् ॥

“इयं नारीति मंत्रेण शाययेन्मातरं सुतः । ऊहेन वा दहेदूर्ध्वमास्नानात्पतिना समम् ॥

“यद्वा पत्नी तु संकल्प्य प्रयोगे त्वखिले कुते । दह्यमाने पतौ मंत्रान्जपेदूर्ध्वधुणा सह ॥

“पावकं प्रविशेत्तत्र भर्तुश्चोर्ध्वं पृथग्विधिः । उभयोः सह संकल्पः कुंडमेकं पृथक् शिला ॥

२५ “वासस्तिलोदकं पिडं नम्रप्रच्छादनं नम्रम् । षोडशं च वृषोत्सर्गः सोदकुंभं पृथक् पृथक् ॥

“सहचर्माधिरौहश्च सपिंडीकरणं तथा । निमित्तहोमवरणे श्राद्धमेकोत्तरं पृथक् ॥

“वैश्वदेवं च पाकश्च होमोऽन्नाद्यैः सहेष्यते” इति ॥

स्मृत्यन्तरे च—“आरूढ्य पत्नी निधनं गता चेदेकां चितिं निर्मलधीः स्वभर्त्रा ।

“दशाहहोमं श्रपणं च तंत्रातिषोदकादीन्पृथगेव कुर्यात्” ॥ पितृमेधसारे—“स्नात्वा शक्तितो

३० दत्त्वा ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञाता प्रीता पथस्तुरीयमासाद्य सिग्वतैरुपवीज्य चितिगतं भर्तारं प्रदक्षिणीकृत्य

प्रगम्य चितिमारूढ्य भर्तुर्दक्षिणपार्श्वे शयीतात्र कर्ता पत्नीमुपनिपातयति इयं नारीति सप्तानमत

ऊर्ध्वं सद्यः पापं निर्धूय दंपती विहरत” ॥ इति । स्मृतिरत्ने—

“अनुयाने मृतौ पित्रेरेकशय्याचितिस्तथा । प्रत्येकमञ्जलेर्भेदो नम्रप्रच्छादनादिकम् ।

“एकमेवाग्निदानं स्यादेकग्रावा तिलाञ्जलिः” ॥ इति । एकस्यां शिलायां तिलोदकमित्यर्थः ।

३५ तिलाञ्जल्यर्था शिला द्वयोरेकेति यावत् । कुंडमेकं पृथक् शिलेत्यनेनास्य विकल्पः ।

तत्रैव—

“अस्थिसंचयनं चैव नवश्राद्धं पृथक् पृथक् । वृषोत्सर्जनभेदश्च मासिकानां पृथक् क्रिया ॥

“सर्पिणीकरणं चैव सुतः सर्वं समाचरेत् ॥”

स्मृत्यंतरे—“सहैव भर्ता मरणं स्त्रियाश्चेत्सहैव कुर्यात्पितृमेधकृत्यम् ॥

“पिंडोदकादीन्पृथगेव कुर्यात्पिंडस्य संयोजनमत्र भर्ता ॥

५

“मृते भर्तरि या पूर्वं परेऽहन्यनुगच्छति । तस्याः पतिदिने श्राद्धं शालभेदं न कारयेत् ॥

“आग्निकार्ये न भेदोऽस्ति अस्थिसंचयने तथा । एकगते जलं दद्यात्पिंडांश्चैकदिने द्वयोः ॥

“एकोद्दिष्टं पृथक्कुर्यात्सर्पिणीकरणं सह । तत्र द्वयोर्निर्मितौ द्वौ बाह्यणावितरैः सह ॥”

देवलः—“परेश्वरनुयाने तु मरणाहःक्रमेण तु । दहनादिसर्पिण्ड्यंतं श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥”

क्रियाकल्पकारिकायाम्—“पतिव्रता त्वन्यदिनेऽनुगच्छेद्या स्त्री पतिं चित्यधिरोहणेन ।

१०

“दशाहके भर्तुरधस्य शुद्धिः श्राद्धद्वयं स्यात्पृथगेककाले ॥

“मृते भर्तरि पूर्वेषुपरेश्वरनुगच्छति । तस्याः पतिदिने श्राद्धं मृताहस्तु यथाविधि ॥”

स्मृत्यंतरे—“अस्थिसंचयनं चैकं नवश्राद्धं पृथक्पृथक् । वृषोत्सर्जनभेदश्च मासिकानां पृथक्क्रिया ॥

“उपस्थानं तदेकं स्यात्परं तस्याः पृथक् क्रिया । पृथक् श्राद्धं तयोः कुर्यात् गोदानं च पृथक् पृथक् ॥

“सर्पिणीकरणे प्राप्ते सर्वं तद्विसे चरेत् ॥

१५

“बहुपत्नीकपक्षे तु मन्त्रावृत्तिः पुनः पुनः । विभज्य पिण्डं दद्यात्तु गार्ग्यस्य वचनं यथा ॥” इति ।

अन्यत्रापि—“दिनान्तरे यानि सहैव भर्तुः कुर्यान्मृताहे सति कर्म कार्यम् ।

“हिरण्यशल्काः पृथगेव कार्याः पात्राणि भेदद्वयभाजि कुर्यात् ॥” इति । अन्यत्रापि—

“अन्येष्वरप्यनुगतौ शुद्धिः पतिदशाहतः । सहास्थिसंचितिं चैव काले श्राद्धद्वयं भवेत् ॥

“पृथक् पिंडोदकादि स्यात्पत्या पिंडस्य योजनम् । तच्च पिंडं द्विधा कृत्वा पितृपिंडेषु योजयेत् ॥” २०

वासिष्ठः—

“अनुयाने च पत्या च सर्पिणीकरणं सह । अंतर्धाय तृणं मध्ये भर्तुः श्वशुरयोरपि ॥

“स्त्रीपिंडं भर्तृपिंडेन संयोज्ये च पुनः सुतः । पितामहादिभिः सार्धं पितृपिंडं तु योजयेत् ॥”

यमः—

“पत्या चैकेन कर्तव्यं सर्पिणीकरणं स्त्रियाः । सा मृतापि हि तेनैक्यं गता मंत्राहुतिव्रतैः ॥

२५

शातातपः—

“या मृता सुभगा नाथं सा तेन सह पिंडताम् । अर्हति स्वर्गवासेऽपि यावदा भूतसंप्लवम् ॥

यत्तु सुमन्तुवचनम्—

“चित्यारोहणकाले तु षोडशानि पृथक्पृथक् । सर्पिणीकरणं तस्या नैव भर्तुः कृते सति ॥” इति

तत्स्त्रियाः पृथक्सर्पिणीकरणनिषेधपरम् । देवलः—

३०

“तद्धिने वा परदिने भर्तारमनुगच्छति । नवश्राद्धं षोडशं च सर्पिणीकरणं तथा ॥

“यथाकाले तु कर्तव्यं प्रतिसंवत्सरं तथा ॥” इति । यथाकाले भर्तुर्विहिते काले कर्तव्यम् ।

स्त्रिया अपि कर्तव्यमित्यर्थः । यत्तु गौतमवचनं

“एकचित्यां समारूढौ दंपती निधनं गतौ । मासिकानि नवश्राद्धं सर्पिणीकरणं पृथक् ॥” इति

यदपि व्याघ्रवचनं—

“पतिव्रता तु या नारी भर्तारमनुगच्छति । पिंडदानादिकं श्राद्धं सपिंडीकरणं पृथक्” ॥ इति एतादृशं वचनं निमित्तभेदप्रतिपादनपरम् । अन्यथा सपिंडीकरणं चैकं तत्र द्वयोर्निमित्तौ द्वौ ब्राह्मणावितरैः सह सपिंडीकरणं सहेत्यादिपूर्वोक्तबहुस्मृतिविरोधप्रसंगात् । दुर्मरणाद्युपाधिवशेन काष्ठवदमंत्रकदाहेनानुमृतिः कार्या । दह्यमानतंत्रेण “नानुरोहेत्यतिव्रता” इति स्मरणात् । तथा च कल्पकारिकायाम्—

“पत्युर्वेदाग्निसंस्कारे पत्न्या अनुगमो मतः । अन्यथा त्वात्मघातः स्यादिति वेदविदो विदुः” ॥ इति । चित्तिभ्रष्टायाः प्रायश्चित्तमुक्तं स्मृत्यंतरे—

“चित्तिभ्रष्टा यदा नारी मोहाच्चलति वा तदा । प्राजापत्यं भवेत्कृच्छ्रं शुद्धा भवति नान्यथा” ॥ इति ।

- १० अथ गर्भिणीसंस्कारः । अत्र बोधायनः—“अथ गर्भिण्यंतर्वत्नी प्रियेतात ऊर्ध्वं प्रियेत स्मशानं नीत्वा दहनदेशं जोषयेत्तु सम्यक् चितामपरेण सव्येन प्रेताया उदरं विलिखेत् । ‘हिरण्यगर्भः समवर्तताग्र’ इत्यनुलेखनदृष्टं कुमारमनुमंत्रयते ‘जीवतु मम पुत्रो दीर्घायुत्वाय वर्चस’ इति । अथ बालं संस्नापयेद्युर्हिरण्यमंतर्थाय जीवंतं ग्राममानयन्ती ‘यस्ते स्तनः शशय’ इति स्तनं प्रदाय तस्मिन्नुदरे आज्यानि जुहोति । ‘शतायुधाय शतवीर्याय’ इति पंचभिः ‘प्रयासाय स्वाहा-यासाय स्वाहेत्यनुवाकेन प्राणाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा इत्यनुवाकेन पूष्णे स्वाहा पूष्णे शिरसे स्वाहा’ इत्यनुवाकेन सूच्या जठरमव्रणं कुर्यात् । प्रेतां चितिमध्यारोप्य विधिना दाहयेत् । अष्टौ^३ धेनुभूमिं धेनुमिति च दद्यादिति । संग्रहे—

“षण्मासाद्धूर्ध्वमासूते प्रियते यदि गर्भिणी । चित्तैः पश्चाद्विधायैनां सव्योदरमथालिखेत् ॥

“हिरण्यगर्भमंत्रेण समुल्लिख्य तमुद्धरेत् ॥

- २० “मृतश्चेदुद्धृतो गर्भो घृताक्तं निखनेद्भुवि । जीवेच्चेज्जीवतु मम पुत्र इत्यनुमंत्रयेत् ॥
“अंतर्थाय हिरण्यं तमभिषिच्य जलैः शिशुम् । ग्रामं गत्वा शिशोर्दद्याद्यस्ते स्तन इति स्तनम् ॥
“सुरक्षितं कुमारं तं कृत्वा गत्वा शवादिकम् । शतायुधाय इत्याज्यानि जुहुयादुदरे ततः ॥
“प्रयासाय स्वाहेति हुत्वा च प्राणायेत्यनुवाकतः । पूष्णे स्वाहेति हुत्वा च संधायोदरमव्रणम् ॥
“चित्तिमारोप्य तां प्रेतां शेषं पूर्ववदाचरेत्” ॥ इति ।

- २५ शौनकः—“गर्भिणीमरणे प्राप्ते गोमूत्रेण जलैः सह । आपोहिष्ठाभिरबिल्लैः प्रोक्ष्य भर्ता समाहितः ॥
“प्रेतां स्मशाने नीत्वाथोल्लिख्येत्सव्योदरे ततः । पुत्रमादाय जीवंतस्यान्स्तनं दत्वा सुताय तु ॥
“यस्ते स्तन इत्येतया ग्रामं नीत्वा निधाय च । उदरं चाव्रणं कुर्यात्पृषदाज्येन पूर्य च ॥
“मृद्भस्मकुशगोमूत्रैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः । स्नात्वाऽऽच्छाद्यैव वासांसि पितृमेधेन दाहयेत् ।
“मृतो यदि तु पुत्रः स्याद्बाह्व्या निखनेत्ततः” ॥ इति । चंद्रिकायाम्—

- १० “मृता चेद्गर्भिणी नारी तस्याः संस्कार उच्यते । बोधायनभरद्वाजशौनकाद्यैर्यथोदितः ॥
“संकल्प्य पितृमेधं तु कृत्वा दारुचितेः क्रियाम् । पश्चाद्दारुचितेः प्रेतां दक्षिणे वाऽथ गर्भिणी ॥
“निधाय वाऽग्रतंत्राणि कृत्वा दर्व्यादिमार्जनम् । हिरण्यगर्भमंत्रेण विलिखेदसिनोदरम् ॥
“आगर्भदर्शनाद्वामे मृतः स्याच्चरणे क्षिपेत् । दृष्ट्वा जीवतु मम पुत्र इति जीवन्तमभिमंत्रयेत् ॥
“अंतर्थाय हिरण्यं तदभिषिच्य जलैः पुनः । नीत्वा ग्रामं शिशोर्दद्याद्यस्ते स्तन इति स्तनम् ॥

“सुरक्षितं कुमारं तं कृत्वा गत्वा शवान्तिकम् । शतायुधाय स्योनतैः पंचगिर्मरुदरे घृतम् ॥
“यजुर्भिस्तु प्रयासाय स्वाहेती द्वादशाहुतीः । प्राणायेत्यादिभिः पंच चक्षुषेत्यादि पंचभिः” ॥ इति ।

दशाहान्तरकृत्यम् । अथ दशाहान्तरकृत्यम् । तत्र संवर्तः—

“आशौचे निर्गते कुर्याद्ब्रह्मार्जनलेपने । वाससा जलमाप्लुत्य शुध्येत्पुण्याहवाचनैः” ॥

आप्लुतिश्चैकादशाहे संगर्वे कार्या । ‘अघाते संगवे स्नायात्’ इति स्मरणात् ॥

वसिष्ठः—“आशौचांते तु कर्तव्यं ब्राह्मणैरभिषेचनम् ॥

“ऋग्भिर्यजुर्भिश्छंदोभिरब्लिगैः पावमानिकैः । आशिषं च गृहीत्वाथ श्राद्धकर्म समाचरेत्” ॥

व्यासः—

“संपूज्य गंधपुष्पाद्यैः ब्राह्मणान्स्वस्ति वाचयेत् । धर्मकर्मणि संकल्पे संग्रामेऽद्भुतदर्शने ॥

“यज्ञार्थेऽपि प्रतिष्ठादौ सर्वसंस्कारकर्मसु । शुद्धिकामस्तुष्टिकामः श्रेयस्कामश्च नित्यशः” ॥ इति १०

अथ वृषोत्सर्गः । चंद्रिकायाम्—

“उत्सृजेत् वृषभं नीलं लोहितं कृष्णमेव वा । मृतो न पश्येन्नरकं गोघाती ब्रह्महा ह्यपि ॥

“पुत्रो वा भ्रातृपुत्रो वा मृतस्यैकादशेऽहनि । उत्सृज्येत् वृषभं नीलं यथावर्णमसंभवे ॥

“प्रेतत्वात्प्रातिमुच्यते महापातकिनो नराः” ॥ व्यासः—

“एकादशेऽहनि संप्राप्ते प्रेतस्य स्वर्गसाधनम् । वृषमेकं समुत्सृज्य श्राद्धे विप्रांस्तु भोजयेत्” ॥ १५

काश्यपः—“नीलं वाऽप्यथ वा कृष्णं मृतस्यैकादशेऽहनि ।

“वृषं पापविशुद्ध्यर्थं रुद्राणामनुशासनात् । होमकर्मसमायुक्तं रुद्रप्रीतिकरं त्यजेत् ॥

“एकादशेऽहनि संप्राप्ते यस्य नोत्सृज्यते वृषः । प्रेतत्वान्न विमुच्येत दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥

“विप्रो वा क्षत्रियो वाऽपि वैश्यः शूद्रोऽपि वा तथा । वृषहीनो मृतो याति रौरवं तमसावृतम् ॥

“सप्तजन्मकृतं पापं यद्बाल्ये यच्च वार्धके । तत्क्षणादेव नश्येत् वृषोत्सर्गे पितुः कृते ॥ २०

“पितृनुद्दिश्य रुद्राय होमकर्मसमन्वितम् । उत्सर्गमात्रे रुद्रस्य लोकं यात्यत्र मानवः” ॥

स्मृतिरत्ने—

“एकादशेऽहनि संप्राप्ते स्नात्वा पुण्याहवाचनम् । कृत्वा चैरेद्वृषोत्सर्गं कुर्याच्छ्राद्धं ततः परम् ॥

“शूलं चक्रमथान्यद्वा लांछनं कारयेत्ततः । यस्य देवस्य यो भक्तस्तस्य चिन्हं समालिखेत्” ॥

हेमाद्रौ—“स्वस्वेष्टदेवताचिन्हं पश्चिमदक्षिणपादमूले तप्तेनायसेन विलिखेत्” ॥ इति । २५

बोधायनः—“अथ वृषोत्सर्जनम् । तच्च द्विविधं काम्यं नैमित्तिकमिति । नैमित्तिकमेकादशाह्निकमिति ।

काम्यं कार्तिक्यां वैशाख्यां ग्रहणे संक्रमे वा” इति । स्मृत्यर्थसारे—“सपिंडीकरणात्प्रागेवोक्त-

काले नैमित्तिकवृषोत्सर्गस्तत्र न मासादिदोषः” इति । स्मृत्यंतरे च—

“एकादशाहे षण्मासे त्रिपक्षेऽब्दे तथैव च । वृषोत्सर्गं तु कुर्वीत परस्तादुक्तकालिकः” ॥ इति

कालश्च पद्धतावुक्तः—“पूर्वभागेऽथवा मध्ये दिनस्य वृषमुत्सृजेत् ।

“कार्तिक्यां पौर्णमास्यां वा वैशाख्या वाऽपि वा वृषम् । उत्सृजेत्क्षणैर्युक्तं देवर्षिपितृवृत्तये” ॥

आश्वलायनपरिशिष्टे (३।१८)—“अथ वृषोत्सर्गः । कार्तिक्यां पौर्णमास्यां वैशाख्यां वा

जीववत्सायाः पयस्विन्याः पुत्रं द्विहायनमेकहायनं वा नीलं बभ्रुं पिंगलं वा” इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“उत्सृजेद् वृषभं नीलं पौर्णमास्यां तु वत्सकम् । कार्तिव्यामाश्वयुज्यां वा वैशाख्यां प्रातरेव तु ॥
“एकादशाहादन्यत्र प्रोक्तकालेषु यत्नतः । वृषोत्सर्गे तदा शुक्रबाल्यमौढ्यं न दोषकृत् ” ॥ तथा—
“प्रेतस्य वत्सरादवर्ग्यदा संस्कारमिच्छति । न कालनियमो ज्ञेयो न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ” ॥ इति ।

५ यत्तु—

“पतिपुत्रवती नारी प्रियते चोभयाग्रतः । वृषं नैवोत्सृजेत्पुत्रो यावत्स्वपितृजीवितम् ” ॥ इति
तत्केवलवृषोत्सर्गनिषेधपरम् । अत एव जाबालिः—

“पतिव्रता सुशीला च पुत्रिणी सुभगा मृता । नोत्सृजेद् वृषमेकं तु सह गामुत्सृजेद्वृषम् ॥
“पुत्रादन्यो यदा तस्याः श्राद्धकर्ता भवेद्यदि । तदैव वृषमुत्सृज्य पश्चाच्छ्राद्धं समाचरेत् ” ॥ इति ।

१० अत एव स्मृत्यन्तरम्—

“या नारी भर्तृसुतयोरग्रे तु प्रमितिं गता । तस्या अपि वृषोत्सर्गः कर्तव्यस्तु यथाविधि ॥
“अपुत्रा तु यदा नारी प्रियते भर्तुरग्रतः । वृषोत्सर्गो न कर्तव्यः एका गौर्दीयते तदा ” ॥

अन्यत्रापि—

“पतिपुत्रवती नारी मृता चेज्जीवभर्तृका । पातिव्रत्येन तल्लोकं वृषहीना न गच्छति ॥

१५ “जीवभर्त्यास्तु कर्तव्यं संकल्पश्राद्धमेव हि । पार्वणं च वृषोत्सर्गं कुर्यादायुःक्षयो भवेत् ” ॥
जीवभर्त्याः अपुत्राया इति शेषः । लोकाक्षिः—

“न स्त्रियाश्च वृषोत्सर्गः भर्ता कुर्यात्कदाचन । वृषं रुद्रान्वसूस्त्यक्त्वा सपिंडीकरणावधि” ॥ इति ।
वृषं रुद्रार्थाब्राह्मणभोजनं वस्वार्थब्राह्मणभोजनं च त्यक्त्वा अन्यत्सर्वं सपिंडीकरणावधि कुर्या-
दित्यर्थः । अनुस्मृतिविषये तु

२० “पितुरूर्ध्वविधिं सम्यक् कृत्वा मातुस्तु पुत्रकः । वृषमुत्सृज्य पश्चाद्धि पित्रा सह सपिंडनम् ” ॥ इति ।
प्रेतत्वविमोचकवृषोत्सर्गे नांदीश्राद्धनिषेधमाह शातातपः—

“स्वर्गकामो वृषोत्सर्गे नांदीमुखविधानतः । श्राद्धं कुर्यात्तदन्यस्तु न कुर्यात्प्रेतमोचकः ” ॥ इति ।

विज्ञानेश्वरः—

“एकादशेऽन्धि संप्राप्ते यस्य नोत्सृज्यते वृषः । पिशाच्चत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ” ॥ इति ।

२५ स्मृत्यन्तरे—

“वृषहीनो मृतो याति रौरवं तमसा वृतम् । उत्सर्गमात्रे रुद्रस्य लोकं यात्यत्र मानवः ” ॥

बृहस्पतिः— “कांक्षंति पितरः पुत्रा नरके पातभीरवः ।

“गयां यास्याति यः कश्चित्सोऽस्मान् संतारयिष्यति । करिष्यति वृषोत्सर्गमिष्टापूर्तं तथैव च” ॥ इति ।

पितृगाथा च—

३० “एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ” ॥
नीलवृषलक्षणमुक्तं स्मृतिरत्ने—

“लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे श्वेत् च पाण्डरः । श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स वृषो नील उच्यते ” ॥

अत्र वृषालाभे प्रचेताः—

“विहिते च वृषोत्सर्गे त्वलाभे शक्यसंभवे । प्रेतत्वस्य विमोकार्थं रुद्रानेकादशाशयेत् ” ॥

बोधायनश्च (३।१।११) “तासां पयसि पायसं श्रपयित्वा पृथगेकादश ब्राह्मणान्भोजयेत्” इति ।

व्यासोऽपि—

“एकादशभ्यो विप्रेभ्यो दद्यादेकादशेऽहनि । रुद्रानुद्दिश्य कर्तव्यं रुद्रप्रीतिकरं हि तत् ” ॥

शातातपः—

“एकादशसु विप्रेषु रुद्रानुद्दिश्य भोजयेत् । प्रेतत्वस्य विमोक्षार्थं मधुक्षीरघृताशनैः ” ॥ इति । ५

स्मृत्यन्तरे तु—

“प्रेतत्वस्य विमोक्षार्थं रुद्रान्वा विधिरूपतः । ब्राह्मणान्भोजयेदष्टौ हिरण्येनौदनेन वा ” ॥ इति

अथैकोद्दिष्टम् । तत्र याज्ञवल्क्यः (आचारे २५५।२५६)—

“मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं च वत्सरम् । प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि ” ॥ इति ।

पैठिनसिरपि—“एकादशेऽन्हि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् ” इति । १०

बृहन्मनुः—“एकादशेऽन्हि कर्तव्यमेकोद्दिष्टं सदा द्विजैः ” । व्याघ्रः—

“एकादशेऽन्हि संप्राप्ते श्राद्धं दद्याद्यथाविधि । कुर्यादेवात्र वारादितिथिभान्यनिरीक्ष्य वै ” ॥

स्मृत्यन्तरे—“एकादशेऽहनि श्राद्धं कुर्यादेवाविचारयत् ” । इति क्षत्रियादीनामप्याद्यश्राद्धमेका-

दशेऽहन्येवेति माधवीयादौ व्यवस्थापितम् । चंद्रिकायां तु—

“आशौचांते ततः सम्यक् पिंडदानं समापयेत् । तत्र श्राद्धं प्रदातव्यं सर्ववर्णेष्वयं विधिः ” ॥ १५

वसिष्ठसंहितायां च—“अथातः संप्रवक्ष्यामि श्राद्धं गार्ग्यमतेन वै ।

“एकादशेऽन्हि विप्राणां नृपाणां षोडशेऽहनि । वैश्यानां विंशतिदिने शूद्राणां मासि पूरिते ” ॥ इति ।

अगस्त्यः—“एकादशेऽन्हि संप्राप्ते द्विजानामुत्तमं विदुः । एकोद्दिष्टं प्रकुर्वीत भूपतिर्द्वादशात्परे ॥

“षोडशाहात्परे वैश्यः शूद्रस्त्रिंशदिनात्परे ” ॥ इति । सर्वेष्वेषु वचनेषु ब्राह्मणानामेका-

दशदिने एकोद्दिष्टविधानात् तेषामेकादशदिन एवेकोद्दिष्टं क्षत्रियाणां तु विकल्पः । २०

अत्राहिताग्नेर्विशेषो जातुकार्णिनोक्तः—

“ऊर्ध्वं त्रिपक्षाद्यच्छ्राद्धं मृतेऽहन्येव कीर्तितम् । अतस्तु कारयेद्दाहादाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ” ॥

त्रिपक्षादर्वाक् यत् प्रेतकर्म तद्दाहदिवसादारभ्याहिताग्नेः कार्यम् । त्रिपक्षादूर्ध्वं यच्छ्राद्धं तन्मरण-

दिवस एव कार्यमित्यर्थः । अतः दशाहकृत्यमेकोद्दिष्टमूनमासिकं च दाहदिनादि कुर्यात् । द्वितीय-

मासिकं च दाहदिने कुर्यात् । कालादर्शेऽपि— २५

“त्रिपक्षात् पूर्वतः साग्नेर्भवेत्संस्कारवासरे । ऊर्ध्वं मृतदिनेऽनाग्नेः सर्वाण्येव मृताहतः ” ॥

पूर्वतः पूर्वत्र कर्तव्यं संस्कारवासरे दाहदिनादि भवेदित्यर्थः ।

व्यासः—“सूतकांते नरः कुर्यादेकोद्दिष्टद्वयं बुधः । सूतके पतिते चापि स्वतंत्रं नातिलंघयेत् ” ॥

एकोद्दिष्टद्वयमिति महैकोद्दिष्टमावृत्ताद्यं च तद्द्वयं सूतकांते एकादशाहे कुर्यात् । मध्ये सूतकांतरा-

पातेऽपि स्वतंत्रं महैकोद्दिष्टं नातिलंघयेत्तदैव कुर्यादित्यर्थः । अत एवाह विष्णुः— ३०

“आद्यश्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि ” इति । तदाह बृहस्पतिः—

“एकादशाहे यच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं समाचरेत् । यदि कार्यं न कुर्वीत पुनःसंस्कारमर्हति ” ॥ इति ।

अत एव च तत्राकरणे पुनःसंस्कारमाह । एतच्चास्थिसंचयाभावविषयम् । कृते त्वस्थिसंचयने

पुनःपिंडोदकमात्रमधस्तात्प्रतिपादितम् । आवृत्ताद्यं तु आशौचसंनिपाते रोगादिना आद्यस्य विघ्ने

सति द्वादशाहादि कालांतरे कार्यम् । ३५

तथा च व्यासः—

“एकादशाहे त्वाद्यस्य संकटं तु यदा भवेत् । द्वादशाहेऽपि कर्तव्यं त्रयोविंशद्दिनेऽपि वा” ॥ इति ।

चंद्रिकायाम्—

“आशौचनिर्गमात्कार्यमाद्यमेकादशेऽहनि । त्रयोविंशद्दिने वाऽपि सप्तविंशद्दिनेऽपि वा” ॥

५ स्मृत्यर्थसारे—“आद्यश्राद्धस्य विघ्ने तु भार्गववारनंदाच्चतुर्दशी त्रिजन्मानि त्यक्त्वा ऊनमासिका-
त्पूर्वमनुष्ठेयम्” इति । बृहन्मनुः—

“एकादशेऽहनि संप्राप्ते यदि चन्द्रस्तु रोहिणीम् । आवसेदुत्तरारण्यां वा कुर्यात्तत् द्वादशेऽहनि” ॥

स्मृत्यंतरे—“एकादशाहे यदि शुक्रवारो रोहिण्यथाप्यर्यमतारका वा ।

“भवेच्च कृत्वोदकपिंडदानं श्राद्धं प्रकुर्यादपरेद्युरेव” इति । एवं च एकादशाहे आवृत्ताद्य-

१० विघ्ने सति द्वादशाहादावुक्तकाले तत्कृत्वो नमासिकादीनि पंचदश कृत्वा सापिंड्यं कुर्यात् ।

पितृमेधसारे—“सर्ववर्णानां मृताहादेकादशेऽहनि मध्याह्ने एकोद्दिष्टं कुर्यात् । साग्रेः संस्काराहा-

देकादशाहे त्र्यहत्तर्पणे चतुर्थेऽहन्येकोद्दिष्टं पंचमे सापिंड्यं एकादशाहे तर्पणे द्वितीयेऽहन्येकोद्दिष्टं

तृतीये सापिंड्यं द्वादशाहान्तर्गते मरणे तत्तन्मृताहादेकादशाहतिथिभेदेऽपि संघातानुभूत्योः

पत्न्या भर्त्रेकादशाह एव सहश्राद्धं कुर्यात् । अत्र संवादवचनानि पूर्वमेवोक्तानि । स्मृत्यंतरे—

१५ “एकादशाहे संप्राप्ते त्रीणि कर्माणि कारयेत् । नवश्राद्धं तु पूर्वाह्णे हेम्ना वामेन वा भवेत् ॥

“प्रेतत्वस्य विमोकार्थं वृषभं विमुञ्जेत्ततः । स्नात्वा मध्याह्नवेलायां विप्रानेकादशावरान् ॥

“अशक्तश्चैकविप्रं वा श्रोत्रियं गुणशालिनम् । आमन्त्र्य विप्रमाहूय दद्याद्भ्यंजनादिकम् ॥

“पादप्रक्षालनं कुर्यात्कुण्डे वा मंडले शुभे । गोत्रं नाम च निर्दिश्यासनादीनि कल्पयेत्” ॥

देवलः—

२० “पूर्वाह्णे दैविकं कार्यं अपराह्णे तु पैतृकम् । एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तिकम्” ॥ इति ।

अत्र व्यासः—

“आद्यमासिकमेकश्रेष्ठं के ब्राह्मात् स हीयते । तदेकादशाहा भित्वा विप्रेष्वग्रावथापि वा” ॥

तदाह सत्यव्रतः—“एकादशेऽहनि प्रेतार्थं ब्राह्मणानेकादशामन्त्र्य मध्याह्ने नानाभक्ष्यान्नरस-

विन्यासैराशयित्वा विधिवत्पिंडदानवासोहिरण्यदास्युपाच्छत्रोदकुम्भदक्षिणा गुणवति विप्रैः पात्रे

२५ दद्याच्छय्यां च । तस्य स्वस्त्ययनादिधर्माः प्रवर्तन्ते” इति । एवं च दशब्राह्मणान्प्रेतत्वविमोकार्थं गुण-

वन्तमेकमाद्यश्राद्धं निमित्तार्थं भोजयित्वा गुणवति तस्मिन्दक्षिणां दद्यात् । अशक्तौ एकं वा भोजयेत् ।

तथा च अत्रिः—

“प्रेतार्थं सूतकांते तु ब्राह्मणान्भोजयेद्दश । आद्यश्राद्धनिमित्तं तु एकमेकादशेऽहनि ॥

“वस्त्रालंकारशय्यादि पितुर्यद्वाहनादिकम् । गंधमाल्यैः समभ्यर्च्य श्राद्धभोक्त्रे प्रदापयेत् ॥

“अशक्त एकं संभोज्य शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम्” ॥ इति ।

३० एकोद्दिष्टस्वरूपनिरूपणम् । एकोद्दिष्टस्वरूपमाह याज्ञवल्क्यः (आचारे २५१।२५२)— ।

“एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकाद्वैकपवित्रकम् । आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥

“उत्तिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने । अभिरम्यतामिति वदेत् ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह” ॥ इति ।

एक उद्दिष्टो यस्मिन्श्राद्धे तदेकोद्दिष्टमिति कर्मनामधेयम् । दैवहीनं विश्वदैवेरहितम् । एकाद्वैक-

पात्रं एकदर्भपवित्रं च आवाहनेनाग्नौकरणेन होमेन च समंत्रकेण रहितं अपसव्यवत् प्राचीनावीत-

ब्रह्मसूत्रवदक्षय्योदकस्थाने उत्तिष्ठतामिति वदेद्विप्रविसर्जने अभिरम्यतामिति ब्रूयात् । ते च अभिरतास्महे इति ब्रूयुरित्यर्थः । पराशरः—

“आवाहनक्रियादेवनियोगरहितं हि यत् । एकोऽर्घ्यस्तत्र दातव्यस्तथैवैकं पवित्रकम् ॥

“प्रेताय पिंडो दातव्यो भुक्तवत्सु द्विजातिषु । प्रश्नश्च तत्राभिरतिर्यजमानद्विजन्मनाम्” ॥ इति ।

पद्धतौ—

“एकमुद्दिश्य यच्छ्राद्धं एकोद्दिष्टं प्रकीर्त्यते । एकादशेऽह्नि मध्याह्ने तत्कर्तव्यं विधाय च ॥

“पिंडमेकं प्रदातव्यमाऽऽशौचं च प्रदानतः । एकादशेऽह्नि कुर्वीत दानं होमादिकं तपः” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—

“आद्यश्राद्धं निमित्तं तु एकमेकादशेऽहनि । प्रेतार्थं सूतकान्ते तु ब्राह्मणान्भोजयेद्दश ॥

“अशक्त एकं संभोज्य शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् । हिरण्यं मेदिनीं गां च वस्त्राणि विविधानि च ॥ १०

“यद्यदिष्टतमं लोके गंधाश्च कुसुमानि च । शय्याप्युपानहो छत्रं यद्भुक्तं मृत्युकालतः ॥

“यदिष्टं जीवितस्य स्यात्तद् दद्यात्तस्य यत्नतः । तं विमृज्य द्विजं भुक्तं स्नायादनवलोकितः ॥

“श्राद्धं कुर्याद्यथाकालं सपिंडीकरणं तथा” ॥ इति । बोधायनः—“अथैकोद्दिष्टेषु नाग्नौकरणं नाभिश्चवणं न पूर्वं न देवं न धूपं न दीपं न स्वधा न नमस्कारौ” ॥ इति रत्नावल्यां—

“अनुज्ञाद्विगुणौ दर्भौ जपादिस्वस्तिवाचनम् । पितृशब्दः ससंबंधः शर्मशब्दस्तथैव च ॥ १५

“पात्रालंभोपपात्रं च उत्सुखैलेखनादिकम् । पितृप्रश्नः सविकिरः शेषप्रश्नस्तथैव च ॥

“प्रदक्षिणं विसर्गश्च सीमांतगमनं तथा । अष्टादशपदार्थाश्च प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत्” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे—

“श्रोत्रियं वेदविद्विप्रं अहरेव नियोजयेत् । तस्यैव श्मश्रुकर्माणि स्नानमभ्यज्य कारयेत् ॥

“एकोद्दिष्टे भवेदेक उद्देश्यो ब्राह्मणस्तथा । अर्घ्यपात्रं भवेदेकं पाणावेकाहुतिर्भवेत् ॥ २०

“एकपिंडो भवेत्तस्मिन्स्तदहरेव निमंत्रणम् । देवं धूपं तथा दीपं स्वधाशब्दं च वर्जयेत्” ॥ इति ।

तदहरेव तस्मिन्नेवाहनि निमंत्रणं कुर्यात् । स्मृत्यन्तरे—

“प्रेतकार्येषु सर्वत्र सद्य एव निमंत्रणम् । पितृकार्येषु सर्वेषु पूर्वेषुः स्यान्निमंत्रणम्” ॥ इति स्मृतेः ।

पाणावेकाहुतिरिति पाणिहोमविधानादावाहनाग्नौकरणरहितमिति । अग्नौ होमनिषेधः । तथा चाश्वलायनीयकारिका—

“चरुमुद्धृत्याज्यसिक्तमन्नं मेक्षणदारुणा । हस्तेऽवदानमौत्रेण तूष्णीं हुत्वाऽऽहुतिद्वयम्” ॥ इति ।

प्रेतार्थविप्रहस्ते तूष्णीं जुहुयात् । पित्रर्थविप्रहस्ते तु समंत्रकमेव पितृयज्ञाहुति पाणौ जुहुयान्मंत्र-पूर्वकमिति वृद्धमनुस्मरणात्तत्रैकोद्दिष्टे पाणौ हुतमन्नं न प्राश्नीयात् । किंतु लौकिकाग्नौ प्रक्षिपेत् । तथा पारिजाते—

“हस्ते हुतं तु नाश्नीयादब्दं भुक्तानुमासिकम् । अग्नौ प्रक्षेपणं कार्यं सपिंडीप्रेतकर्मसु” ॥ इति । ३०

अत्र बोधायनेन तु विशेषेण लौकिकेन होम उक्तः—“अथैकोद्दिष्टेष्वदात एव प्राचीनावीतं कृत्वा दक्षिणाप्रत्यक्प्रवणे स्थंडिलं कृत्वाऽद्भिरवोक्ष्याग्निं प्रतिष्ठापयति तत्रैवाथैनं पृच्छति करिष्यामीति कुरुष्वेति इतरः प्राहाम्यनुज्ञातो दर्व्यामुपस्तीर्य सर्वस्मात्सकृदवदायाभिधाय दक्षिणतो भस्ममिश्रा-गारान्निरूह्य तेषु जुहुयात् । प्रेतायामुष्मै यमाय च स्वाहेति तद्धुतमहुतं च भवति” इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“एकोदशेऽन्दि मध्यान्हे एकोद्दिष्टं कृतं च यत् । प्रेतस्य च यमस्यापि द्वयोः प्रीतिकरं भवेत्” ॥ इति ।
एकोद्दिष्टप्रयोगस्तु स्वस्वगृह्योक्तप्रकारो द्रष्टव्यः । आपस्तम्बादिभिरनुक्ते प्रयोगे तु बोधायनोक्त
आश्रयणीयः ।

- ५ “स्वसूत्रेऽविद्यमाने तु परसूत्रेण वर्तते । बोधायनमतं कृत्वा स्वसूत्रफलभाग्भवेत्” ॥ इति
नियमात् । अत्र नूतनभाण्डेषु पाकमाह वैखानसः—“सूतकप्रेतयोर्वापयित्वा मृन्मयानि भाण्डानि
पुराणानि त्यक्त्वा नवानि परिगृह्य पाचयित्वा श्राद्धं कुर्यात्” इति । अर्घ्यादिसत्कारे भोजने
च प्रेतार्थब्राह्मणः प्रत्यङ्मुखो निवेशनीयः । तथा गौतमः—“दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु प्रेतार्थमेकं विप्रं
प्रत्यङ्मुखमासादयेत्” इति । वैखानसः—“तिलदर्भास्त्रुते विष्टरे प्रत्यङ्मुखमासादयेदेकोद्दिष्टः”
१० इति । सुन्दरराजीये—“प्राङ्मुखौ विश्वेदेवावुदङ्मुखौ प्रागन्तान्पितृन्प्रेतं प्रत्यङ्मुखमासादयेत्”
इति । ‘प्रत्यङ्मुखनिमित्तं निवेश्य’ इति सरण्यादौ च दर्शनात् प्रत्यङ्मुखत्वमेव तस्य सिद्धम् ।

“एकोद्दिष्टे तु यद्भोक्तुरभोज्यं शिष्टभोजनम् । चन्द्रसूर्योपरागे वा शिष्टमन्नं च वर्जयेत्” ॥

इत्यादिना एकोद्दिष्टान्ननिषेधात् नात्र शेषाभ्यनुज्ञा कार्या । मनुः—

“असपिण्डक्रियाकर्म दिजातेः संस्थितस्य तु । अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं च निर्वपेत्” ॥ इति ।

- १५ असपिण्डक्रियाकर्म सपिण्डीकरणात्प्राक् श्राद्धकर्मेति यावत् । तदेकोद्दिष्टविधिना कृत्वा एकं पिण्डं च
दत्त्वा तदप्सु विसर्जयेत् । पितृभेदसारे—“भुक्तशिष्टमन्नं पिण्डं सर्वाणि दर्भहोमपात्राणि चाप्सु
प्रक्षिप्य स्नात्वा गृहमेत्य पुण्याहं वाचयेत्” इति । बोधायनः—

“एकोद्दिष्टान्त एव स्यात्संस्कर्तुः शुद्धता त्वघात् । पिण्डोदकप्रदानेन पुण्याहोक्त्या विशुध्यति” ॥ इति ।

अत्र तु ब्राह्मणालाभे लौकिकार्थिं प्रतिष्ठाप्य दक्षिणामुखो यमाय सोमं सुनुतेति ऋचा घृतमिश्रेण

- २० पायसेन ग्राससंमिता द्वात्रिंशद्वाहुतीर्हस्तेन जुहुयात्” ।

आवृत्ताद्यमासिकम्

एवमिदमाद्यस्वतंत्रैकोद्दिष्टं ब्राह्मणेऽग्नौ वा कृत्वा पुनरपि ब्राह्मणे कर्तव्यम् । तथा च स्मृत्यन्तरे—

“एकोदशेऽन्दि संप्राप्ते विप्राभावे कथं भवेत् ॥

“पायसं घृतसंमिश्रं हस्तेन ग्राससंमितम् । यमाय सोममित्येव द्वात्रिंशज्जुहुयाच्चरुम् ॥

- २५ “अध्वर्युर्वाग्यतो भूत्वा प्रसव्यं दक्षिणामुखः । श्राद्धसिद्धिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा” ॥ इति ।

काश्यपः—

“एकोद्दिष्टे तु संप्राप्ते विप्राभावे कथं भवेत् । आवाह्य सुसमिद्धेऽग्नौ पायसं जुहुयाद्भुविः ॥

“पौरुषेण तु सूक्तेन त्वावृत्त्या ग्राससंमितम् । अभ्यर्च्य गंधवस्त्राद्यैरुदकुंभं च दक्षिणाम् ॥

“ततः स्नात्वा पुनश्चाद्यं कुर्यात्तु ब्राह्मणो बुधः” ॥ इति । परितोऽग्निं गन्धादिभिरभ्यर्च्य दक्षिणा-

- ३० मुदकुंभं चाग्निसमीपे निधाय तानि ब्राह्मणेभ्यो दद्यादित्यर्थः । चंद्रिकायां तु—

“एकोद्दिष्टे तु संप्राप्ते विप्राभावे कथं भवेत् । उदीरतामिति मंत्रेण जुहुयाद्घृतपायसम् ॥

“स्वगृह्योक्तविधानेन सूक्तेन पुरुषस्य च” ॥ इति । ‘उदीरतामवर उत्परास’ इत्यादीनामष्टानामृचां

चतुरावृत्त्या द्वात्रिंशदाहुतयो भवन्ति । पुरुषसूक्तस्य षोडशर्चस्य द्विरावृत्त्या तथा भवन्ति । यथा-

स्वकुलाचारमिह मंत्रव्यवस्था । अत्र पिण्डदानमुक्तं श्रीधरीये—

- ३५ “एकोद्दिष्टे तु संप्राप्ते विप्राभावे हुते सति । पिण्डमेकं प्रदातव्यं आशौचं चाप्रदानतः” ॥ इति ।

अत्र गोभिलः—“ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होमः कार्योऽथ वाऽनले । पुनश्च भोजयेद्विप्रं द्विरावृत्तिर्भवेदिति” ॥

व्यासोऽपि—“सूतकांते नरः कुर्यात् एकोद्दिष्टद्वयं बुधः ।

“ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होमः कार्योऽथ वाऽनले । पुनश्च भोजयेद्विप्रं आवृत्तिद्वयसिद्धये ” ॥ इति ।

कालादर्शोऽपि—“आद्यश्राद्धं द्विजेऽग्नौ वा कुर्यात्पुनरपि द्विजः ” ॥ इति ।

ननु ‘सापिंड्यात्प्राङ्मासिकानि स्वस्वकाले कृतानि तु । न पुनस्तानि वै कुर्यादकृतानि पुनश्चरेत्’ ॥ इति ५
गर्गस्मरणात्कथमाद्यैकोद्दिष्टस्यावृत्तिरिति चेन्न तद्वचनस्य द्वादशाहव्यतिरिक्तकाले कर्तव्यसापिंड्य-
विषयत्वात् । ननु द्वादशाहे सापिंड्येऽपि तस्य पूर्वभावित्वे न सदोषस्तदवस्थ इति चेन्न । तस्य
सर्वदा सापिंड्यात्पूर्वभावित्वेऽपि

“अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिंडीकरणं कृतम् । षोडशानां द्विरावृत्तिं कुर्यादित्याह गौतमः” ॥
इत्याद्यावृत्तिस्मरणात् ।

“एकादशे कृतानां तु मासिकानां पुनः कृतिः । सूतिकांते पुनः कुर्यादेकोद्दिष्टद्वयं बुधः ॥

“पुनश्च भोजयेद्विप्रं द्विरावृत्तिर्भवेत् इति ॥

“सपिंडीकरणश्राद्धं द्वादशाहे यदा भवेत् । तदापकृष्य रुद्राहे श्राद्धान्येव तु षोडश ” ॥
इत्यादिस्मरणात् । आर्थिकात् कण्ठोक्तस्य बलीयस्त्वाच्च । यत्तु

“आवृत्तिरन्यमास्यानां द्वादशाहे सपिंडने । तथा नावर्त्तयेदाद्यं मले त्वावृत्तिरिष्यते ” ॥ इति १५

तस्यायमर्थः । द्वादशाहसपिंड्ये अन्यमास्यानां ऊनमासिकादिपंचदशमासिकानां पुनः सपिंड्या-
नंतरं स्वे स्वे काले यथावृत्तिः क्रियते तथा आद्यमेकोद्दिष्टं सापिंड्यानंतरं नावर्त्तयेत् । किंतु मल-
मासमृतिश्चेत् द्वादशाहसापिंड्यानंतरं शुद्धमासे मृततिथौ तदावर्त्तयेदिति । तच्चाग्रे वक्ष्यते ।
यदपि जाबालिवचनं—“श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धं न तद्दिने ” इति ।

यच्चाव्ययम्—“नैकश्राद्धद्वयं कुर्यात् समानेऽहनि कस्यचित् ” इति तदेकोद्दिष्टव्यतिरिक्तविषयम् । २०

तस्य एकस्मिन्दिने आवृत्तिविधानात् । द्वादशाहेतरकाले सापिंड्ये अथैकोद्दिष्टमेकमेव न तु
द्वयमिति त्रिपक्षादौ सापिंड्ये स्वकाले कृतस्य ऊनमासिकादेर्न पुनःकरणम्

“सापिंड्यात् प्राक् मासिकानि स्वस्वकाले कृतानि तु । न पुनस्तानि वै कुर्यादकृतानि पुनश्चरेत्” ॥ इति
गर्गस्मरणात् ।

“अर्वागब्दाद्यत्र यत्र सपिंडीकरणं कृतम् । तदूर्ध्वमासिकानां तु यथाकालमनुष्ठितिः ” ॥ इति २५
काष्ठाजिनिस्मरणात् ।

“वत्सरांते तु सापिंड्यं यश्चिकीर्षति स द्विजः । मासिकानि यथाकालं कुर्यादेव यथाविधि ॥

“त्रिपक्षायेषु कालेषु सापिंड्यं यश्चिकीर्षति । अब्दावशिष्टमास्यानामपकर्षस्तदा भवेत् ॥

“अपकृष्य कृतानां च यथाकालं पुनः कृतिः ” ॥ इति स्मृतिरत्ने अभिधानाच्च ।

यत्तु “द्वादशाहे कृतानां तु यथाकालं पुनः कृतिः” इति तस्यार्थः । द्वादशाहे कृतानामूनमासिका- ३०
दीनां पुनः कृतिरिति । एवं च द्वादशाहे सापिंड्ये आद्यश्राद्धादिषोडशमासिकानामप्यावृत्तिः ।
आद्यस्य तु एकादशाह एवावृत्तिः । इतरेषां तु एकादशाहे द्वादशाहे वा कृतानामूनमासिकादीनां
स्वस्वकाले पुनः करणम् । त्रिपक्षे तु सापिंड्ये ऊनद्वितीययोः स्वस्वकाले कृतयोः न पुनः
करणम् । तदुत्तरभाविनि तु मासिकानि अपकृष्य कृत्वा सपिंडीकरणात् परमपि स्वस्वकाले पुनः

कुर्यात् । एवं त्रिमासादौ सापिंड्येऽपि तत्पूर्वकृतानां नावृत्तिः । तदुत्तरभाविनामेव पुनःकरणम् । एवं वत्सरांतसपिंडीकरणे आद्यश्राद्धादीनां षोडशानामपि मासिकानां स्वस्वकाले कृतानां न पुनः कृतिः । एतदेवाभिप्रेत्य गालवः—

“त्रिपक्षादिषु कालेषु सापिंड्यं यश्चिकीर्षति । शिष्टानां मासिकानां च यथाकालं पुनः क्रिया” ॥ इति ।

५ गोभिलः—

“यस्य संवत्सरादर्वाग् विहिता तु सपिंडता । विधिवत्तानि कुर्वीत पुनः श्राद्धानि षोडश” ॥ अंगिराः—

“यस्य संवत्सरादर्वाक्सपिंडीकरणं कृतम् । मास्यानि सोदकुंभं च देयं तस्यापि वत्सरम्” ॥

विज्ञानेश्वरीये—

१० “श्राद्धानि षोडशाकृत्वा न तु कुर्यात्सपिंडता । श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिंडनम्” ॥ इति ।

“प्रेतसंस्कारकार्याणि यानि श्राद्धानि षोडश । यथाकाले तु कार्याणि नान्यथा मुच्यते तु सः” ॥ इति । स्मृत्यंतरेऽपि—

“यदा संवत्सरादर्वाक्सपिंड्यं कर्तुमिष्यते । आवर्तं षोडशादीनां तदा कर्तव्यमेव हि” ॥ संह—

१५ “स्वकाले तानि कुर्वीत सपिंडीकरणादथः । सापिंड्येऽब्दादधस्तानि कुर्यात्काले स्वके पुनः” ॥ इति ।

पैठीनसिः—“अर्वाक्सपिंडीकरणात्कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश” ॥ इति ॥

षोडशश्राद्धानि । षोडशश्राद्धान्याह विज्ञानेश्वरः—

“एकादशे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकाब्दिके । षोडशैतानि श्राद्धानि संस्मृतानि मनीषिभिः” ॥ इति ।

एकादशाहे विहितमाद्यश्राद्धम् । एतच्च ऊनमासिकस्याप्युपलक्षकम् । षण्मासे ऊनषाण्मासे विहित-

२० मूनषाण्मासिकम् । मासिकं प्रतिमासं विहितम् । आब्दिकशब्दः ऊनाब्दिकपरः । तथा च जातुकर्णः—

“द्वादशप्रतिमास्यानि आद्यषण्मासिके तथा । त्रैपक्षिकाब्दिके चेति श्राद्धान्येतानि षोडश” ॥ इति ।

आद्यषण्मासिकाब्दिकशब्दा ऊनमासिकोऽनषाण्मासिकोऽनाब्दिकपरः । एकादशेऽन्धिकेनाद्येन सह द्वादश प्रतिमास्यानि । गालवः—

२५ “ऊनषाण्मासिकं षष्ठे मास्यूने तूनमासिकम् । त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यादूनाब्दं द्वादशे तथा” ॥ इति ।

कालादर्श—

“एकादशेऽन्हि मास्यूने आद्ये षष्ठे तथातिमे । प्रतिमासं मृतेऽन्ध्यब्दं स्युस्त्रिपक्षं च षोडश” ॥

एकादशेऽन्हि मरणादेकादशेऽन्हि । अब्दशब्दसमभिव्यहारार्दंतिमशब्देन संवत्सरांतमो मास उच्यते ।

आद्ये मास्यूने षष्ठे मास्यूने संवत्सरांतमे मासि द्वादशे मासि ऊने अब्दमिति “कालाध्वनोरत्यंत-

३० संयोगः” इति द्वितीया संवत्सरपूर्तिपर्यंतम् । प्रतिमासं मासे मासे मृतेऽहनि मरणादिने त्रिपक्षे

च मरणादिनवृतीयपक्षे च षोडशमासिकारूपाणि श्राद्धानि स्युः । एतेषु षोडशेषु कालेषु

षोडशमासिकानि कार्याणीत्यर्थः । स्मृत्यंतरे—“एकादशे भवेदाद्यं मास्यूने द्व्यूनमासिकम् ।

“त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यादूनषाण्मासिकं तथा । प्रतिमासं मृताहेषु ऊनाब्दं चेति षोडशम्” ॥

स्मृत्यन्तरं —

“द्वादशाहे यदा कुर्यात्सपिंडीकरणं सुतः । मध्यान्हे चैव सर्वाणि कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश ॥

“सपिंडीकरणात्पूर्वं मासिकेषु कृतेषु च । अपकृष्यैकोद्दिष्टेन पिंडमेकं विधीयते” ॥

एकमिति प्रतिमासिकमेकैकमित्यर्थः । तथा च स्मृत्यन्तरे—

“मासिकानां तु सापिंड्यात् पूर्वं तु युगपत्कृतौ । प्रत्येकं पिंडदानं स्यादग्नौ प्रेताहुतिः सकृत्” ॥ ५

पंचदशावदानं कृत्वा एकां प्रेताहुतिं कुर्यादित्यर्थः । पैठीनसिः—

“षाण्मासिकाब्दिकश्राद्धे स्यातां पूर्वयुरेव ते । मासिकानि मृताहे स्युर्दिवसे द्वादशेऽपि वा ॥

“त्रिपक्षादौ तु सापिंड्ये मासिकानि मृताहनि” ॥ त्रिपक्षादौ सापिंड्ये तत्पूर्वमृततिथौ

तदुत्तरमासिकान्यपकृष्य कृत्वा सापिंड्यं कुर्यान्न त्वेकादशाहे द्वादशाहे वा । द्वादशाहे सापिंड्ये

तस्मिन्नेव दिने मध्यान्हे पंचदश श्राद्धानि कृत्वा अनंतरं सपिंडीकरणं कुर्यात् । संवत्सरांत- १०

सापिंड्ये तत्तन्मासमृततिथौ तत्तन्मासिकानि कुर्यात् । ऊनमासिकादीनि च मृततिथेः पूर्वं

यथोक्तकाले कुर्यादित्यर्थः । द्वादश इत्येकादशदिनस्याप्युपलक्षणम् ।

“नवश्राद्धं च तत्रैव षोडशश्राद्धमेव च । न कृतं चेत् परे कुर्यात् सपिंडीकरणाहनि” ॥ इति

स्मरणादेकादशदिने षोडशश्राद्धाकरणे द्वादशदिने कुर्यादित्यर्थः । यत्तु—

“एकोद्दिष्टं नवश्राद्धं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकस्मिन्दिवसे कुर्यादेकोद्दिष्टं तु निष्फलम्” ॥ इति १५

द्वादशाहसपिंडीकरणे एकोद्दिष्टादीन्येकादशाहे कुर्यात् । अन्यथा एकोद्दिष्टं निष्फलमिति ।

तथा च प्रचेताः—

“षोडशानीह सर्वाणि कुर्यादेकादशाहनि । सपिंडीकरणं चापि कुर्याद्वा द्वादशेऽहनि” ॥ इति ।

गौतमोऽपि—

“देशकालादिवैषम्यान्मृत्युरोगादिशंकया । एकादशेऽन्वि कार्याणि ह्यपकृष्यापि षोडश” ॥ इति । २०

गालवोऽपि—“एकचित्थां समारूढौ दंपती निधनं गतौ ।

“एकोद्दिष्टं षोडशं च भर्तुरेकादशेऽहनि । द्वादशाहे तु संप्राप्ते पिंडमेकं द्वयोः क्षिपेत्” ॥ इति ।

स्मृतिरन्तेऽपि—

“एकादशेऽन्वि कुर्वाणः पूर्वाणहे सर्वमाचरेत् । अपराणहे तु सापिंड्यं कुर्यादित्याह शालंकः ॥

“अन्यस्मिन्स्तु दिने कुर्वन्पूर्वपूर्वदिने चरेत् । अथवा यदि तत्रापि सर्वं चैकदिने भवेत्” ॥ इति । २५

अन्यस्मिन्निति द्वादशाहादौ सापिंड्यं कुर्वन् ततः पूर्वदिने षोडशश्राद्धं कुर्यादित्यर्थः ।

“एकादशे कृतानां तु मासिकानां पुनः कृतिः । सपिंडीकरणश्राद्धं द्वादशाहे यदा भवेत् ॥

“तदापकृष्य रुद्राहे श्राद्धान्येव तु षोडश” ॥ इत्यादि बहुस्मृतिसंमतत्वात् शिष्टाचाराच्च द्वादशाहे

सपिंडीकरणे एकादशे वा द्वादशे वाऽहनि षोडशश्राद्धकरणं युज्यते । यत्तु संग्रहवचनम्—

“एकोद्दिष्टस्य दिवसे सपिंडीकरणं विना । श्राद्धं कुर्यात्पितृक्रोधात्क्षयमाप्नोति संततिः” ॥ इति ३०

अत्र सांगं सपिंडीकरणं गृह्यते । षोडशश्राद्धं सपिंडीकरणं नवश्राद्धं च विना एकोद्दिष्टदिने कर्तव्यं

श्राद्धांतरमंतरितं स्वदेयं च श्राद्धं तत्र न कुर्यादित्यर्थः । एतच्चैकोद्दिष्टदिने सपिंडीकरणमाहिताग्नि-

विषयम् । तदग्रे वक्ष्यते । यत्तु जाबालिवचनं—“श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनःश्राद्धं न तद्दिने” इति

यदपि वक्ष्यवचनम्—“नैकः श्राद्धद्वयं कुर्यात्समानेऽहनि कस्यचित्” इति तदेकोद्दिष्टषोडश-

श्राद्धव्यतिरिक्तविषयम् । तयोस्तत्र विधानादुद्देश्यैक्येऽपि नवश्राद्धैकोद्दिष्टश्राद्धसमुच्चयवदेकोद्दिष्ट-
द्वयवच्च न दोषः । तदेवमेकादशाहे द्वादशाहे वा मासिकानि सर्वाण्यपकृष्य कृत्वा द्वादशाहे
सापिण्ड्यं कुर्यात् । सापिण्ड्योत्तरकालर्भावीनि स्वस्वकाले पुनश्च कुर्यात् ।

आशौचाद्यन्तरितमासिकादिविषयम् । आशौचाद्यन्तरितं मासिकमुत्तरमासिकाह एव

५ तंत्रतः कुर्यात् । न पृथक् । पाकहोमादिः पिण्डदानं तु पृथगेव । कालादर्श—

“आपदाद्यकृतं यत्तु कुर्यादूर्ध्वं मृताहतः । न पृथक् पाकहोमादिः पिण्डदानं पृथक्पृथक्” ॥ इति ।
आदिशब्देनाशौचोपसंग्रहः । आपदादिनाकृतमन्तरितं यन्मासिकं तदूर्ध्वमृताहतः उत्तरमासमृत-
दिने कुर्यादित्यर्थः । उत्तरमासमृततिथौ विधानादन्तरितमासिकमूनमासिकदिने न कार्यम् । ऊन-
दिनमतिक्रम्य मृततिथावेव कार्यम् । ऋष्यशृङ्गोऽपि—

१० “एकोद्दिष्टे तु संप्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते । मासेऽन्यस्मिंस्तिथौ तस्यां कुर्यादन्तरितं च तत्” ॥ इति ।
कालादर्शटीकायामिदं व्याख्यातम्—एकोद्दिष्टपदमुभयविधमासिकोपलक्षणम् । अन्तरितं तदुत्तर-
माससंबन्धि च मासिकमुत्तरमृताहे कुर्यादिति । एतच्चाद्यश्राद्धव्यतिरिक्तविषयम् । आद्यश्राद्धांतराये
तु अकृतसंचयस्य दहननादिदशमदिनपर्यंतं प्रेतकार्याणि पुनरप्येकाहे न कर्तव्यानि । कृत-
संचयस्य दहनसंचयव्यतिरिक्तनवश्राद्धादि पुनः कर्तव्यमिति पूर्वमेवोक्तम् । कण्वः—

१५ “नवश्राद्धं मासिकं च यथदन्तरितं भवेत् । तदुत्तरत्र सातंत्र्याद्गुण्येयं प्रचक्षते” ॥ इति ।
माधवीये चांद्रिकायां च विशेषोऽभिहितः—अन्तरितं मासिकमुत्तरमासतिथौ सातंत्र्येण
कर्तव्यमित्येतत्सूतकव्यतिरिक्तनिमित्तांतरेण विघ्ने समुत्पन्ने सपिंडीकरणात्पूर्वं प्रतिमासं मृताहे
विहितैकोद्दिष्टमासिकश्राद्धविषयम् । आशौचनिमित्तविघ्ने तु एकोद्दिष्टमासिकश्राद्धमपि सूतका-
न्तरमेव ‘तान्येव तु पुनः कुर्यात्’ इति विहितो न मासिकश्राद्धं च सूतकान्तरितं सूतकान्तरमेव ।

२० सूतकव्यतिरिक्तनिमित्तांतरेण विघ्ने सति उत्तरमासमृततिथौ कर्तव्यम् । यत्तु स्मृत्यन्तरम्—

“तदहश्चेत्प्रदुष्येत केनचित्सूतकादिना । सूतकान्तरं कुर्यात्पुनस्तदहरेव वा” ॥ इति ।
अत्र श्राद्धाहे सूतकेन दुष्टे सति सूतकान्तरं कुर्यादिति पक्षः । पुनस्तदहरेव वेति पक्षस्तु आदि-
शब्दोक्तनिमित्तांतरेण दुष्टमासिश्राद्धविषयः । तथा षट्त्रिंशन्मतम्—

“मासिकाब्दे तु संप्राप्ते ह्यंतरासूतकं । वदन्ति शुद्धौ तत्कार्यं दर्शं वापि विचक्षणाः” ॥ इति ।

२५ एतदुक्तं भवति—आशौचमन्तरकालो मुख्यकालः संनिगृह्यत्वाच्छ्रेष्ठः । दर्शकालस्तु मुख्यकालप्रत्या-
सत्यभावात्ततो जघन्य इति । दर्शग्रहणं शुक्लकृष्णौकादृश्योरुपलक्षणार्थम् । अत एव मरीचिः—

“श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने न विज्ञाते मृतेऽहनि । एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः” ॥
देवस्वामिनाऽप्येवं विषयव्यवस्था कृता—‘एकोद्दिष्टे तु संप्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते’ इत्यादिवचनं
सूतकाशौचव्यतिरिक्तनिमित्तांतरेतस्तदहर्विधाते सूतकाशौचविधाते तु सूतकान्तरं कुर्यादिति
३० शुद्धौ तत्कार्यमित्यावगतव्यमिति । अन्ये तु उत्तरमासमृततिथौ कर्तव्यताप्रतिपादकवचनमेकोद्दिष्ट-
मासिकविषयं सूतकान्तरदिने दर्शादौ वा कर्तव्यताप्रतिपादकवचनं सपिंडीकरणान्तरभाव्यनु-
मासिकविषयमित्याहुः । यथोचितमिह द्रष्टव्यम् ।

आशौचाद्यन्तरितोनमासिकविधिः । ऊनमासिकान्यतिकांतानि ‘मासिकाब्दे तु संप्राप्ते’
इति षट्त्रिंशन्मतवचनानुसारेण परमासे दर्शादौ कार्याणीति केचिदाहुः ।

अपरे तु—

“त्रैपक्षिको नषाणमास्ये ऊनाब्दिकमथाचरेत् । एतेषामेव काले तु न पुनःकरणं भवेत् ॥

“ऊनानां नापकर्षः स्यात्पुनरप्यपकर्षणे । उत्कर्षश्चापि न भवेत्प्रमादांतरितेषु तु” । इति वचनमात्रमुदाहरंत ऊनानां स्वस्वकाले अकृतानामुत्कर्षो नास्ति किंतु लोप एवेत्याहुः । ऊनान्यूनेषु कुर्वीतितिवचनमपि व्याकुर्वते । द्वित्रिदिनैरूनेषु कालेषु ऊनानि कुर्यात् । अंतरितमूनमूनांतरे योजयेदिति नार्थ इति । ५

ऊनमासिककालः । ऊनानां कालमाह गालवः—

“ऊनषाणमासिकं षष्ठे मासार्धे तूनमासिकम् । त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यादूनाब्दं द्वादशे तथा ” ॥ इति ।

स एव—

“त्रिभिर्वा दिवसैरून एकेन द्वितयेन वा । आद्यादिषु च मासेषु कुर्यादूनानि वै द्विजः” ॥ इति ।

गौतमश्च—

“एकद्वित्रिदिनैरूने त्रिभागेनो न एव वा । श्राद्धान्यूनाब्दिकादीनि कुर्यादित्याह गौतमः” ॥ इति ।

काष्णोऽजिनिः—

“ऊनान्यूनेषु मासेषु विषमेषु दिनेषु च । त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यान्मृताहेष्वितराणि तु ” ॥ इति ।

भविष्यपुराणे—

“षष्ठे षाणमासिकं कार्यं द्वादशे मासि चाब्दिकम् । त्रैपक्षिकं भवेद्वृत्ते त्रिपक्षे विषमे दिने ” ॥ इति । १५

वृत्ते प्रवृत्त इत्यर्थः । पितृमेधसारे—“प्रथमषष्ठद्वादशमासेषु द्वित्रिदिनैरूनेषूनमासिकानि कुर्यात् । त्रिभागशेषेष्वित्येके । द्वादशाहे वाऽर्धमासे वा ऊनमासिकमित्यपरे ” इति ।

कालादर्श—“त्रिभिर्द्वाभ्यामुत्तैकेन मास्यूनेषूनमासिकम् । ऊनषाणमासमूनाब्दमन्त्रेनैव समाचरेत् ॥

“त्रिभागशेषमासे तु कुर्यादिति हि केचन । त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे तु प्रवृत्तं विषमे दिने ॥

“मासिकान्यपि चोनानि चाष्टाविंशतिमे दिने” ॥ इति । अन्त्रेनैवेति अन्त्रेनैव मासिकानि कुर्यात् नामेन । २०

“श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्यादिनियतं माससांवत्सरारुते ” ॥ इति हारीतस्मरणात् । मासं मासिकं सांवत्सरं मृताहे प्रत्याब्दिकम् । पद्धतौ—

“सप्तविंशदिनादूर्ध्वं त्र्यहःसूनमासिकम् । चत्वारिंशदिनादूर्ध्वं पंचाहःसु त्रिपक्षिकम् ॥

“तथा दशसु षाणमासं सप्तत्यतिशतात्परम् । ऊर्ध्वं पंचादशाहःसु चत्वारिंशच्छतत्रयात् ॥

“ऊनाब्दिकं प्रकुर्वीत तथा चाब्दिकमाचरेत् ” ॥

२५

ऊनमासिकवर्ज्यकालः । अत्र वर्ज्यमाह गार्ग्यः—

“नंदायां भार्गवादिने चतुर्दश्यां त्रिपुष्करे । ऊनश्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् ” ॥

मरीचिः—“द्विपुष्करेषु नंदासु सीनिवालयां भृगोर्दिने । चतुर्दश्यां च नोनानि कृत्तिकासु त्रिपुष्करे” ॥ इति । त्रिपुष्करं नाम—

“यदा भद्रातिथीनां स्यात्पापवारेण संयुतिः । खण्डक्षितीशयोगश्चेत् स त्रियोगस्त्रिपुष्करः ” ॥ ३०

द्वयोर्मेलने द्विपुष्करम् । द्वितीयासप्तमीद्वादशीनां भद्रातिथीनां पुनर्वसूत्तरफल्गुनीविशाखोत्तराषाढपूर्वाभाद्रपदनक्षत्राणां भानुभौमशनैश्वरवारारणां च त्रयाणां मेलने त्रिपुष्करम् ।

“भद्रा त्रिपदनक्षत्रं भानुभौमार्कवासराः । त्रिपुष्करा इति ख्यातास्तत्र नूनं न कारयेत् ” ॥ इति स्मरणात् । द्वयोर्मेलनं द्विपुष्करम् । प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यो नंदाः । कालादर्श—

“त्रिपुष्करे च नंदासु दर्शे भार्गवावसरे । चतुर्दश्यां न कुर्वीत ऊनानि त्रीणि वन्हिभे ” ॥ इति । ३५ वन्हिभं कृत्तिकानक्षत्रम् । स्मृत्यन्तरे—

“आग्नेयमैन्द्रं सार्पं च तिस्रः पूर्वाश्च नैर्ऋतम् । यद्येषूनत्रयं कुर्याज्ज्येष्ठपुत्रो विनश्यति” ॥ इति ।

वत्सरान्तसापिण्डये अत्यब्दसापिण्डये च निर्णयः ।

वत्सरांतसापिण्डये उपाधिवशात्प्रागकृतान्यनादीनि सर्वाणि मासिकानि द्वादशमासिकाहे ऊनाब्दिकाहे वा आब्दिकात्पूर्वदिने सपिंडीकरणाहे वा कुर्यात् । एवं पित्रोः पत्न्यादिव्यति ।

५ रिक्तानां च संघातमरणे एकोद्दिष्टांतकृत्यव्यतिरेकेण मासिकसापिंड्यादिनिषेधाद्वत्सरांते सापिंड्य-विधानाच्चाब्दिकात्पूर्वं सापिंड्याहे मासिकानि कुर्यात् । अत्यब्दसापिण्डये कृतान्यकृतानि च मासिकादीनि कृष्णैकादश्यां दर्शे मृताहे सपिंडीकरणाहे वा कुर्यात्

“श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिंडताम्” इति लोकाक्षिवचनात्

“कृतेषु मासिकेष्वेषु सपिंडीकरणं विना । संवत्सरे व्यतीते तु पुनस्तानि समाचरेत्” ॥ इति

१० शंखस्मरणाच्च । मासिकानां सपिंडीकरणांगत्वात्स्वकाले सपिंडीकरणाकरणे कालान्तरे तत्करणे कृतैरप्यंगभूतैर्मासिकैः सह सापिंड्यं कुर्यात् । तथा च कात्यायनः—

“प्रधानस्याक्रियायां तु सांगं तत्क्रियते पुनः । तदंगस्याक्रियायां तु नावृत्तिर्नैव तत्क्रिया” ॥ इति ।

ननु तर्हि प्रधानभूतसापिंड्यमात्रानुष्ठानेन कृतं मासिकानुष्ठानमिति चेन्मैवम्

“यस्यैतानि न दत्तानि प्रेतश्राद्धानि षोडश । पिशाच्यत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि” ॥ इति

१५ तदकरणे प्रत्यवायस्मरणात् । कालं विदधाति गर्गः—

“कृष्णपक्षे तु पंचम्यामष्टम्यां दर्श एव वा । एकादश्यां तु कर्तव्यं स्वकालाकरणे सति” ॥ इति ।

वत्सरांतसापिंड्येऽत्यब्दसापिंड्ये च मासिकानामावृत्तिर्नास्ति । किं तु सपिंडीकरणात्पूर्वं सकृदेव कुर्याद्यस्य संवत्सरादर्वक्सपिंडीकरणमित्यादिभिर्वत्सरात्प्रागेव सपिंडीकरणे तद्वर्ध्वमासिकानां पुनः-करणविधानाद्विज्ञानेश्वरेण तु वत्सरादर्वक्सपिंड्येऽपि मासिकानां पुनःकरणं नांगीकृतम् । तथा हि

२० यदा प्राक् संवत्सरात्सपिंडीकरणं तदा षोडशश्राद्धानि कृत्वा सपिंडीकरणं कार्यमिति वा सपिंडी-करणं कृत्वा स्वकालेषु वा तानि कर्तव्यानीति संशयः । उभयथावचनदर्शनात्

“श्राद्धानि षोडशाकृत्वा न तु कुर्यात्सपिंडताम् । श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिंडताम्” ॥ इति ।

तथा—

“यस्य संवत्सरादर्वक्सपिंडीकरणं भवेत् । मासिकं सोदकुंभं च देयं तस्यापि वत्सरात्” ॥ इति ।

२५ तत्र सपिंडीकरणं कृत्वा स्वकाल एव तानि कर्तव्यानीति प्रथमः कल्पः । अप्राप्तकालत्वेन प्राग-नधिकारात् । यदपि वचनं षोडशश्राद्धानि कृत्वैव सपिंडीकरणं संवत्सरात्प्रागपि कर्तव्यमिति सोऽयमापत्कल्पः । एतद्विज्ञानेश्वरेणोक्तम्—

“यदा संवत्सरादर्वक्सपिंडीकर्तुमिच्छति । आवर्तनं षोडशानां तदा कर्तव्यमेव हि” ॥

इत्यादिपूर्वोक्तबहुस्मृतिविरोधात् शिष्टाचारीविरोधाच्चोपेक्षणीयम् ।

३० शुभागमे मासिकापकर्षणम् । सपिंडीकरणात्पूर्वं कृतान्यपि मासिकानि शुभागमे तत्पूर्वमेव तदुत्तरभावीनि पुनरपकृष्य कुर्यात् । न स्वकाले पुनः कुर्यात् । यदाह शाट्टयायनिः—

“सपिंडीकरणादर्वगपकृष्य कृतान्यपि । पुनरप्यपकृष्यते वृध्वुत्तरनिषेधनात् ॥

“जन्मत्रयेनापकर्षो न नंदासु भृगोर्दिने । न भानुभौमदिवसे न दोषोऽस्ति मृतेऽहनि” ॥ इति ।

मृतेऽहनि जन्मत्रयादावपि अपकर्षदोषो नास्तीत्यर्थः । स एव—

“प्रेतश्राद्धानि शिष्टानि सपिंडीकरणं तथा । अपकृष्यापि कुर्वीत कर्ता नादीमुखे द्विजः” ॥ इति ।

कालादर्शे—“वृद्धौ तान्यपकृष्यापि कुर्यात्तन्मृतिवासरे” इति । वृद्धिः शुभं तत्तस्मिन्नुपस्थिते आगामिमासिकान्यपकृष्या वृद्धेः पूर्वं मरणदिने कुर्यादित्यर्थः । कात्यायनः—

“निर्वर्त्य वृद्धितंत्रं तु मासिकानि न तंत्रयेत् । अयातयामं मरणं न भवेत्पुनरप्यनु” ॥
अयातयामं नवम् ।

“मृतस्य कार्याणि यानि श्राद्धानि षोडश । यथाकाले तु कार्याणि नान्यथा मुच्यते ततः” ॥
इत्यादीनि वचनानि द्वादशाहादौ सापिंड्यार्थमपकृष्टमासिकानां स्वे स्वे काले पुनः-
करणपराणि त्रिपक्षादौ सापिंड्ये उत्सवार्थमपकृष्टानां न पुनःकरणं उत्सवार्थान्येव सापिंड्यार्था-
नि च भवन्तीति च वचनादावृत्तिर्बाध्यते । सापिंडीकरणात्परं तु शुभागमे सापिंड्यार्थमप-
कृष्टानां शुभार्थं पुनरप्यपकर्षः । न स्वकाले पुनःकरणमिति ज्ञेयम् । मातापितृविषये तु शुभा-
गमे अपकृष्य पुनः कृतान्यपि मासिकानि पुनः स्वकाले त्रिरावृत्त्या पुनः कुर्यात् । १०
तथा च विश्वादर्शे—

“शुभकर्म न कुर्वीत मासिकान्यसमाप्य तु । समाप्य च पुनः कुर्यात्पित्रोः सांवत्सरं” ततः ॥

“मृतस्य वृत्तये कुर्यात् द्विस्त्रिरावृत्तिभेदतः । द्विस्त्रिरावृत्तिदोषोऽत्र नास्ति मासिककर्मणि” ॥ इति ।
अत्र मातापितृविषये “निर्वर्त्य वृद्धितंत्रं तु मासिकानि न तंत्रयेत्” इति निषेधो नास्तीत्यर्थः ।

शिवस्वामिमतेऽपि—“न मासिकश्राद्धविधिः पुनः स्यात् नांदीमुखानंतरमुक्तकाले । १५

“समाप्य पित्रोस्तु पुनश्च कुर्यात् सांवत्सरं मासिककर्मकाले ॥

“प्राप्तेऽवश्ये मासिकं कर्म चेष्टं कुर्यात्पूर्वं शोभने शोभनात्तु ।

“पश्चात्पित्रोः शेषकार्याणि कुर्यान्मासि श्राद्धान्यब्दपूर्तेर्न चान्यः” ॥ इति । पारिजातेऽपि—

“मासिकान्यसमाप्यैव नांदीश्राद्धं न कारयेत् । समाप्य च पुनः काले पित्रोर्मासिकमाचरेत्” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—

“शुभागमेऽपकृष्टानां न पुनः कृतिरिष्यते । द्विस्त्रिरावृत्तिदोषस्तु मातापित्रोर्न विद्यते” ॥ २०

अन्यत्रापि—

“व्रतसीमंतचौलेषु विवाहे च द्वितीयके । अलभ्ययोग्यज्ञेषु प्रातेषु यदि मध्यतः ॥

“अपकृष्य तदा कुर्यान्मासिकानि मृतेऽहनि । मासिकानि पुनः कुर्यात्पित्रोरेव विचक्षणः” ॥ इति ।

तथा—

“अपकृष्य यदा कुर्यान्मासिकानि शुभागमे । तदा मृतेऽन्हि कर्तव्यं शुभात्पूर्वदिनेऽपि वा” ॥ इति । २५

प्रयोगपारिजाते तु—

“ऊनानां नापकर्षः स्यात्पुनरप्यपकर्षणे । उत्कर्षश्चापि न भवेत्प्रमादांतरितस्य तु ॥

“मासिकान्यवशिष्टानि मातापित्रोः परस्य वा । वृद्धिपूर्वदिने कुर्यात्पित्रोः काले पुनः कृतिः” ॥ इति ।

हेमाद्रौ—

“जातके नामकरणे तथान्नप्राशनेऽपि च । आद्यतौ दयितानां च मासिकं नापकर्षयेत्” ॥ इति । ३०

एतच्च ज्ञातिविषयम्—

“गर्भादिप्राशनांतानि प्राप्तकालं न लंघयेत् । ज्ञातीनां प्रेतकार्यं तु कुर्वन्नपि च कारयेत्” ॥ इति

स्मरणात् ।

गर्भादिव्यतिरिक्तविषये तु चतुर्विंशतिमते—

“भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिंडः शिष्य एव वा । सपिंडीकरणं कृत्वा कुर्याद्भ्युदयं ततः” ॥ इति ।

मातापितृभ्यामाह्वयार्गाणां त्वभ्युदयोद्देश्यत्वे प्रेतकार्यं पूर्वमेव कर्तव्यम्

“पित्रादीनां प्रमीतानां त्रयाणां तु सपिंडनम् । कृत्वा तु मंगलं कुर्यान्नेतरेषां कथंचन” ॥ इति

५ स्मृतेः । एवं च जातकर्मादिव्यतिरिक्तपुंसवनाद्यावश्यकशुभागमे मुख्यकर्तुर्मासिकापकर्षः स्वकाले नास्ति पुनःकरणम् । मातापित्रोस्तु पुनःकरणमिति निर्णयः ।

शुभागमन्तरेण मासिकापकर्षे दोषमाह गार्ग्यायणिः—

“अंतरेणैव यो वृद्धिं प्रेतश्राद्धानि कर्षति । स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति” ॥ इति ।

अनेन मासिकोत्सवयोः कर्तुरेकस्यैव शुभागमन्तरेण मासिकापकर्षे प्रत्यवायविधानात्

१० “अपकृष्यापि कुर्वीत कर्ता नांदीमुखे द्विजः” ॥ इति

“नांदीश्राद्धे तु संप्राप्ते मासिकान्यकृतानि तु । शुभकर्तृवापकृष्य कुर्यान्नान्य इति स्थितिः” ॥ इति

“मासिकानि यथाकालं कुर्वाणस्य यथाविधि । यदि वृद्धिस्तथा भूयः शिष्टमप्यपकर्षतः” ॥ इति

च कर्तुरेवाभ्युदये मासिकापकर्षविधानात् “निर्वर्त्य वृद्धितंत्रं तु मासिकानि न तन्त्रयेत्” इति वृद्धितन्त्रमासिकयोरेककर्तृकत्वस्मरणाच्च य एव मासिककर्ता स एवोत्सवकर्ता चेत्तदा मासिका

१५ पकर्षः । न तु भ्रात्रादेः पुंसवनादिशुभागमे मासिकापकर्षः । यत्त्विदं वचनं

“नांदीमुखे देवतात्वं येषां पितृगणस्य तु । मासिकान्यपकृष्यैव कृत्वा तेषां शुभं भवेत्” ॥ इति ।

अत्र बहुवचनं द्वादशविधपुत्राभिप्रायं येषामौत्सादीनां संस्कर्तृणां पितृगणस्य नांदीश्राद्धे देवतात्वं तेषां शुभागमे मासिकापकर्ष इत्यर्थः । तथा हि पितृमेधसारे—“तच्चैतेदेके भ्रात्राद्युत्सवेऽप्यपकृष्य कुर्वते । तन्न तथा कुर्यात् । मासिककर्तुरेवोत्सवे मासिकापकर्षवचनात्समानकर्तृकत्व-

२० स्मरणाच्च कर्तुरेवाभ्युदये मासिकापकर्षः” इति ।

मासिकानां पार्वणैकोद्दिष्टविधानव्यवस्था । मासिकानि सपिंडीकरणात् प्रागेकोद्दिष्टविधानेन कुर्यात् । सपिंडनात्परमनुमासिकानि यो यथा प्रत्याब्दिकश्राद्धं करोति पार्वणमेकोद्दिष्टं वा स तथा कुर्यात् । यदाह पैठीनसिः—

“सपिंडीकरणादर्वाक् कुर्वन् श्राद्धानि षोडश । एकोद्दिष्टविधानेन कुर्यात्सर्वाणि तानि तु ॥

२५ “सपिंडीकरणादूर्ध्वं यदा कुर्यात्तदा पुनः । प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स्वतान्यपि” ॥ इति । स्मृतिरत्नेऽपि—

“यस्य संवत्सरादर्वाक्सपिंडीकरणं कुतम् । प्रतिमासं तथा तस्य प्रतिसंवत्सरं तथा” ॥ इति ।

प्रत्याब्दिके पार्वणविधिः । प्रत्याब्दिके पार्वणविधानमाह जमदग्निः—

“आपाद्य सह पिंडत्वमौत्सो विधिवत्सुतः । कुर्वीत दर्शवच्छ्राद्धं मातापित्रोः क्षयेऽहनि” ॥ इति ।

३० शातातपोऽपि—

“सपिंडीकरणं कृत्वा कुर्यात्पार्वणवत्सदा । प्रतिसंवत्सरं विद्वान् शाकलेयोदितो विधिः” ॥ इति ।

त्रिपुरुषोद्देशेन क्रियमाणं पार्वणम् ।

“एकमुद्दिश्य यच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं प्रकीर्तितम् । त्रीनुद्दिश्य तु यत्तद्धि पार्वणं मुनयो विदुः” ॥ इति कण्वस्मरणात् ।

जातूकर्णिः—“अत ऊर्ध्वं न कर्तव्यमेकोद्दिष्टं कदाचन । सपिंडीकरणांतं च तत्प्रोक्तमिति सुज्ञलः ॥

“प्रेतत्वाच्चैवमुत्तीर्णः प्राप्तः पितृगणं तु सः । च्यवते पितृलोकात्तु पृथक्पिण्डेन योजितः ॥

“सपिंडीकरणादूर्ध्वं पृथक्कृतं नोपपद्यते । पृथक्त्वे तु कृते पश्चात्पुनः कार्या सपिंडता” ॥ इति ।
स एव—

“पितुः पितृगणस्थस्य कुर्यात्पार्वणवत्सुतः । प्रत्यब्दं प्रतिमासं च विधिर्ज्ञेयः सनातनः” ॥ इति । १

पितृगणस्थस्य सपिंडीकृतस्येत्यर्थः । कार्ष्णाजिनिरपि—

“अत ऊर्ध्वं न कर्तव्यमेकोद्दिष्टं कदाचन । सपिंडीकरणांतं च प्रेतस्यैतदमंगलम्” ॥ इति ।

यमः—

“यः सपिंडीकृतं प्रेतं पृथक्पिण्डेन योजयेत् । विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते” ॥ इति ।

माधवीये—

“प्रदानं यत्र यत्रैषां सपिंडीकरणात्परम् । तत्र पार्वणवच्छ्राद्धं एकोद्दिष्टं त्यजेद्बुधः” ॥ इति ।

मनुरपि (३१२४७-२४८)—

“आ सपिंडक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु । अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिंडमेकं च निर्वपेत् ॥

“सहपिंडक्रियायां तु क्रियायामस्य धर्मतः । अनयैवावृता कार्यं पिंडं निर्वापणं सुतैः” ॥ इति ।

असपिंडक्रियाकर्म सपिंडीकरणात्प्राक्प्राङ्मन्त्रकर्म अदैवमेकोद्दिष्टविधानेनेति यावत् । सहपिंडक्रियायां १५

सपिंडीकरणे कृते अनयैवावृता उक्तेन मासिकश्राद्धप्रकारेण पार्वणविधानेनेत्यर्थः । स्मृतिरत्नेऽपि—

“एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं प्रतिमासं मृतेऽहनि । सपिंडीकरणादूर्ध्वं मातापित्रोस्तु पार्वणम् ॥

“यत्र यत्र प्रदातव्यं सपिंडीकरणात्परम् । तत्र पार्वणवच्छ्राद्धं कार्यमभ्युदयादृते” ॥ इति ।

एवमादीन्यान्यान्यपि वचनान्यूनमासिकेष्वब्दिके प्रत्याब्दिके च पार्वणप्रतिपादकानि संति ।

याज्ञवल्क्यस्तु मासिकाब्दिकप्रत्याब्दिकेषु एकोद्दिष्टविधानमाह (आचारे २५५-२५६)— २०

“मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् । प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि” ॥ इति ।

एकोद्दिष्टपदं पूर्वस्मादिहानुवर्तते । तथा च विज्ञानेश्वरेण व्याख्यातम्—(पृ. ७७ पं. १)

“मृतेऽहनि प्रतिमासं यावत्संवत्सरमेकोद्दिष्टं कार्यं सपिंडीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं एकोद्दिष्टं कार्यम् ।

आद्यं सर्वैकोद्दिष्टं प्रकृतिभूतमेकोद्दिष्टमेकादशेऽहनि कार्यम्” इति । स्मृत्यन्तरमपि तेनोदाहृतम्—

“वर्षे वर्षे तु कर्तव्या मातापित्रोस्तु सक्रिया । अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिंडमेकं च निर्वपेत्” ॥ इति । २५

यमोऽप्याह—

“सपिंडीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतैः । मातापित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं कृतेऽहनि” ॥ इति ।

व्यासस्तु पार्वणं प्रतिषेधति—

“एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते तु यः । अकृतं तद्विजानीयाद्भवेच्च पितृघातकः” ॥ इति ।

एवमेकोद्दिष्टविधिवचनानि बहूनि सन्ति । इत्येवं वचनविप्रतिपत्तौ मतांतरनिरासपूर्वकं व्यवस्थापितं ३०

विज्ञानेश्वरेण (पृ. ७७ पं. २०-२४) तथा हि “दाक्षिणात्या व्यवस्थामाहुः—‘औरसक्षेत्र-

जाभ्यां मातापित्रोः क्षयाहे पार्वणमेव कर्तव्यम् । दत्तादिभिरेकोद्दिष्टम्’ इति जातुकर्णवचनात् ।

“प्रत्यब्दं पार्वणेनैव विधिना क्षेत्रजौरसौ । कुर्यातां इतरे कुर्युरेकोद्दिष्टं सुतादयः” ॥ इति

तदसत् । न ह्यत्र क्षयाहवचनमस्ति अपि । तु प्रत्यब्दमिति सन्ति । च क्षयाहव्यतिरिक्तानि प्रत्यब्द-

श्राद्धानि अक्षयवृत्तीयावैशाखीप्रभृतिषु । अतो न क्षयाहविषयपार्वणैकोद्दिष्टव्यवस्थापना । ३५

तथा च—“एकोद्दिष्टं हि कर्तव्यमौरसेन मृतेऽहनि । सपिंडीकरणादूर्ध्वं मातापित्रोर्न पार्वणम्” ॥ इति पैठीनसिना “औरसेनाप्येकोद्दिष्टमेव कर्तव्यम्” इत्युक्तम् । उदीच्याः पुनरेवं व्यवस्थापयन्ति अमावास्यायां भाद्रपदकुष्णपक्षे मृताहे पार्वणमन्यत्र मृताहे एकोद्दिष्टमेवेति

“अमायां वा क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथ वा पुनः । पार्वणं तत्र कर्तव्यं नैकोद्दिष्टं कदाचन” ॥ इति

१५ स्मरणात् । एतदपि नाद्रियते वृद्धाः । अनिश्चितमूलनानेन वचनेन निश्चितमूलानां बहूनां क्षयाहमात्र-पार्वणविषयाणां वचनानाममावास्याप्रेतपक्षमृताहविषयत्वेन संकोचस्यायुक्तत्वात् । सामान्यवचनानर्थक्याच्च । अतोऽत्र पाक्षिकैकोद्दिष्टनिवृत्तिफलतया ‘अमायां वा क्षयो यस्य’ इति नियमविधानं युक्तम् । न चैकोद्दिष्टविधिवचनानां मातापितृक्षयाहविषयत्वेनातिसंकोचस्यायुक्तत्वात् सामान्यवचनानर्थक्याच्च पार्वणवचनानां च तदन्यक्षयाहविषयत्वेन व्यवस्था युक्ता । उभयत्रापि माता-
१० पितृसुतग्रहणस्य विद्यमानत्वात् ।

“मातापित्रोः पृथकार्थमेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि । कुर्वीत दर्शवच्छ्राद्धं मातापित्रोः क्षयेऽहनि” ॥ इति ।

यदपि कैश्चिदुच्यते मातापित्रोः क्षयाहे साग्निः पार्वणं कुर्यान्निरग्निरेकोद्दिष्टम्

“वर्षे वर्षे सुतः कुर्यात्पार्वणं योऽग्निमाच द्विजः । पित्रोरनग्निमान् धीर एकोद्दिष्टं मृतेऽहनि” ॥ इति

सुमंतस्मरणादिति तदपि सत्प्रतिपक्षत्वादुपेक्षणीयम्

१५ “बह्वग्रयस्तु ये विप्रा ये चैकाग्रय एव वा । तेषां सपिंडनादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं न पार्वणम्” ॥ इति स्मरणात्तत्रैव निर्णयः । संन्यासिनां क्षयाहे सुतेन पार्वणमेव कर्तव्यम् । तच्चाग्रे वक्ष्यते । अमावास्यायां क्षयाहे च पार्वणमेव । ‘अमायां वा क्षयो यस्य’ इत्यादिवचनस्योक्तरीत्या नियमपरत्वादन्यत्र क्षयाहे पार्वणैकोद्दिष्टयोर्वीहियववद्बृहद्रथंतरवद्विकल्प एव । तत्र वंशसमाचारव्यवस्थायां न विकल्पः । अव्यवस्थायां सत्यां ऐच्छिको विकल्पः” इति । अयं विज्ञानेश्वरोक्त-

२० प्रकारः । अन्यैस्तु व्यवस्थापितम्—एकोद्दिष्टवचनानि बोधायनीयविषयाणि

“वर्षे वर्षे तु कर्तव्या मातापित्रोस्तु सत्क्रिया । अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिंडमेकं च निर्वपेत्” ॥ इति बोधायनस्मरणात्पार्वणवचनानि तदितरविषयाणीति सामान्येन प्रवृत्तानामुभयविधवचनानामेवं व्यवस्था प्रमाणं वेत्युक्तम् । अपरैः अत्र शिष्टाचारबाहुल्यादनुमासिकाब्दिकप्रत्याब्दिकेषु पित्रोः पार्वणमेव । सपिंडीकरणात्प्राक्तनेषु एकोद्दिष्टमेवेति निर्णयः । अत एव सुमंतुः—

२५ “कर्तव्यं पार्वणं राजन्नेकोद्दिष्टं कथंचन ।

“सुबहून्त्यत्र वाक्यानि मुनिगीतानि चक्षते । अल्पेतराणि राजेंद्र एकोद्दिष्टं प्रचक्षते” ॥ इति ।

अत्र पार्वणपक्षे सुबहूनि बहुतराणि वाक्यानि प्रचक्षते धर्मशास्त्रज्ञाः । अल्पेतराणि कतिपयानि वाक्यान्त्येव एकोद्दिष्टं प्रचक्षत इत्यर्थः । तेनैकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणपक्ष एव परिग्राह्य इत्याह स एव—

३० “तस्माद्वचनसामर्थ्यात्सपिंडीकरणात्परम् । मासिकाब्दिकवृद्ध्यादि कुर्यात्पार्वणधर्मतः” ॥ इति ।

पितामहादीनां पार्वणविधिः । एवं सपिंडीकरणात्परं पौत्रादयश्च पार्वणं कुर्युः

“पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रश्च दौहित्रो दुहिता स्नुषा । दंपती च क्रमादेते श्राद्धं कुर्युः त्रिपूरुषम्” ॥ इति स्मरणात् । अपुत्रपितृव्यादीनामपि पार्वणमेव

“अपुत्रस्य पितृव्यस्य आतुश्चैवाग्रजन्मनः । मातामहस्य तत्पत्न्याः श्राद्धं पितृवदाचरेत्” ॥ इति

३५ स्मरणात् ।

तथा चंद्रिकायाम्—“पितृमात्रग्रजादीनां पार्वणेन पुनः क्रिया” इति । पार्वणविधानेन मासिकानां पुनःकरणमित्यर्थः । स्मृत्यंतरे च—“पत्न्यग्रजपितृव्याणां पितृवत्कल्प इष्यते ।

“स्त्रीश्राद्धे वृणुयात् भर्ता पत्नीमातृपितामहीः । पितृव्याग्रजयोः श्राद्धे तत्पितृपितामहान्” ॥ इति । भगिन्यादीनां सापिण्ड्यात्परमेकोद्दिष्टविधानेन मासिकादिः । उक्तव्यतिरिक्तानामेकोद्दिष्टमाह कात्यायनः—“ संबंधिबांधवादीनामेकोद्दिष्टं तु सर्वदा ” इति । गार्ग्योऽपि—

५

“अपुत्रा ये मृताः केचित्स्त्रियो वा पुरुषास्तथा । तेषामपि च देयं स्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम्” ॥ इति । स्त्रियो भगिन्यादयः । पुरुषाः कनिष्ठभ्रात्रादयः । तथा च सुमंतुः—

“ सपिंडीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते । भ्रात्रे भगिन्यै पुत्राय स्वामिने मातुलाय च ॥

“ मित्राय गुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ” इति । शातातपः—

“ अनाद्यगर्भो न ज्येष्ठो भ्राता सद्भिर्निगद्यते । ऋते सपिंडनात्तस्य नैव पार्वणमाचरेत् ” ॥ १०

वृद्धगार्ग्यः—

“ मातुः सहोदरो यश्च मातुः सहभवा च या । तयोश्च नैव कुर्वीत पार्वणं पिंडनादृते ” ॥ इति । पिंडनात्सपिंडनात् । कालादर्शो—

“ गुरोरज्येष्ठभ्रातुश्च मित्रस्य स्वामिनः स्वसुः । पुत्रस्य मातुलस्यापि नैव कुर्वीत पार्वणम्” ॥ इति ।

पराशरः—

१५

“पितुर्गतस्य देवत्वमौरसस्य त्रिपूरुषम् । सर्वत्रानेकगोत्राणामेकस्यैव मृतेऽहनि ” ॥ विज्ञानेश्वरेणेदं व्याख्यातम्—“ देवत्वं गतस्य सपिंडीकृतस्य पितुः सर्वत्र औरसेन पार्वणं कार्यम् । अनेकगोत्राणां भिन्नगोत्राणां मातुलादीनां क्षयेऽहनि यच्छ्राद्धं तदेकस्यैव एकोद्दिष्टमेव ” इति । स्मृत्यंतरेऽपि—

“ मातुलानुजपुत्राणामेकोद्दिष्टं । स्वसुर्गुरोः । मित्रस्य स्वामिनश्चैव बंधुसंबंधिनां तथा ” ॥ इति ।

चंद्रिकायाम्—

२०

“ पत्नीभ्रातृसुतादीनां सपिंडीकरणात्परम् । एकोद्दिष्टविधानेन मासिकानां पुनः क्रिया ” ॥ इति । अत्र पत्न्या एकोद्दिष्टविधानात् “पत्न्यग्रजपितृव्याणां पितृवत्कल्प इष्यते ।

“स्त्रीश्राद्धे वृणुयाद्भर्ता पत्नीमातृपितामहीः । दंपती च क्रमादेते श्राद्धं कुर्युस्त्रिपूरुषम्” ॥ इत्यादिना पार्वणविधानाच्च यथाशिष्टाचारमिह व्यवस्था द्रष्टव्या । सापिण्ड्यात्परमेकोद्दिष्टे देववरणनियमः

स्मृत्यंतरे—

२५

“ एकोद्दिष्टं यत्र यत्र सपिंडीकरणात्परम् । दैवयुक्तं तु तत्कार्यं दैवहीनं न तद्भवेत् ।

“ सपिंडीकरणादूर्ध्वं दैवहीनं करोति यः । मातापितृगुरुभ्यः स्यादात्मघाती च जायते ॥

“ विप्रलुपंति रक्षांसि श्राद्धमा रक्षवर्जितम् । तत्पालनाय विहिता विश्वेदेवाः स्वयंभुवा” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे तु “ नवमिश्रपुराणानि त्रिविधान्येकोद्दिष्टानि । सर्वैकोद्दिष्टेषु दैवं नास्ति ” ।

नवादिस्वरूपमाह प्रजापतिः—“ नवश्राद्धं दशाहांतं मिश्रं संवत्सरावधि ।

३०

“ एकादशाहमारभ्य कार्यमेकस्य तृतये । अब्दादुपरि यच्छ्राद्धं पुराणं तत्प्रकीर्तितम् ” ॥ इति ।

माधवीये तु “ एकोद्दिष्टं त्रिविधं नवं नवमिश्रं पुराणं च ” इति । अत्र प्रथमाहायेकादशाहान्तं

विषमदिनेषु षट्सु विहितं नवश्राद्धं नवम् । षण्णवश्राद्धानामुपरिकर्तव्यं मासिकं नवमिश्रम् ।

तथाऽश्वलायनः—“नवमिश्रं षडुत्तरम्” इति । मासिकानामुपरि कर्तव्यं प्रत्याब्दिकादि पुराणम् ।

अत एव हारीतेन प्रायश्चित्तकाण्डे नवश्राद्धं मासिकयोः प्रायश्चित्तमभिधाय उत्तरकालीनं श्राद्धं पुराणशब्देन व्यवहृत्य प्रायश्चित्तमभिहितम् ।

“चांद्रायणं नवश्राद्धे प्राजापत्यं तु मासिके । एकाहस्तु पुराणेषु प्रायश्चित्तं विधीयते ” ॥ इति ।
चंद्रिकायाम् “ एतेषु सर्वेषु एकोद्दिष्टेषु आदावन्ते च दैवं नास्तीति शिष्टाचारादिह व्यवस्था ” ।

५ शस्त्रादिहतानां महालयचतुर्दश्यामेकोद्दिष्टम् ।

अत्र विशेषः स्मृत्यन्तरे दर्शितः—

“प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टविधानतः । दैवयुक्तं तु तच्छ्राद्धं पितृणामक्षयं भवेत् ” ॥

प्रेतपक्षः भाद्रपदकृष्णपक्षः । तत्रैकोद्दिष्टविधानमाह सुमंतुः—

“समत्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्य तु । एकोद्दिष्टं सुतैः कार्यं चतुर्दश्यां महालये ” ॥ इति ।

१० समत्वमागतस्य सपिंडीकृतस्येत्यर्थः । शस्त्रेति विषयपशुपक्ष्यपलक्षणम् । तदाह मरीचिः—

“विषयशस्त्रापादादितिर्यग्ब्राह्मणघातिनाम् । चतुर्दश्यां क्रिया कार्या अन्येषां तु विगर्हिता ” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“प्रेतपक्षे चतुर्दश्यां एकोद्दिष्टविधानतः । दैवयुक्तं तु तच्छ्राद्धं पितृणामक्षयं भवेत् ” ॥

प्रचेता अपि—

१५ “वृक्षारोहणलोहाद्यैर्विबुर्दग्निविषादिभिः । नखिदंष्ट्रिविपन्नानामेषां शस्ता चतुर्दशी ॥

“तच्छ्राद्धं दैवहीनं चेत्पुत्रदारधनक्षयः ” ॥ इति । यस्य पिता पितामहोऽपि शस्त्रादिना हतः तेन द्वयोरपि चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टश्राद्धं कार्यम् । तथा स्मृत्यन्तरम्—“एकस्मिन्द्वयोर्वैकोद्दिष्टविधिः” इति । अयमर्थः । एकस्मिन्पितरि शस्त्रादिना हते द्वयोश्च हतयोः पुत्रेण तयोः प्रत्येकमेकोद्दिष्टश्राद्धं कार्यम् । अन्यत्रापि—

२० “मृते शस्त्रादिनैकस्मिन् द्वयोर्वापि महालये । एकोद्दिष्टं विधातव्यं चतुर्दश्यां सदैवतम् ” ॥ इति ।

यस्य पितृपितामहप्रपितामहास्त्रयोऽपि शस्त्रहतास्तेन चतुर्दश्यां पार्वणेनैव विधिना श्राद्धं कार्यम् । एकस्मिन् द्वयोर्वा एकोद्दिष्टविधिरिति विशेषोपादानादिति चंद्रिकाकारापारर्कयोर्मतम् । त्रिष्वपि पित्रादिषु शस्त्रहतेषु त्रयाणामपि पृथगेकोद्दिष्टं कार्यमिति देवस्वामिमतम् । अत्र त्रयाणां शस्त्रहतत्वे पार्वणश्राद्धस्य साक्षाद्विधायकवचनाभावादेकस्मिन् द्वयोर्वैत्यस्योपलक्षणार्थत्वेनाप्युप-

२५ पत्नैरेकोद्दिष्टत्रयमेव कार्यमिति देवस्वामिमतं युक्तमिति माधवीये व्यवस्थापितम् । “शस्त्रहतस्य

पितुर्महालये चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टश्राद्धे कृतेऽपि दिनादनंतरे पितामहादिवृत्त्यर्थं पार्वणविधिना महालयश्राद्धं कर्तव्यम् । एकोद्दिष्टश्राद्धे पितामहादिवृत्तेरभावात् ‘तस्मिंस्तांस्तत्र विधिना तर्पयेत्पायसेन तु’ इति पितामहादेरपि तर्पणीयत्वस्मरणान्नतृप्तये दिनांतरे पार्वणश्राद्धं कार्यमेवेति चंद्रिका-माधवीयादौ निर्णीतम् । शस्त्रादिहतानामपि मृताहादौ यच्छ्राद्धं तत्पार्वणविधानेनैव कर्तव्यम् ।

३० तथा च गर्गः—

“चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिंडीकरणात्परम् । एकोद्दिष्टविधानेन कुर्याच्छ्राद्धं तदौरेसः ” ॥

कालादर्शे—“न तत्संन्यासिनां कुर्यात् पार्वणं द्वादशेऽहनि ” इति । तत्सपिंडीकरणं न ।

किंतु पार्वणमित्यर्थः । शातातपः—

“एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसंस्क्रियाम् । न कुर्यात्पार्वणादन्यत् तत्कार्यं शस्त्रघातिनः ॥

३५ शस्त्रघातिनो यदाऽपरपक्षिकश्राद्धं चतुर्दश्यां क्रियते तत्रैवेकोद्दिष्टविधानं नान्यदेत्यर्थः ।

संन्यासिविषये पार्वणव्यवस्था—

संन्यासिनां नवश्राद्धानि एकोद्दिष्टं सपिंडीकरणं च नास्ति । एकादशेऽन्हि द्वादशेऽन्हि वा पार्वणमेव सुतेन कर्तव्यं क्षयाहे दर्शमहालयाद्यावपि पार्वणं कर्तव्यम् । तथा प्रचेताः—

“ एकोद्दिष्टं यतेर्नास्ति त्रिदंडग्रहणादिह । सपिंडीकरणाभावात्पार्वणं तस्य सर्वदा ” ॥ इति ।

सुमंतुरपि—

“ दंडग्रहणमात्रेण नैव प्रेतो भवेद्यतिः । अतः सुतेन कर्तव्यं पार्वणं तस्य सर्वदा ” ॥ इति ।

वृद्धवसिष्ठः—

“ यतीनां तु न संसर्गः कर्तव्योऽत्र सुतैः सदा । त्रिदंडग्रहणादेव प्रेतत्वं नोपपद्यते ” ॥ इति ।

संसर्गः पिंडसंसर्गः । सपिंडीकरणमिति यावत् । **प्रजापतिरपि—**

“ सपिंडीकरणं न स्याद्यतीनां चैव सर्वदा । अहन्येकादशे प्राप्ते कुर्यात्तेषां तु पार्वणम् ” ॥ इति । १०

उशाना अपि—

“ एकोद्दिष्टं न कुर्वीत यतीनां चैव सर्वदा । अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणश्राद्धमाचरेत् ” ॥ इति ।

यमः—“ सपिंडीकरणं नैव कुर्यादेवौरसः सुतः ।

“ एकोद्दिष्टं न कुर्वीत यतीनां चैव सर्वदा । अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणश्राद्धमचरेत् ” ॥ इति ।

वसिष्ठः—

“ चतुर्विधानां भिक्षूणां ज्ञातिबंधुसुतादिभिः । द्वादशेऽहनि कर्तव्यं तेषां श्राद्धं तु पार्वणम् ” ॥ इति ।

पुलस्त्यः—

“ कुटीचको बहूदश्च हंसः परमहंसकः । चतुर्विधानां भिक्षूणां एकदंडित्रिदंडिनाम् ॥

“ षोडशानि नवश्राद्धं सपिंडीकरणं न च । एकादशेऽहनि प्राप्ते यदि वा द्वादशेऽहनि ॥

“ पार्वणेन विधानेन श्राद्धं कुर्यात्तदौरसः ” ॥ इति । **कालादर्शे—**“ न तत्संन्यासिनां कुर्यात्पार्वणं २० द्वादशेऽहनि ” इति । तत् सपिंडीकरणं न । किंतु पार्वणमित्यर्थः ।

शातातपः—

“ एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसंस्क्रियाम् । न कुर्यात् पार्वणादन्यद्ब्रह्मीभूताय भिक्षवे ” ॥ इति ।

प्रेतसंस्क्रिया दहनम् । **ब्रह्मांडपुराणे—**

“ त्रयाणामाश्रमाणां च कुर्याद्वाहादिकाः क्रियाः । यतेः किंचिन्न कर्तव्यं यच्चान्येषां करोति तत् ॥ २५

“ एकादशे द्वादशे वा पार्वणश्राद्धमाचरेत् । प्रत्यब्दे दार्शिकश्राद्धे तीर्थे चैव महालये ” ॥ इति ।

वसुरुद्रादित्यस्वरूपाः पित्रादयः “ वसुरुद्रादितिमुताः पितरः श्राद्धदेवताः ” (आ. २६९) इति **याज्ञवल्क्यस्मरणात् । आश्वलायनश्च—**

“ देवपूर्वं तु यच्छ्राद्धमक्षय्यं तत्फलं भवेत् । देवपूर्वास्तु पितरो वसुरुद्रादयः स्मृताः ” ॥ इति ।

हरिब्रह्ममहेश्वरात्मकाः पित्रादयो दर्शिताः **नंदिपुराणे महेश्वरेण—**

“ विष्णुः पिताऽस्य जगतो दिव्यो यज्ञः सदैव च । ब्रह्मा पितामहो ज्ञेयो ह्यहं च प्रपितामहः ॥

“ उद्दिश्य विष्णुर्नैरिष्टः पितरस्तैस्तु तर्पिताः । ब्रह्मासमिष्टः प्रीणाति पुंसः सर्वान्पिता महान् ॥

“ प्रपितामहान्समुद्दिश्य त्विष्टोऽहं यैर्महामुने । न यांति नरके धोरे तेषां वै प्रपितामहाः ” ॥ इति ।

वराहपुराणे पितृन्प्रति यमः—

“ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवतामादिपूरुषाः । आदित्या वसवो रुद्राः भवतां मूर्त्तयस्त्रिवे ” ॥ इति । ३५

अत्र ब्रह्माविष्णुमहेश्वरस्थाने केचिदात्मांतरात्मपरमात्मेति त्रिपुरुषोद्देशं कुर्वन्ति । तथा च पात्रे—
“ अंतरात्मा भवेद्विष्णुः परमात्मा महेश्वरः । सर्वेषामपि भूतानामात्मा ब्रह्मा चतुर्मुखः ” ॥ इति ।
विश्वदेवविषये शंखः—

“ पुरुरवाद्रवौ चैव पार्वणे सुरसत्तमौ । नैमित्तिके कालकौमावेवं सर्वत्र कीर्तयेत् ” ॥ इति ।

- ५ नैमित्तिकं सपिण्डीकरणादिसंस्कारं गृह्योक्तप्रकारेण प्राचीनावीती पार्वणं कुर्यात् । यत्तु वचनं—
“ एकादशे द्वादशेऽन्वि नारायणबलिक्रिया । प्रतिसंवत्सरं चैव मृततिथ्यादिकं भवेत् ” ॥ इति
तच्छिष्यकर्तृकविषयम् । पुत्रकर्तृकत्वेऽपि विकल्प इत्यन्ये । ‘मृततिथ्यामिदं भवेत्’ इति विशेष-
स्मरणात् । अन्यत्रामावास्यादौ पार्वणमेव । सुमंतुस्तु—

“ कुटीचके तु दर्शदौ पार्वणश्राद्धमाचरेत् । नारायणबलिं चैव पार्वणं तु बहूदके ॥

- १० “ हंसे मृते सुतः कुर्यात् पार्वणं पितृयज्ञवत् । नारायणबलिं चैव तथा परमहंसके ” ॥ इति ।
स्मृत्यन्तरे—

“ वृत्ते पितरि संन्यस्ते ताते च पतिते सति । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ” ॥ इति ।
संन्यासात्पूर्वं स येभ्य एव पित्रादिभ्यः करोति तस्मिन्मृते तत्पुत्रोऽपि तेभ्य एव दद्यादित्यर्थः ।
तथा पारिजाते—

- १५ “ चंडालादिहते ताते पतिते संगवर्जिते । व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसा ” ॥ इति ।
संगवर्जितः संन्यासी अस्य च प्रेतत्वाभावात्केशधारणब्रह्मचार्यादिनियमो नास्ति । वत्सरांते पार्वण-
मेवेति निर्णयः ।

सपिण्डीकरणविधिः । अथ सपिण्डीकरणम् । तस्य कालमाहाइवलायनः (गृ. प. ३।१।१)

“अथ सपिण्डीकरणं संवत्सरे पूर्णे द्वादशाहे वा” इति । कात्यायनः—“अथ सपिण्डीकरणं संवत्सरे

- २० पूर्णे त्रिपक्षे वा यदहर्बुद्धिरापद्यते ” इति । बोधायनश्च— “ संवत्सरे सपिण्डीकरणं एकादशे
मासि षष्ठे चतुर्थे द्वादशेऽन्वि वा ” इति । खंडान्तरेऽपि स एव

“अथ संवत्सरे पूर्णे सपिण्डीकरणं त्रिपक्षके तृतीये मासि षष्ठे वैकादशे वा मासि द्वादशाहे” ॥ इति ।

गृह्यपरिशिष्टेऽपि—“अथ संवत्सरे सपिण्डीकरणम्” इति । कात्यायनस्मृतौ च—

“ततः संवत्सरे पूर्णे सपिण्डीकरणं भवेत् । द्वादशाहे त्रिपक्षे वा यदा वा बुद्धिरापद्यते” ॥ इति ।

- २५ यदा संवत्सरांते तु सपिण्डीकरणं तदा

“प्रेतसंस्कारकार्याणि यानि श्राद्धानि षोडश । यथाकाले तु कार्याणि नान्यथा मुच्यते ततः ” ॥ इति

हारीतस्मरणात् तत्काले एकोद्दिष्टविधानेन मासिकानि कृत्वा सोदकुंभश्राद्धान्यनुष्ठाय
ऊनाब्दिकात्परमाब्दिकात्पूर्वदिने तत्कुर्यात् । संवत्सरान्ते सपिण्डीकरणमनाहिताग्नेर्मुख्यम्

“सपिण्डीकरणं कुर्याद्यजमानस्त्वनग्निमान् । अनाहिताग्नेः प्रेतस्य पूर्णेऽब्दे भरतर्षभ” ॥ इति भविष्य-

- ३० त्पुराणवचनात् । “वत्सरांते ततः प्रेतः पितृत्वमुपपद्यते” इति बोधायनस्मरणाच्च संवत्सरे पूर्णं
इत्यभिधानात् । द्वित्रिदिनैरुनेन कर्तव्यं वत्सरस्य तदा अपूर्णत्वात् । न चात्र वारादिदोषः

“सपिण्डीकरणं कुर्याद्वत्सरान्ते यदा पुनः । ऊनाब्दिकात्परं कुर्यादाब्दिकात्पूर्ववासरे ॥

“वत्सरांते यदा कुर्यात्सपिण्डीकरणं सुतः । तदा तु तिथिवारादीन्कुर्याद्देवाविचारयन्” ॥ इति
स्मरणात् ।

आब्दिकात्पूर्ववासरे सपिंडीकरणासंभवे आब्दिकदिनेऽपि कुर्यात् । तदा न पृथगाब्दिकं कुर्यात्
“सापिंड्यं यदि वर्षति मृतमासे मृतेऽहनि । कुर्वीत विधिवत्पुत्रः तदेव प्रथमाब्दिकम्” ॥ इति
स्मरणात् । द्वादशाहे सपिंडीकरणं षोडशश्राद्धपूर्वकं कर्तव्यम् । तदेव प्रशस्तम् । ‘संवत्सरप्रतिमा
वै द्वादशरात्रयः’ इति श्रुतेः (तै. ब्रा. I. 1. 9)—

“आनंत्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् । अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते” ॥ इति ५
स्मरणात् । एकपुत्रस्य द्वादशाह एव मुख्यः । ‘कः संवत्सरं जीविष्यति’ इति
श्रुतेः (तै. ब्रा. I. viii. 5) ।

“एकपुत्रोऽग्निमांश्चैव कुर्वीत द्वादशेऽहनि । सपिंडीकरणश्राद्धं तयोरेक इति स्थितिः ॥

“सपिंडीकरणं पित्रोः कुर्यादिको हि यः सुतः । अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते” ॥

इत्यादि स्मरणाच्च । न चात्र वारादिदोषः । तथा च सायणीये—

“श्राद्धं सपिंडनं कुर्यात्तिथिवारं न चिंतयेत् । वर्षति द्वादशाहे वा सपिंडीकरणं यदि” ॥ इति ।

मातापितृव्यतिरिक्तविषये स्मृत्यंतरम्—

“द्वादशेऽहनि संप्राप्ते यदि शुक्रदिनं भवेत् । मातापितृभ्यामन्यस्य नैव कुर्यात्सपिंडनम्” ॥

अन्यत्रापि—

“नांगारे च चतुर्दश्यां भृगुवारे गुरोर्दिने । सपिंडीकरणं कुर्यात्कुलक्षयकरं भवेत् ॥

“श्वोभूते तत्तु कुर्वीत सापिंड्यं षोडशेऽथ वा । त्रयोविंशदिने वाऽपि त्रिपक्षादावनंतरे” ॥ इति ।

द्वादशाहे सपिंडीकरणासंभवे त्रिपक्षादिषु वारादिकं परीक्ष्य कुर्यात् । तदुक्तं स्मृतिरत्ने—

“एकादशातीर्तदिने वर्षति वापि यश्चरेत् । संलग्नग्रहतारौ बलं न प्रतिशोधयेत् ॥

“त्रिपक्षादिषु कालेषु सपिंडीकरणं यदि । तत्र प्रशस्तं नक्षत्रं प्रविशोध्य समाचरेत्” ॥

हारीतः—

“एकादशे द्वादशे वा यदि न स्यात्सपिंडनम् । उत्तरोत्तरकालेषु यथासंभवमाचरेत्” ॥ इति ।

ते चांगिरसा दर्शिताः—

“द्वादशाहे त्रिपक्षे च तृतीये मासि षष्ठके । एकादशे वा मास्यब्दे वृद्धौ कुर्यात्सापिण्डताम्” ॥ इति ।

पट्टतौ च—“अथ द्वादशाहे तृतीये चतुर्थे षष्ठे वा एकादशे मासि सपिण्डीकरणम्” ॥ इति ।

कालादर्शेऽपि—“एकादशे द्वादशेऽब्दि त्रिपक्षे वा त्रिमासिके ।

“षष्ठे वैकादशे वाऽब्दे संपूर्णे वा शुभागमे । सपिंडीकरणस्येत्यमष्टौ कालाः प्रकीर्तिताः” ॥ इति ।

अष्टौ काला इत्युपलक्षणम् । तथा च स्मृतिरत्ने—

“एकादशे द्वादशेऽहनि त्रयोदशदिनेऽथ वा । त्रिपक्षे वा त्रिमासे वा षष्ठे वैकादशेऽपि वा ॥

“संवत्सरांतेऽपि वा कुर्यात्त्रयोदशदिनेऽपि वा । वृद्धिपूर्वदिने वैति दशकालाः सपिंडने” ॥ इति ।

गर्गश्च—

“अथवा त्वकृतं यत्तु द्वादशाहे सपिंडनम् । त्रयोदशदिने कुर्यात्त्रयोविंशदिनेऽथ वा” ॥ इति ।

श्रीधरीये—

“एकादशाहमारभ्य वा यदा षोडशात् दिनात् । सपिंडीकरणं कार्यं ततः सप्तदशेऽहनि” ॥ इति ।

बृहस्पतिः—“द्वादशाहादिकालेषु सपिंडीकरणं न चेत् । तदा प्रशस्तनक्षत्रे त्रिपक्षादिषु कारयेत्” ॥

व्यासः—“प्रमादादकृते तस्मिन् द्वादशैकादशेऽहनि । त्रयोविंशदिने वापि त्रिपक्षाद्युत्तरेषु वा ॥

“तत्र प्रशस्तनक्षत्रं परिशोध्य समाचरेत् ।

“त्रिपदक्षं विना जन्म भानुभौमशनैश्चरात् । शुक्रवारं तदंशं च विनाऽन्यत्र समाचरेत् ॥ इति ।

शंखः—“चतुर्दश्यां तु यत्पूर्वं सपिंडीकरणं स्मृतम् । एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शास्त्रघातिनः” ॥

५ यदेतत्सपिण्डीकरणं तच्छस्त्रहतस्य एकोद्दिष्टं चतुर्दश्यां कार्यं न सपिंडीकरणमित्यर्थः ।

स्मृतिरत्ने—

“सपिण्डीकरणे त्रीणि ऋक्षाण्याहुर्मनीषिणः । प्राजापत्यं तथा रौद्रं नक्षत्रं त्विन्द्रदैवतम् ॥

ऋष्यशृंगः—

“सपिंडीकरणं येन प्रमादादकृतं तदा । अनुराधार्द्रहस्तेषु रोहिण्यां वा समाचरेत् ॥ गालवश्च—

१० “सपिंडीकरणश्राद्धमुक्तकाले न चेत्कृतम् । रौद्रे हस्ते च रोहिण्यां मैत्रभे वा समाचरेत् ॥ इति ।

वत्सरातिक्रमे सपिण्डीकरणप्रकारः । संवत्सरात्यये तु पुनः षोडशश्राद्धानुष्ठानपूर्वकं कर्तव्यम् ।

“कृतेऽपि षोडशश्राद्धे सपिंडीकरणं विना । संवत्सरे व्यतीते तु पुनः षोडशमर्हति ॥ इति

स्मरणात् । अत्र कालमाह बृहस्पतिः—

“अकृते प्राप्तकाले तु श्राद्धकालोऽत्र वक्ष्यते । कन्याकुंभगते भानौ कृष्णपक्षे विधीयते ॥ इति ।

१५ गर्गश्च—

“कृष्णपक्षे तु पंचम्यामष्टम्यां दर्श एव च । एकादश्यां च कर्तव्यं स्वकालाकरणे सति” ॥ इति ।

स्मृतिरत्ने—

“अमायां च क्षयाहे च प्रेतपक्षे तथैव च । सपिंडीकरणं कुर्यात्तिथिवारान् न शोधयेत् ॥ इति ।

श्रीधरीये—

२० “कन्याकुंभगते सहस्रकिरणे तामिस्रपक्षे भृगोर्वीरक्षोदयमंगनातनययोर्जन्मत्रयं चात्मनः ॥

“हित्वानंदकरीं चतुर्दशतिथिं श्राद्धं विदध्यादसुत्वाष्ट्रार्काश्वंसमीरमंत्रिमखमित्राख्यं द्रुविष्णवम्बुषु” ॥

चुसिंहः—

“कन्याकुंभगते सूर्ये कृष्णपक्षे विशेषतः । पंचम्याः परतः श्रेष्ठ आपंचम्याः सितेऽपि च ॥

बृहस्पतिः—

२५ “अंत्यत्रिभागः शस्तः स्यात्कृष्णपक्षे सपिंडने । आद्यभागे च कर्तव्यं सिते पक्षे च संकटे” ॥ इति ।

“प्रेतस्य वत्सरादवर्ग्यदा संस्कारामिच्छति । न कालनियमो ज्ञेयो न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः” ॥ इति

वत्सरादवर्गिव कालदोषाभावविधानादर्थद्वत्सरात्परमधिमसमौढ्यदोषाश्च परिहार्याः ।

वर्णभेदेन सापिण्ड्यकालनियमः । वर्णभेदेन कालव्यवस्थामाह वृद्धमनुः—

“द्वादशेऽहनि विप्राणामाशौचांते तु भूभृताम् । वैश्यानां च त्रिपक्षादावथवा स्यात्सपिंडनम् ॥

३० “शूद्राणां द्वादशाहे तु कर्ता तत्कालतः शुचिः” ॥ इति । अथवा स्यादिति विप्रक्षत्रियविशां

त्रिपक्षादिषु कालेषु वा सपिंडनमित्यर्थः । विष्णुश्च (२१।२०)—“मंत्रवर्जं हि शूद्राणां

द्वादशाहे सपिंडनम्” इति । एतत् सच्छूद्रविषयम् । अत एव प्रजापतिः—

“शूद्राणां द्वादशाहे वा आशौचांतेऽथ वा भवेत् । कुर्यादाशौचमध्येऽपि सच्छूद्राणां सपिंडनम्” ॥ इति ।

सच्छूद्रलक्षणमीह ष्यान्नपादः—

“संस्कृतायां तु शूद्रायां ब्रह्मबीजसमुद्भवः । स्वकर्मनिरतश्चैव सच्छूद्रः स प्रकीर्तितः” ॥ इति ।
संस्कृतायां ब्राह्मणेन विधिवद्ब्रह्मामित्यर्थः । असवर्णाविवाहस्य कलौ निषेधाद्युगांतरविषयम् ।
शूद्राणां द्वादशाहे सपिंडनम् । आपस्तम्बश्च—

“शूद्राणां हीनजातीनामाशौचांते सपिंडनम् । पक्वान्नेन न कर्तव्यमामेन श्राद्धमाचरेत्” ॥ ५
कात्यायनः—

“सर्वेषामेव वर्णानामाशौचांते सपिंडनम् । न पक्वं भोजयेद्विप्रान् सच्छूद्रोऽपि कदाचन ।
“भोजने त्वश्रतां पापं तस्यापि प्रभवेत्सताम्” ॥ इति । सतां शूद्रान्नभोक्तृणां शूद्रस्य चेत्यर्थः ।
एवं च ब्राह्मणानां महामुरुषितृविषये त्रयोदशदिने सापिंड्यम्

“उत्पाद्य पुत्रं संस्कृत्य वेदमध्याप्य यः पिता । कुर्याद्वृत्तिं मृते तस्मिन् द्वादशाहं महामुरौ” ॥ इत्यादि- १०
द्वादशाहाशौचविधानात् ।

दर्शापाते एकादशाहे आहिताग्निकर्तृकसापिण्ड्यम् । “यत्तु द्वादशाहे वैकादशाहे वा” इति बोधायनादिभिरेकादशाहे सपिंडीकरणमुक्तं तदेकादशाहे दर्शापाते सत्याहिताग्निकर्तृकविषयम् । तथा च हारीतः—

“या तु पूर्वममावास्या मृताहादशमी भवेत् । सपिंडीकरणं तस्यां कुर्यादेव सुतोऽग्निमान्” ॥ इति । १५
बृहवसिष्ठोऽपि—

“प्रथमा स्यादमावास्या मृताहात् दशमेऽहनि । सपिंडीकरणं तत्र कुर्यादेव सुतोऽग्निमान्” ॥ इति ।
मृताहादिति मर्यादायां पंचमी मृताहाद्वर्ध्वदिनमारभ्येत्यर्थः । “या तु पूर्वममावास्या” इति विशेषण-
सामर्थ्यादेकादशदिने प्राथमिकदर्शापाते सपिंडनं न द्वितीयादाविति कैश्चिद्वाख्यातम् ।
माधवीयादौ विशेषानभिधानाद्विषयाक्ये लाघवनादरात् तदुपेक्ष्यम् । अत एव काष्णार्जिनिः— २०

“सपिंडीकरणं कुर्यात्पूर्ववच्चाग्निमान्सुतः । परतो दशरात्राच्चत्कुहूरुद्रोपरीतरः” ॥ इति ।
दशरात्रात्परतः कुहूरुद्रो एकादशेऽहनि अमावास्या चेदित्यर्थः । इतरः अनग्निः । एवं च एकादशा-
न्ह्यमावास्यागमे मध्याह्ने आद्यमासिकादि अपराह्ने सपिंडीकरणमपराह्ने सायान्हे वा पिंड-
पितृयज्ञ इति विवेकः । सपिंडीकरणं विना पिंडपितृयज्ञसिद्धेरेकादशदिन एव सपिंडनं कुर्यात् ।
तथा स्मृत्यंतरे—

“सपिंडनं विना पुत्रः पितृयज्ञं न चाश्रयेत् । न पार्वणं नाभ्युदयं कुर्वन्न लभते फलम्” ॥ इति । २५
गालवः—

“सपिंडीकरणात्प्रेते पैतृकं पदमास्थिते । आहिताग्नेः सिनीवाल्यां पितृयज्ञः प्रवर्तते” ॥

जाबालिः —

“सपिंडीकरणं कुर्यात्पूर्वदर्शेऽग्निमान्सुतः । परतो दशरात्रस्य पूर्णेऽब्दे तु तथापरः” ॥ ३०

“नासापिण्ड्यग्निमान्विप्रः पितृयज्ञं समाचरेत् । पापी स्यादसपिंडी तु पितृहा चोपजायते” ॥ इति ।

व्यासोऽपि—

“अतीते दशरात्रे तु पूर्वमासाग्निकस्य तु । तत्रैव च सपिंडत्वं कृत्वा पार्वणमाचरेत्” ॥

पार्वणं पिंडपितृयज्ञः । एकादशदिने एकाग्निना सपिंडीकरणं न कर्तव्यम् ।

“कचिद्विप्रक्षत्रिययोर्नैकोद्दिष्टस्य वासरे । सपिंडीकरणं कुर्यादन्येषामिति रोमशः” इति स्मरणात् ।
कचित्कचिदपि अन्येषामनाहिताग्नीनामित्यर्थः । आपदि तु न दोषः

“एकादशदिनेऽप्येतान्येकोद्दिष्टानि षोडश । सपिंडीकरणं चापि कुर्यादापदि नान्यदा ” ॥ इति स्मरणात् ।

५ एवं चानापदि एकाग्निना द्वादशाहादिष्वेव सपिंडीकरणं कार्यम् । आहिताग्निना एकादशदिने दर्शा-
गमे सति तत्रैव सपिंडीकरणं कर्तव्यम् । आपदि तु तत्रासंभवे द्वादशाहादौ सपिंडीकरणं कार्यम् ।
तथा च कर्मप्रदीपिकायाम्—

“अनंतरममावास्या दशरात्रस्य या भवेत् । सपिंडीकरणं तस्यां कुर्याद्विवाग्निमान्सुतः ॥

“अभावे द्वादशाहादौ सपिंडीकरणं स्मृतम् ” ।

१० दर्शानागमे तु साग्निर्द्वादशाहे सपिण्डनं कुर्यात् । तदुक्तं भविष्यत्पुराणे—

“यजमानोऽग्निमान् राजन् प्रेतश्चानग्निमान् भवेत् । द्वादशाहे भवेत् कार्यं सपिंडीकरणं सुतैः” ॥ इति ।
गोभिलः—

“साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतश्चानग्निमान्भवेत् । द्वादशाहे तदा कार्यं सपिंडीकरणं सुतैः” ॥ इति ।
पितुरग्निमत्त्वेऽपि पुत्रस्याग्निमत्त्वं पितुर्वैधुर्यादिना अग्न्याधानासंभवे वेदितव्यम् । तच्च यजमान-

१५ प्रकरणे निरूपितम् । प्रेतश्चाग्निमान्भवेदिति कैश्चित्पठितं तन्माधवीयादिविरोधादुपेक्ष्यम् । तथाहि
तत्र कर्तुः साग्नित्वे वचनद्वयमिदमुदाहृत्य उभयोः साग्नित्वे वचनान्तरमुदाहृतं तच्च वक्ष्यते ।

कात्यायनः—

“एकादशाहं निर्वर्त्य पूर्वं दर्शाद्यथाविधि । प्रकुर्वीताग्निमान्विप्रो मातापित्रोः सपिण्डनम् ” ॥ इति ।

पैठीनसिः—

२० “सपिंडीकरणं पुत्रः पितुः कुर्वीत योऽग्निमान् । अनग्नेस्तु विजानीयादेकोद्दिष्टात्परेऽहनि ” ॥ इति
प्रेतस्य साग्निकत्वे कर्तुरनग्निकत्वे तृतीये पक्षे सपिंडीकरणं कार्यम् । तदाह सुमंतुः—

“प्रेतश्चेदाहिताग्निः स्यात्कर्ताऽनग्निर्यदा भवेत् । सपिंडीकरणं तस्य कुर्यात्पक्षे तृतीयेके” ॥ इति ।
अत्र विशेषः । द्वादशाहेऽपि विहितम् । भविष्यत्पुराणे—

“अनग्निस्तु यदा वीर भवेत्कुर्यात्तदा गृही । प्रेतश्चेदग्निमांस्तत्र द्वादशाहे सपिण्डनम् ” ॥ इति ।

२५ उभयोः साग्निकत्वे द्वादशाहे सपिंडी कार्या । तदुक्तं विज्ञानेश्वरीये—

“साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतश्चाप्यग्निमान्भवेत् । द्वादशाहे तदा कार्यं सपिंडीकरणं पितुः” ॥ इति ।
उभयोरग्नित्वे द्वादशाहादयः काला विकल्प्यन्ते । तदुक्तं भविष्यत्पुराणे—

“सपिंडीकरणं कुर्याद्यजमानस्त्वनग्निमान् । अनाहिताग्नेः प्रेतस्य पूर्णेऽब्दे भरतर्षभ ॥

“द्वादशेऽहनि षष्ठे वा त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा । एकादशेऽपि वा मासि मंगलं स्यादुपास्थितम् ” ॥ इति

३० कालादर्शे—

“साग्नौ कर्तुर्यभावादौ प्रेते साग्नानंतरः । अनग्नेस्तु द्वितीयाद्याः सप्त काला उदीरिताः” ॥ इति ।
कर्तरि पुत्रे साग्नौ आहिताग्नौ सति

“एकादशे द्वादशे च त्रिपक्षे वा त्रिमासिके । षष्ठे वैकादशे वाऽब्दे संपूर्णे वा शुभागमे” ॥ इति उक्तेष्वष्टसु
कालेषु मध्ये आद्यौ एकादशाहो द्वादशाहश्चेति द्वौ कालौ स्याताम् । एकादशाहे दर्शागमे सत्येकादशाह

३५ अन्यथा द्वादशाहः । अनग्नौ कर्तरि आहिताग्नौ प्रेते सत्यनंतरः कालः त्रिपक्षः । अनाहिताग्नेस्तु
द्वितीयाद्द्वादशाहाद्याः सप्त काला इत्यर्थः । सप्तकाला इति पूर्वोक्तत्रयोद्वादशाहादिकालानामुपलक्षणम् ।

साग्निः कर्ता चेत् द्वादशाह एव सापिंड्यं कुर्यान्नान्यत्र । अनग्निः कर्ता चेत्सामौ प्रेते त्रिपक्ष-
द्वादशाहयोरेव नान्यत्र । अनग्नौ तु प्रेते अनग्निः कर्ता द्वादशादिषूक्तेषु कालेष्वेव नान्यत्रेति
कर्तृनियमोऽभिप्रेतः । द्वादशाहे यदि कुर्यात्साग्निरेवेत्येवंविधः कालनियमो नाभिप्रेतः ।

“द्वादशाहादिकालेषु सापिंडीकरणेष्विमे । साग्न्यनग्नित्वविधयः कर्तुरेव नियामकः” ॥ इति
स्मरणात् । एवं सत्यपि नियमे दैवात् द्वादशाहे त्रिपक्षे वा सापिंड्ये अकृते सति न तस्य लोपः । ५
किंतु तदुत्तरकाले कर्तव्यम् । तदुक्तं कालादृशे

“प्रमादादकृते तस्मिन् त्रिपक्षे द्वादशेऽह्नि^१ वा । उत्तरोत्तरकालेषु यथा संभवमाचरेत्” ॥ इति ।
उत्तरोत्तरकालेषु यत्र संभवति तत्र कुर्यादित्यर्थः । प्रचेताः—

“एकादशेऽह्नि कुर्वीत साग्निस्तु सापिंडनम् । द्वादशाहादिकालेषु साग्निकोऽनग्निकाऽपि वा” ॥ इति ।
गोभिलः—

“द्वादशाहादिकालेषु प्रमादादननुष्ठितम् । सापिंडीकरणं कुर्यात्कालेषूत्तरभाविषु ” ॥ इति ।
पितृमेधसारे—“साग्निः कर्ता द्वादशाह एव सापिंड्यं कुर्यात् । तद्विना पिंडपितृयज्ञासिद्धेः
पुत्रोऽनग्निः पिता चेत्साग्नित्रिपक्ष एव सापिंड्यं कुर्यात् । तयोर्द्वादशाहादौ प्रमादादकृते कालेषू-
त्तरभाविषु सापिंड्यं कुर्यात् ” इति । तयोराहिताग्न्यनाहिग्न्योरित्यर्थः ।

सापिण्ड्याकरणे शुभानधिकारः—सापिंडीकरणकर्तुः शुभागमे सापिंडीकरणं कृत्वैव १५
शुभकर्म कर्तव्यम् । तदाह शाट्यायनिः—

“प्रेतश्राद्धानि शिष्टानि सापिंडीकरणं तथा । अपकृष्यापि कुर्वीत कर्ता नांदीमुखे द्विजः ॥
“सापिंडीकरणश्राद्धमकृत्वा शुभकर्मकृत् । ध्रुवमाप्नोति नरकं सापिंडानां मृतौ क्रमात् ” ॥ इति ।
स्मृत्यन्तरे—

“सापिंडीकरणात्पूर्वं शोभनं न विधीयते । यदि चेत्तत्कृतं कर्म कर्तृनाशाय कल्पते ” ॥ २०
चतुर्विंशतिमते—

“भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सापिंडः सोदकोऽपि वा । सापिंडीकरणं कृत्वा कुर्यादभ्युदयं ततः” ॥ इति ।
गौतमः—

“अग्रजो वाऽनुजो वाऽपि सापिंडः सोदकोऽपि वा । सापिंडीकरणं कुर्यात्पुत्रो वा वृध्यपस्थितौ ॥
“सापिंडीकरणं हित्वा वृद्धिश्राद्धमुपक्रमेत् । अयातयाममरणं भवेत्तस्य न संशयः ” ॥ इति । २५
मुख्यकर्तुरेवायं दोषः । नेतरेषाम् “कुर्यादेव शुभं कर्म मुख्यकर्तुश्च संनिधौ ” इति स्मरणात् ।

सापिण्ड्याधिकारिनिरूपणम् ।

सापिंडीकरणे अधिकारी निरूपितः स्मृत्यन्तरे—

“औरसो दत्तको वापि सापिंडीकरणं चरेत् । परित्यज्यैव जीवन्तं पुत्रं नान्यैस्तु कारयेत् ॥

“अथ शिष्यब्रह्मचारिबंधुभृत्यपुरोहितैः । कारयीत दशाहांतं सापिंडीकरणं विना ॥

“सापिंडीकरणं श्राद्धं पुत्रैः कार्यं प्रयत्नतः ” ॥ प्रजापतिः—

“दाहाद्यैकादशाहांतं गौणपुत्रः समाचरेत् । पित्रोः सापिंडीकरणं प्रकुर्यादौरसः सुतः ॥

“भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सापिंडः शिष्य एव वा । सापिंडीकरणं कुर्यात् पुत्रहीनस्य सर्वदा ॥

“अथवा प्रेतभूतस्य पत्नी कुर्यादमन्त्रकम् । ऋत्विजा कारयेत् यद्वा सापिंडीकरणं तथा ॥

“ऋत्विगादिर्यदा कुर्यात् होमं श्राद्धक्रियां क्वचित् । उपवीत्येव कुर्वीत कर्तुः स्यादपसव्यकम्” ॥ इति ।
आदिशब्देन सगोत्रादि गृह्यते । विष्णुः—

“ज्येष्ठो वाऽप्यनुजो वापि सर्पिण्डः शिष्य एव वा । यत्तु संनिहितस्तस्य त्वधिकारः सर्पिण्डने” ॥ इति ।
शंखश्च—

५ “अपुत्रायाः पतिर्दद्यात्सपुत्राया न तु क्वचित् । पत्युः पिण्डं तथा भार्या भर्तृभार्ये परस्परम्” ॥ इति ।

लोकाक्षिः—

“सर्वाभावे स्वयं पत्न्यः स्वभर्तृणाममंत्रकम् । सर्पिण्डीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च” ॥ इति ।
पार्वणं दर्शमहालयादि । सर्वाभावे स्वयं पत्न्यः इत्येतदासुरादिविवाहोद्वाविषयम् । ब्राह्मादि-
विवाहोद्वा तु पुत्रपौत्राभावे स्वयं कुर्यात् । तथा माधवीये—

१० “पुत्रः कुर्यात्पितुः श्राद्धं पत्नी तु तदसंनिधौ । धनहार्यथ दौहित्रः ततो भ्राता च तत्सुतः” ॥ इति ।

शंखोऽपि—

“पितुः पुत्रेण कर्तव्यं पौत्रेणापि सर्पिण्डनम् । तदभावे तु पत्नी स्यात्पत्न्यभावे तु सोदरः” ॥ इति ।

पत्न्यभावे तु सोदर इत्ययं क्रमः पत्न्या दायहरत्वे द्रष्टव्यः

“अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता । पत्न्येव दद्यात्तत्पिण्डं कृत्स्नमंशं लभेत च” ॥ इति

१५ वृद्धमनुस्मरणात् । अन्यथा यो दायहरः स तत्कुर्यात् । अत एवापस्तम्बः—“यश्चार्थहरः स
पिण्डदायी” इति । सर्वमेतदधस्थान्निरूपितम् ।

विवाहाद्यनंतरम् ।

“विवाहोपनयादूर्ध्वं वर्षं वर्षार्धमेव वा । न कुर्यात्पिण्डनिर्वापं न कुर्यात्करकाणि च” ॥ इति
पिण्डनिर्वापनिषेधः सर्पिण्डिव्यतिरिक्तविषयः ।

२० “मौजीबन्धाद्विवाहाच्च वर्षं वर्षार्धमेव वा । पिण्डान्सर्पिण्डा नो द्युः सर्पिण्डीकरणादृते” ॥ इति
काष्णार्जिनिस्मरणात् । कालादर्श—

“मौजीबन्धाद्वत्सरार्धं वत्सरं पाणिपीडनात् । पिण्डनिर्वापकरणविहीनं श्राद्धमाचरेत् ॥

“नैमित्तिकमहालयप्रत्याब्दिकादृते” इति । नैमित्तिकं सर्पिण्डीकरणम् । स्मृत्यन्तरेऽपि—

“महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोर्भृतेऽहनि । द्वादशाहेऽपि कुर्वीत पिण्डनिर्वापणं सुतः” ॥ इति ।

२५ यत्तु स्मृत्यन्तरे—

“अपुत्रस्य परेतस्य नैव कुर्यात्सर्पिण्डनम् । आशौचमुदकं पिण्डमेकोद्दिष्टं न पार्वणम्” ॥ इति ।

यद्यपि वचनांतरम्—

“अपुत्रा ये मृताः केचित्त्रियो वा पुरुषोऽपि वा । तेषां सर्पिण्डनाभावादेकोद्दिष्टं न पार्वणम्” ॥ इति

तत्पुत्रोत्पादानप्रशंसापरमिति कालादर्शमाधवीयादौ व्याख्यातम् । तथा च पूर्वोक्तशंखादि-

३० वचनान्युपपन्नानि भवन्ति । पैठीनसिरपि—“अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सर्पिण्डनम्” इति ।
सुमंतुरपि—

“अपुत्रे संस्थिते कर्ता न भवेच्छ्राद्धकर्मणि । तत्र पत्न्यपि कुर्वीत सर्पिण्डचं पार्वणं तथा” ॥ इति ।

अपुत्रगृहस्थब्रह्मचारिणोः सापिण्डचम् ।

तथा चापुत्रस्य गृहस्थस्य ब्रह्मचारिणश्च सापिण्डचमाह यमः—

३५ “अष्टमात् द्वादशादूर्ध्वं गृहस्थब्रह्मचारिणोः । सर्पिण्डीकरणं कुर्यान्न प्रागिति यमोदितम्” ॥ इति ।

अष्टमादिति 'अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्' (१।१९।१) इत्याश्वलायनोक्तत्वात्ततः पूर्वमुपनयाभावेन विवाहस्याभाव इत्यभिप्रायेण उक्तम् । 'गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत' इत्यापस्तम्बादिवचनानुसारेण गर्भषष्ठादौ कृतोपनयनस्य एकदेशाध्ययनानंतरं कृतविवाहस्याष्टमात्रागपि सापिंड्यं कार्यम् । तथा च स्मृत्यर्थसारे—“वयोवस्थाविशेषमनादृत्य सर्वत्र पुरुषाणां स्त्रीणां च विवाहादूर्ध्वं सपिंडीकरणं कार्यमेव” इति । स्मृत्यंतरे—

“ऊनद्वित्सरादर्वागूढायाः स्वननं ततः । उत्थाप्य संदहेत्तस्याः सापिंड्यांतं समाचरेत् ॥

“द्वादशाब्दादधश्चोर्ध्वं कन्यकायाः सपिंडनम् । स्वाम्यभावाद्धि नास्त्येव नारायणबलिं चरेत्” ॥

एवमसंपूर्णद्वादशवर्षाणां ब्रह्मचारिणां नारायणबलिरेव कार्यः । निषिद्धसापिंडानां तद्विधानात् ।

पतितादीनां सापिण्ड्यनिषेधः । तथा च वृद्धवसिष्ठः—

“सपिंडीकरणं नैव मृतानां ब्रह्मचारिणाम् । क्लीबानां पतितानां च दुष्टस्त्रीणां तथैव च ॥ १०

“नैष्ठिकानां यतीनां च श्राद्धं नारायणार्पणम् । उपकुर्वाणकस्यैव सपिंडीकरणं विदुः” ॥ इति ।

नारायणार्पणं नारायणबलिः । स्मृत्यंतरे—

“अपूर्णद्वादशाब्दानां मृतानां ब्रह्मचारिणाम् । दाहादिषोडशांतं तु निर्वर्त्यैव यथाविधि ॥

“द्वादशेऽहनि संप्राप्ते नैव कुर्यात्सपिंडनम् । नारायणं समुद्दिश्य विप्रानष्टौ तु भोजयेत् ॥

“एकोद्दिष्टविधानेन श्राद्धं वा कारयेत् द्विजः” ॥ इति । अस्य प्रत्याब्दिकादिश्राद्धमपि नास्ति । १५

“नासपिंडीकृते प्रेते पितृकार्यं प्रवर्तते” इति स्मरणात्—

व्युत्क्रममृतसापिण्ड्यविधिः । अपुत्रायाः पत्न्याः पतिः सापिंड्यं कुर्यात् “अपुत्राया मृतायास्तु पतिः कुर्यात्सपिंडनम्” इति स्मृतेः । ननु “व्युत्क्रमेण प्रमीतानां नैव कार्या सपिंडता” इति निषेधात् पत्न्याः कथं भर्ता सपिंडीकरणं कुर्यादिति चेन्न तस्य मातापितृभर्तृ-पत्नीव्यतिरिक्तविषयत्वात् । तथा च स्कांदे—

“अक्रमेण मृतानां नै सपिंडीकृतिरिष्यते । यदि माता यदि पिता भर्ता नैष विधिः स्मृतः” ॥ इति ।

यदि माता व्युत्क्रममृता यदि पिता व्युत्क्रममृतः यदि भर्ता वा व्युत्क्रममृतः तदा एष निषेधो न किंतु विधिः स्मृतः । सपिंडीकरणविधिरेव मन्वादिभिः स्मृतः इत्यर्थः ।

तथा च मनुः (३।२२०—२२१)—“ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् ।

“पिता यस्य तु वृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः । पितुः स्वनाम संकीर्त्यं कीर्तयेत्प्रपितामहम्” ॥ २५

इति । जीवेच्चापि पितामह इत्यस्यापि पूर्वेषामेव निर्वपेदित्यन्वयः । कथं निर्वपेदित्याह ‘पितुः स्वनाम संकीर्त्यं’ इति । एवं च ध्रियमाणे पितरि जीवत्पितृकर्तृकवृद्ध्यादिषु श्राद्धेषु पितुः सापिंड्ये च पितुः पितृभ्यः पितुः पितामहेभ्यः पितुः प्रपितामहेभ्यः पितृभ्यः इति वा । पितामहे ध्रियमाणे पितामहस्य पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः पितामहेभ्यः पितृपितामहप्रपितामहेभ्य इति वा कीर्तयेदित्यर्थः । सुमंतुश्च—

“त्रयाणामपि पिंडानामेकेनापि सपिंडने । पितृत्वमश्रुते प्रेत इति धर्मव्यवस्थितिः” ॥ इति ।

ब्राह्मेऽपि—

“मृते पितरि यस्याथ विद्यते च पितामहः । तेन देयास्त्रयः पिंडाः प्रपितामहपूर्वकाः ॥

“तेभ्यश्च पैतृकः पिंडो नियोक्तव्यश्च पूर्ववत्” ॥

कात्यायनः—“व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ” इति । असौ व्युत्क्रममृतो जीवद्दशायां येभ्यो ददाति तेभ्य एव तत्सपिंडीकरणे व्युत्क्रममृतपितृको ददातीत्यर्थः ।

यत्तु विष्णुवचनम् (७५-४)—“यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पितृपिंडं निधाय पितामहान् द्वाभ्यां पराभ्यां दद्यात्” इति । तस्यायमर्थः—पितामहे ध्रियमाणे प्रेते च पितरि पितुरेकं पिंडमेकोद्दिष्टविधानेन विधाय पितुर्यः पितामहः ततः पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यात् । पितुः पितामहस्त्वात्मनः प्रपितामहः संप्रदानभूत एवेति प्रपितामहाय ततः पराभ्यां द्वाभ्यां च दद्यादिति । तथा विज्ञानेश्वरे (पृ. ७४ पं. ४)—

“चतुर्णां निर्वपेत्पिंडान्पूर्वं तेषु समापयेत् । ततः प्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमश्नुते ” ॥ इति । एवं च व्युत्क्रममृतस्य पितुः सपिंडीकरणं तत्पितृपितामहप्रपितामहेष्वन्यतमस्य जीवने द्वयोर्वा जीवनेऽपि प्रेतोद्देशेन जीवद्ब्यतिरिक्तत्रिपुरुषोद्देशेन पार्वणैकोद्दिष्टसमुच्चयात्मकं सपिंडीकरणं कर्तव्यम् । तथा च कालादर्श—

“पितृमृतस्य सापिंड्यं मृतयोरूर्ध्वयोर्द्वयोः । एकस्मिन्वा द्वयोर्वाऽपि जीवतः सुत आचरेत्” ॥ इति । एकस्मिन् द्वयोर्वैत्यभिधानात्पितामहादिषु त्रिषु जीवत्सु न सापिंड्यं ‘पिता यस्य तु वृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः’ इति ‘त्रयाणामपि पिंडानामेकेनापि सपिंडनम्’ इति पूर्वोक्तमन्वादिवचनैर्द्वयोरेकस्य वा जीवने सापिंड्यप्रतिपादनात् । वत्सरांते प्रेताय तत्पित्रे तत्पितामहाय तत्प्रपितामहाय च ब्राह्मणान्भोजयेत् ‘त्रिषु पिंडः प्रवर्तते’ इति पितुः पित्रादीनां त्रयाणां श्राद्धे पिंडदानस्मरणात् । तेषु त्रिषु जीवत्सु तदयोगाच्च । तथा च दक्षः—

“पितामहं च जीवंतमतिक्रम्य तदा सुतः । अतिक्रम्य द्वयं वापि सपिंडीकरणं चरेत् ” ॥ इति । तथा पिंडपितृयज्ञं प्रकृत्याह सुमंतुः—

२० “येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत साग्निकः । पितामहेऽप्येवमेव कुर्याज्जीवति साग्निकः” ॥ इति । यत्तु—“ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् । पूर्वेषु त्रिषु दातव्यं जीवेच्चेन्नित्यं यदि” ॥ इति । तज्जीवपितृकश्राद्धविषयमिति व्याख्यातारः । यच्च—

“जीवमानेऽपि पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् । विप्रवद्वापितं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥

“उभौ यस्य व्यतीतौ तु जीवेच्च प्रपितामहः । द्वौ पिंडौ निर्वपेत्तत्र भोजयेत्प्रपितामहम्” ॥ इति । पिंडद्वयमुक्तं तज्जीवपित्रादिमरणविषयं ततश्च ‘पूर्वेषामेव निर्वपेत्’ ‘चतुरो निर्वपेत्पिंडान् त्रिभिः पिंडैर्नियोजयेत्’ इति मन्वादिवचनविरोधादुपेक्ष्यमित्याहुः । यच्च

“सपितुः पितृकृत्येषु ह्यधिकारो न विद्यते । न जीवंतमतिक्रम्य किंचित् दद्यादिति श्रुतिः” ॥ इति तत् “पित्र्येष्ट्यां पितृयज्ञे च वृद्धौ मातुर्भूतेऽहनि । विप्रसंपादितार्थेषु सोऽपि श्राद्धं समाचरेत् ॥

“पितुर्या देवताः प्रोक्तास्ता एवात्रापि देवताः । षडन्ते जीवतः पितुः” इति जीवपितृकस्य

३० श्राद्धविधानात् तद्व्यतिरिक्तदर्शादिश्राद्धविषयम् । तथा च लोकाक्षिः—

“अमाश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । न जीवपितृकः कुर्यात्तिलैः कृष्णैश्च तर्पणम्” ॥ इति । ततः पितुः व्युत्क्रममरणे जीवद्ब्यतिरिक्तानां त्रयाणां वैरणं तेषां पिंडदानं तत्पिंडैः सह प्रेतपिंडसंसर्ग इति निर्णयः ।

ननु—“लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिंडभागिनः” इति स्मरणात् । प्रपितामहात्परेषां पिंडभाक्त्वमनुपपन्नमिति चेन्मैवम् । पित्रादिजीवने तेषां पिंडभाक्त्वात्पूर्वपूर्वात्रये क्रमेणोत्तरोत्तरस्य लेपभाक्तात् । अन्यथा व्युत्क्रममरणाभावे पितुः सपिंडीकरणे लेपभाजश्चतुर्थस्य पिंडभाक्त्वं न स्यात्ततश्च ‘त्रिभिः पिंडैस्तु संसृजेत्’ इत्यादिबहुस्मृतिव्याकोपप्रसंगः । एवं मातरि मृतायां पितामह्यादिष्वन्यतमत्यये मातुः सापिंड्यं कर्तव्यम् । तथा च ब्रह्मा—

“मातर्यपि च वृत्तायां विद्यते च पितामही । प्रपितामहिपूर्वं तु कार्यस्तत्राप्ययं विधिः स्मृतः” ॥ इति । भर्तुर्व्युत्क्रममरणेऽपि पत्नीसपिंडनं कुर्यात्

“व्युत्क्रमेण मृतानां च सपिंडीकृतिरिष्यते । यदि माता यदि पिता भर्ता चैष विधिः ” ॥ इति स्मरणाद्भार्यामरणेऽपि पतिः कुर्यात्

“अपुत्राया मृतायास्तु पतिः कुर्यात्सपिंडनम् । स्वश्रवादिभिः सहैवास्याः सपिंडीकरणं भवेत् ” ॥ इति १० स्मरणात् । अतः व्युत्क्रममरणे पुत्रः पत्नी पतिश्च अन्नेन सापिंड्यं कुर्यात् । तद्व्यतिरिक्तानां व्युत्क्रममरणे सापिंड्यं न कुर्यात् । आमेन हेम्ना वा कुर्यात् । तदाह गोभिलः—

“अनुक्तकालेष्वपितुर्व्युत्क्रमेण मृतावपि । आमेन वाऽपि सापिंड्यं हेम्ना वाऽपि प्रकल्पयेत्” ॥ इति सपिंडीकरणस्य द्वादशाहादयो वत्सरांताः काला उक्ताः । तेषु प्रमादादकृते सपिंडीकरणे व्युत्क्रम-मृतावपि पुत्रव्यतिरिक्तः कर्त्ता आमेन हेम्ना वा कुर्यादित्यर्थः । स्मृत्यन्तरे— १५

“व्युत्क्रमाच्च प्रमीतानां नैव कार्या सपिंडता । अथवाऽऽमेन कर्त्तव्या हेम्ना वा तदसंभवे ॥ “गृहादाहृत्य पक्वान्नं पिंडं दद्यात्तिलैः सह । पिंडं दत्त्वा यथान्यायं पिंडं संयोजनं चरेत् ” ॥

यथान्यायं जीवन्तमतिक्रम्य । अत्र सपिंडीकरणमात्रस्यामादिविधानेऽपि तन्नांतरीयकतया श्राद्धांतं पिण्डमिति केचित् । अन्ये तु व्युत्क्रममृतौ सपिंडीकरणमात्रस्यामादिविधानात्तत्पूर्ववर्ति-श्राद्धानां सत्यां शक्तौ नामादिनियम इत्याहुः । एवं च मातापितृव्यतिरिक्तव्युत्क्रममृतौ २० सापिंड्यनिषेधः पाक्षिकः । पक्षे आमेन हेम्ना वा विधानादेवं विहितामश्राद्धाभिप्रायेण

“ज्येष्ठो वाऽप्यनुजो वाऽपि कुर्याद्भ्रातुः सपिंडनम् । न पुत्रस्य पिता कुर्यान्नानुजस्य तथाऽग्रजः ॥

“यदि स्नेहेन कुर्यातां सपिंडीकरणं विना । अन्याभावे पिता माता ज्येष्ठो वाऽपि सपिंडनम् ॥

“कुर्याज्जीवन्तमाक्रम्य पिंडभागं नियोजयेत् । सर्वाभावे पिता वाऽपि कुर्याद्भ्राताऽथ वाऽग्रजः ” इत्यादीनि व्युत्क्रमसापिंड्यप्रतिपादकानि द्रष्टव्यानि । २५

क्रमसापिण्ड्यनिरूपणम् । अत्र व्युत्क्रममृतानां मातापितृभर्तृपत्नीनामन्नेन सापिंड्ये कृते इतरेषाममेन हेम्ना वा कृतेऽपि तदंतर्हिते मरणे तत्सापिंडनानंतरमेतेषां पुनरन्येन सपिंडीकरणं विदधाति काश्यपः—

“व्युत्क्रमेण प्रमीतानां सपिंडीकृतिरिष्यते । अंतर्हिते मृते पश्चात्पुनः कुर्यात्सपिंडनम् ” ॥ इति ।

दक्षश्च—

“पितामहं च जीवन्तमतिक्रम्य यदा सुतः । अतिक्रम्य द्वयं वाऽपि सपिंडीकरणं चरेत् ॥

“तयोरापन्नयोः काले पुनः कुर्यात्सपिंडनम् ” ॥

वसिष्ठश्च—“व्युत्क्रमेणापि सापिंड्यं कर्त्तव्यमृषिसंमतम् ।

“ततोऽन्यूर्ध्वं तु सापिंड्ये कृतेऽस्य पुनराचरेत् । भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिंडः शिष्य एव वा ।

“अथवा प्रेतभूतस्य पत्नी कुर्यादमंत्रकम् । ऋत्विजा कारयेद्यद्वा सपिंडीकरणं पुनः ” ॥ इति ।
अत्र अमंत्रकविधानं मंत्रोच्चारणाशक्तपत्नीविषयमिति अधस्तान्निरूपितम् ।

पतितैः सह सापिण्ड्यनिषेधः । पतितैः साह सापिण्ड्यनिषेधमाह शातातपः—

“क्लीबैर्न पतितैश्चैव दुष्टाभिस्त्रीभिरेव च । सपिंडीकरणं कुर्यादेकोद्दिष्टं समाचरेत् ” ॥

५ पतितमतिक्रम्य तदूर्ध्वगतैः सापिण्ड्यं कृत्वा अनुमासिकादावेकोद्दिष्टं समाचरेदित्यर्थः ।

पारिजाते च—“पितुर्न नाम निर्देश्यं महापातकदोषिणः । आवाहनादिकार्येषु किंतु तत्परभाविनाम् ॥

“पितामहपुरोगाणां त्रयाणां नाम निर्दिशेत् । पितामहेऽपि दुष्टश्चेत्प्रपितामहपूर्वकः ॥

“निर्देष्टव्यास्त्रयो मर्त्यास्तस्मिन्नपि विदूषिते । प्रपितामहपित्राद्यास्त्रयो वाच्या यथाक्रमम् ॥

“दुष्टश्चेन्मध्यमः कश्चित्तद्वर्जान् पूर्वपश्चिमान् । त्रीनेव निर्दिशेन्मर्त्यान्किं त्वत्रैतद्विशिष्यते ॥

१० “चण्डालादिहते ताते पतिते संगवर्जिते । व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ” ॥ इति ।
स्मृत्यंतरे च—

“वृद्धे पितरि संन्यस्ते ताते च पतिते सति । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ” ॥ इति ।
तथा “येभ्यो ददाति पित्रादिस्तेभ्यः पित्रादिजीवने । दद्यात्तथा सुतः ताते पतिते व्युत्क्रमान्मृते” ॥ इति
पितृव्यतिरिक्तस्य पतितस्य सपिंड्यं नास्ति ।

१५ “सपिंडीकरणं नैव मृतानां ब्रह्मचारिणाम् । क्लीबानां पतितानां च दुष्टस्त्रीणां तथैव च ।

“नैष्ठिकानां यतीनां च श्राद्धं नारायणार्पणम् ” ॥ इति वृद्धवसिष्ठस्मृणात् ।

सापिण्डीकरणप्रकारः । सपिंडीकरणे इतिकर्तव्यतामाह याज्ञवल्क्यः (आ. २.५३.५. २.५४)—

“गंधोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् । अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥

“ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत् ” ॥ इति । विज्ञानेश्वरेणास्यार्थोऽभिहितः (पृ. ७३

२० पं. १३-१६) “गंधोदकतिलैर्युक्तं पात्रचतुष्टयं अर्घ्यार्थं अर्घ्यसिद्ध्यर्थं कुर्यात् । तिलैर्युक्तं पात्र-
चतुष्टयं वदता पितृवर्गे चत्वारो ब्राह्मणाः दर्शिताः । वैश्वदेवे द्वौ स्थितास्तावेव तत्र प्रेतपात्रोदकं
किंचिदवशिष्टं त्रिधा विभज्य पितृपात्रेषु सेचयेत् । ‘ये समाना’ इति द्वाभ्यां शेषं विश्वेदेवावाहनादि-
विसर्जनांतं पूर्ववत् पार्वणवदेवाचरेत् । प्रेतार्घ्यपात्रावशिष्टेनोदकेन प्रेतस्थानब्राह्मणहस्ते अर्घ्यं
दत्त्वा शेषमेकोद्दिष्टवत्समापयेत् । “पित्र्येषु त्रिषु पार्वणम्” इति । कात्यायनः—“चत्वारि पात्राणि

२५ सतिलगंधोदकैः पूरयित्वा त्रिभिः पितृपात्रेष्वसिंचति ‘ये समाना’ इति द्वाभ्यां एतेन पिंडा
व्याख्याता ” इति । विष्णुः—वत्सरांते प्रेताय तत्पित्रे तत्पितामहाय च ब्राह्मणान् देवपूर्वं
भोजयेत् ” इति । गालवश्च—

“सपिंडीकरणं कुर्यात्पितुः प्रेतत्वमुक्तये । विश्वान् देवान्नियोज्यादौ कामकौलकसंज्ञकान् ॥

“प्रेतं पितामहादींश्च मंत्रैरर्घ्यादिभिः श्रयेत् । अनुसंधीयते पूर्वः परो विच्छिद्यते ततः ” ॥ इति ।

३० उक्तेष्वेतेषु प्रथमतो विश्वेदेववरणं ततः प्रेतवरणं ततः पितृपितामहप्रपितामहवरणमिति क्रमः
प्रतीयते । क्रमान्तरं तु स्मृत्यन्तरेऽभिहितम्

“श्राद्धद्वयमुपक्रम्य सपिण्डीकरणं भवेत् । पार्वणं तत्र पूर्वं स्यादेकोद्दिष्टं तथा चरेत् ” ॥

तथा—

“सपिंडीकरणश्राद्धे दैवं पूर्वं नियोजयेत् । पितृन् नियोजयेत्यश्वात्तः प्रेतं विनिर्दिशेत् ” ॥ इति ।

चन्द्रिकायामपि—

“कामकालौ वैश्वदेवे निर्दिष्टौ तु सपिण्डे । पितामहादीन्निर्दिश्य पितुरुच्चारणं ततः” ॥ इति ।

बृहद्विष्णुः—

“पितुर्मरणमारभ्य द्वादशे दिवसे चरेत् । प्रेतभावविनिर्मुक्तद्वारा प्रेतस्य वै पितुः ॥

“पितामहादिभिः सार्धं सापिण्ड्यस्य प्रसिद्ध्यै । समानोदकभावस्य सिध्यर्थं च पितुः सुतः” ॥ ५

“एषां पितामहादीनां विधिना पावर्णेन तु । स्वपितुः प्रेतभूतस्य एकोद्दिष्टविधानतः” ॥

इत्थं च पार्वणात्मकैकोद्दिष्टात्मकोभयरूपकम् ।

“पितामहादीन्निर्दिश्य पितुरुच्चारणं ततः । संबंधगोत्रनामानि वस्त्रादित्यं च कीर्तयेत् ॥

“दद्यात्कृसरतांबूलं गंधाद्यभ्यंजनादिकम् । ततः स्नातान् समाहूय स्नातस्तानुपवेश्य च ॥

“दर्भं विप्रकरे दत्त्वा वृणुयाद्देवपूर्वकम् । सपिण्डीकरणादर्वागृजुदर्भैः पितुः क्रियाः” ॥ १०

“परतो द्विगुणैरेव दैवकर्म सदर्जुभिः । पित्रे ह्येकपवित्रौ द्वौ दर्भौ देवकर्मणि ॥

“द्वौ निमंत्रयते दर्भौ वैश्वदेवार्थमादितः । कामकालौ वैश्वदेवे देवते हि प्रकीर्तिते ॥

“पितामहादिसंबंधांस्तयवरान्श्रोत्रियान्द्विजान् । प्रेतस्थाने त्वेकविप्रं यद्वा पैतामहादिषु ॥

“एवं वा प्रेतमेकं वा दैवेऽप्येकं निमंत्रयेत् । पितामहादीनभ्यर्च्य ततः प्रेतं समर्चयेत् ॥

“सपिण्डीकरणश्राद्धं पितृपूर्वमुदीरितम् । प्रेतपूर्वं वदंत्येके तदसांप्रतमीरितम् ॥ १५

“वैश्वदेवार्चनं कृत्वानंतरं प्रेतपूजनम् । पार्वणस्य हि तंत्रस्य मध्ये तंत्रांतरं भवेत् ॥

“पार्वणैकोद्दिष्टयोश्च पार्वणं पूर्वभागभवेत् ॥

“पादान्प्रक्षालयेद्दर्भास्तिलानोप्यावटत्रये । देवार्थानामुत्तरे तु पित्रार्थानां तु मध्यमे ॥

“दक्षिणे तु निमित्तस्य पादप्रक्षालनक्रमः ।

“कुंडानि निखनेच्छाद्धे येन केनापि शंकुना । आयसेन खनेद्यस्तु निराशाः पितरो गताः” ॥ २०

“श्राद्धस्य चेककुण्डं स्याद्वा जपादसुसंमितम् । सापिण्ड्येषु त्रिकुण्डं स्याद् वृत्ताकारं तु दक्षिणे ॥

“त्रिकोणं मध्यमं कुण्डमुत्तरं चतुरश्रकम् । आयामस्तस्य विस्तारस्तदर्थं खननं भवेत् ॥

“न्यूनातिरिक्तं तु यः कुर्याद्भवेत्स पितृघातकः ।

“पादान् वा जानु वा जघमपि वा चरणद्वयम् । कूर्परान्तं करौ सम्यक् क्षालयेत् प्रथमं बुधः ॥

“आचांतान्वैश्वदेवार्थान् प्राङ्मुखानुपवेशयेत् । आसनेषु च कूर्मेषु ततः पैतामहान्द्विजान्” ॥ २५

“उदङ्मुखान्निवेश्यैव ततः प्रेतार्थमुत्तमम् । प्रत्यङ्मुखं निवेश्यैव सर्वं पित्र्यवदाचरेत् ॥

“एकोद्दिष्टनिषेधं तु यद्यदावाहनादिकम् । तत्सपिण्डीकृतौ प्रेते सर्वं पित्र्यवदाचरेत् ॥

“करिष्ये पिंडसंयोगमिति पृष्ट्वा तदाज्ञया । दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु अर्घ्यपात्रचतुष्टयम् ॥

“सादयेत्प्रथमं तत्र पित्र्यं पैतामहं ततः । प्रपितामहदैवत्यं ततः प्रेतार्थमुत्तमम् ॥

“पात्रेषु त्रिदालान्कूर्चानंतर्थाय तिलोदकम् । शं न इत्यादिभिर्मन्त्रैर्निनयेत्तेषु च क्रमात्” ॥ ३०

“प्रेतशब्दं पितृस्थाने यथालिङ्गं स्त्रिया अपि । पित्रर्घ्यं पितृहस्तेषु दत्त्वा प्रेतार्थमुत्तमम् ॥

“प्रेतविप्रकरे दत्त्वा या दिव्या इति मंत्रतः । देवपूर्वं तु गंधाद्यैर्विप्राणां पूजनं परम् ॥

“प्रेतोद्दिष्टे विशेषेण दद्यादाच्छादनादिकम् । अग्नौकरणहोमं च यथाशास्त्रं समाचरेत् ॥

“यथेष्टं भोजयेद्विप्रान्भोज्यंजनसंयुतम् । राक्षोघ्नाह्वावयेन्मंत्रान्वैष्णवान्यैतृकानपि ॥

“तृप्ताः स्थेति च पृष्ठास्ते तृप्ताः स्मो ब्रुवते द्विजाः । अन्नं तु विकिरेद्भूमौ दद्यादाचमनं ततः ॥

“होमभोजनशेषाभ्यां पिंडान्कृत्वा तिलान्वितान् । पितामहादिपिंडांस्त्रीन्द्रयानु पितृयज्ञवत् ॥

“प्रेताय दक्षिणे दद्यात्पिंडं चोभययोदकम् । ये समाना इति द्वाभ्यां पितृपिंडेषु योजयेत् ॥

“पिंडसंयोजनादूर्ध्वं प्रेतत्वस्य निवृत्तितः । मार्जनादिषु कृत्येषु चतुर्थं विनिवर्तयेत् ॥

५ “अभ्यर्थयेत् द्विजांस्तेऽपि प्रतिब्रूयर्थोचितम् । अन्नशेषमनुज्ञाप्य नमस्कृत्य निवर्तयेत्” ॥ इति

स्मृतिरत्ने—“इति बोधायनः प्राह सपिंडीकरणं ब्रुवन् । अर्घ्योपस्थानमात्रं तु प्रेतपूर्वं महामुनिः ॥

“आवाहनादावन्यत्र पितृपूर्वत्वमूचिवान् । प्रेतपूर्वत्वशास्त्राणामयमर्थो व्यवस्थितः ॥

“एकं प्रेतस्य हि त्रीणि पितृणां चैकमेव वा । इत्यापस्तंबवाक्यं च न विरोधीति दृश्यते ॥

“भुजानानाभिमुख्येन पुण्यसूक्तानि कीर्तयेत् । तदभिभ्रवणं नाम तदप्यत्रोचिवान्मुनिः” ॥ इति ।

१० पुण्यसूक्तानि पुरुषसूक्तादीनि । पितृसूक्तमत्र वर्जयेत्

“नांदीमुखे गयाश्राद्धे नित्यश्राद्धे च मासिके । सपिंडीकरणश्राद्धे न जपेत्पितृसूक्तकम्” इति ।

स्मृतेः । याज्ञवल्क्यः (आ. ३२८)—“द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उदगैकैकमेव वा” ॥

स्मृतिसारसमुच्चये तु—

“पूर्वं निमंश्य देवे द्वौ त्रीन् विप्रान्पितृकर्मणि । दैवे पित्र्येऽपि वैकैकं सपिंडीकरणं विना” ॥ इति

१५ ततश्च ‘द्वौ देवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा’ इत्यादौ एकैकवचनं सापिंड्यव्यतिरिक्तपार्वण विषयम् । सायणीये—

“सपिंडीकरणेऽवश्यं विष्णुमभ्यर्चयेत् द्विजे । सप्तकं तु तदा स्यातां विना विष्णुः कथं तथा” ॥

इति । विष्णुवरणाभावे सापिंड्यस्य सप्तकत्वस्यतिर्भज्येतेत्यर्थः । तत्रैव—

“इति वै देवलः प्राह शाण्डिल्यश्च महामुनिः । यत्किंचित्पार्वणश्राद्धं तत्र सर्वत्र वै द्विजे ॥

२० “पूजयेद्विष्णुमित्येवं श्राद्धं सिध्यति नान्यथा” ॥ इति ।

एवं विष्णुवरणाभावे दोषमाह मनुः (३१२०५)—

“दैवाद्यंतं भवेच्छ्राद्धं पित्राद्यंतं न तद्भवेत् । पित्राद्यंतं तदीहानः श्राद्धमाप्नोति निष्फलम्” ॥ इति चंद्रिकायाम्—

“स्वधाशब्दं धूपदीपौ नमः शब्दं प्रयोजयेत् । नैवं प्रेते नमः शब्द उपतिष्ठपदं भवेत् ॥

२५ “विप्रपाणावथाग्रौ वा जुहुयादाहुतिद्वयम् । निरुह्य वह्नेरंगारान्प्रेतस्य च यमस्य च ॥

“स्वाहेति जुहुयादन्नमुक्तैतद्गोत्रनामनी । प्रेतहस्तेऽपि वा हुत्वा भोजयेच्च यथाक्रमम् ॥

“संबुध्यानिर्दिशेन्नाम पित्रादीनामसाविति । यज्ञशर्मन्निमं पिंडमुपतिष्ठेति चांततः ॥

“पिंडं चतुर्थं प्रेताय दद्यादक्षिणहस्ततः । प्रेतपात्रस्थमुदकं पित्राद्यर्थेष्वथानयेत् ॥

“समानो मंत्र इत्याभ्यामृग्भ्यां चैव यथाक्रमम् । मधुत्रयेण चादाय प्रेतपिंडं त्रिधा कृतम् ॥

३० “संगच्छध्वमिति द्वाभ्यां पितृपिंडेषु योजयेत् । ये समाना इति द्वाभ्यां पिंडोपस्थानमिष्यते ॥

“पिंडसंयोजनादूर्ध्वं प्रेतत्वस्य निवृत्तितः । मार्जनादिषु सर्वत्र चतुर्थो विनिवर्तते ॥

“केवलः पितृशब्दस्तु पितृसामान्यवाचकः । पितामहादिसंबंधं तत्तन्मंत्रादिषूहयेत्” ॥

बोधायनः—“मधुत्रयेण संगच्छध्वं समानो मंत्र इति त्रिभिर्द्वाभ्यां वा अर्घ्यसंसर्गः संगच्छध्वं

समानो मंत्र इति द्वाभ्यां पिंडसंसर्गः” इति । आश्वलायनः—“समानो मन्त्रः समानीव इति द्वाभ्यामर्घ्यसंसर्गो मधुमती त्रिः संगच्छध्वं समानो मन्त्र इति त्रिभिः पिण्डसंसर्गः” इति । गौतमः—“ये समाना इत्यर्घ्यसंसर्गो ये सजाता इति पिंडसंसर्गः” इति । वैखानसः—“समानो मन्त्रः समानीव इति द्वाभ्यामर्घ्यसंसर्गः संगच्छध्वं समानो मन्त्र इति द्वाभ्यां पिण्डसंसर्गः” इति । शातातपः—
 “ निर्वपेच्चतुरः पिंडान्श्रद्धया पितृनामतः । पिंडान्दत्त्वा पितृणां तु पश्चात्प्रेतस्य पार्श्वतः ॥ ५
 “तं च पिंडं त्रिधा कृत्वा आनुपूर्व्यां सत्तमः । निदध्यात् त्रिषु पिण्डेषु एष संसर्जने विधिः” ॥ इति ।
 संसृज्यमानपिंडाभिप्रायेण चतुरः पिंडानित्युक्तम् । यथास्वसूत्रं पिंडसंख्या द्रष्टव्या । “द्वेधा दक्षिणाग्रान्” इत्यादिना आपस्तंबेन पितृमातृवर्गयोरुभयोरपि पिंडदानविधानादापस्तंबिनः प्रेतपिंडेन सह सप्तपिंडान्द्वयः । तथा पितृभेदसारे—“हुतशेषमिश्रैरन्नैस्तिलयुक्तैः सप्तपिण्डानुमरणेऽष्टौ पिण्डाननेकसापिण्डये तावतो निमित्तपिण्डान् कृत्वोच्छिष्टसन्निधावग्रे दक्षिणतस्त्रेधा १०
 दक्षिणाग्रान् दर्भान् संस्तीर्य दक्षिणामुखः सव्यं जान्वाच्य तेषु मध्यमदर्भेषु मार्जयन्तां मम पितुः पितरः पश्चिमदर्भेषु मार्जयन्तां मम पितुर्मातर इत्याभिर्दक्षिणापर्वर्गं मार्जयेत् । अत्र पूर्वं मातृमृतौ मार्जयन्तां मम मातर इति मार्जयित्वा मार्जनक्रमेण एतत्ते पितुस्तत्तेत्यादिभिः षट् पिण्डान् दत्त्वा ये च त्वामनु याश्च त्वामन्विति प्रतिपिण्डं दर्भमूलेषु लेपं निमृज्य मार्जयतां मम प्रेतः मार्जयतां मम प्रेतैत्यपो दत्त्वा अमुकगोत्रामुकशर्मन् प्रेतैतं पिण्डमुपतिष्ठेति प्रेतपिण्डं प्रदाय अमुकगोत्रे १५
 अमुकनाम्नि प्रेते इति स्त्रियाः ब्राह्मणाभ्यनुज्ञातः समानो मन्त्रः समानीव इति द्वाभ्यां प्रेतार्घ्यं पित्राद्यर्घ्यपात्रेषु निनीय तूष्णीं प्रेतपिण्डमादाय त्रेधा विभज्य तद्भागत्रयं पित्रादिपिण्डानां पुरस्तान्निधाय वैतरणीगोदानं कृत्वाऽनुज्ञातो मधुमतीभिः सङ्गच्छध्वं समानो मन्त्रः समानीव इति चतुर्भिस्तत्पिण्डैः सह त्रयं हस्ताभ्यां युगपत्संभृजेत् । एवं प्रेतपिण्डं पित्रादिपिण्डैः संसृज्य ये समाना ये सजाता इति द्वाभ्यां पिण्डानुपस्थाय संसृष्टेनार्घ्योदकेन मन्त्रानूहेन पूर्ववन्मार्जयेत्” इति ॥+ २०
 “सव्यंजनैः सप्तपिंडाननुमरणेऽष्टौ पिंडान्द्वयः” इति । अत्र याज्ञवल्क्यः (आ. ३४२)—
 “सर्वमन्नं समादाय सतिलं दक्षिणामुखः । उच्छिष्टसंनिधौ पिंडान्दद्यात् वै पितृयज्ञवत्” ॥ इति ।
 सर्वमन्नमिति पायसापूपफलादीत्यर्थः । बोधायनः—“सर्वोपकरणैर्यथोपपौदनं संपूज्याक्षय्यं वाचयित्वा स्वधां वाचयित्वोत्थाप्योपसंगृह्य प्रसाद्य प्रदक्षिणीकृत्यानुव्रज्य यथेतमेत्य दक्षिणेनाग्निं दर्भान्संस्तीर्य तेष्वन्नशेषैः पिंडान् ददाति नोच्छिष्टं परिसमूहत्यत्र पिंडान्ददाति” इति । २५
 आपस्तंबः—“भुक्तवतोऽनुव्रज्य प्रदक्षिणीकृत्य द्वेधा दक्षिणाग्रान्दर्भान्संस्तीर्येत्यादि” ॥
 आश्वलायनः—“भुक्तवत्स्वनाचांतेषु पिण्डं निदध्यात् । आचान्तेष्वित्येके” इति ।
 जमदग्निः—“नदी वैतरणी नाम दुर्गन्धरुधिरावहा । कृष्णतोयवहा वेगिन्यस्थिकेशतरङ्गिणी ॥
 “दत्ता गौर्येन सापिण्डये स तां तरति नेतरः । अकृते तत्र पच्यन्ते प्रायश्चित्ते तु पापिनः ॥
 “विभक्तं प्रेतापिंडं तु पितृपिण्डेषु योजयेत् । तृचेन मधुवातेति संगच्छध्वं तृचेन तु” ॥ इति । ३०
 स्मृत्यर्थसारे—

“सापिंडीकरणेष्वेतान्पिंडानप्स्वेव निक्षिपेत् । अन्यथा करणे तेषां पितृदेवा रुदन्ति हि” ॥

आश्वलायनोऽपि—

“पत्न्यां रजस्वलायां च व्याधितायामथापि वा । प्रक्षिपेन्मध्यमं पिंडं जले गव्यथवानले ॥

“पतितायां च वा पत्न्यां मृतायां च तथा द्विजः । सपिण्डीकरणे चैव मध्यं पिण्डं तथाचरेत् ॥
 “वृद्धिश्राद्धे सपिण्ड्यां च प्रेतश्राद्धेऽनुमासिके । संवत्सरविमोके च न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥
 “नवश्राद्धानि मिश्राणि सपिण्डीकरणं तथा । कृत्वा तु विधिवत्स्नायान्नैव स्नायान्मृतोऽहनि” ॥ इति ।
 मिश्राणि सपिण्डीकरणात्पूर्वभावीनि षोडशश्राद्धानीति व्याख्यातारः ।

५ **मातृसापिण्ड्यविधिः । मातुः सपिण्डीकरणमाह शंखः—**

“मातुः सपिण्डीकरणं कथं कार्यं भवेत्सुतैः । पितामहादिभिः सार्धं सपिण्डीकरणं स्मृतम् ” ॥ इति ।
विज्ञानेश्वरोऽपि (पृ. ७५ पं. १२)—

“पितामहादिभिः सार्द्धं सपिण्डीकरणं सुतः । मातुः कुर्वीत पित्राथैः पितुः कुर्याद्यथाविधि” ॥ इति ।
 मातुः पितामहादिभिः सार्धमिति संबंधः । **काश्यपः—**

१० “योजयेन्मातुरर्घ्यं च ऋग्भ्यां मात्रादिषु त्रिषु । एवं त्रिधा कृतं पिण्डं त्रिषु पिण्डेषु योजयेत्” ॥ इति ।
 मात्रादिषु पितामहादिषु । प्रमीतपितृकस्य विकल्पमाह **यमः—**

“जीवत्पिता पितामहा मातुः कुर्यात्सपिण्डताम् । प्रमीतपितृकः पित्रा पितामह्याऽथ वा सुतः ” ॥
लोकाक्षिरपि—

“पितामहादिभिः सार्धं मातरं तु सपिण्डयेत् । पितरि ध्रियमाणे तु तेन वोपरते सति ” ॥ इति ।

१५ **अन्वारोहणे तु भर्त्रैव सापिण्ड्यं नियतम् । तदाह शातातपः—**

“मृता याऽनुगता नाथं सा तेन सह पिण्डताम् । अर्हति स्वर्गवासेऽपि यावदाभूतसंस्तुवम् ” ॥ इति ।
यमः—

“पत्या चैकेन कर्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः । सा मृताऽपि हि तेनैक्यं गता मंत्राहुतिव्रतैः” ॥ इति ।
 अत्रैकशब्दः पितामहादिविकल्प्य व्यावृत्त्यर्थः । **षड्विंशन्मतेऽपि—**

२० “मातुः सपिण्डीकरणं पत्या सार्धं विधीयते । यस्मात्पतिव्रतानां तु सैव संततिरिष्यते ” ॥ इति ।
शंखश्च—“अन्वारोहे तु भर्त्रैव मातुः सह सपिण्डनम् ” । **स्मृतिसारसमुच्चये—**

“परेद्युरनुयाने तु मरणाहःक्रमेण तु । दहनादिसपिण्ड्यं सह कुर्याद्यथाविधि ॥
 “पिण्डं दत्वा स्वर्धां तस्या भर्तृपात्रे निनीय तु । मंत्रेणैव तु तत्पात्रं पितृपात्रेषु सेचयेत् ॥
 “भर्तृपिण्डेन संस्तुज्य पितृपिण्डैस्तु संस्तुजेत् ” ॥ इति ॥

२५ **विश्वादर्शे—**“स्त्रीपिण्डे पतिपिण्डे तदनु तं पित्रादिभिर्मिश्रयेत्” इति । **चंद्रिकायां विशेषोऽभिहितः—**

“दशाष्टद्वादशान्विप्रान्निमंज्य द्वादशेऽहनि । द्विधास्तृतेषु दर्भेषु त्वर्घ्यपात्रं प्रकल्पयेत् ॥

“पित्रादेश्च पुनश्चैव मात्रादेस्तदनंतरम् । पित्रर्घ्यपात्रमुदकं क्रमात्पैतामहादिषु ॥

“ये समाना इति द्वाभ्यां मंत्राभ्यां योजयेत्क्रमात् । योजयेन्मातुरर्घ्यं च ऋग्भ्यां मात्रादिषु त्रिषु ॥

“एवं त्रिधा कृतं पिण्डं पिण्डेषु त्रिषु योजयेत् । पित्रोः संघातमरणे त्वनुयानविधिः स्मृतः ” ॥ इति ।

३० एतत् “दैवं पित्र्यं च तंत्रं स्यान्निमित्तं प्रतिपूरुषम् । पिण्डं दत्वा स्वर्धां तस्या भर्तृपात्रे निनीय च” ॥
 इत्यादि वचनविरोधाच्छिष्टाचाराभावाच्चानारणीयम् ।

गालवः—“एकचित्यां समारूढौ दंपती निधनं गतौ । एकोद्विष्टं षोडशं च भर्तुरेकादशेऽहनि ॥

“द्वादशेऽहनि संप्राप्ते पिण्डमेकं द्वयोः क्षिपेत् । पितृपिण्डेन संयोज्यं मातृपिण्डं पुनस्त्रिधा ॥

“पितामहादिपिण्डेषु विभज्य विनियोजयेत् ” ॥ इति । **वसिष्ठस्तु—**

३५ “अनुयाने तु पतिना सपिण्डीकरणं सह । अंतर्धाय तृणं मध्ये भर्तुः स्वशुरयोरपि ” ॥ इति ।

यमोऽपि—“ तूष्णीं दंपतिपिंडाभ्यां कुशैरंतरयेत्पितृन् ।

“इवशुरस्याग्रतो यस्माच्छिरः प्रच्छादनक्रिया । पुत्रैर्दंभेण सा कार्या मातुरभ्युदयार्थिभिः” ॥ इति । बहुपत्न्यनुमरणे तु “ निमित्तपिण्डपेकैकं दत्त्वा तैः संसृजेत्क्रमात् ” इति स्मरणात् प्रतिपत्त्येकैकं पिंडं दत्त्वा ज्येष्ठक्रमाद्विभज्य मंत्रावृत्त्या संसृजेत् ।

“ बहुपत्नीकपक्षे तु मंत्रावृत्तिः पुनःपुनः । विभज्य पिंडं दद्यात्तु गार्ग्यस्य वचनं तथा ” ॥ इति ५ स्मरणात् । मातापित्रोः सहमरणेऽपि मातृपिंडं पितृपिंडेन संयोज्य तं पिंडं त्रिधा विभज्य पितामहादिपिंडेषु त्रिषु संसृजेत्

“ पित्रोः संघातमरणे त्वनुयानविधिः स्मृतः । पृथगेवान्यथा कुर्यादिति ग्राह्यं पितामहः ” ॥ इति स्मरणात् । तथा स्मृत्यर्थसारे—“ अनुमरणे सहमरणे च तस्या अर्घ्यपिंडौ पत्युरर्घ्यपिंडाभ्यां पूर्वं संसृज्य पश्चादर्घ्यपिंडौ त्रिधा विभज्य पित्राद्यर्घ्यपिंडैः पूर्ववत्संसृजेत् ” इति विवेकः । एवं च १० पितुः सपिंडीकरणे प्रेताद्यर्घ्यपिंडं त्रिधा विभज्य पित्राद्यर्घ्यपिंडैः संसृजेत् । मातुः सपिंडीकरणे प्रेताद्यर्घ्यपित्राद्यर्घ्यैः संसृज्य प्रेतपिंडं पितामहादिपिंडैः संसृजेत् । प्रमीतपितृकस्तु पित्रादिपिंडैः पितामहादिपिंडैर्वा संसृजेत् । पितामहादिपिंडसंसर्गः शिष्टाचारानुगुणः । अनुमरणे सहमरणे च तस्या अर्घ्यपिंडौ पत्युरर्घ्यपिंडाभ्यां संसृज्य त्रिधा विभज्य पित्राद्यर्घ्यपिंडैः संसृजेदिति विवेकः । तथा च “ पितामहादिभिः सार्धं सपिंडीकरणं स्मृतम् ” इति पूर्वोक्तशंखाद्विवचनानि तत्तत्सपिंड्यसंसर्गा- १५ भिप्रायाणि । न तु श्राद्धदेवताप्रतिपादनपराणि । श्राद्धदेवतास्तु सर्वत्र पित्रादय एव भोजनीयाः । तथा विज्ञानेश्वरः (पृ. ७३ पं. १९)—

“ सपिंडीकरणश्राद्धं देवपूर्वं नियोजयेत् । पितृनेवाशयेत्तत्र पुनः प्रेतं च निर्दिशेत् ” ॥ इति । स्मृत्यंतरे च—

“ मातुः पितुश्च सपिंड्ये पित्रादीनेव भोजयेत् । पितामहादिभिः सार्धं मातुः कुर्यान्मृतेऽहनि ” ॥ इति २० अन्यत्रापि—

“ सपिंड्ये ह्युभयत्रापि पितरश्चैव देवताः । स्त्रीणामर्घ्यं तु पित्राक्षे नयेत्पिंडान् स्त्रियादिषु ” ॥ इति । पित्रादीनां भोजनविधानात्तेषामेवावर्च्यसद्भावात्स्त्रीमृतौ प्रेताद्यर्घ्यं पित्राद्यर्घ्यैः संसृजेत् । पितामहादेर्भोजनाभावेऽपि पिंडदानविधानात्स्त्रीपिंडं पितामहादिपिंडेष्वेव योजयेदित्यर्थः । तथा च स्मृत्यंतरे—

“ स्त्रीमृताहे स्त्रियो भोज्याः पितरस्त्रीसपिंडेन । पित्रादेवे होमः स्यात्पिंडदानं तु वर्गयोः ” ॥ इति । २५ पितरः जीवपितृकस्य पिनामश्राद्धस्यः प्रमीतपितृकस्य पित्राद्यस्यः श्राद्धदेवताः । तेषां भोजनं होमश्च होममंत्रेषु चोद्देशितं । पिंडदानं तु पित्रादीनां पितामहादीनां तिसृणां चेत्यर्थः । रुद्रस्कंदे च—

“ स्त्रीणां सपिंड्ये भर्तुः पित्रादिभ्यः पिंडं दद्यात् । तथैव तेषां स्त्रीभ्यः ” इति । अतः पितामहादीनां भोजनाभावे पिंडदानसद्भावात्पितामहादिपिंडैर्मृतपिंडसंयोगो युज्यते । तथा च पितृमेधसारे—“ पुंसः स्त्रिया वा सपिंड्ये पित्रादीनेव वृणुयात्पुंसः पिंडं पित्रादिपिंडैः संसृजे- ३० स्त्रियाः पिंडं श्वश्र्वादिपिंडैरेवानुमृतौ पत्या ” इति । अत्र केचिदशुः—“ पितामहादिभिः सार्धं सपिंडीकरणं स्मृतम् ” इति शंखाद्विवचनानि मातृसापेक्षे पितामहादिभोजनपराणि न तु पिंडसंसर्गमात्राभिप्रायाणि ‘ पितृनेवाशयेत्तत्र ’ इत्यादीनि त्वनुमृतिविषयाणि । अनुयाने पित्रादिपिंडेष्वेव तत्पिंडसंयोगविधानाद्भोजनमपि तेषां तत्र युज्यत इति ।

अपरे पुनराहुः—

“सर्पिंडीकरणं पित्रोः पितृयज्ञविधानतः” इति स्मरणात्पिंडपितृयज्ञे पिंडत्रयविधानात्

“तिलयुक्तेन चान्नेन पिंडांस्त्रिनेत्र पुत्रकः । पितृनुदिश्य दर्भेषु कुर्यादुच्छिष्टसनिधौ” ॥ इति

स्मरणात्कात्यायनाश्वलायनादिभिश्च पिण्डपितृयज्ञप्रकारेण पार्वणपिंडविधानात्तत्र पित्रादीनां भोजने पितामह्यादीनां पिंडदानस्यानौचित्यात्पिंडपितृयज्ञविधानेनानुष्ठातृणां मातृसापिंडये पितामह्यादीनामेव भोजनम् । पितामह्यादिपिंडैरेव मातृपिंडसंसर्गः । “पितामह्यादिभिः सार्धं सर्पिंडीकरणं स्मृतम्” इत्यादीनि च पिंडत्रयवतां पितामह्यादिभोजनपिंडदानतत्संसर्गपराणि ‘पितृ-नेवाशयेत्तत्र’ इत्यादीनि तु पिंडषट्पदवतां पित्रादिभोजनपराणि । ‘पितामह्यादिभिः सार्धम्’ इति वचनात्पितामह्यादिभिः सह पिंडसंसर्ग इति । यथाकुलाचारमिह व्यवस्था

१० “यत्र शास्त्रगतिर्भिन्ना सर्वकर्मसु भारत । उदितेऽनुदिते चैव होमभेदो यथा भवेत् ॥

“तस्मात् कुलक्रमायातमाचारं त्वाचरेद्बुधः । स गरीयान्महाबाहो सर्वशास्त्रोदितादपि” ॥ इति

सुमंतुस्मरणात् । पुत्रिकासुतो मातृसापिंडनं मातामहादिभिः सह कुर्यात् । तथा च बोधायनः—

“आदिशेत्प्रथमे पिंडे मातरं पुत्रिकासुतः । द्वितीये पितरं तस्यास्त्वृतीये च पितामहः” ॥ इति ।

व्याघ्रः—

१५ “मातुः प्रथमतः पिंडं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः । द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्त्वृतीयं तु पितुः पितुः” ॥ इति ।

सुमंतुरपि—

“पिता पितामहे योज्यः पूर्णे संवत्सरे सुतैः । माता मातामहे तद्वदित्याह भगवान्छिवः” ॥ इति ।

उशना अपि—

“पितुः पितामहे यद्वत्पूर्णे संवत्सरे सुतैः । मातुर्मातामहे तद्वदेषा कार्या सर्पिंडता” ॥ इति ।

२० व्याघ्रः—

“पत्या सहैकता तावत् यावत्पुत्रोऽनुजायते । पुत्रिकासुत उत्पन्ने पत्न्येकत्वं निवर्तते” ।

बोधायनः—

“कोकिलस्य यथा पुत्रा अन्यसंबंधजीविनः । पुष्टास्ते स्वकुलं यांति सपुत्रा पुत्रिका तथा ॥

“मातुर्मातुः पितुर्नित्यं तस्याश्चैव पितुःपितुः । प्रदद्यात्पुत्रिकापुत्रः पिंडदाने त्वयं विधिः” ॥ इति ।

२५ एतत्सर्वं ब्राह्मादिविवाहेषु द्रष्टव्यम् । आसुरादिविवाहेषु विरूपमाह शातातपः—

“तन्मात्रा तत्पितामह्या तच्छृङ्गा वा सर्पिंडनम् । आसुरादिविवाहेर्बुवर्णानां योषितां भवेत्” ॥ इति ।

तद्भवेद्योषितामिति । स्मृत्यन्तरे—

“मातुः सर्पिंडीकरणं मातामह्यादिभिः स्मृतम् । मातामह्यादिभिर्वाऽपि ह्यासुराद्यागतः सुतः” ॥

विज्ञानेश्वरः (पृ. ७५. पं. २७-३२)—“मातामहेन मातुः सर्पिंडये मातामहश्राद्धं पितृश्राद्ध-

३० वन्नित्यमेव । पत्न्या वा पितामह्या वा मातुः सर्पिंडये मातामहश्राद्धमनित्यम् । कृते त्वभ्युदयः । अकृते न प्रत्यवायः” इति । यमश्च—

“मातुः सर्पिंडीकरणं पित्रैकेन त्रिभिश्च वा । आसुराद्यागतः पुत्रः पितामह्यादिभिस्तु वा” ॥ इति

पित्रैकेनेत्यनुष्ठातिविषयम् । तच्चोक्तप्रकारं द्रष्टव्यं चंद्रिकायाम्—

“पितामह्यादिभिर्धर्म्यविवाहोद्वेष्ट्रियाः सुतः । पितृपक्षैर्मर्त्यपक्षैरासुराद्यागतैः सुतः” ॥

३५ “विवाहपुत्रभेदेन तद्गोत्रं च व्यवस्थितम्” इति ।

१ क्ष-पितृयज्ञ । २ खग-व्याघ्रवादः । ३ कखग-योज्य । ४ कखग-भार्गवः । ५ क-वेधाः ।

६ क्ष-हानां तदमवेद्योषितामिति । ७ ग-ता ।

पितृमेधसारे तु—“ आसुरादिविवाहेऽपि पितामह्यादिभिरेव वचनादाचाराद्विकल्पस्मरणाच्चेति पितामह्यादिपिण्डैरेव मातृपिण्डं शिष्टाः संयोजयन्ति । किं चापस्तंबेन—“ दुहितृमते अधिरथं गवां शतं देयम् ” इति कन्याधिगमार्थद्रव्यदानविधानाद्विक्षणे निमित्तमाचार्यो विवाह इति द्रव्यार्जन-
निमित्तेषु विवाहस्य परिगणनाद्गौतमेन च (४।१३) ‘ षडित्येक ’ इति पंचमविवाहस्यासुरस्य धर्म्यत्वस्मरणात् “ पितामह्यादिभिर्धर्म्यविशहोदस्त्रियाः सुतः ” इति वचनात्पितामह्यादिपिण्डैरेव मातृपिण्डसंयोगः । “ पितृपक्षैर्मतृपक्षैरासुराद्यागतः सुतः ” इति विकल्पस्मरणेऽपि वैकल्पिकधर्म-
ष्वाचारस्यैव व्यवस्थापकत्वात्पितृपक्षैः पितामह्यादिभिरेव पिण्डसंयोग इत्याहुः ।

मातुः सापिण्ड्ये गोत्रनियमः । मातुः सापिण्ड्ये गोत्रनियममाह मार्कंडेयः—

“ ब्राह्मादिषु विवाहेषु या तूढा कन्यका भवेत् । भर्तृगोत्रेण कर्त्तव्यास्तस्याः पिण्डोदकक्रियाः ॥

“ आसुरादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित् ” ॥ इति । ब्राह्मादिविवाहाभिप्रायेणाह शातातपः— ०१

“स्वगोत्राद्भ्रूयते नारी विवाहात्सतमे पदे । स्वामिगोत्रेण कर्त्तव्यास्तस्याः पिण्डोदकक्रियाः” ॥ इति ।

बृहस्पतिरपि—

पाणिग्रहणका मंत्राः पितृगोत्रापहारकाः । तस्याः स्वभर्तृगोत्रेण देयं पिण्डोदकं तथा ” ॥ इति ।

मनुः—“पितृगोत्रं कुमारीणामूढानां भर्तृगोत्रतः” । इति आसुरादिविवाहाभिप्रायेण विज्ञानेश्वरीये (पृ. ७५ पं. ५) १५

“ पितृगोत्रं समुत्सृज्य न कुर्याद्भर्तृगोत्रतः । जन्मन्यपि विपत्तौ च नारीणां पैतृकं कुलम् ” ॥ इति ।

लोकाक्षिः—“मातामहस्य गोत्रेण मातुः पिण्डोदकक्रियाम् । कुर्वीत पुत्रिकापुत्र एवमाह प्रजापतिः” ॥

कालादर्शः—“ विवाहपुत्रभेदेन तद्गोत्रं च व्यवस्थितम् ” इति ।

ब्राह्मादिविवाहभेदेन औरसपुत्रिकापुत्रभेदेन च तद्गोत्रं स्त्रीगोत्रव्यवस्थितम् । ब्राह्मादिविवाहचतुष्टयो-
ढायाः स्त्रियाः भर्तृगोत्रेणैर्ध्वदैहिकं कार्यम् । आसुरादिविवाहचतुष्टयोढायाः स्त्रियाः पितृगोत्रेण २०
औरसपुत्रो भर्तृगोत्रेण पुत्रिकापुत्रो मातामहगोत्रेण कुर्यादित्यर्थः । एतच्च

“ अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् । अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति ” ॥

इति (१७।१७) वसिष्ठोक्तप्रकारेण दाने मातामहगोत्रत्वम्

“ अपुत्रोऽहं प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यां भवानपि । पुत्रार्थी चेदिहोत्पन्नः स नौ पुत्रो भवेदिति ।

कात्यायनोक्तप्रकारेण ऊढाया मातुः मातामहगोत्रेण पितृगोत्रेण वा कुर्यात् । एवं पुत्रिकापुत्रस्यापि २५
मातामहसंबन्धे तद्गोत्रत्वमुभयसंबन्धे गोत्रविकल्पश्च सिद्धः । तथा **कालादर्शः**—

“ कुर्यान्मातामहश्राद्धं नियमात्पुत्रिकासुतः । उभयोरपि संबंधे कुर्यात्स उभयोरपि ” ॥

बृद्धहारीतश्च

“ मातामहपितृभ्यां च प्रदद्यात्पुत्रिकासुतः । उभयोरपि संबंधे यस्मादुभयगोत्रतः ” ॥ इति
दत्तस्य प्रतिगृहीतृगोत्रमेव । ३०

“ गोत्रांतरप्रविष्टानां दायमाशौचमेव च । ज्ञातित्वं च निर्वर्तन्ते तत्कुले सर्वमिष्यते ” ॥

इति स्मरणात् । यत्तु पैठीनसिबचनं “ अथ दत्तकृतकृत्रिमपुत्रिकापुत्रक्षेत्रजाः परिग्रहेणार्पणं जाता
ब्यामुष्यायणका भवन्तीति ” तदुपनयनांतरे गोत्रांतरे यो दत्तस्तद्विषयमित्यधस्तान्निरूपितम् ।

धारापूर्वं दत्ताया विवाहात्पूर्वं मृताया भर्तृगोत्रेण पितृगोत्रेण वा क्रिया कार्या

“दत्ताऽनुदा च या कन्या संस्कार्या भर्तृगोत्रतः ” इति ।

“स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे ” इति उभयथा स्मरणात् ।

अनेकभर्तृकाया आद्यभर्तृगोत्रेण कर्तव्यम् । तदाह ऋष्यशृङ्गः—

- ५ “ स्त्रीणामाद्यस्य वै भर्तुर्यद्गोत्रं तेन निर्वपेत् । यदि त्वक्षतयोनिः स्यात् पतिमन्यं समाश्रिता ” ॥
“तद्गोत्रेण तदा देयं पिण्डं श्राद्धं तथोदकम् ।

स्मृत्यन्तरे—

“ गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमिष्यते । यस्मादाह श्रुतिः सर्वाः प्रजाः काश्यपसंभवाः ॥

“पित्रादीनां यदा नाम पुत्रैर्न ज्ञायते तदा । पृथिवीषात्पिता वाच्यस्तत्पिता चांतरिक्षसत् ॥

- १० “ अभिधानापरिज्ञाने दिविषत्प्रपितामहः ” ॥ इति ।

राजविशोः पुरोहितगोत्रेण कार्यम् । तथा च कात्यायनः—

“पुरोहितस्य गोत्रेण कार्या राजविशोः क्रियाः । दद्यात्पिण्डोदके श्राद्धं तुष्टिं शूद्रस्य नामतः ” ॥ इति ।

तच्च नाम शूद्रस्य दासांतमित्याह बोधायनः

“शर्मांतं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मांतं क्षत्रियस्य तु । पोषांतं चैव वैश्यस्य दासांतं शूद्रजन्मनः ” ॥ इति ।

- १५ सपिंडीकरणं स्वसूत्रेणैव कार्यम्

“ अलब्धात्मीयसूत्रस्य श्राद्धांतं परसूत्रतः । कुर्यात्सपिंडीकरणं स्वसूत्रेणैव नान्यथा ॥ ” इति
भरद्वाजस्मरणात् ।

अपुत्रायाः पत्न्याः सापिंड्ये भर्ता स्वपित्रादीन्भोजयित्वा स्वमात्रादिपिंडैः सह तत्पिण्डं योजयेत्

“ स्त्रीमृताहे स्त्रियो भोज्याः पितरस्त्रीसपिंडने । पित्रादेरेव होमः स्यात्पिण्डदानं तु वर्गयोः ॥

- २० “ अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सपिंडनम् । श्वश्र्वादिभिः सहैवास्याः सपिंडीकरणं भवेत् ॥

“ पत्न्याः कुर्यादपुत्रायाः पतिर्मात्रादिभिः सह ” ॥ इति स्मरणात् । पत्नीमृताहश्राद्धे तु पत्नीमातृपितामहीर्भोजयेत्

“ स्त्रीश्राद्धे वृणुयाद्भर्ता पत्नीमातृपितामहीः । पितृव्याग्रजयोः श्राद्धे तत्तात्पितृपितामहान् ” ॥
इति स्मरणात् । स्मृतिरन्ते—

- २५ “ अभर्तुर्योषितः पिण्डं भर्तृपिण्डेन योजयेत् । यदि जीवति भर्ता तु श्वश्र्वादिषु नियोजयेत् ॥

“ पत्यौ जीवति संसर्गं स्त्रीपिण्डेषु स्त्रिया भवेत् । मृते भर्तरि पत्यौ^१ च सर्वत्रेति विनिर्णयः ॥

“ अनपत्या यदा नारी पतिपिण्डेन योजयेत् । यदा पुत्रवती नारी पितामह्यादिभिः सह ” ॥ इति ।
संग्रहेऽपि—“ मृतप्रियायाश्च तथैव लोके पठन्ति संतः पतिपिण्डयोगम् ।

“ जीवप्रियायाश्च तथैव पिण्डं श्वश्र्वादिपिण्डैः सह संसृजेद्धि ” ॥ इति । पतिपिण्डं संसृष्टं

- ३० पुनस्त्रेधा कृत्वा तत्रैकमंशमवस्थाप्यावशिष्टमंशद्वयं पितृपितामहपिण्डार्थं योजयेदिति पूर्णसंग्रहे ।

एवं च भोजनं होमश्च पतिपितृपितामहानाम् । पित्रोः सपिंडीकरणं ज्येष्ठेनैव कार्यम्

“ सर्वैरनुमतिं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् । द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥

“ सपिंडीकरणं पित्रोर्न कार्यमखिलैः सुतैः । एकेनापि कृते सम्यक्पुत्रत्वगुणसंभवात् ॥

“ज्येष्ठपुत्रस्य सद्भावे कनिष्ठः कुरुते क्रियाम् । प्रेतत्वान्न विमुच्येत पितृत्वं च न गच्छति ॥
“ज्येष्ठपुत्रे तु दूरस्थे कनिष्ठश्च यथोदितम् । कुर्यात् पित्रोस्तु संस्कारं सपिण्डीकरणं न तु ॥

“यवीयसा कृतं कर्म प्रेतशब्दं विहाय तु । तदग्रजेन कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः ॥

“नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि ” ॥
इत्यादिवचनान्यत्रावर्गंतव्यानि । स्मृत्यन्तरे तु—

“मासिकं सोदकुम्भं च सपिण्डीकरणं तथा । पृथग्विभक्ताः कुर्वीरन् मिलित्वा वा ह्यशक्तिः” ॥
एतच्चाधस्तात्प्रतिपादितम् । ज्येष्ठस्यापत्नीकत्वे कनिष्ठ एव सपिण्डनं कुर्यात् । तस्यैव सामिकत्वात् ।

तथा पैठीनसिः—

“सपिण्डीकरणं पुत्रः पितुः कुर्वीत योऽग्निमान् । अनग्रेस्तु क्रिया नान्या एकोद्दिष्टादृते कश्चित् ” ॥
स्मृत्यन्तरे च—

“यद्यग्निरूर्ध्वतो विप्रः सपिण्ड्ये समुपस्थिते । भ्रातृभिः कारयेच्छ्राद्धं सामिकैर्विधिवत्ततः ॥ १०

“औपासनाग्नौ दूरस्थे समीपे भ्रातरि स्थिते । यद्यग्नौ जुहुयाद्वापि पाणौ वा स हि पातकी ॥

“ज्येष्ठपुत्रोऽग्निमान्न स्यात्कनिष्ठस्त्वग्निमान्यदि । कनिष्ठ एव कुर्वीत सपिण्डीकरणं पितुः” ॥ इति ।
उद्वाहानंतरं पुनःसपिण्डीकरणं कर्तव्यम्—

“ज्यायस्यनम्रावन्यस्तु सामिः पित्रोः सपिण्डनम् । कुर्यात् त्यक्त्वा प्रेतशब्दं सत्यम्रावग्रजः पुनः” ॥ इति ।

पुनःसपिण्डीकरणप्रकारश्चंद्रिकायामभिहितः

१५

“यवीयसा कृते श्राद्धे प्रेतशब्दं विहाय च । तदग्रजेन कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः ॥

“सपिण्डीकरणं नाम पुनः पार्वणवद्भवेत् । अर्घ्यसंयोजनं कुर्यात्पिण्डसंयोजनं तथा ॥

“प्रेतत्वात्तु विनिर्मुक्तः पुनस्तेन न निर्दिशेत् । प्रेतशब्दं विना सर्वं कार्यमित्याह गौतमः” ॥ इति ।
हेमाद्रौ तु “सपिण्डीकरणं नाम पुनः पार्वणधर्मवत् ।

“पितृशब्देन कर्तव्यं प्रेतशब्दं विहाय च । अर्घ्यसंयोजनं नास्ति पिण्डसंयोजनं तथा ॥ २०

“एकादशेऽग्निं कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः । द्वादशाहे न कर्तव्यमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥

“यः सपिण्डीकृतं प्रेतं पुनः पिण्डेन योजयेत् । विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते ” इति ॥

एवं चार्घ्यपिण्डसंयोगतद्भावयोर्विकल्पः । अत्र केचिदाहुः पुनः पिण्डसंयोगनिषेधश्रवणात्

“सपिण्डीकरणे वृत्ते पृथक्त्वं नोपपद्यते । पृथक्त्वे तु कृते पश्चात्पुनः पित्रोः सपिण्डनम् ” ॥ इति

एकोद्दिष्टनिषेधस्मरणाच्च पुनः पार्वणधर्मवदिति पार्वणधर्ममात्रस्मरणाच्च पुनःसपिण्डीकरणं पार्वण-

विधानेन कर्तव्यमिति । अत्र पुनःसपिण्डीकरणे ततः पूर्वं न मासिकानि पुनः कर्तव्यानि सपिण्डी-

करणमात्रस्य पुनःकरणाविधानात् “सपिण्डीकरणादूर्ध्वं नैकोद्दिष्टं समाचरेत् ” इति एकोद्दिष्ट-

रूपमासिकनिषेधस्मरणाच्च ।

सपिण्डीकरणादावग्निनिर्णयः । अथ सपिण्डीकरणादिश्राद्धेष्वग्निनिर्णयः ।

तत्र याज्ञवल्क्यः (आ. ९७)—“कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही ” इति । ३०

श्रीधरीये—“द्वादशाहे त्रिपक्षे वा षण्मासे मासिकोद्दिष्टे । सपिण्डीकरणं कुर्यात्पित्रोरौपासने सुतः” ॥

विष्णुः—“सपिण्डीकरणं पित्रोः कुर्यादौपासने सुतः । अभावे लौकिके ह्यग्नौ सर्वं संपादयेद् बुधः” ॥ इति ।

लौकिकेऽग्नाविति विधुरादिविषयम् ।

तथा च स्मृत्यन्तरे—

“ औपासनाग्नौ कर्त्तव्यं मातापित्रोर्गुरोरपि । अन्येषां लौकिकाग्नौ तु विधुरस्य च लौकिके ॥

“ वटुश्चेत् समिदग्नौ वा कुर्यात्पित्रोः सपिंडनम् ” ॥ इति । अन्यत्रापि—

“ कुर्यादौपासने श्राद्धं मातापित्रोर्यथाविधि । अन्येषां लौकिके तद्ब्रह्मचार्यप्यनग्निकः ” ॥ इति ।

५ तथा—

“ सपिंडीकरणं कुर्यादग्नावौपासने द्विजः । मातापित्रोर्गुरोश्चैवमितरेषां तु लौकिके ” ॥ इति ।

अखंडादर्शे—

“ पित्रोः सपिंडीकरणं कुर्यादौपासनाग्निना । इतरेषां सपिंडानां लौकिकाग्नाविति स्थितिः ” ॥ इति ।

सायणीये—

१० “ सपिंडीकरणं कुर्यात्पित्रोरौपासनेऽनले । तथा मातामहस्यापि मातामह्याश्च निर्णयः ॥

“ तथा सीमंतजातस्य ज्येष्ठस्यापि सपिंडनम् । औपासनाग्नौ कर्त्तव्यं जनकस्य समो हि सः ॥

“ पितामहस्य तत्पत्न्याः कार्यमौपासनेऽनले ” ॥ इति । स्मृत्यन्तरे—

“ मातुः पित्रोर्मातुलादेर्मरणे तु स्ववन्हिना । सापिंडचं मासिकादींश्च तत्तत्सूत्रेण कारयेत् ॥

“ अपुत्रस्य पितृव्यस्य ज्येष्ठस्याप्यसुतस्य च । सपिंडीकरणं कुर्यात्स्वस्वौपासनवन्हिना ” ॥ इति

१५ अन्यत्रापि—

“ मातुः पित्रोर्मासिकादीन् दौहित्रः स्वीयवन्हिना । तथा महालयादींश्च कुर्यात्पार्वणतः शुचिः ” ॥ इति ।

तदेवं मातापित्रोर्मातामहमातामह्योः पितामहपितामह्योर्मातुलस्यापुत्रस्य ज्येष्ठभ्रातुः पितृव्यस्या चार्यस्य च स्वौपासने सापिंड्यादिपार्वणश्राद्धं कुर्यादिति स्थितम् ।

यत्तु कैश्चिदुक्तम् पित्रोर्मातामहयोश्च श्राद्धमौपासने इतरेषां श्रोत्रियागारादाहृते लौकिकाग्नौ

२० कर्त्तव्यमिति तत्पूर्वोक्तस्मृत्यनभिज्ञानविलसितत्वादुपेक्ष्यम् ।

अग्नौकरणं द्विविधम् । कात्यायनाश्वलायनायुक्तं पितृयज्ञधर्मकं एकम् । आपस्तंबांयुक्तं तद्रहितमन्यत् । तत्स्वरूपं चाग्रे वक्ष्यते । उभयविधमप्यग्नौकरणमनाहिताग्नेरौपासनवत् एव । आहिताग्नेरप्यर्थाधानेन औपासनवत् औपासन एव । सर्वाधानेन औपासनवत्त्वासंभवे त्वाप-
स्तंबोक्ताग्नौकरणस्य लोपः । न तु वैतानिकाग्नावनुष्ठानम् । ‘ श्रौतं वैतानिकाग्निषु ’ इत्यभिधा-

२५ नात् । लौकिकाग्नौ देवतादेरिवाग्नेरपि प्रतिनिध्यभावादत् एव सर्वाधानेनौपासनाभावविषये धूर्त-
स्वामिना भाष्यकारेणोक्तं श्राद्धं ऊर्ध्वं होमात्कर्त्तव्यम् । ब्राह्मणा आहवीनायार्थास्तस्यापि प्रधान-
त्वादिति । तस्यापि होमादूर्ध्वं क्रियमाणस्यान्नाशनलक्षणस्य श्राद्धस्यापीत्यर्थः । पितृयज्ञधर्मकाग्नौ-

करणस्य तु सर्वाधानेनौपासनाभावेऽपि न निवृत्तिः । ‘ कर्म स्मार्त्तं विवाहाग्नौ ’ इत्यादिनोपदिष्टौ-
पासनाग्न्यभावेऽपि पितृयज्ञवदित्यतिदेशतः प्राप्तदक्षिणाग्नेः संभवदक्षिणाग्नावनुष्ठानम् । अनेनैवाभि-

३० प्रायेण मार्कण्डेयनोक्तम् “ आहिताग्निस्तु जुहुयाद्दक्षिणाग्नौ समाहितः ” इति । आपस्तंबो-
क्ताग्नौकरणे तु पिंडपितृयज्ञातिदेशाभावात् दक्षिणाग्निप्राप्तिरिति सर्वाधाने धूर्तस्वाम्युक्ताग्नौकरणा-
भाव एव युक्तः । पूर्वोक्ताभिप्रायेण वायुपुराणेऽप्युक्तम्—

“ आहृत्य दक्षिणाग्निं तु होमार्थं वै प्रयत्नतः । अग्न्यर्थं लौकिकं वापि जुहुयात्कर्मसिद्धये ” ॥ इति । अस्या-
यमर्थः—अग्नौकरणहोमार्थं गृह्याग्न्यभावे दक्षिणाग्निं लौकिकाग्निं वा आहृत्य होमकर्मसिद्धये जुहुया-

३५ दिति । अत्र दक्षिणाग्निपक्षस्य प्रवासादिना असंभवे लौकिकाग्निपक्षः । तस्योपदेशातिरूपशातिदेशरूप-

१ क-परः, ख-विधुरश्चेल्लौकिकाग्नौ; ग-वटुश्चेल्लौकिकाग्नौ । २ क्ष-औपासना- ३ ग- + न

। ४ ग-यज्ञवदित्यति—

प्रमाणद्वयावगतदक्षिणाग्न्यबाधकत्वेनागत्याश्रयणीयत्वाद् एव प्रयत्नतो दक्षिणाग्निमाहृत्येत्युक्तम् ।
दक्षिणाग्न्यसंनिधाने पाणौ वा होमः कर्त्तव्यः । तथा हि स्मृत्यन्तरम्—

“हस्तेऽग्नौकरणं कुर्यादग्नौ वा साम्निको द्विजः” इति । साम्निकः सर्वाधानाहिताग्निर्दक्षिणा-
ग्न्यसंनिधाने हस्ते वा लौकिकाग्नौ वा अग्नौकरणं कुर्यादित्यर्थः । अत्रापि प्रवासादिना दक्षिणा-
ग्न्यसंभवे लौकिकाग्न्यादिपक्षे पूर्वोक्तन्यायावगंतव्यौ । लौकिकाग्नेस्तु तादृशविशेषानवगमा- ५
त्पाणिना सह समविकल्प एव । यद्यपि न्यायतोऽग्नेः प्रतिनिध्यभावः तथापि प्रतिनिधिन्वायेनात्र
दक्षिणाग्न्यादेरुपादानं किंतु गृह्याग्न्यभावेन तत्साध्यकर्मणोऽननुष्ठाने प्राप्ते वचनेन अगृह्या-
ग्न्यादावपि गृह्याग्निसाध्यं कर्म विधीयते इति न कश्चिदोषः । तथा नारदीये—

“अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ होमो विधीयते । यथाचारं प्रकुर्वीत पाणावग्नौ तु वा द्विजः” ॥ इति ।
यत्तु स्मृत्यन्तरे—

१०

“हस्तेऽग्नौकरणं कुर्यात्सर्वाधानी न लौकिके । अर्धाधानी तु गृह्याग्नौ जुहुयात्पितृयज्ञवत्” ॥

अत्र न लौकिक इति विधुरादिविषयम् । तथा स्मृत्यन्तरम्—

“साम्निरग्नावग्नस्तु द्विजपाणावथाप्सु वा । कुर्यादग्नौ क्रियां नित्यं लौकिकेनेति निश्चितम्” ॥ इति ।

अस्यायमर्थः—अग्निमान्पुरुषः औपासनाग्नौ दक्षिणाग्नौ लौकिकाग्नौ वा पूर्वोक्तव्यवस्थया
अग्नौकरणं कुर्यात् । भार्याविधुरतया दायात् प्रागस्वीकृतौपासनतया वा योऽग्निरहितः स तु १५
द्विजपाणावप्सु वाग्नौकरणं कुर्यात् । न जातु लौकिकाग्नौ कुर्यादिति ।

यत्तु मनुनोक्तम् (३।२।१२)—“अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणाविवोपपादयेत्” इति तद्वह्न्यचारिविषयम् ।
तदाह जातुकार्णिः—

“अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ दद्यात्तु दक्षिणे । अग्न्यभावः स्मृतस्तावथावद्भार्या न विंदति” ॥ इति ।

“अन्वेषां लौकिके तद्वत् ब्रह्मचार्यप्यनग्निकः” ॥ इति वचनं सपिंडीकरणविषयम् । तत्पूर्व- २०
मुक्तमापस्तंबादिविषयं वा । तथा वक्ष्यते वृद्धमनुः—

“कुर्यादनुपनीतोऽपि श्राद्धमेको हि यः सुतः । पितृयज्ञाहुते पाणौ जुहुयान्नं त्रपूयकम्” ॥ इति ।

विद्यमानेऽप्यग्नौ काम्यादिषु चतुर्षु श्राद्धेषु पाणावेव होमः । तदाहुर्गृह्यकाराः—

“अन्वष्टक्यं च पूर्वेषुर्मासिमास्यथ पार्वणम् । काम्यमभ्युदयेऽष्टम्यामेकोद्विष्टमथाष्टमम् ॥

“चतुर्ष्विष्टेषु सागनीनां वन्हौ होमो विधीयते । पित्र्यं ब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि” ॥ इति । २५

अष्टकाश्राद्धदिनादुत्तरदिने क्रियमाणं श्राद्धमन्वष्टकं पूर्वदिने सप्तम्यां क्रियमाणं श्राद्धं
पूर्वेषुरिति पदेनोक्तं मासि मासीत्यनेन मासिश्राद्धमुक्तं पार्वणं त्रिपुरुषोद्देशेन क्रियमाणं
अमावास्यादिश्राद्धं काम्यं फलकामनया क्रियमाणं अभ्युदय इत्यनेन अभ्युदयिकमुक्तम् ।
अष्टम्यामिति पदेनाष्टकार्यं श्राद्धमुक्तम् । एकमुद्दिश्य क्रियमाणमेकोद्विष्टम् । एतेषामष्टविधानां
श्राद्धानां आद्येषु चतुर्षु सागनीनां बह्वग्नीनामेकागनीनां च पूर्वोक्तव्यवस्थयाऽग्नौ होमो विधीयते । ३०
उत्तरेषु चतुर्षु स होमः पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादित्यर्थः । आद्येषु चतुर्षु विप्रवासादिना औपासनाग्नौ
औपासनाग्न्यसंनिधाने द्विजपाणावप्सु वा कर्त्तव्यम् । तदाहुर्विष्णुधर्मोत्तरे मार्कंडेयः—

“अनाहिताग्निश्चोपसदेऽग्न्यभावे द्विजेऽप्सु वा” इति । औपसदो गृह्याग्निः ।

विज्ञानेश्वरे (पृ. ६८ पं. २०-२१)—

“आहिताग्निस्तु जुहुयाद्दक्षिणाग्नौ समाहितः । अनाहिताग्निरौपासने अग्न्यभावे द्विजेप्सु वा” ॥ इति ।

अप्स्वग्नौकरणं जलसमीपे श्राद्धकरणे वेदितव्यम् । तदाह कात्यायनः—

“विष्णुधर्मोत्तरे चाप्सु मार्कण्डेयेन यः स्मृतः । स यदापां समीपे स्याच्छ्राद्धे ज्ञेयो विधिस्तदा” ॥ इति ।

यदा तु पाणिहोमपक्षः तदैकस्यैव विप्रस्य पाणौ होमे न तु सर्वविप्राणामिति कात्यायनः—

“पित्र्ये यः पङ्क्तिर्मूर्धन्यस्तस्य पाणावनग्निकः । हुत्वा मंत्रवदन्येषां तूष्णीं पात्रेषु निक्षिपेत्” ॥ इति ।

१ मनुः— (३।२।१२)

“अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् । पर्युक्ष्य दर्भानास्तीर्य यतो ह्यग्निसमो द्विजः” ॥ इति ।

अग्निसमत्वात्पित्र्यं ब्राह्मणं पर्युक्ष्य परिस्तीर्य जुहुयादित्यर्थः । यत्तु यमेनोक्तम्—

“दैवविप्रकरेऽग्नौः कृत्वाऽग्नौकरणं द्विजः” इति तत्र विकल्पेन व्यवस्था द्रष्टव्या ।

अत्रापत्नीककर्तृकपाणिहोमे विशेषमाह कात्यायनः—

१० “अपत्नीको यदा विप्रः श्राद्धं कुर्वीत पार्वणम् । पितृविप्रैरनुज्ञातो विश्वेदेवेषु हूयते” ॥ इति । वायुपुराणे च—

“अभार्यौ दैविकं कुर्याच्छेषं पितृये निवेदयेत् । न हि स्मृताः शेषभाजो विश्वेदेवाः पुराणगैः” ॥ इति ।

विश्वेदेवकरहोमपक्षे हुतशेषं पितृर्थभोजनपात्रेष्वेव निक्षिपेदित्यर्थः ।

स्मृत्यन्तरे च—“दैवविप्रकरेऽभार्यः कृत्वाऽग्नौकरणं द्विजः ।

१५ “शेषयेत्पितृविप्रेभ्यः पिंडार्थं शेषयेत्तथा । अग्नौकरणशेषं तु न दद्याद्वैवश्वदेविकं” ॥ इति ।

यमः—“अग्नौकरणवत्तत्र होमो देवकरे भवेत् । पर्युक्ष्य दर्भानास्तीर्य यतो ह्यग्निसमो हि सः” ॥

यदा दैवविप्रकरे होमस्तदा महालयादौ पितृमातामहश्राद्धार्थं वैश्वदेवविप्रभेदेऽपि सकृदेवानुष्ठेयम् ।

यदा ब्राह्मणकरे होमस्तदा मातामहब्राह्मणकरेऽपि पृथगनुष्ठेयम्

“वैश्वदेवे यदेकस्मिन्भवेयुर्बाह्वयो द्विजाः । तदेकपाणौ होतव्यं स्याद्विधिर्विहितस्तथा ॥

२० “मातामहस्य भेदेन कुर्यादिति विनिर्णयः” ॥ इति स्मरणात् । पाणौ यत्कर्त्तव्यं तदाह

शौनकः—“अनग्निश्चेदाद्यं गृहीत्वा भवत्स्वेवाग्नौकरणमिति पूर्वं तथास्त्विति” । अयमर्थः—आद्यं

घृताक्तमन्नं गृहीत्वा भवत्स्वेवाग्नौकरणहोमं करिष्य इति पूर्वं पृष्ट्वा तथास्त्विति तैरनुज्ञातो जुहु-

यादिति । पाणितले हुतस्यान्नस्य त्रिनियोगमाह गृह्यपरिशिष्टकारः—

“यच्च पाणितले दत्तं यच्चान्यदुपकल्पितम् । एकीभावेन भोक्तव्यं पृथग्भावो न विद्यते ॥

२५ “अन्नं पाणितले दत्तं पूर्वमन्नमन्यबुद्धयः । पितरस्तेन तृप्यन्ति शेषान्नं न लभन्ति ते” ॥ इति ।

यत्तु शौनकवचनम्—“तेषु तद्भुक्तवत्स्वन्नमन्यदन्नं च भोजयेत्” इति पात्रस्थापितं पाणिहुतं

पूर्वं भुक्तवत्सु ब्राह्मणेष्विति तस्यार्थः । कालादर्शेऽपि—

“दैवार्थे पाणौ जुहुयाद्भार्योऽग्नौ यथार्हतः । पाणौ हुतं यदन्नं तत् पृथङ्नाश्नाति कुत्रचित्” ॥ इति ।

अनेनैवाभिप्रायेण कात्यायनः—

३० “हस्ते हुतं यदश्नीयात् ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । नष्टं भवति तच्छ्राद्धमिति ज्ञातातपोऽब्रवीत्” ॥ इति ।

पारिजाते तु—

“हस्ते हुतं तु नाश्नीयादब्धं मुक्त्वाऽनुपासिकम् । अग्नौ प्रक्षेपणं कार्यं सपिंडीप्रेतकर्मसु” ॥ इति ।

तदेवमनाहिताग्नेरौपासनवत् आहिताग्नेरप्यर्धाधानेनौपासनवत् औपासन एव सपिंडीकरणादि-
श्राद्धं कर्तव्यम् । सर्वाधानेनौपासनासंभवे त्वापस्तंबोक्ताग्नौकरणस्य लोपः । पितृयज्ञधर्मकाम्नौ-
करणस्य न निवृत्तिः । किंतु दक्षिणाग्नावनुष्ठानम् । दक्षिणाग्न्यसंनिधाने लौकिकाम्नौ पाणौ वा जले वा
होमः कर्तव्यः । एवमनाहिताग्नेरप्यौपासनासंनिधाने पितृयज्ञधर्मकाम्नौकरणं लौकिकाम्नौ द्विजेऽप्सु
वा कुर्यात् । दायात्प्रागगृहीताग्निः ब्रह्मचारी विधुरश्च पाणौ कुर्यात् । न लौकिकाम्नौ । काम्यादि- ५
चतुष्टयेऽपि पाणावेव होमः । आपस्तंबोक्तमग्नौकरणं त्वनाहिताग्निदूरस्थाग्निश्चेत् लौकिकाम्नौ कुर्यात् ।
ब्रह्मचारी विधुरश्च लौकिकाम्नौ कुर्यात्

“ औपासनाग्नौ दूरस्थे केचिदिच्छंति सत्तमाः । पाणावेव तु होतव्यमिति नैतत् समंजसम् ॥

“ प्राचीनावीतिना होमः कार्योऽग्नौ द्विजसत्तमाः । तच्छेषं विप्रपात्रेषु विकिरेत्संस्मरेद्धरिम् ॥

“ अभार्यो दूरभार्यश्च ब्रह्मचारी च लौकिके । अग्नौकरणमेतेषां वन्हावेवोचितं भवेत् ॥ १०

“देशान्तरगते विप्रे प्रमादाद्बुध्यतेऽनलः । असंनिहितभार्योऽपि संदधीतानलं पुनः” ॥ इति वचनात् ।

संधाय विसृजेदित्यपरे “अग्निमुखा वै देवा पाणिमुखा वै पितरः” इति आविशेषेण स्मरणं दापस्तंबोक्त-
मग्नौकरणमपि विधुरादयः पाणौ वा कुर्युरिति अपरे । तच्च पित्र्यं ब्राह्मणकरे वैश्वदेविकब्राह्मण-
करे वा विकल्पेन भवति । अभार्यकर्तृकं तु वैश्वदेविकब्राह्मणकर एव कर्तव्यमिति माधवीयस्मृति-
चंद्रिकाद्युक्तार्थनिष्कर्षः । सर्वाधानेनौपासनासंभवे आपस्तंबोक्ताग्नौकरणास्यापि न निवृत्तिः । १५
किंतु लौकिकाम्नावनुष्ठानमिति मतांतरमन्यत्सर्वमत्रापि समानम् । पत्न्या रजस्वलायां सत्यामौपासनेन
तामनादृत्य सपिंडीकरणादिश्राद्धं कुर्यात्

“ऋतुमत्स्वपि दारेषु विदेशस्थोऽप्यनग्निकः । अग्नेनैवाद्भिकं कुर्याद्वेष्ना वामेन न क्वचित्” ॥ इति
स्मरणात् । प्रत्याद्भिके पत्न्यै मध्यमपिण्डदानविधाने तामनादृत्य श्राद्धं कुर्यात् । किमुत सापिंडे
पत्न्यै पिंडदानाभावात् निषेधाभावाच्च । अग्निविच्छेदे तु २०

“ द्वयोः साधारणो बन्धिः सह संस्कारसंस्कृतः ।

“ विशोध्य कायं विविधैश्च कृच्छ्रैर्द्रव्यप्रदानं कुरुते यथार्थम् ।

“अतः परस्तात्सह भार्या च यतासुरग्नौकरणं वदेत्सः” ॥ इत्यादिवचनैः संधाने पत्न्याः सापेक्षत्वा-
वगमात् कालांतरे अग्निं संधाय औपासनाग्नौ सापिंड्यं कुर्यात् । तस्य कालांतरे सावकाशत्वात् ।

“ सावकाशं तु यत्कार्यं न तत्कुर्याद्विदूषिते ” इति स्मरणात् । तथा च गृह्यपरिशिष्टे— २५

“ ऋतुमत्स्वपि दारेषु भार्याग्नस्तु भवेद्यदि । सपिंडीकरणश्राद्धं कुर्यादेवाविचारयन् ” ॥ इति ।
स्मृत्यंतरे—

“सपिंडीकरणे प्राप्ते भार्या यदि रजस्वला । सपिंडीकरणं न स्याद्ग्रावनुगते सति ” ॥ इति ।

अन्यत्रापि—

“ श्राद्धकर्तुर्यदा भार्या आशौचान्ते रजस्वला । श्राद्धशेषं प्रकुर्वीत वर्जयित्वा सपिंडनम् ” ॥ इति । ३०

श्लोकगौतमोऽपि—

“श्राद्धीयेऽहनि संप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । श्राद्धं तत्र न कर्तव्यं कर्तव्यं पंचमेऽहनि” ॥ इति ।
श्राद्धमत्र सपिंडीकरणम् । मृतपत्न्यां रजस्वलयायामपि पंचमदिने भर्तृसपिंडीकरणमुक्तं
स्मृत्यंतरे—“सपिंडीकरणे प्राप्ते प्रेतपत्नी रजस्वला । सपिंडीकरणं न स्यात्पंचमेऽहनि कारयेत्” ॥ इति ।

१ क्ष-गाहिता । २ खग-वैतृके । ३ आश्वला. गृ. सू. १।८।२ । ४ ग-तत्तद्वयं । ५ क्ष-सदा-
सिरागः । ६ क-भार्यायां ।

एतदपुत्रे भर्तारि प्रेतपत्नीकर्तृकसपिण्डनविषयमित्येके। पुत्रादिकर्तृकविषयमपीत्यन्ये। शिष्टाचाराव्यवस्था तत्रैव—

“मृते भर्तारि या नारी आशौचांते रजस्वला । श्राद्धशेषं प्रकुर्वीत स्नाता सूत्रं विसर्जयेत्” ॥ इति ।
यत्तु नारदीयवचनम्

५ “नष्टाग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते । अग्निं संधाय विधिवच्छ्राद्धं कृत्वा विसर्जयेत्” ॥
यच्च त्रिकांडीयवचनम्

“यस्य भार्या विदूरस्था यतिता व्याधिताऽपि वा । अनिच्छुः प्रतिकूला वा तस्याः प्रतिनिधिक्रिया ॥ इति
“श्राद्धेऽहनि तु संप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । अग्निं संधाय विधिवच्छ्राद्धं कृत्वा विसर्जयेत्” ॥ इति
तन्निरवकाशमृताहश्राद्धविषयम्

१० “पुष्पवत्स्वपि द्वारेषु विदेशस्थोऽप्यनग्निकः । अन्नेनैवाब्धिकं कुर्याद्धेम्ना वामेन न क्वचित् ॥

“मृताहं समतिक्रम्य चंडालः कोटिजन्मसु” ॥ इति लोकाक्ष्यादिस्मरणात् ।

“आमश्राद्धं प्रकुर्वीत यस्य भार्या रजस्वला ।

“अपत्नीकः प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला । सिद्धान्नेन न कर्तव्यं आमं तस्य विधीयते” ॥ इति
कात्यायनादिवचनं सपिंडीकरणादिव्यतिरिक्तविषयम् ।

१५ “सपिंडीकरणश्राद्धमन्नेनैव समाचरेत् । नैवामेन न हेम्ना वा मातापित्रोर्विशेषतः” ॥ इति
स्मरणात् । यस्य द्वादशाहे एव सपिंडीकरणं विहितम्

“सपिंडीकरणं पित्रोः कुर्यादेको हि यः सुतः । अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते ॥

“एकपुत्रोऽग्निमांश्चैव कुर्वीत द्वादशेऽहनि” ॥ इत्यादिना तस्यापि “यस्य भार्या विदूरस्था” इति
न्यायेनाग्निंसंधानपूर्वकं कर्तव्यम् । एवं वत्सरांते सापिंड्ये पत्न्यां रजस्वलायां पत्न्याः

२० प्रतिनिधिं विधाय

“श्राद्धीयेऽहनि संप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । अग्निं संधाय विधिवच्छ्राद्धं कृत्वा विसर्जयेत्” ॥ इति
न्यायात्तस्य निरवकाशत्वेनाग्निं संधाय सापिंड्यं कुर्यात् । तत्र सापिंड्याकरणे पुनः
बोद्धशप्रसक्तेः “कुर्यान्निरवकाशं तु नित्यं नैमित्तिकं तथा” इति शंखस्मरणात् । तदेवं
पत्न्यां रजस्वलायां औपासने विद्यमाने तामनाहृत्य द्वादशाहादौ सपिंडीकरणं कुर्यात् ।

२५ अग्निविच्छेदे त्वेकोद्दिष्टांतं स्वकाले कृत्वा पंचदशदिनादावुक्तकाले अग्निं संधाय सापिंड्यं
कुर्यात् । एकपुत्रोऽग्निमांश्च कुशादिना पत्न्याः प्रतिनिधिं कृत्वाऽग्निं संधाय द्वादशाहे सपिंडनं
कृत्वा तमग्निं विसर्जयेत् । वत्सरांतसापिंड्यमग्निंसंधानपूर्वकं कालांतराभावाद्रजस्वलायामपि
पत्न्यां कुर्यान्मासिकाब्दिकादिकं चाग्निं संधाय स्वकाले कृत्वा तमग्निं विमृजेत् । प्रेतपत्न्यां
रजस्वलायां सापिंड्यं पंचमदिने कुर्यात् । अपुत्रे भर्तारि प्रेते यदि पत्नी कुर्यात् तदैव

३० पंचमेऽहनि अन्यश्चेत्कुर्यात् । प्रेतपत्न्यां रजस्वलायामपि स्वकाले कुर्यादित्यपरे । अयमत्र
निष्कर्षः । अनाहिताग्निर्द्वादशाहे त्रिपक्षे वा तृतीये वा मासे षष्ठे वैकादशे वा मासे संवत्सरांते वा
पुंसवनाद्यावश्यकशुभागमे वा सपिंडीकरणं कुर्यात् । द्वादशाहप्रभृतिषु षट्सु दिनेषु सप्तदशदिन-
पर्यंतेषु त्रयोविंशदिने वा कुर्यात् । आहिताग्निश्चेत्कर्त्ता आहिताग्नेरनाहिताग्नेर्वा मृतस्य सापिंड्यं

द्वादशाह एव कुर्यात् । एकादशदिने दर्शापाते सति एकादशदिने सापिंड्यं कृत्वा पिंडपितृयज्ञं कुर्यात् । अनग्निः कर्त्ता साग्नेः प्रेतस्य त्रिपक्षे द्वादशाहे वा कुर्यात् । महागुरुपितृमरणे त्रयोदशदिने कुर्यात् । साग्निरनग्निश्च द्वादशाहादौ प्रमादादकृतं सापिंड्यमुत्तरभाविषु कालेषु कुर्यात् । द्वादशाह-सापिंड्ये वत्सरांतसापिंड्ये च न वारादिदोषः । तत्रापि द्वादशाहसापिंड्ये पितृव्यतिरिक्तानां शुक्रदिनमेकं वर्ज्यम् । वत्सरात्यये तु पुनः षोडशश्राद्धपूर्वकं कन्याकुंभयोरन्यतरमासस्य कृष्ण-पक्षे पंचम्यामष्टम्यामेकादश्यां दर्शे वा कर्त्तव्यम् । पितामहादिषु त्रिषु जीवत्सु न सापिंड्यं अन्य-तमात्यये पुत्रः कुर्यात् । एवं मातुः पितुः भर्तुः पत्न्याश्च व्युत्क्रममरणे पत्नी पतिश्च कुर्यात् । नान्येषां व्युत्क्रममरणे सापिंड्यं कुर्यात् । आमेन हेम्ना वा कुर्याद्व्युत्क्रममृतानां मातापितृभर्तृ-पत्नीनामन्नेन सापिंड्यम् । इतरेषामामेन हेम्ना वा कृत्येऽपि तदंतर्हितमरणे तत्सापिंड्यनंतरमेतेषां पुनरन्नेन सापिंडीकरणं कर्त्तव्यम् । पुंसः स्त्रिया वा सापिंड्ये पित्रादीनामेव वरणम् । वैश्वदेवार्थे १० द्वौ पितृपितामहप्रपितामहार्थं त्रीन्निमित्तार्थे एकं विष्ण्वर्थमेकमनेन क्रमेण वृणुयाद्द्वैश्वदेवार्थं पित्रा-र्थे चाशक्त एकमेकं वा वृणुयात् । पुंसः पिंडं पित्रादिपिंडैः सह संसृजेत् । स्त्रियाः पिंडं श्वश्रादिपिंडैः संसृजेत् । अनपत्यायाः पतिपिंडेनेत्येके । अनुमृतौ सह मृतौ च पतिपिंडेन संसृज्य पुनस्तत्पित्रादिपिंडैः संसृजेत् । पिंडत्रयवतामाश्वलायनादिसूत्रानुसारिणां स्त्रीसापिंड्ये श्वश्रादी-नामेव वरणं तत्पिंडैरेव संसर्गः । समानपिंडयोगानां कर्त्रेक्ये तंत्रतः कुर्यात् । निमित्तवरणं १५ पृथक् पृथक् कुर्यात् । मरणक्रमापरिज्ञाने तु ज्येष्ठक्रमेण पिंडसंसर्गं कुर्यात् । पित्रोः पत्नीपुत्रपौत्रभ्रातृतत्पुत्रसनुषास्वसृणां च संचातमरणे पित्रोर्द्वादशाहे सापिंडीकरणं पत्न्यादीनां त्रिपक्षे पित्रोर्मृताब्दे पत्न्यादिव्यतिरिक्तानामन्येषां मरणे पितृवत्सरांतं तेषां सापिंडीकरणं समानोदक-दौहित्रादित्रिरात्राशौचिककर्तृकसंस्कारद्वादशाहे सापिंडीकरणम् । पक्षिण्याशौचिककर्तृकदाहे तु चतुर्थदिन एकोद्दिष्टं पंचमे दिने सापिंड्यं कुर्याद्विधुर्धुक्के तु चतुर्थेऽन्तिह सापिंडनं कुर्यात् । २० दुर्मृतयोः पित्रोः पुनःसंस्कारे पंचमे दिने सापिंड्यं कुर्यात्

“ ये मृताः पापमार्गेण तेषां संवत्सरात्परम् । नारायणबलिं कृत्वा कुर्यात्तत्रौर्ध्वदेहिकम् ॥

“ अब्दांतं वाऽथ षण्मासे पुनः कृत्वा तु संस्क्रुतिम् । त्रिरात्रमशुचिर्भूत्वा श्राद्धं कृत्वा चतुर्दिने ॥

“ सापिंड्यं पंचमदिने मातापित्रोः समाचरेत् ” ॥ इति स्मरणात् । मातापितृव्यतिरिक्तदुर्मृत-पुनर्दाहे तृतीयदिने सापिंडनं कुर्यात् । केवलपुनःसंस्कारविषयेऽकृतक्रिययोर्मातापित्रोर्द्वादशेऽह्नि २५ सापिंडनं भ्रातुः पुनःसंस्कारे षण्मासमध्ये द्वादशेऽह्नि सापिंडनं षण्मासात्परं वत्सरात्पूर्वं पंचमदिने सापिंडनं कुर्यात् । ततः परं तृतीयदिने सापिंडनं कुर्यादन्येषां पुनःसंस्कारे यस्य यावदाशौचं तस्य तदाशौचानंतरदिने एकोद्दिष्टं तदुत्तरदिने सापिंड्यं च कार्यम् । मातापित्रोर्मातामहमाता-मह्योर्मातुलस्यापुत्रस्य ज्येष्ठभ्रातुः पितृव्यस्याचार्यस्य च स्वौपासने सापिंड्यं कुर्यात् । आहिताग्नि-रप्यर्धाधानेनौपासनवानौपासने कुर्यात् । सर्वाधानेन तदसंभवे आपस्तंबोक्ताग्नौकरणस्य ३० लोपः । लौकिकाग्नाविति मतांतरम् । पितृयज्ञधर्मकस्य तु दक्षिणाग्नौ तदसंभवे लौकिकाग्नौ पाणौ जले वा होमः । रजस्वलायां पत्न्यामौपासने विद्यमाने सापिंड्यं तदैव कुर्यात् । औपासनविच्छेदे कालांतरे कुर्यात् । संवत्सरांतसापिंड्यं तु तत्काल एव कुर्यादिति सर्पिंडीकरणनिर्णयः । इति ।

वैद्यनाथदीक्षितविरचिते स्मृतिमुक्ताफले श्राद्धकांडे सर्पिंडीकरणं समाप्तम् ॥

“सपिण्डनात्परेष्वथ यतो ब्रह्मणतर्पणात् । अष्टौदेवाश्च पितरः कर्तुः कुर्वन्तु संपदः” ॥

अथ सोदकुंभश्राद्धम् । अत्र गौतमः—

“अद्वैवं पार्वणश्राद्धं सोदकुंभमधर्मकम् । कुर्यात्प्रत्याब्दिकश्राद्धं संकल्पविधिनाऽन्वहम्” ॥ इति ।

अद्वैवं विश्वेदेवविष्णुरहितं पार्वणं त्रिपुरुषात्मकं सोदकुंभमुदकुंभसहितं अधर्मकं दंतधावनतांबूलादि-

५ वर्जनेपुनर्भोजनादिवर्जनरूपकर्तृभोक्तृधर्मरहितं संकल्पविधिना

“आवाहनाग्नौकरणं स्वधानिनयनं तथा । विकिरं पिंडदानं च संकल्पे पंचं वर्जयेत्” ॥ इति
उक्तप्रकारेण आब्दिकश्राद्धात्पूर्वं प्रत्यहं कुर्यादित्यर्थः । एतच्च अर्वाक्संवत्सरात्सपिंडीकरणे ।
ततः परं पार्वणविधानेन कर्तव्यम् । ततः पूर्वमेकोद्दिष्टविधानेन कार्यम् । संवत्सरांतसापिंड्ये तु
एकोद्दिष्टविधानेनैव कार्यम्

१० “कृते सपिंडीकरणे पार्वणं तु विधीयते । सपिंडीकरणादवर्गिकोद्दिष्टं विधीयते” ॥ इति सामान्येन

“सोदकुंभं च कर्तव्यं नवश्राद्धानि षोडश । एकोद्दिष्टविधानेन सपिंडीकरणादधः” ॥ इति
विशेषतश्च स्मरणात् । तद्वादशदिनमारभ्य कार्यम् । तदुक्तं श्रीधरीये

“द्वादशाहप्रभृत्यस्य वृत्तये चान्नसंयुतम् । दद्यादहरहः कुंभं जरुपूर्णं तु वत्सरम्” ॥ इति ।

कारिकारत्ने तु

१५ “आद्याहात् द्वादशाहाद्वा तत्पूर्वाहादथापि वा । विप्रायान्नं सोदकुंभं दद्यादन्वहमाब्दिकात्” ॥ इति ।

मृतदिवसमेकादशाहं द्वादशाहं वारभ्येत्यर्थः । मार्कंडेयः—

“यस्य संवत्सरादवर्क्सपिंडीकरणं कृतम् । मासिकं सोदकुंभं च देयं तस्यापि वत्सरम्” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—

“आब्दमंबुघटं दद्यादन्नमाज्येन संयुतम् । संवत्सरे प्रवृद्धे तु प्रतिमासं च मासिकम्” ॥ इति ।

२० कालादर्शेऽपि—

“द्वादशाहत्रिपक्षादौ कृतं यस्य सपिंडनम् । कुर्वीत पार्वणश्राद्धं सोदकुंभमद्वैतम् ॥

“संकल्पेनास्य नियमं प्रत्यहं त्वाब्दिकावधिः” ॥ इति । व्यासः—

“अतिथिं भोजयेद्विद्वान्सोदकुंभविशेषतः । अभ्यागतं भोजयेद्वा नियतं न तु भोजयेत् ॥

“नियतं भोजयेद्यस्तु लोभान्मोहादिमूढधीः । त्रयस्ते नरकं यांति कर्ता भोक्ता तथा पिता” ॥

२५ संग्रहे—

“कर्तुः सगोत्रिणश्चैव भोक्तृणां च सगोत्रिणः । न निमन्त्र्याः किल श्राद्धे सोदकुंभं विनैव तु” ॥

स्मृत्यन्तरे भोक्तृणामुद्देश्य पितृणाम् । याज्ञवल्क्यः (आ. २५५)—

“अर्वाक्सपिंडीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत् । तस्याप्यन्नं सोदकुंभं दद्यात्संवत्सरं द्विजः” ॥ इति ।

अत्र विज्ञानेश्वरः (पृ. ७६ पं. १-२)—“संवत्सरादवर्ग्यस्य सपिंडीकरणं कृतं तस्य कृतेऽपि तस्मि-

३० न्प्रतिदिवसं प्रतिमासं वा यावत्संवत्सरं शक्यनुसारेणान्मुदकुंभसहितं ब्राह्मणाय दद्यात्” इति ॥

पितृमेधसारे—“न द्वादशाहादौ सापिंड्ये सोदकुंभश्राद्धान्याहृत्य दद्याद्विध्यभावात्प्रत्यहमाब्दं

तद्विधिवैयर्थ्यापत्तेः ॥ मासिकवद्विरनुष्ठाने प्रमाणाभावाच्च प्रागब्दात्कृतान्यब्दसापिंड्येन पुनः कुर्यात् ।

अकृतानि कृत्वा सापिंड्यं कुर्यात् । शक्तविषये द्वादशाहप्रभृत्या संवत्सरात्प्रत्यहमेकं त्रिपुरुषोद्देशेन

अद्वैकमधर्मकं सदक्षिणं संकल्पविधिना सोदकुंभश्राद्धं दद्यात् । प्रतिमासं दर्शदौ वा मासिकाहान्य-

दिने वातीतसोदकुंभश्राद्धान्याहृत्य दद्यात्प्राक्सपिंडीकरणादेकोद्दिष्टवन्न सांवत्सरिकाहं तानि दद्यात् । कालातीतत्वात्

“अकाले चेत्कृतं कर्म कालं प्राप्य पुनः क्रिया । कालातीतं तु यः कुर्यादकृतं तदिनिर्दिशेत्” ॥ इति कात्यायनः । न सांवत्सरिकाह इति

“प्रेतलोके तु वसतिर्नृणां वर्षं प्रकीर्तितम् । क्षुत्तृष्णे प्रत्यहं तस्य भवेतां भृगुनन्दन” ॥ इति स्मरणात् । वर्षति प्रेतलोके वासं क्षुत्तृष्णे च विहाय स्वकर्मफलं प्राप्तस्य सांवत्सरिकाहस्य द्वितीयवत्सरादित्वात्तत्र क्षुत्तृष्णाशांत्यर्थं सोदकुंभश्राद्धं निष्प्रयोजनमित्यर्थः । ननु

“सपिंडीकरणात्प्रेते पैतृकं पदमास्थिते । चतुरो निर्वपेत्पिंडान्पूर्वं तेषु समापयेत् ॥

“ततः प्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमश्नुते” ॥ इत्यादिभिः कृते सापिंड्ये पितृत्वप्राप्त्यवगमात् द्वादशाहादौ सापिंड्ये कथं प्रेतलोकावासः । प्रत्यहं तस्य कथं क्षुत्तृष्णे च भवेतामिति चेत्सत्यम् । १० तस्य प्रेतलोकावासाभावेऽपि प्रथमाब्दिपूर्वदिनपर्यंतं क्षुत्तृष्णाविनाभूतस्य प्रेतभावस्यात्मन्यहं ब्राह्मण इत्यादिभाववद्विद्यमानत्वात् । अत एव स्मृत्यंतरम्

“श्राद्धानि क्रमशो लब्ध्वा सपिंडीकरणे कृते । प्रेतभावाद्दिनिर्मुक्तः स्वकर्मफलभागभवेत्” ॥ इति । ततश्च कृतेऽपि सपिंडीकरणे प्रेतभावयुक्तस्य क्षुत्तृष्णाशांत्यर्थमनुष्ठेयम्

“यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिंडीकरणं कृतम् । मासिकं सोदकुंभं च देयं तस्यापि वत्सरम्” ॥ १५ इत्यादिपूर्वोक्तवचनबलाच्च सोदकुंभश्राद्धं प्रत्यहमाब्दिपूर्वदिनावधि कार्यमिति सिद्धम् । अत्र सोदकुंभश्राद्धेषु यद्यदंतरितं तदुत्तरादिनसोदकुंभश्राद्धेन सह नवश्राद्धमासिकान्तराण्यन्यायेन समानतंत्रतया कार्यम् । अस्यावश्यकर्तव्यत्वान्मध्ये कर्तरि मृतेऽपि पौत्रादिनाऽप्यवशिष्टं सोदकुंभश्राद्धमवशिष्टं मासिकं अनुष्ठेयम्

“प्रेतसंस्कारकार्याणि यानि श्राद्धानि षोडश । यथाकाले तु कार्याणि नान्यथा मुच्यते ततः” ॥ इति स्मरणात् । पितृमेधसारकृतम्—“एकोत्तरवृद्धिश्राद्धोदकद्विनैर्दहजानितक्षुत्तृष्णानिवृत्तिः । पिंडैराकारावाप्तिः । एकोद्दिष्टेन पिशाचत्वनिवृत्तिः । सोदकुंभश्राद्धैः प्रेतलोकावासजनितक्षुत्तृष्णाशांतिः । वृषोत्सर्गनवश्राद्धैः प्रेतत्वनिवृत्तिः । सपिंडीकरणात्पितृत्वप्राप्तिः । क्षुत्तृष्णाजनितान्यतदुःखानुभवावस्था प्रेतत्वं वस्वादिश्राद्धदेवतासंबन्धः पितृत्वप्राप्तिः । अतस्तन्निवृत्तये तत्प्राप्तये च यथाकालमविलंबेन प्रेतकार्यं कार्यम् । अन्यथा महान् दोषः । नास्य किञ्चित्कर्मण्यधिकारः” इति । २५ शतकेऽपि—

“मुख्यकर्तुरर्घं तावद्यावत्प्रेतत्वमोचनम् । पुत्राणामप्यर्घं तावन्मुख्यकर्तर्यपि स्थिते” ॥ इति ।

प्रेतत्वमोचनं सपिंडीकरणम् । अत्र मुख्यकर्तुः दशाहात्परमवधिधानं सूतिकाया इव कर्मानर्हत्वमात्राभिप्रायम्

“अकृत्वा प्रेतकार्याणि नित्यनैमित्तिकान्यपि । न कुर्यात्तावदाशौचं यावत्प्रेतत्वमोक्षणम्” ॥ इति स्मरणात् । मुख्यकर्तृव्यतिरिक्तज्ञातीनां दशाहात्परं कर्मानर्हता नास्ति

“पुत्रैः पित्रोस्तु संस्कारः प्रमादादकृतो यदि । ज्ञातीनां दशरात्रं स्यात्तदूर्ध्वं सूतकं न हि ॥

“नित्यकर्मणि कुर्वीत स्मृत्युक्तानि तथैव च” ॥ इति स्मरणात् । संग्रहे—

“अकृते प्रेतकार्ये तु न कुर्यादात्मनः शुभम् । कुर्यादेव शुभं कर्म मुख्यकर्तुश्च संनिधौ” ॥ इति ।

यदा पुत्राद्यभावे भ्रात्रादिः करोति तथा चतुर्विंशतिमते—

“भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिंडः शिष्य एव वा । सपिंडीकरणं कृत्वा कुर्यादभ्युदयं ततः” ॥ इति ।

अत्रापवादः स्मृत्यंतरेऽभिहितः

“गर्भादिप्राशनांतानि प्राप्तकालं न लंघयेत् । ज्ञातीनां प्रेतकार्याणि कुर्वन्नपि च कारयेत्” ॥ इति ।

५ पुंसवनसीमंतोन्नयनजातकर्मनामकरणान्नप्राशनानि ज्ञातिसापिंड्यात्पूर्वमपि कर्त्ता कुर्यादित्यर्थः ।

मातापितृमातामहमातामहीनां तु सापिंड्यं कृत्वैव गर्भादिप्राशनांतानि कार्याणि

“पित्रादीनां प्रमीतानां त्रयाणां तु सपिंडनम् । कृत्वा तु मंगलं कुर्यान्नितरेषां कथंचन” ॥ इति

स्मरणात् । मंगलं पुंसवनाद्यावश्यकं शुभकर्म । तथा च शंखः—

“सावकाशं तु यत्कार्यं न कुर्यान्मासि दूषिते । कुर्यान्निरवकाशं तु नित्यं नैमित्तिकं तथा” ॥ इति ।

१० अत्रिश्च—

“मासप्रोक्तेषु कार्येषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः । अधिमासादिदोषाश्च न स्युः कालविधेर्बलात्” ॥

ऋष्यशृंगः—“जातकर्माणि जातेष्टिं यथाकालं समाचरेत्” इति । ऋतुशान्तिश्च कालांतरा-
भावात्कर्तव्या

“जातके नामकरणे तथान्नप्राशनेऽपि च । आद्यर्त्तो दयितानां च मासिकं नापकर्षयेत्” ॥ इति

१५ मासिकापकर्षनिषेधेन तद्विधानात्—

“यो यदीच्छेद्दिजन्मत्वमष्टमाब्दं न लंघयेत् । अतिक्रान्ते तु सावित्र्याः कालऋतुं त्रैविध्यं ब्रह्मचर्यं
चरेत्” इत्यादि स्मरणात् पुंसवनादिवत्सपिंडीकरणानंतरं पित्रोर्मृताब्दे मासिकापकर्षणपूर्वकं
पुत्रादीनां यद्युपनयनं कर्त्तव्यं तथापि “तमसो वा एष तमः प्रविशति यमविद्वानुपनयते
यश्चाविद्वान्” इति ब्राह्मणम् । “तस्मिन्नभिजनविद्यासमुतं समाहितं संस्करिमीप्सेत्” इति

२० स्मरणादन्यकर्तृकत्वसंभवादन्त्येन कारयितव्यम् । मृतपितृकस्य “अष्टमे अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत”
इति श्रुतिबलाच्छ्रुतिस्मृत्योर्विरोधे श्रुतेर्बलीयस्त्वादुपनयनं कर्त्तव्यमेव । तथा च यदन्यकर्तृ-
कमनवकाशं पुंसवनादिकं यत्सपिंडीकरणमासिकापकर्षणपूर्वकं प्रथमाब्देऽपि कर्त्तव्यम् । यत्तु
कालांतरे कर्त्तुं शक्यं स्नानविवाहादि तत्तु तत्र न कर्त्तव्यम् । अनवकाशं यदन्यसाध्यं तत्र
तदन्त्येन कारयितव्यम् । एतदेवाभिप्रेत्य देवलः

२५ “प्रमीतो पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत् । न देवं नापि पित्र्यं च यावत्पूर्णे न वत्सरः ॥

“स्नानं चैव महादानं स्वाध्यायश्चाग्निपूजनम् । प्रथमेऽब्दे न कर्त्तव्यं महागुरुनियतनम्” ॥ इति ।
देवं देवतास्थापनादि । पित्र्यं अन्येषां सापिंड्यम् । “पित्रोर्मृताब्दे चान्येषां वत्सरांते सपिंडनम्” इति
स्मरणात् ।

एवं च पितृमृताब्दे ज्ञातिसंस्कारे कृते सति अकृत्वाऽपि ज्ञातिसापिंड्यमावश्यकं शुभकर्म

३० कर्त्तव्यम् । स्नानं समावर्तनम् । महादानं कनकाश्वादिप्रसिद्धम् । स्वाध्याय उपनयनम् । तदर्थत्वा-
दुपनयनस्य ‘उपनयनं विद्यार्थस्य श्रुतितः’ संस्कारः इत्यापस्तंबस्मृतेः (१।१।११) ।

“उपाकर्मैत्यन्ये । अग्निपूजनमग्न्याधानादि । ततश्च वत्सरांते ततः प्रेतः पितृत्वमुपपद्यते”
इति बोधायनस्मरणात् । “प्रेतलोके तु वसतिर्दृणां वर्षं प्रकीर्त्तिता” इति विज्ञानेश्वरे-
णोक्तत्वात् ।

३५ “सपिंडीकरणादूर्ध्वं प्रेतत्वस्य निवृत्तितः । तावद्भस्म न धार्यं स्याद्यावदब्दो न पूर्यते” ॥ इति
लोकाक्षिणा प्रेतत्वानिवृत्तिनिबन्धनभस्मधारणनिषेधस्योक्तत्वाच्च । अशुचित्वेन मातापित्रो-

द्वादशाहादौ कृते सपिंडीकरणे प्रथमाब्दिकपर्यंतं पुंसवनाद्यनवकाशकर्मव्यतिरिक्तशुभकर्म न कर्तव्यमित्याहुः । अन्ये त्वाहुः—

“आनंत्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् । अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते” ॥ इति व्याघ्रपाद्वचनेन कुलधर्माणामानंत्यादित्यनेन द्वादशाहसापिंड्यान्तरं कर्मानुष्ठानप्रतिपादनात्प्रेत-
भार्वनिवृत्तावपि ५

“प्रेतश्राद्धानि शिष्टानि सपिंडीकरणं तथा । अपकृष्यापि कुर्वीत कर्ता नांदीमुखे द्विजः” ॥ इति । नांदीमुखमात्र उपस्थिते मासिकापकर्षविधानान्निषेधाभावाच्च ‘प्रमीतौ पितरौ यस्य’ इति श्लोक-
द्वयौक्तकर्मव्यतिरिक्तानि सर्वाणि शुभकर्माणि विवाहादीन्यपि कर्तव्यानीति शिष्टाचारादिह व्यवस्था ।

पित्रोर्मरणाब्दे दर्शादिश्राद्धनिषेधः । पित्रोर्मृताब्दे दर्शादिश्राद्धनिषेध उक्तः १०
षट्त्रिंशन्मते—

‘सपिंडीकरणादूर्ध्वं वर्षं वर्षार्धमेव वा । न कुर्यात्पार्वणश्राद्धमष्टका न विह्न्यते” ॥ इति । अष्टकाव्यतिरिक्तदर्शमहालयमन्वादिश्राद्धं न कार्यमित्यर्थः । तथा च स्मृत्यंतरे—

“अमाश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपाक्षिकम् । प्रथमाब्दे न कुर्वीत केशानां वपनं तथा” ॥ इति ।

‘प्रमीतपितृकः कुर्यान्न कुर्यादाब्दिकावधि’ इति पाठांतरम् । आश्वलायनस्तु—

“यन्मास्येवाब्दिकं श्राद्धं यस्य पुत्रो भवेदिह । प्राक् पिंडदानात्तन्मासि पार्वणं न समाचरेत्” ॥ इति । यस्मिन्मासे प्रथमाब्दिकं तत्राब्दिकात्पूर्वं पार्वणं दर्शादिश्राद्धं न कुर्यादित्यर्थः । १५

स्मृत्यंतरे—

“सपिंडीकरणादूर्ध्वं षणमासाभ्यंतरेऽपि च । न कुर्यात्पार्वणश्राद्धमष्टका न विह्न्यते” ॥ इति । पार्वणं दर्शादि । अत्र केचिदाहुः—एतानि वचनानि भोजनपर्यंतश्राद्धनिषेधपराणि । २०

संवत्सराषणमासाद्वा अर्वागपि तिलोदकमात्रं कर्तव्यम्

“सपिंडीकरणादूर्ध्वममासंक्रमणादिषु । पुत्रस्तिलोदकं दद्यात्क्षेत्रपिंडांस्तदाचरेत्” ॥ इति तिलोदकमात्रविधानादिति । अन्ये तु सपिंडीकरणादूर्ध्वमिति वत्सरांतसापिंड्यपरं तिलोदक-
मिति श्राद्धस्याप्युपलक्षणं तेन संवत्सरात्परं दर्शादिश्राद्धादिकं कुर्यादिति व्याचक्षते । शतकव्याख्याकारस्तु दर्शादिश्राद्धं सपिंडीकरणात्प्राङ् नास्त्येव २५

“नासपिंडीकृते प्रेते पितृकार्यं प्रवर्त्तते । सपिंडीकरणं कृत्वा कुर्यात्पितृयज्ञं शुभानि च” ॥ इति स्मृतेरिति । एतदपि सपिंडीकरणात्परं दर्शादिश्राद्धविधानं वत्सरांतसापिंड्याभिप्रायम् । अन्यथा “सपिंडीकरणादूर्ध्वं वर्षं वर्षार्धमेव वा” इति पूर्वोक्तवचनविरोधः स्यादित्याहुः

“सपिंडीकरणात्प्रेते पैतृकं पदमास्थिते । आहिताग्नेः सिनीवाल्यां पितृयज्ञः प्रवर्त्तते” ॥ इत्यादि-
स्मरणाद्वाहिताग्नेरेकादशदिनादिसापिंड्यान्तरदर्शाद्धेन विवादः । अन्येषां शिष्टाचारानुसारेण ३०
व्यवस्था द्रष्टव्या ।

एकस्मिन् दिने एककर्तृकैकोद्देश्यकश्राद्धद्वयनिषेधः । एकः कर्त्ता एकस्मिन्दिने श्राद्ध-
द्वयमेकोद्देश्यं न कुर्यात् । नैमित्तिकश्राद्धयोः संनिपाते तु तद्वयमेकदिने कुर्यात् । तदाह दक्षः—
“नैकः श्राद्धद्वयं कुर्यात् समानेऽहनि कस्यचित् । न यज्ञं न बलिं नैव देवर्षिपितृतर्पणम्” ॥ इति ।

जाबालिः—

“श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धं न तद्दिने । नैमित्तिकं तु कर्त्तव्यं निमित्तानुक्रमोदयम्” ॥ इति ।

ऋतुरपि—

“श्राद्धं कृत्वा पुनः श्राद्धं न कुर्यादैकवासरे । यदि नैमित्तिकं न स्यादेकोद्देशं भवेद्यदि ” ॥ इति ।

- ५ एकदैवत्यं श्राद्धद्वयं नैकदिने कुर्यादित्यस्य निषेधस्य विषयो दर्शितः पितृमेधसारे—“नैकश्राद्ध-
द्वयमेकोद्देश्यमेकवासरे कुर्यात् । देवतैक्यात् । तद्यथा नित्येन दार्शिकस्य सोदकुंभेन मासिकस्य
दार्शिकेन मन्वादियुगादिग्रहणादिश्राद्धानां संनिपाते प्रसंगात् पूर्वसिद्धेरुत्तरदर्शिकादिश्राद्धमेव
कुर्यादनियतस्य बलीयत्वात् ” इति ।

“एकमप्याशयेन्नित्यं पितृर्थं पांचयाज्ञिके ” इत्युक्तेन नित्यश्राद्धेन सह

- १० “न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः । इंदुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्तीयते द्विजः” ॥
इत्युक्तदर्शश्राद्धस्य सन्निपाते संमेलने तथा सोदकुंभश्राद्धेन सह मासिकस्य संनिपाते दर्शश्राद्धेन
मन्वादियुगादिग्रहणादिश्राद्धानां संनिपाते सत्युत्तरदर्शादिश्राद्धेन नानियतेन नियतनित्यश्राद्धादि-
सिद्धेर्न नित्यश्राद्धादिप्रथमनुष्ठेयम् । प्रत्यहं क्रियमाणनित्यश्राद्धपेक्षया दर्शश्राद्धमनियतम् । एवं
सोदकुंभात्प्रत्यहं विहितान्मासिमासि मृताहे विहितं मासिकमनियतम् । एवं दर्शश्राद्धं प्रतिमासं
१५ नियतं मन्वादिकं तु कचित्कचिन्मासे भावादनियतम् । अस्य बलीयस्त्वात्तदेवानुष्ठेयमित्यर्थः । दर्श-
संक्रातिश्राद्धयोः संनिपाते तु द्वयोस्तुल्यत्वाद्देवताभेदाभावाच्च दर्शश्राद्धं संक्रातिश्राद्धं वा अन्य-
तरदनुष्ठेयम् । कालादर्शोऽपि—

“नित्यदार्शिकयोः सोदकुंभमासिकयोरपि । दार्शिकस्य युगादेश्च दार्शिकालभ्ययोगयोः ” ॥

दार्शिकस्य मन्वादेः संपाते श्राद्धकर्मणः प्रसंगादितरस्यापि सिद्धेरुत्तरमाचरोदिति । अलभ्ययोग-

- २० शब्देन चंद्रसूर्यग्रहार्थोदयादीनामुपसंग्रहः । ग्रहणार्थोदययोरमावास्याकालिकत्वाद्वार्षिकेन संपातः ।
तत्रैव—“नैकः श्राद्धद्वयं कुर्यादैकस्यैवेकवासरे । नैमित्तिकं त्वनैकेषां निमित्तानां च संकरे ॥

“नैमित्तिकानि तुल्यत्वात् दैवतैक्येऽपि कृत्स्नशः ” ॥ इति एकः कर्ता एकदिने एकमेव

पित्रादिकमुद्दिश्य श्राद्धद्वयं न कुर्यात् ! नैमित्तिकश्राद्धद्वयं तु कुर्यात् । अनैकेषां निमित्तानां च

सन्निपाते सति बहूनि नैमित्तिकानि श्राद्धानि देवतैक्येऽपि कृत्स्नानि कुर्यात् । निमित्तानां

- २५ तुल्यत्वादित्यर्थः । तदाह कात्यायनः

“द्वे बहूनि निमित्तानि जायेरन्नेकवासरे । नैमित्तिकानि कार्याणि निमित्तोपत्यनुक्रमात्” ॥ इति ।

देवताभेदे एकस्मिन् दिने श्राद्धद्वयानुष्ठानम् । “नैकः श्राद्धद्वयं कुर्यादैकस्यैवेकवासरे”

इति उद्देश्यैक्ये श्राद्धद्वयनिषेधाद्देवताभेदे श्राद्धद्वयं कुर्यात् । पितृमेधसारे तदुदाहृतं तद्यथा—

“नित्यदार्शिकाभ्यां सोदकुंभमासिकाब्दिकानां संयोगे आब्दिकेन संक्रांतिमासिकसोदकुंभानां

- ३० संयोगे सोदकुंभादि पूर्वमनुष्ठेयम् । अनियतत्वात् । ततो दर्शादीति नित्यश्राद्धेन दर्शश्राद्धेन च
सोदकुंभश्राद्धं मासिकं मातुःपितुर्वा क्षयाहश्राद्धं च यदा संयुक्तं तदा श्राद्धद्वयं कुर्यादेव । तत्रा-
नियतनिमित्तं सोदकुंभमासिकाब्दिकादि पूर्वं कृत्वा नित्यदर्शश्राद्धे कुर्यात् । एवं मातुः पितुर्वा
क्षयाहश्राद्धेन संक्रांत्यादिनैमित्तिकश्राद्धसंनिपाते श्राद्धद्वयं कुर्यात् । तत्र संक्रांत्यादीनि अनियत-

निमित्तानि पूर्वं कृत्वा आब्धिकं कुर्यादित्यर्थः । एवं च देवताभेदे सति नित्ययोर्नैमित्तिकयोर्वा संनिपाते श्राद्धद्वयमवश्यं कर्तव्यम् । तत्र चानियतनिमित्तं पूर्वं कर्तव्यम् । तथा च कालादर्शकारः—

“ नित्यस्य सोदकुम्भस्य नित्यमासिकयोरपि । दर्शस्य सोदकुम्भस्य दर्शमासिकयोरपि ॥

“ नित्यस्य चाब्धिकस्यापि दार्शिकाब्धिकयोरपि । युगाद्याब्धिकयोश्चापि मन्वाद्याब्धिकयोरपि ॥

“ प्रत्याब्धिकस्य चालभ्य योगेषु विहितस्य तु । संपाते देवताभेदाच्छ्राद्धयुग्मं समाचरेत् ॥ ५

“ निमित्तानियतिश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम् ” इति । एषु द्वंद्वेषु यस्य श्राद्धस्य निमित्तमनियतं तत्पूर्वमनुष्ठेयम् । अनियतनिमित्तस्य बलीयस्त्वात्तेनोदकुम्भमासिकाब्दिकादि पूर्वं कृत्वा नित्यश्राद्धदार्शिकं कुर्यात् । दार्शिकाब्धिकयोः संनिपाते आब्धिकं क्षयाहश्राद्धं पूर्वं कृत्वा दर्शश्राद्धं कुर्यादितेषु द्वंद्वेषु पश्चाद्यदुक्तं तत्पूर्वमनुष्ठेयमित्युक्तं भवति । तथा स्मृत्यंतरे—

“ दर्शं क्षयाह आपन्ने श्राद्धं तत्र कथं भवेत् । क्षयाहं तु विनिर्वर्त्य दर्शश्राद्धं समाचरेत् ” इति । १०

आश्वलायनस्तु—

“ यन्मास्येवाब्धिकं श्राद्धं यस्य पित्रोर्भवेदिह । प्राकृपिंडदानात्तन्मासि पार्वणं न समाचरेत् ” इति पिंडदानादाब्दिकश्राद्धीयपिंडदानात् प्राक्पार्वणं दर्शादिश्राद्धं न समाचरेदित्यर्थः ।

मातृपितृश्राद्धद्वयसंनिपाते विधिः । मातृपितृश्राद्धद्वयसंपाते पितृश्राद्धं पूर्वं कुर्यात् ।

“ मातापित्रोर्मृताहैक्यं कालेनापि भवेद्यदि । पितृश्राद्धं पुरा कृत्वा कुर्यान्मातुरनंतरम् ” इति १५ स्मरणात् । तथा च कालादर्श— “ पित्रोस्तु पितृपूर्वत्वं सर्वत्र श्राद्धकर्मणि ” इति ।

सर्वत्र सपिंडीकरणांते । तदुत्तरभाविनि प्रत्याब्दिकादौ च कार्ष्णाजिनिः—

“ पित्रोः श्राद्धे समं प्राप्ते नवे पर्युषितेऽपि वा । पितृपूर्वं सदा कुर्यादन्यत्रासक्तियोगतः ” इति । अन्यत्र मातापितृव्यतिरिक्तश्राद्धे । स्मृत्यंतरे—

“ मातापित्रोर्मृताहैक्ये पाकादीन्सह कारयेत् । कुर्यादग्रे पितृश्राद्धं पश्चान्मातुर्यथाविधि ” इति । २०

सायणीये—

“ श्राद्धद्वये च युगपत्प्राप्ते पित्रोर्मृतेऽहनि । एकपाकेन तत्कुर्यादिति स्मृतिः कुतो विदुः ” इति ।

हेमाद्रौ—

“ मातापित्रोरेकदिने श्राद्धं च प्रकृतं भवेत् । एकपाकेन तत्कुर्याद्वरणादि पृथक् पृथक् ॥

“ नान्नादिशेषदोषोऽत्र कालैक्यात् पृथग्विधौ । रोहिणांते पितुः कृत्वा वैरिंचे मातुरारभेत् ” इति । २५

आश्वलायनोऽत्र विशेषमाह—

“ एकत्रैव दिने श्राद्धद्वयं प्राप्तं यदा तदा । चरेदेव पुरा वर्षात्पित्रोरेकस्तु तत्सुतः ॥

“ तावत्पूर्वं मृतस्यादौ कृत्वा स्नात्वा यथाविधि । पश्चात्पश्चान्मृतस्यैव पृथक्पाकैः समाचरेत् ” इति ।

एकस्यां तिथौ संधातानुमरणसंबन्धव्यतिरिक्तं पित्रोः श्राद्धद्वयं यदा प्राप्तं तदा बहुषु विभक्तेष्वपि पुत्रेषु सत्सु एको ज्येष्ठ एव पुरा वर्षान्नवश्राद्धाधूनाब्दिकपर्यंतं मरणक्रमेण कुर्यादित्यर्थः । एवं च ३० वर्षात्पूर्वं कर्तव्यं श्राद्धं पृथक्पाकेन पितृपूर्वं वा मरणक्रमेण वा कुर्यात् । आब्दिकादीनि सह पाकेन पितृपूर्वमेव कुर्यादिति स्थितम् । मासिकाब्दिकयोर्युगपत्प्राप्तौ तु मातुः पितुर्वा आब्धिकं प्रथमं कर्तव्यम् । मासिकं तु पृथक्पाकेन पश्चात्कार्यम्

“ एकाहे मासिकाब्दौ चेत्पूर्वं प्रत्याब्धिकं भवेत् । पश्चात्तु मासिकं कार्यं पृथक्पाकपरिक्रिया ” इति स्मरणात् ।

अनेकश्राद्धसन्निपाते विधिः । पित्रोर्ज्ञात्यादेश्च श्राद्धत्रयसंपाते आश्वलायनः—

“नैकत्रदिवसे श्राद्धत्रयं जात्वपि विद्यते । एकः कुर्यात्तथा प्राप्ते अन्यो भ्राताऽपरं चरेत् ॥

“भ्रातर्यविद्यमाने तु तत्परेऽन्धि समाचरेत् । पश्चादागतयोस्तावत्पित्रोः पूर्वेऽन्धि शस्यते ॥

“एवं विमृश्य कर्तव्यं संप्राप्ते धीमता तदा । अन्यथा श्राद्धहंता स्याच्छ्राद्धसंकरकुद्भवेत्” ॥ इति ।

१ एककर्तृकं श्राद्धत्रयमेकस्मिन्दिवसे न विद्यते । एको भ्राता पित्रोः प्राप्ते श्राद्धे कुर्यात् । अन्यो भ्राता ज्ञातिश्राद्धं चरेदविद्यमाने तु भ्रातरि मरणक्रमात्पश्चात्प्राप्तं पित्रोः श्राद्धद्वयं पूर्वदिवसे मृततिथौ कुर्यात् । पूर्वं मृतस्यापि ज्ञात्यादेः श्राद्धं मृततिथेः परदिवसे कुर्यादित्यर्थः । अर्थात्पित्रोः रन्त्यतरश्राद्धस्य ज्ञात्यादिश्राद्धस्य च सन्निपाते श्राद्धद्वयं पितृपूर्वकं तस्यां तिथौ कुर्यादित्युक्तं भवति । स्मृत्यन्तरे—

१० “आब्धिकं प्रथमं कुर्यान्मासिकं तु ततः परम् । दर्शश्राद्धं तृतीयं स्याच्चतुर्थं तु महालयः” ॥ इति । महालये कारुणिकवरणस्य सत्त्वाद्दर्शमहालयोर्देवताभेदात् पृथक्करणम् ।

अनुमरणाब्धिकविषये भृगुः—

“या समारोहणं कुर्याद्भृगुचित्यां पतिवता । तन्मृताहनि संप्राप्ते पृथक्पिण्डे नियोजयेत्” ॥ इति । पृथक्पिण्डनियोजनं पृथक्श्राद्धकरणम् । तथा च स्मृत्यन्तरे—

१५ “एकचित्यां समारूढौ दंपती निधनं गतौ । पृथक् श्राद्धं तयोः कुर्यादोदनं च पृथक्पृथक्” ॥ इति ।
लोकाक्षिस्तु—

“मृतेऽहनि समासेन पिण्डनिर्वापणं पृथक् । नवश्राद्धं तु दंपत्योरन्वारोहण एव तु” ॥ इति । मृतेऽहनि पिण्डनिर्वापणं मृताहश्राद्धं समासेन पाकैक्येन प्रथमं पृथक्कुर्यादित्यर्थः । मातृभिरैकचित्या-मन्वारोहणे कृते पाकैक्येन प्रथमं पितुः तदनंतरं साक्षान्मातुः ततो ज्येष्ठादिक्रमेण सपत्नी-

२० मातृणां कुर्यात् । तदाह भृगुः—

“एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः । तंत्रेण श्रापणं कृत्वा कुर्याच्छ्राद्धं पृथक्पृथक् ॥

“पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः परम् । तृतीयस्य ततः कुर्यात्सन्निपातेष्वयं क्रमः” ॥ इति ।

माधवीये व्याख्यातमेतत्—“पूर्वकस्य मुख्यस्य पितुः द्वितीयस्य ततो जघन्यायाः साक्षान्मातुः तृतीयस्य ततो जघन्यायाः सपत्नीमातुरिति । एवं च “नैकत्र दिवसे श्राद्धत्रयं जात्वपि विद्यते” इति

२५ निषेधः मातापितृव्यतिरिक्तश्राद्धसंपातविषयः । “दंपत्योः सह संस्कारो मृतावनुमृतावपि ।

“उदकादिसपिण्डच्यंतप्रेतकार्याणि यान्यपि । कुर्यात् समानतंत्रेण सांवत्सरिकमेव च” ॥ इति संघातानुमरणविषये सांवत्सरिकस्य समानतंत्रत्वस्मरणमापद्विषयम्

“एकचित्यां समारूढ मृतयोरेकबर्हिषि । पित्रोः पिण्डान्पृथग्दद्यात्पिण्डं वाऽपत्सु तत्सुतः” ॥ इति अग्निस्मरणात् । पिण्डमित्येकोद्दिष्टाभिप्रायम् । अनापदि तु पृथगेव कार्यम् । अन्यथा “पृथक् श्राद्धं

३० तयोः कुर्यात्” इति पूर्वोक्तस्मृतिविरोधः स्यात् । एवं च पित्रोः संघातमरणे अनुमरणे च सपिण्डीकरणान्तं सह कुर्यात् । तदुत्तरभाविश्राद्धं सर्वपाकैक्येन पृथक्कुर्यादिति निर्णयः ।

सपिण्डानां श्राद्धसन्निपाते विधिः । सपिण्डानां सह मरणे श्राद्धसंपाते ऋष्यशृंगः—

“भवेद्यदि सपिण्डानां युगपन्मरणं तथा । संबन्धासत्तिमालोच्य तत्क्रमाच्छ्राद्धमाचरेत्” ॥ इति ।

मरणक्रमपरिज्ञाने तु तत्क्रमादेव कुर्यात्

“पत्नीभ्रातृसुतादीनां सपिण्डानां यदि क्रमात् । संघातमरणं तत्र तत्क्रमाच्छ्राद्धमाचरेत्” ॥ इति स्मरणात् । ऋष्यशृंगश्च—

“कृत्वा पूर्वं मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः परम् । पुनस्तृतीयस्य तथा संनिपाते त्वयं क्रमः” ॥ इति । पार्वणैकोद्दिष्टयोः संनिपाते जाबालिः—

५

“यद्येकत्र भवेतां वै एकोद्दिष्टं च पार्वणम् । पार्वणं त्वभिनिर्वर्त्य एकोद्दिष्टं समाचरेत्” ॥ इति ।

“भ्रात्रे भगिन्यै पुत्राय स्वामिने मातुलाय च । मित्राय गुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम्” ॥

इत्यादिभिर्विहितस्यैकोद्दिष्टस्य

“पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रश्च दौहित्रो दुहिता स्नुषा । दंपती च क्रमादेते श्राद्धं कुर्युस्त्रिपुरुषम्” ॥

इत्यादिभिर्विहितस्य पार्वणस्य च संनिपाते पार्वणं कृत्वा तत एकोद्दिष्टं कुर्यादित्यर्थः । आद्यैकोद्दिष्ट- १०

दिवसे कर्ता स्वदेयश्राद्धमागतमंतरितं च न कुर्यात्

‘एकोद्दिष्टस्य दिवसे सपिण्डीकरणं विना । श्राद्धं कुर्यात्पितृक्रोधात्क्षयमाप्नोति संततिः’ ॥ इति

स्मरणात् । एकादशदिने एकोद्दिष्टव्यतिरिक्तश्राद्धांतरं यदि कुर्यात्तदा दोषः । विषयविशेषेण

एकादशाहविहितं सपिण्डीकरणं तत्पूर्वभावि च षोडशश्राद्धमेकोद्दिष्टदिवसे कुर्यादित्यर्थः ।

अत्र केचिदाहुः—“एकोद्दिष्टांत एव स्यात्संस्कर्तुः शुद्धता त्वघात्” इति संस्कर्तुरैकोद्दिष्टानंतरं १५

शुद्धिस्मरणात्

“कार्यं प्रत्याब्दिके श्राद्धे त्वंतरा मृतसूतके । आशौचानंतरं कार्यमिति वासिष्ठभाषितम्” ॥ इत्या-

शौचानंतरमेव तत्करणविधानादेकोद्दिष्टं कृत्वा तस्मिन्नेव दिने कुर्यादिति तदसाधु । एकोद्दिष्टस्य

दिवसे सपिण्डीकरणं विनेत्यनेन पूर्वोक्तेन एकोद्दिष्टदिनमात्रे श्राद्धांतरनिषेधप्रतीतिः । यत्तु—

“एकादशेऽन्हि संप्राप्ते एकोद्दिष्टे च पार्वणे । कृत्वा तु पार्वणश्राद्धमेकोद्दिष्टं समाचरेत्” ॥ इति २०

तदपि ‘एकोद्दिष्टांत एव स्यात्’ इत्युक्तानेकस्मृतिविरोधात् शिष्टाचाराभावाच्चोपेक्ष्यम् । तत एव

पितृमेघसारकृत्—“दाहकस्तु स्वदेयं श्राद्धमंतरितं द्वादशाह एव कुर्यात् नैकादशाहे” ।

तत्र शुध्यभावास्त्रिषेधाच्चेति तेनैव तद्व्याख्यातम्—“अंतरितमागतं च स्वदेयं श्राद्धं द्वादशाहे

एव कुर्यात् । सपिण्डीकरणं तु सावकाशत्वात् त्रयोदशाहादौ कुर्यात्” इति । यत्तु—

“द्वादशेऽहनि संप्राप्ते पार्वणे च सपिण्डने । पार्वणं प्रथमं कृत्वा पश्चात्कुर्यात्सपिण्डनम्” ॥ इति २५

एतदेवं व्याचक्षते—पार्वणं प्रथमं पूर्वदिने कृत्वा पश्चात्त्रयोदशदिने सपिण्डनं कुर्यादिति ।

अन्ये त्वाहुः—द्वादशाहे सपिण्डनं कृत्वा त्रयोदशदिनेऽन्हि अंतरितं द्वादशाहप्राप्तं च प्रत्या-

ब्दिकं कर्तव्यम्

“नासपिण्डीकृते प्रेते पितृकार्यं प्रवर्तते । सपिण्डीकरणं कृत्वा कुर्यात्पित्र्यं शुभानि च” ॥ इति

स्मरणादिति । स्मृत्यंतरेऽपि—

३०

“अकृत्वा प्रेतकार्याणि नित्यनैमित्तिकान्यपि । न कुर्यात्तावदाशौचं यावत्प्रेतत्वमोक्षणम्” ॥ इति ।

तथा—

“ग्रहणे तु द्वितीयेऽन्हि रजोदृष्टौ तु पंचमे । त्रयोदशेऽन्हि मृतके जन्मन्येकादशेऽहनि” ॥ इति ।

“ग्रहणे तु द्वितीयेऽन्हि रजो दृष्टौ तु पंचमे ” इत्यनयोर्विषयोऽग्रे वक्ष्यते । मृतके मरणाशौचे अंतरितं त्रयोदशेऽन्हि कुर्यात् । जननाशौचे त्वेकादशे कुर्यादित्यर्थः ।

न च वाच्यं त्रयोदशेऽन्हि मृतके इत्येतन्महागुरुपितृसंस्कृतविषयम्

“उत्पाद्य पुत्रं संस्कृत्य वेदमध्याप्य यः पिता । कुर्याद्वृत्तिं च नष्टेऽस्मिन्द्वादशाहं महागुरौ” ॥ इति

५ वचनेन तत्र द्वादशाहमाशौचस्मरणादिति । केचित्तु पूर्वापरपर्यालोचनया मृतके च त्रयोदश इत्यंशस्याप्यंतरितश्राद्धमात्रविषयत्वप्रतीतिः । महागुरुविषये त्रयोदशेऽन्हि सापिंड्ये सत्युक्तन्यायेन चतुर्दशदिन एवांतरितश्राद्धकरणस्य युक्तत्वाच्च । एवं च द्वादशाहसपिंडीकरणविषयेऽंतरितं श्राद्धमेकोद्विष्टदिने सपिंडीकरणदिने वा प्राप्तं च त्रयोदशेऽन्हि कर्तव्यम् । एतदेवाऽभिप्रेत्य स्मृत्यंतरम्—

“आशौचं द्वादशाहांतं न कुर्याद्वैवतार्चनम् । न कुर्यात्पितृकार्याणि दानं होमं जपं तथा” ॥ इति ।

१० त्रिपक्षादौ सपिंडीकरणविषये तु अंतरितं श्राद्धं द्वादशाहे कार्यम् । द्वादशाहादिषु सपिंडीकरणपर्यंतं तद्दिनेषु च प्राप्तं पित्रोः प्रत्याब्धिकं यथातिथ्येव कर्तव्यम् । ननु—

“अकृत्वा प्रेतकार्याणि नित्यनैमित्तिकान्यपि । न कुर्यात्तावदाशौचं यावत्प्रेतत्वमोक्षणम्” ॥ इति सपिंडीकरणपर्यंतं कर्मानधिकारित्वस्मरणात् कथं तत्र पितृश्राद्धमिति चेन्न । तस्य पितृश्राद्धव्यतिरिक्तकर्मनिषेधपरत्वात् । तथा च स्मृत्यंतरम्

१५ “नासपिंडीकृतेः पित्रोरन्येषां श्राद्धमाचरेत् । नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिष्टापूर्तादिकं च न ॥

“मासिकान्याब्धिकं पित्रोश्शुद्धोऽप्यौरसः सुतः । कुर्यादेव तिथिप्राप्तमिति शातातपोऽब्रवीत्” ॥ इति । आऽसपिंडीकृतेरित्याभिविधावाकारः । पित्रोः सपिंडीकरणपर्यंतमन्येषां प्रत्याब्धिकं न कुर्यात् । मातापित्रोरन्यतरस्य प्रत्याब्धिकमन्यतरसापिंड्यात्पूर्वं कुर्यादित्यर्थः । एवं च पितृसापिंड्यानंतरमन्येषां प्रत्याब्दिकश्राद्धं कर्तव्यमित्यर्थादुक्तं भवति । यत्तु देवलवचनम्

२० “पितरौ प्रमीतौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत् । न दैवे नापि पित्र्यं च यावत्पूर्णां न वत्सरः” ॥ इति । अत्र पित्र्यशब्देनान्येषां सापिंड्यमुच्यते । “पित्रोर्मृताब्दे चान्येषां वत्सरांते सपिंडनम्” इति स्मरणात् । एतच्चावस्थानिरूपितम् । पूर्वपक्षेऽप्येवमेव अनयोः श्लोकयोरर्थ इति तस्मात्पूर्वपक्ष एव युक्तः । यत्र देवतैक्यं तत्र काम्यानुष्ठानान्नित्यं च श्राद्धं प्रसंगात्सिध्यति

“काम्यं तंत्रेण नित्यस्य तंत्रं श्राद्धस्य सिध्यति । स्यादेकत्वं तु निर्देशाद्देवतैक्यं भवेद्यदि” ॥

२५ इति स्मरणात्

तथा च कालदर्शे—“देवतैक्ये काम्यानुष्ठानान्नित्यत्वं च सिध्यति” इति ।

आब्दिकनिरूपणम् । अथाब्दिकं निरूप्यते । तत्र याज्ञवल्क्यः (आ. २५६)

“मृतेऽहनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमासं च वत्सरम् । प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि” ॥ इति ।

३० लोकाक्षिः—

“श्राद्धं कुर्यादवश्यं तु प्रमीतपितृकः स्वयम् । इंदुक्षये मासि मासि वृद्धौ प्रत्यब्दमेव च” ॥ इति ।

जातुकर्णः—

“पितुः पितृगणस्थस्य कुर्यात्पार्वणवत्सुतः । प्रत्यब्दं प्रतिमासं च विधिर्ज्ञेयः सनातनः” ॥ इति ।

पितृगणस्थस्य कृतसपिंडीकरणस्य पितुः प्रत्यब्दं प्रतिमासामाब्दिकं मासिकं च श्राद्धं पार्वणव-

३५ पितृपितामहप्रपितामहात्मकत्रिपुरुषोद्देशेन सुतो मृताहे कुर्यादित्यर्थः ।

कात्यायनः—

“प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्पुत्रः पित्रोः सदा द्विजः । तथैव मातुः कर्तव्यं पावर्णं तु विधीयते”॥ इति ।

स्मृतिचिन्तामणौ—

“मृताहे मासिकं कार्यं ब्रह्मोने तूनमासिकम् । आब्दिकं प्रथमं कुर्यान्मृतमासे मृतेऽहनि”॥ इति ।

सुधानिधौ—

“यस्मिन्मासे मृतिः पक्षे यस्य यस्यां तिथौ भवेत् । तस्यामेव तिथौ कुर्यादाब्दिकं तु विचक्षणः”॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“यस्मिन्मासे मृतिः पूर्वं तस्मिन्मासे च तद्दिने । प्रथमाब्दिकमारभ्य कुर्यादामरणांतिकम्”॥ इति ।

नारदः—

“यस्यां तिथौ मृतिः प्राप्ता तस्यामेवाब्दिकं भवेत् । तिथिनक्षत्रवाराणां तिथिरेव बलीयसी ” इति । १०

चंद्रिकायाम्—

“मासपक्षतिथिसृष्टे यो यस्मिन्त्रियतेऽहनि । प्रत्यब्दं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः”॥ इति ।
अत्र सर्वत्र मृताहस्य मासनिरूप्यत्वं प्रतीयते । मासश्च सौरचान्द्रसावनभेदेन त्रिविधो भवति ।
‘मसी परिमाणे’ इत्यस्मान्द्रातोर्निष्पन्नोऽयं मासशब्दः । सूर्यस्य राशिगतित्यत्र परिमीयते स सौरः ।
यस्येते परिमीयते यावता कालेन चंद्रवृद्धिक्षयौ स चांद्रो मासः । अहोरात्राणां त्रिंशत्संख्या यत्र १५
परिमीयते स सावनः । तदुक्तं ब्रह्मसिद्धांते—

“चांद्रः शुक्लादिदर्शान्तः सावनत्रिंशता दिनैः । एकराशौ रविर्यावत्कालं मासः स भास्वतः”॥ इति ।

शुक्लादिः शुक्लप्रतिपदादिः दर्शान्तश्चांद्रः । तथा स्मृत्यन्तरे—

“मेषादिस्थे सवितरि यो यो दर्शः प्रवर्तते । चांद्रमासास्तत्तदंताश्चैत्राद्या द्वादश स्मृताः”॥ इति ।

चंद्रिकायाम्—

“दर्शान्तश्चांद्रश्चिंशद्विषसस्तु सावनो मासः । रविसंक्रमचिन्हः सौरो मासो निगद्यते तज्ज्ञैः ”॥
इति । चांद्रस्तु द्विविधः दर्शान्तः पौर्णमासान्त इति । तथा च श्रूयते—(तै. सं. ७।५।६)

“अमावास्यया हि मासान् संपाद्याह उत्सृजन्ति । अमावास्यया हि मासान् संपश्यन्ति । पौर्ण-
मास्या मासान् संपाद्याह उत्सृजन्ति । पौर्णमास्या हि मासान्संपश्यन्ति” इति । तत्र प्रथमपक्षे चांद्रः
शुक्लादिदर्शान्त इत्यादि स्मृतय उदाहार्याः । शिष्टाचारबाहुल्यं च तत्र प्रसिद्धम् । द्वितीयपक्षस्यो- २५
पोद्बलकं स्मृतिलिङ्गं च । तथाहि महालयप्रकरणे पठ्यते—“आश्वयुक् कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कार्यं
दिने दिने ” इति । तत्र यदि दर्शान्तो मासो विवक्ष्येत तदा भाद्रपदकृष्णपक्ष इत्युच्येत । न
त्वेवमुक्तम् । आश्वयुजमासांतर्गतं त्विहोच्यते । तत्र कृष्णपक्षप्रतिपदादिपूर्णमांतत्वे संभवति ।
तथा जयंतीप्रकरणे स्मर्यते—

“मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्धरात्रके । भवेत् प्रोष्ठपदे मासि जयंती नाम सा स्मृता”॥ इति । ३०

अत्रापि जयंत्या भाद्रपदांतर्गतत्वं मासस्य पूर्णिमांततां गमयति । यतिधर्मप्रकरणे च स्मर्यते—

“संधिषु वापयेत् ” इति । तत्र यदि दर्शान्तविवक्षा स्यात् तदा दर्शस्यैव संधित्वात्तत्रैव
वपनं कुर्युः । कुर्वति च पूर्णमायां तस्माद्दर्शान्तत्वपूर्णमांतत्ववचोर्व्यवस्थितो विकल्पः ।
तथा च ब्रह्मसिद्धांते—

“अमावास्यपरिच्छिन्नो मासः स्यात् ब्राह्मणस्य तु । संक्रातिपौर्णमासिभ्यां तथैव नृपवैश्ययोः ॥ इति । ३५

ज्योतिःशास्त्रे—

“ दर्शितः पूर्णिमांतश्च चांद्रमासो द्विधाः मतः । जातिभेदाद्देशभेदात्तौ च मासौ व्यवस्थितौ ॥

“ नर्मदादक्षिणे भागे दर्शितो मास इष्यते । नर्मदोत्तरभागे तु पूर्णिमांत इति स्थितिः ” ॥ इति ।

चंद्रिकायामपि—शुक्लप्रतिपदादिदर्शितश्चांद्रो मास इत्येतदक्षिणापथे द्रष्टव्यं उत्तरापथे तु
१ कृष्णपक्षप्रतिपदादि पौर्णमास्यांतश्चांद्रो मास इति द्रष्टव्यमिति । तदेवं सौरचांद्रसावनभेदेन मासस्त्रिविधः । तत्र चांद्रो मासो दर्शितः पूर्णिमांतो वा देशभेदेन जातिभेदेन च व्यवस्थितः । नाक्षत्रमपि मासं केचिदिच्छन्ति “ सर्वक्षैः परिवृत्तैस्तु नाक्षत्रो मास इष्यते ” इति विष्णुधर्मोत्तरेऽभिधानात् ।

- ऋतुनिर्णयः—प्रसंगादतुर्निर्णयते । ऋतुर्वसंतादिः कालविशेषः । स च षड्विधः “ षड्वा
१० “ऋतव” इति श्रुतेः (तै. ब्रा. १।३।१०) । यत्तु ‘ द्वादशमासाः पंचर्त्तव ’ इति श्रुतं (तै. ब्रा. ३।८।९) । तत्र हेमंतशिशिरयोरेकिकरणं विवक्षितम् । तथा च बह्वचब्राह्मणे पठ्यते “ द्वादशमासाः पंचर्त्तवः हेमंतशिशिरयोः समासेन ” इति । तथा च पंचमप्रयाजानु-
मंत्रणमंत्रः श्रूयते (तै. सं. १।५।२)—‘ हेमंतशिशिरावृत्तूनां प्रीणामि ’ इति । एवं च स्वरूपेण ऋतवः षोढा भिद्यते ॥ “ तत्रैकैर्ऋतुर्मासद्वयात्मकं द्वंद्वमुपदधाति । तस्मात् द्वंद्वमृतव ” इत्युप-
१५ धानब्राह्मणे श्रवणात् (तै. सं. ५।४।२) । कस्मिन् ऋतौ कयोर्मासयोर्द्वंद्वं गृहीतव्यमित्या-
कांक्षायां वसंताद्यृतुषु क्रमेण चैत्रमासादिद्वंद्वं ग्राह्यमिति श्रुतिरेवाह—(तै. सं. ४।४।२) “ मधुश्च माधवश्च वासंतिकावृतू । शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू । नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू । इषश्चोर्जश्च शारदावृतू । सहश्च सहस्यश्च हैमंतिकावृतू । तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू ” ॥ इति । एषु च वाक्येषु ऋतु इतिद्विवचनमृत्ववयमासाभिप्रायं अन्यथा “ षड् वा ऋतव ” इति श्रूयमाणा षट्संख्या
२० बाध्येत । अवयविनः ऋतोर्वसंतादेरैकेकात्मकत्वमाधानब्राह्मणे (तै. ब्रा. १।१।२) एकवचनेन व्यवहारादवंगतव्यम् । “ वसंतो वै ब्राह्मणस्यर्तुः । ग्रीष्मो वै राज्यस्यस्यर्तुः । शरद्वै वैश्यस्यर्तुः ” इति । संवत्सरोपक्रमरूपत्वेन वसंतस्य प्राधान्यं द्रष्टव्यम् । “ मुखं वा एददृतूनां यद्वसंतः ” इति श्रुतेः (१।१।२) । ते च वसंतादयः ऋतवो द्विविधाश्चांद्राः सौराश्च । चैत्रादयश्चांद्रास्ते चोदाहृताः । मधुश्च माधवश्चेत्यादिना । न च तत्र चैत्रादयो नोक्ता इति शंकनीयं मध्वादिशाब्दादीनां
२५ चैत्रादिपर्यायत्वात् । अत एवाहुः
“ चैत्रो मासो मधुः प्रोक्तो वैशाखो माधवो भवेत् । ज्येष्ठो मासस्तु शुक्रः स्यादाषाढः शुचिरुच्यते ॥
“ नभो मासः श्रावणः स्यान्नभस्यो भाद्र उच्यते । इषश्चाश्वयुजो मासो कार्तिकश्चोर्जसंज्ञकः ॥
“ सहो मासो मार्गशीर्षः सहस्यः पुष्यनामकः । माघमासस्तपः प्रोक्तस्तपस्यः फाल्गुनः स्मृतः ” ॥ इति ।
चांद्रमासानां चैत्रादिसंज्ञा नक्षत्रप्रयुक्ता । यस्मिन्मासे पूर्णिमा चित्रानक्षत्रेण युज्यते स चैत्रः । एवं
३० वैशाखादिषुभ्रूयेयम् । चित्रविशाखादियोगस्योपलक्षणत्वात्कचित्चित्रादिप्रत्यासन्नस्वात्यनूराधादि-
योगेऽपि चैत्रवैशाखादिसंज्ञा न विरुध्यते । एतेषां चैत्राद्यात्मकानां वसंतादीनां चंद्रपरिकल्प्य-
त्वाच्चांद्रत्वम् । अत एवाह्यते (तै. आ. ३।३।७)—“ चंद्रमाः षड्वीता । स ऋतून्कल्प-
याति ” इति । ननु अस्त्वेवं मध्वादीनां द्वादशानां चांद्रमासानां वसंताद्यृतुत्वं मलमासस्य तु त्रयोश-
दशस्य चांद्रमासस्य कथमृतुषु निर्वाहः । उच्यते । ययोर्मासयोर्मध्ये मलमासो दृश्यते तयोर्ऋत-
३५ स्मिस्तस्यांतर्भावः ।

तथा च—असौ षष्टिदिनात्मको मलिनशुद्धभागद्वयात्मक इति मध्वादिशब्दवाच्यत्वेन उक्ते-
ष्वन्तर्भावात् न काऽप्यनुपपत्तिः । सौरै त्वृत्तुषु बोधायनेन मीनमेषयोर्मेषवृषभयोर्वा वसंत
इत्याभिधानान्मीनादित्वं मेषादित्वं च वैकल्पिकं वसंतस्यांगीकृतम् ।

वृद्धगार्थोऽपि—“मीनमेषौ रविर्यावद्वसंतस्तावद्विष्यते” इति । **वृद्धवसिष्ठः**—“यावन्मेषर्षभौ
भानुर्वसंतस्तावद्विष्यते” इति । **कालनिर्णये**—

५

“वसंतादतवो द्वेधा चांद्राः सौराश्च चांद्रगाः । चैत्राद्या अथ मीनाद्या मेषाद्या वा विवस्वतः” इति ।
तदेवं “वसंते बाह्मणोऽग्निनादधीत ग्रीष्मे राजन्य आदधीत शरदि वैश्य आदधीत । वसंते
ब्राह्मणमुपनयीत ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यं वसंते ज्योतिष्ठोमेन यजेत” इत्यादि श्रुतिस्मृति-
पुराणविहितेषु कर्मसु चांद्रः सौरो वा ऋतुः देशाचारानुसारेण विकल्पितो द्रष्टव्यः ।

अयननिरूपणम् ॥ अथायनम् । यात्यनेन ऋतुत्रयेण सूर्यो दक्षिणाशामुत्तराशां वेत्युतु- १०
त्रयमयनम् । तथा च श्रुतिः (तै सं. ६।५।२)—“तस्मादादित्यः षण्मासो दक्षिणेनैति
षडुत्तरणेति” । अत्र **कालनिर्णयकारः**—“आदित्यगतिमुपजीव्यायननिष्पत्तेः सौरमेवैतत्” ॥
अत एव **विष्णुधर्मोत्तरे**—सौरमासमधिकृत्योक्तमृतुत्रयं चायनं स्यादिति । केचित्तु चांद्रमासे-
नायनद्वयमभ्युपगच्छति । मार्गशीर्षमासादिकैस्त्रिभिः ऋतुभिः कल्पितः कालः षण्मासात्मक
उत्तरायणम् । ज्येष्ठमासादिको दक्षिणायनमिति । तत्र प्रमाणं ज्योतिःशास्त्रादौ मृग्यम् । श्रौतस्मार्त- १५
कर्मानुष्ठाने तु मकरकर्कटसंक्रात्यादिक एवायनद्वयकाल इति ।

संवत्सरनिरूपणम् । अथ संवत्सरः । संवत्सरो नाम अयनाद्यवयवयुक्तोऽवयवी काल-
विशेषः । सम्यगवसंत्यस्मिन्नयनतुर्मासादय इति व्युत्पत्तेः । स च द्वादशमासात्मकः “द्वादशमासाः
संवत्सरः” (तै. ब्रा. ३।८।९) इति श्रुतेः । चांद्रसावनसौरमासभेदेन संवत्सरस्त्रिविधः ।
तदुक्तं **ब्रह्मसिद्धांते**—

२०

“चांद्रसावनसौराणां मासानां तु प्रभेदतः । चांद्रसावनसौरास्तु त्रिधा संवत्सरा अपि” ॥ इति ।
तत्र चांद्रः सांवत्सरश्चैत्रशुक्लप्रतिपदादिकः फाल्गुनदर्शीतः । सौरस्तु मेषादिर्मीनांतः । सावनः
षष्ठ्युत्तरशतत्रयाहोरात्रात्मकः । पंचविधात्मकं संवत्सरस्योक्तमायुर्वेदे—

“सौरबृहस्पतिसावनशशधरनाक्षत्रिकाः क्रमेण स्युः । मातुलपातालातुलविमलवरांगौ वत्सराः पंच” ॥
इति । अस्यायमर्थः—गणकप्रसिद्धयाक्षरसंख्यया मातुलशब्दः पंचषष्ठ्यधिकशतत्रयमाचष्टे । २५
तावद्विषसपरिमितः सौरः संवत्सरः पातालशब्दः एकषष्ठ्यधिकशतत्रयमाचष्टे । तावद्विषसपरिमितः
काल्ये बृहस्पतेः संवत्सरः । अतुलशब्दः षष्ठ्यधिकशतत्रयमाह । तावद्विषसपरिमितः सावनः
संवत्सरः । विमलशब्दः चतुःपंचाशदधिकशतत्रयमाचष्टे । तावद्विषसपरिमितः चांद्रसंवत्सरः ।
वरांगशब्दश्चतुर्विंशत्यधिकशतत्रयमाह । तावद्विषसपरितो नाक्षत्रिकसंवत्सर इति तत्र नाक्षत्रि-
कस्य ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धेः आयुर्दायादावुपयोगः । बार्हस्पत्यस्तु सिंहबृहस्पतिरित्यादिविशेषमुप- ३०
जीव्यगोदावर्यादिस्नानादौ विनियुक्तः सौरः संवत्सरः मेषादिराशिपुरस्कारेण प्रवृत्तेः सांवत्सरिके
व्रतादौ द्रष्टव्यः । तथा च व्रतं विष्णुधर्मोत्तरे अभिहितम्—

“भगवन् कर्मणा केन तिर्यग्योनौ न जायते । म्लेच्छदेशे च पुरुषस्तमाचक्ष्व च वै मुने” ॥

मार्कण्डेयः—

“मेषसंक्रमणे भानोः सोपवासो नरोत्तमः । पूजयेत् भार्गवं देवं रामं शक्त्या यथाविधि” ॥ इत्यारभ्य
 “मीने संक्रमणे मत्स्यं वासुदेवं च पूजयेत्” इत्यनेन ग्रंथेन व्रतं विधायते तदुपसंहृतं
 “कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं म्लेच्छेषु तिर्यक्षु च नापि जायते” इति । षष्ठ्यधिकशतत्रयसंख्याकै-
 ५ दिनैर्निर्वर्त्ये गवामयनादौ सावनो द्रष्टव्यः । पक्षविशेषे तिथिविशेषे वा प्रतिसंवत्सरं विहितं यत्कर्म
 तत्र चान्द्रः संवत्सरो द्रष्टव्यः । तथा च निरूढपशुबंधप्रकरणे श्रूयते—“तेन संवत्सरे
 संवत्सरे यजेत” इति । आपस्तंबः—“सर्वान्लोकान्पशुबंधयाज्यभिजयति तेन यक्षमाणोऽ-
 मावास्यायां पौर्णिमास्यां वा” इति । अत्र चांद्रो वत्सरो ग्राह्यः । चांद्रतिथौ तदनुष्ठानविधानात् ।
 “तदाद्यास्तिथयो द्वयोः” (१।४।१) इत्यमरसिंहेन चांद्राहोरात्रेणैव तिथिशब्दानुशासनात्
 १० ‘पक्षपरिग्रह’ इत्यस्माद्धातोः चांद्रस्य पंचदशानां कालानां पूर्णं अपक्षयो वा यत्र परि-
 गृह्यते स पक्ष इति निर्वचनाच्छुक्लपक्षादिपक्षाः पुरस्कारेण प्रवृत्ते कर्मणि चांद्र एव द्रष्टव्यः ।
 तथा शुक्लपक्षेऽनंतव्रतं विहितं ‘नववर्षाणि पंच च’ इति संवत्सरस्य चानंतव्रतांगत्वं प्रतीयते ।
 तत्र चांद्रः संवत्सरः । यत्र “गुरुता शिष्यता चैव तयोर्वत्सरवासतः । संवत्सरमेतद्व्रतं चरेत्”
 इत्यादौ नियामकं नास्ति । तत्र चांद्रादीनामन्यतम इच्छया ग्रहीतव्यः ।

१५ प्रकृतमनुसरामः

“यस्मिन्मासे स्मृति पक्षे यस्य यस्यां तिथौ भवेत् । तस्यामेव तिथौ कुर्यादाब्दिकं तु विचक्षणः” ॥
 इत्यादिभिः पूर्वोक्तवचनैः पक्षतिथिसंबन्धेनाब्दिकस्य विधानाच्चांद्रस्याब्दस्य ग्राह्यत्वं प्रतीयते ।
 अत्र गार्ग्यः

“विवाहादौ स्मृतः सौरो यज्ञादौ सावनः स्मृतः । आब्दिके पितृकार्येऽपि चांद्रो मासः प्रशस्यते” ॥ इति ।

२० चंद्रिकायामिदं व्याख्यातम्—यज्ञादौ माससंवत्सरसाध्ययज्ञव्रतप्रायश्चित्तक्रियादौ तत्र मास-
 साध्ययज्ञः ‘मासं वैश्वदेवेन’ इत्यादिवाक्यैर्विहितः । माससाध्यव्रतानि मासोपवासादीनि मास-
 साध्यप्रायश्चित्तक्रियास्तु

“गोष्ठे वसन्ब्रह्मचारी मासमेकं पयोव्रतः । गायत्रीजाप्यनिरतो मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात्” ॥

इत्यादिवाक्यैर्विहितः संवत्सरसाध्ययज्ञाः गवामयनादयः । संवत्सरसाध्यव्रतानि ‘संवत्सरमेतद्व्रतं

२५ चरेत्’ इत्यादिविहितानि संवत्सरसाध्याः प्रायश्चित्तक्रियाः द्वादशवार्षिकाद्या द्रष्टव्याः । आब्दिके
 सांवत्सरिकश्राद्धे पितृकार्ये मासिकादौ । अपिशब्दान्माससंवत्सरसाध्ये यज्ञव्यतिरिक्ते सर्वस्मिन्
 देवकार्ये चांद्रो मासः प्रशस्यते इति । उक्तं च पितामहेन—“दैवे कर्मणि पित्र्ये च मासश्चांद्र-
 मसः स्मृतः” इति । आत्रेये—

“अभिषेकेऽपि नाक्षत्रं सावनं वेतनादिषु । पित्र्ये चांद्रमसं शस्तं सौरं स्मार्तेषु कर्मसु” ॥ इति ।

३० अभिषेके राज्याभिषेके । स्मार्तेषु विवाहादिष्वित्यर्थः । लघुहारीतः—

“प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्या पिंडक्रिया सुतैः । क्वचित्रयोदशेऽपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम्” ॥ इति ।

द्वादशे मासि अतीत इति शेषः । अत्र त्रयोदशग्रहणसामर्थ्याच्चांद्रो मास इति ज्ञेयम् । सौर-
 वत्सरे त्रयोदशमासासंभवात् । हारीतोऽपि—“असंक्रांतेऽपि कर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं द्विजैः” इति ।

अत्रापि संक्रांतिरहितसौरमासासंभवाच्चांद्र एव गृहीतः । वृद्धगार्ग्योऽत्र विशेषमाह—

“अन्वष्टक्यं च पूर्वैद्युरष्टकामायुगादयः । मन्वाद्योऽक्षया पंचम्यादौ चांद्रौ प्रकीर्तितौ ॥
“मासिके चाब्दिके वस्त्रधान्यस्वर्णादिवृद्धिषु । भृत्योपकल्पनादौ च मासाब्दौ सौरसावनौ” ॥ इति ।
मासिके आब्दिके च मासा द्वौ सौरौ धान्यस्वर्णादिवृद्धिषु भृत्योपकल्पनादौ च मासाब्दौ सावनविति
वर्षात्तयादयः । कालादर्श—

“अष्टकापरपक्षमावास्यादौ चांद्रमानतः । मासिकाब्दिकवृद्ध्यादौ मासाब्दौ सौरसावनौ” ॥ इति । ५
अपरपक्षो भाद्रपदकृष्णपक्षः । आदिशब्दात्पूर्वैद्युरन्वष्टक्याक्षयतृतीयामन्वादियुगादिपंचम्यादीनामुप-
संग्रहः । वृद्धिः ऋणीकृतसुवर्णादिवृद्धिः । आदिशब्देन भृत्योपकल्पनाद्युपसंग्रहः । त्रिकांडी च—
“चांद्रो मासः श्रुतिस्मृत्योः कर्मणोर्मासिकाब्दिके । विहाय भृतिवृद्ध्यादौ इतरौ परिकीर्तितौ” ॥ इति ।
मासिकाब्दिकव्यरिक्तश्रौतस्मार्तकर्मणोश्चांद्रो मासः । मासिकाब्दिकयोर्भृतिवृद्ध्यादौ च इतरौ
सौरसावनवित्यर्थः । स एव—

१०

“यस्मिन्नाशौ स्थिते सूर्ये यो मृतिं प्रतिपद्यते । पुनस्तद्राशिमापन्ने भानावाब्दिकमाचरेत्” ॥ इति ।

हेमाद्रौ—

“यस्मिन्नाशौ स्थितौ सूर्ये विपत्तिं याति मानवः । तद्राशावेव कर्त्तव्यं पितृकार्यं मृतेऽहनि” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—

“व्रते चांद्रमासं शस्तं न श्राद्धेषु प्रशस्यते । अस्थिरश्चान्द्रमासः स्यात्स्थिरः सौरौऽत्र कारणम्” ॥ इति । १५
चांद्रो मासोऽधिमाससंभवादस्थिरः । तदसंभवात्सौरः स्थिरः । अत्र सौरपरिग्रहे स्थिरत्वं कारण-
मित्यर्थः । अत्र केचिदमूलं श्लोकमिमं वर्णयंतो व्याचक्षते

“चांद्रमानविधानेन मामले दिवसे सति । आद्याब्दिकं प्रकुर्वीत सौरेण पुनराब्दिकम्” ॥ इति ।
सौरमानेनानुवर्त्यपि चांद्रमानविधानेन मृतदिवसान्मामले दिवसे पंचपंचाशदुत्तरशतत्रयदिवसे
प्रथमाब्दिकं कुर्वीत । द्वितीयाब्दिकं सौरमानेन प्रकुर्वीत । प्रथमाब्दिकस्य चांद्रमानेन कर्त्तव्यत्व- २०
विधानसामर्थ्यान्मासिकान्यपि तेनैव मानेन कर्त्तव्यानीति । तत्तु “मासिके चाब्दिके वस्त्रधान्य-
स्वर्णादिवृद्धिषु” इति पूर्वोक्तवृद्ध्यागर्ग्यादिवचनविरोधादुपेक्ष्यम् । तदेवं मासिकाब्दिकविषये
सौरविधिपराणां चांद्रविधिपराणां तत्तत्प्रशंसापराणां च बहूनां वचनानां सत्त्वात् “तुल्यबल-
विरोधे विकल्पः” इति (१।५) गौतमस्मरणाद्रीहियववद्विकल्पः । स च देशकुलाचारानुरोधेन
व्यवस्थितो विज्ञेयः । तथा च मनुः (१।१७८-१७९)

२५

“येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः । तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यति ॥

“सद्भिराचरितं यस्माद्धार्मिकैश्च द्विजातिभिः । तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत्” ॥ इति ।

सुमंतुरपि—“यत्र शास्त्रगतिभिर्ज्ञा सर्वकर्मसु भारत । उदितेऽनुदिते चैव होमभेदो यथा भवेत् ॥

“तस्मात्कुलक्रमायातमाचारं त्वाचरेद्बुधः । स गरीयान्महाबाहो सर्वशास्त्रोदितादपि” ॥ इति ।

सौरमासे तिथिद्वयसंभवे मासिकाब्दिकयोः परा तिथिर्ग्राह्या । यदाह बृहस्पतिः—

३०

“मासे संवत्सरे चैव तिथिद्वैधं यदा भवेत् । तत्रोत्तरोत्तमा ज्ञेया पूर्वा स्यानु मलिम्लुचा” ॥ इति ।

मासे मासिके संवत्सरे सांवत्सरिके इत्यर्थः । तथा च संवर्त्तः—

“उत्तरे दिवसे कुर्यादाब्दिकं मासिकं तथा । प्रत्याब्दिकं तथा कुर्यात्च्छ्रेयस्कामो भवेद्यदि” ॥

स्मृत्यन्तरे—

“मासे संवत्सरे चैव तिथिद्वैधं यदा भवेत् । तत्रोत्तरा तिथिर्ग्राह्या न पूर्वा तु मल्लिमुच्यते” ॥ इति ।

आपस्तम्बः—

“आब्दिके मासिके चापि पूर्वस्मिन्दिवसे कृते । तदानीं कुलहानिः स्यादुत्तरे गोत्रवर्धनम्” ॥ इति ।

५ बृहस्पतिः—

“मासिकाब्दिककृत्ये तु तिथिद्वैधं यदा भवेत् । पूर्वत्र दोषजननमुत्तरे भाग्यसाधनम्” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“एकमासि तिथिद्वैधे परत्राब्दिकमासिके । तद्वत्प्रत्याब्दिकं कुर्यादित्याह भगवान्मनुः ॥

“यदि पूर्वदिने कुर्यात्कुलक्षयकरं भवेत्” ॥ इति ।

१० नारदः—“पितृकार्यं तु सर्वेषामृद्धिभाजनमुत्तरे । दिवसद्वितये प्राप्ते पूर्वत्र तु कुलक्षयः” ॥ इति ।

तत्र परतिथेः संक्रांत्युपरागदुष्टत्वे पूर्वा ग्राह्या । उभयत्र तथात्वे तु परातिथिर्ग्राह्या । यदाह

संग्रहकारः—“मास्येकस्मिन् द्वौ तिथौ चेतपरा स्यात् पूर्वस्तस्मिन्सूर्यसंक्रांतियुक्ते ।

“द्वावप्येवं संगतौ चेतपरा स्यात्सर्वं चैवं चंद्रसूर्योपरागे” ॥ इति । स्मृत्यन्तरे विशेषोऽभिहितः—

“यस्मिन्नहनि संक्रांतेः परं मध्यं दिनं भवेत् । आब्दिकं तत्र कुर्वीत अन्यथा ग्राह्यमुत्तरम्” ॥ इति ।

१५ उभयत्रापि संक्रांतिदोषे आवर्तनादर्वाग्यदि संक्रांतिस्तदा पूर्वत्र आवर्तनात्परं चेतपरेत्यर्थः । अस्त-
मयात् परं नास्ति संक्रांतिदोष इति केचित् । अर्धरात्रात्परं चेत्संक्रांतिदोषो नास्तीत्यपरे । एतदेव
युक्तम् । उपरागसाहचर्यात् । उपाकर्मणि

“अर्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रान्त्यां ग्रहणेऽपि वा । न कर्तव्यमुपाकर्म परतश्चेन्न दोषभाक्” ॥ इति ।

पूर्वापरदिने यत्र याऽधिका सा मता इत्यादि । तथा मास्येकस्मिन् तिथिद्वयेऽपि तुल्यद्वयोरपि

२० तुल्यबलत्वे परिग्राह्यम् । उभयोः कर्मकालस्य दुष्टत्वे यत्र तन्माससंबन्धभूयस्त्वं तत्र कुर्यात् ।

तदुक्तं संग्रहे—

“सौरमासे तिथिद्वैधे मासिकाब्दिकयोः परा । सा चोपरागसंक्रांतिर्दुष्टा चेतपूर्विका मता ॥

“द्वयोर्दोषेऽर्कसंक्रातिरर्वागवर्तनाद्यदि । पूर्वापरान्यथा ग्राह्या कर्मकाले द्वयोरपि ॥

“दुष्टे तन्माससंबन्धभूयस्त्वं यत्र सा मता” ॥ इति ।

२५ संक्रमदोषनिर्णयः । हेमाद्रौ—

“स्वरस्तमयात्पूर्वं यदि संक्रमणं भवेत् । सा तिथिः संक्रमाद्दुष्टा परतश्चेन्न दोषभाक्” ॥

किञ्च “सौरमासे तिथिद्वैधे मासिकाब्दिकयोः परा । सा चोपरागसंक्रान्तिर्दुष्टा चेतपूर्विका मता ॥

“द्वयोर्दोषेऽर्कसंक्रान्तिरर्वागवर्तनाद्यदि । पूर्वापरान्यथा ग्राह्या कर्मकाले द्वयोर्यदि ॥

“दुष्टे तन्माससंबन्धभूयस्त्वं यत्र सा मता” ॥

३० आवर्तनात्पूर्वं चेदेवमावर्तनात्परं चेदेवं कर्मकाले पराह्णे चेदेवमिति वचनैर्दिवा संक्रमण
एव दोषप्रतीतेर्न रात्रौ दिवासंक्रमणरहितातिथावेव श्राद्धं कर्तव्यम् ।

माधवीये—

“या तिथिः संक्रमाद्दृष्टा निशीथात्पूर्वमेव तु । आब्दिके मासिके त्याज्या सा तिथिः कव्यकर्मणि ।
“ मास्येकस्मिन् तिथौ पित्रोर्दिवौ संक्रमणे सति । अपराह्णात्परं दोषो न भवेच्छ्राद्धकर्मणि” ॥ इति ।
अखण्डादर्श—‘एकस्मिन् मासे एकस्मिन् दिने तिथौ संक्रमदुष्टायां सत्यामपराह्णात्परं न संक्र-
मदोषः ’ इत्यर्थः ।

५

किञ्च—“ उभयोः कर्मकाले च संक्रमो न भवेद्यदि । परत्रैव तु कर्तव्यमाब्दिकं मासिकं तथा ” ॥
ब्रह्मयामके विशेषः । ऋषीन् प्रति व्यासः—

“ उत्तरे षडशीत्यां च प्रातश्चेदपि संक्रमः । पश्चात्पुण्यतया दोषः सायाह्ने तु न दूष्यति” ॥ इति ।

अयमर्थः—मकरसंक्रान्तौ षडशीतिसंक्रान्तौ च प्रातःकाले संक्रमेऽपि आवर्तनात्पूर्वं
संक्रम इति दोषाभावशंका न कार्या । किन्तु अनयोः संक्रान्तयोः पश्चादेव पुण्यकालतया १०
“ यदहः पुण्यकालः स्यात्तदहर्दोष इष्यते” इति परिभाषामनुस्मृत्य तदहः प्रत्याब्दिकं न कर्तव्यम् ।
अपि तूत्तरसंक्रान्तिः सायाह्ने चेत्तत्र यथोक्तदोषाभावात्तत्रैव कर्तव्यमिति । एवं च प्रकृते चाप-
संक्रान्तेः षडशीतित्वेन पूर्वाह्नसंक्रमेऽपि दोष एव । मकरसंक्रान्ते षडशीतित्वेन पूर्वाह्नसंक्रमेऽपि
दोष एव । मकरसंक्रान्तेः सायन्तनत्वेन दोषाभावात्तत्रैव श्राद्धं कर्तव्यमिति निर्णयः ।

सौरतिथ्यलाभे चान्द्रतिथिग्रहणम् । सौरमासे मृततिथ्यभावे चांद्रमासमृततिथिर्ग्राह्या । १५
तदाह हारीतः—

“सौरै यदि दिनं शून्यं तदा चांद्रविधानतः । पूर्वमासे कृतं चेत्स्यात्पितृणां वृत्तिकारणम्” ॥ इति ।

पराशरः—

“ सौरालाभे ततः पूर्वं कृतं चेत्सफलं भवेत् । उत्तरस्मिन्कृते मासि तच्छ्राद्धमसुरालयम् ” ॥ इति ।

संवर्त्तः—

२०

“ सौरमानविधाने तु मृतमासे तिथिर्न चेत् । पूर्वमासे तदा कुर्यादुत्तरे मासि दुःखदम् ” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरेऽपि—

“ वृश्चिकादित्रिमासेषु मृताहो न भवेद्यदि । पूर्वमासि तिथौ कुर्यान्मासिकं चाब्दिकं तथा” ॥ इति ।

वसिष्ठोऽपि—

“आब्दिकं सौरमासे स्यात्संक्रांतिरहिते तिथौ । सौरमासे यदि तिथिर्न स्याच्चांद्रमासे स्मृता” ॥ इति । २५

पितृमेधसारे —“सौरमास्येकस्मिंस्तिथिद्वयसंभवे परस्यामेव श्राद्धं कुर्यात् । तत्र संक्रांत्युपरागदोषे
पूर्वस्यां तत्रैवं चेत्परस्याम् । उभयत्राप्येवं चेत्परस्यां क्वचित्सौरै तिथ्यभावे चांद्रे मासि कुर्यात्” इति ।
तस्मिन् चांद्रे क्षयं गते सति तदुत्तरमासतिथिर्ग्राह्या । तदुक्तं स्मृत्यंतरे—

“ सौरमासे तिथ्यभावे मासिकाब्दिकयोरपि । चांद्रो मासो भवेद्ब्राह्मस्तस्मिंश्चांद्रे क्षयं गते ॥

“तदुत्तरे मासि तिथिर्ग्राह्या पूर्वत्र नेष्यते” ॥ इति । यदा शुक्लप्रतिपदि धनुःसंक्रांतिर्दर्शमध्ये मकर- ३०
संक्रांतिश्च तदा धनुस्थे रवौ दर्शस्यासमाप्त्या न तस्य मार्गशीर्षत्वं मकरस्थे रवौ तत्समाप्त्या तस्य
पौषत्वमेव मार्गशीर्षस्तु लुप्त इत्येवं कदाचित्संभाविते क्षयमासे सति धनुर्मासामावास्या मृततिथि-
स्तदुत्तरमासे ग्राह्येत्यर्थः ।

आब्दिकपरित्यागे प्रत्यवायः । आब्दिकश्राद्धपरित्यागे प्रत्यवायमाह मरीचिः—

“पंडिता ज्ञानिनो मूर्खाः स्त्रियोऽथ ब्रह्मचारिणः । मृताहं समतिक्रम्य चंडालाः कोटिजन्मसु” ॥ इति ।
देवलः—

“मृताहं समतिक्रम्य चण्डालः कोटिजन्मसु । अतो विप्रैर्न तत् त्याज्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ” ॥

५ भविष्यत्पुराणे प्रभासखंडयोश्च—

“मृताहं समतिक्रम्य चण्डालाः कोटिजन्मसु । अतो विप्रैर्न तत् त्याज्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥

“मृतेऽहनि पितुर्यस्तु न कुर्याच्छ्राद्धमादरात् । मातुश्चैव वरारोहं वत्सरांते मृतेऽहनि ॥

“नाहं तस्य महादेवि पूजां गृह्णामि नो हरिः ” ॥ इति । आश्वलायनः—

“मन्वादिभ्यो युगादिस्तु सहस्रगुणतोऽधिकः । युगादेश्चायनद्वन्द्वं चायनात् विषुवद्वयम् ॥

१० “विषुवद्वयात् व्यतीपातौ व्यतीपातात्तु द्वादशीद्वादश्याश्च तथा दशौ दर्शात् पित्रोस्तु वार्षिकम्” ॥ इति ।
अन्यत्रापि—“ भोजको यस्तु वै श्राद्धं न करोति सगाधिप ।

“मातापितृभ्यां सततं वर्षे वर्षे मृतेऽहनि । स याति नरकं धोरं तामिस्रं नाम नामतः ” ॥ इति ।

काष्णार्जिनिः—

“ऊषरे तु यथा क्षिप्तं बीजं न प्रतिरोहति । तथा च तद्भवेत्तेषां यन्न दत्तं मृतेऽहनि ” ॥ इति ।

११ मृताहे यन्न दत्तमन्यत्र दत्तं निष्फलं भवेत् । अतो मृताहेऽवश्यं दातव्यमित्यभिप्रायः ।

तथा—“पंडिता ज्ञानिनो वाऽपि मूर्खा योषित एव वा । मृताहं समतिक्रम्य चंडालेष्वभिजायते ॥

“अध्वगश्चातुरश्चैव विहीनश्च धनैस्तथा । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत हेष्वा वा द्विजसत्तमः ॥

“द्रव्याभावे द्विजाभावे अन्नमात्रं तु पाचयेत् । पैतृकेन तु सूक्तेन होमं कुर्याद्विचक्षणैः ॥

“अत्यन्तद्रव्यशून्यश्चेत् शक्त्या दद्यात् गवां वृणम् । स्नाता च विधिवद्विप्रः कुर्याद्वा तिलतर्पणम् ॥

२० “अथवा रोदनं कुर्यात् अत्युच्चैर्विजने वने । दरिद्रोऽहं महापापी वदन्निति विचक्षणः ” ॥ इति ।

कौर्मेऽपि

“नैमित्तिकं तु कर्तव्यं ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । बांधवानां च मरणे नरकं स्यादतोऽन्यथा ” ॥ इति ।

श्राद्धीयतिथ्यादिरूपणम् । कर्मकालव्यापिनी तिथिरत्र ग्राह्या । यदाह वृद्धयाज्ञवल्क्यः—

“कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः । तथा कर्माणि कुर्वीत न्हासवृद्धिर्न कारणम्” ॥ इति ।

२५ गार्ग्योऽपि—“यो यस्य विहितः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः” ॥ इति । कर्मकालश्च संपिंडीकरणा-

त्पूर्वविन्येकोद्दिष्टे तु मध्याह्नः । तदुत्तरभाविनि मासिकादौ अपराह्णस्तथा च वृद्धगौतमः—

“मध्याह्नव्यापिनी या स्यात्सैकोद्दिष्टे तिथिर्भवेत् । अपराह्णव्यापिनी या स्यात्पार्वणे सा तिथिर्भवेत्” ॥

व्यासः—“एकमुद्दिश्य यच्छ्राद्धं दैवहीनं विधीयते । एकोद्दिष्टं तु तत्प्रोक्तं मध्याह्ने तत्प्रकीर्तितम्” ॥ इति ।

कालादर्शोऽपि—“एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने नवश्राद्धादिकं चरेत्” इति । मध्याह्नश्च सप्तमाष्टमनवम-

३० मुहूर्तात्मकः । ते च मुहूर्ताः गांधर्वकुतपरोहिणसंज्ञकाः । तथा चान्हः पंचदशमुहूर्ताः स्मर्यन्ते—

“रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च तथा सारगंदः स्मृतः । सावित्रो वैश्वदेवश्च गांधर्वः कुतपस्तथा ॥

“रौहिणस्तिलकश्चैव विभवो निर्ऋतिस्तथा । शंभरो विजयश्चैव बोधः पंचदश स्मृताः ” ॥ इति ।

एते पंचदश सूर्योदयादारभ्य क्रमाद्दिवा मुहूर्ताः क्रमशो निरूप्यन्ति । तथा च विष्णुधर्मोत्तरे—

“त्रिंशन्मुहूर्ताश्च तथा अहोरात्रेण कीर्तिताः । तत्र पंचदश प्रोक्ता राम रात्रौ दिवा तथा ॥

“ दिवसश्च यथा राम वृद्धिं समधिगच्छति । तदाश्रितमुहूर्तानां तथा वृद्धिः प्रकीर्तिता ॥
 “ दिनवृद्धिर्यथा राम दोषहानिस्तथा भवेत् । तदाश्रितमुहूर्तानां हानिर्ज्ञेया तदा तदा ” ॥ इति ।
 यथोक्तनानात्मकात्रिंशन्मुहूर्तोपेतस्य सावनाहोरात्रस्य यदहः पंचदशमुहूर्तात्मकं तस्यान्हो भागा
 मतभेदेन पंचधा विकल्प्यन्ते । द्वेधा त्रेधा चतुर्धा पंचधा पंचदशधा इति पंच मतभेदाः । तत्र
 द्वेधा विभागः स्कांदपुराणे दर्शितः—“ आवर्त्तनात्तु पूर्वाण्हो ह्यपराणहस्ततः परः ” इति । ५
 एतदेवाभिप्रेत्य मनुराह (३२७८)—

“ यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते । तथा श्राद्धस्य पूर्वाण्हादपराण्हो विशिष्यते ” ॥ इति ।
 त्रेधा विभागः शातातपेन दर्शितः—“ तस्मादहरहः पूर्वाणहे देवा अशनमभ्यवहरन्ति । मध्यंदिने
 मनुष्या अपराणहे पितरः ” इति । एतमेव विभागमभिप्रेत्य समाम्नायते ऋग्भिः—“ पूर्वाणहे
 दिवि देव ईयते । यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अन्हः । सामवेदे नास्तमये महीयते । वेदैरशून्यस्त्रिभिरोति १०
 सूर्यः ” इति । श्रुत्यन्तरेऽपि—“ पूर्वाण्हो वै देवानां मध्यंदिनो मनुष्याणामपराणहः पितृणाम् ”
 इति । चतुर्धा विभागमाह गोभिलः

“ पूर्वाणहः प्रहरः पूर्वं मध्यान्हः प्रहरस्ततः । अपराणहस्तृतीयः स्यात्सायान्हश्च ततः परम् ” ॥ इति ।
 पंचधाविभागं व्यास आह—“ मुहूर्तत्रितयं प्रातस्तावानेव तु संगवः ।

“ मध्यान्हस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराण्होऽपि तादृशः । सायान्हस्त्रिमुहूर्तस्तु सर्वकर्मबहिष्कृतः ” ॥ इति । १५

बुद्धपराशरः—

“ लेखाप्रभृतिसूर्यस्य मुहूर्तास्त्रय एव तु । प्रातस्तु संस्मृतः कालो भागश्चान्हः स पंचमः ॥

“ संगवस्त्रिमुहूर्तोऽथ मध्यान्हस्तत्समः स्मृतः । ततस्त्रयो मुहूर्ताश्च अपराण्होऽभिधीयते ॥

“ पंचमोऽथ दिनांशो यः सायान्ह इति स स्मृतः ” ॥ इति ।

साधिष्ठातृदेवताः पंचभागाः समाम्नायन्ते च—

२०

“ देवस्य सवितुः प्रातः मित्रस्य संगवः बृहस्पतेर्मध्यंदिनम् । भगस्यापराणहः वरुणस्य सायम् ” ॥ इति ।

पंचदशधा विभागः शंखेन दर्शितः—

“ रौद्रश्चैत्रस्तथा मैत्रस्तथा सालकटः स्मृतः । सावित्रश्च जयंतश्च गांधर्वः कुतपस्तथा ॥

“ रौहिणश्च विरिंचश्च विजयो नैर्ऋतस्तथा । महेन्द्रो वरुणश्चैव बोधः पंचदश स्मृतः ” ॥ इति ।

अत्र कालनिर्णयकारः—“ तत्र पंचधा विभागपक्षस्य बहुश्रुतिसमृत्तिसंहर्षत्वात्प्रायेणैतमेव २५

पक्षमाश्रित्य विधिनिषेधशास्त्राणि प्रवर्त्तते । त्रेधा विभागस्तु सोमयागे सवनत्रये उपयुज्यते । यथोक्तेषु

पंचसुकालेषु यानि विहितानि कर्माणि तानि दैवपित्र्यरूपेण राशिद्वयं कृत्वा तयोगौणकालाभ्यनुज्ञया

द्वेधा विभागो दर्शितः । चतुर्धा विभागस्तु प्रकरणबलाद्गोभिलस्मृत्युक्तकर्मविशेषेषु द्रष्टव्यः ।

पंचदशधा विभागो मुहूर्तकर्मविशेषोपजीवनेन विधिनिषेधप्रवृत्तेः ज्योतिःशास्त्रे द्रष्टव्यः ” इति ।

कालादर्शे तु—

३०

“ पंचधा पंचदशधा त्रेधा द्वेधा च वासरम् । विभक्तं मुनयः प्राहुस्तत्राद्यौ संमतौ मम ” ॥ इति ।

तत्र तेषु पक्षेषु आद्यौ पंचधा पंचदशधा पक्षौ मम संमतौ इत्यर्थः । यस्तु नवधा विभाग आत्रेयो

प्रदर्शितः

“ प्रातरार्चः संगवश्च रुग्णो मध्यान्हसंतपौ । अपराणहः खनिः सायं नवधा भिद्यते त्वहः ” ॥ इति

तत्रार्चरुग्णसंतापखनीनां स्मृतिषु विनियोगादर्शान्नवधा विभाग उपेक्ष्यः । एवं च सति प्रकृतेषु ३५

पंचस्वन्हो भागेषु तृतीयो मध्यान्हो भागः एकोद्दिष्टे ग्राह्यः । तत्रैकोद्दिष्टस्योपक्रमे कुतपस्य पूर्वोत्तरभागाविच्छया विकल्पितौ । तदाह व्यासः—

“कुतपप्रथमे भागे एकोद्दिष्टमुपक्रमेत् । आवर्त्तनसमीपे वा तत्रैव नियतात्मवान्” ॥ इति ।

समाप्तिकालमाह श्लोकगौतमः—

५ “आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादा रौहिणं बुधः । विधिशो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लंघयेत् ॥

“रौहिणं लंघयेद्यस्तु ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां नोपतिष्ठते ” ॥ इति ।

यद्यपि पार्वणश्राद्धस्यापि कुतपे प्रारंभः समानस्तथापि समापनं तस्य कालांतर एव ।

तदुक्तं मत्स्यपुराणे—

“अन्हो मुहूर्ता विख्याता दश पंच च सर्वदा । तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः ॥

१० “अष्टमे भास्करो यस्मान्मन्दीभवति सर्वदा । तस्मादनंतफलदस्तत्रारंभो विशिष्यते ॥

“ऊर्ध्वं मुहूर्त्तकुतपाद्यन्मुहूर्त्तचतुष्टयम् । मुहूर्त्तपंचकं ह्येतत् स्वधाहवनमिष्यते” ॥ इति । एवं च

रौहिणसमापनप्रतिपादकं यद्वचनमस्ति तत्सर्वमेकोद्दिष्टविषयं वेदितव्यम् । तदेवमेकोद्दिष्टश्राद्धे

मध्यान्हस्य कर्मकालत्वात् “मध्यान्हव्यापिनी या स्यात्सैकोद्दिष्टे तिथिर्भवेत् ” इति स्मरणात्

मुहूर्त्तव्यापिनी तिथिर्ग्रहीतव्येति स्थितम् । अत्र निर्णेतव्यो विषयः षोढा भिद्यते । पूर्वबुधरेव

१५ मध्यान्हव्यापित्वं अपरेबुधरेव तद्व्यापित्वं उभयत्र तद्व्यापित्वं उभयत्र तद्व्यापित्वं उभयत्र साम्येन

तदेकदेशव्यापित्वं वैषम्येण तदेकदेशव्यापित्वं चेति । तत्र पूर्वबुधरेव वा परेबुधरेव वा

मध्यान्हव्याप्तिरित्येतयोः पक्षयोर्मध्यान्हव्यापित्वस्यैव निर्णायकत्वान्न कोऽपि संदेहः

“मध्यान्हव्यापिनी या स्यात्तिथिः पूर्वा परापि वा । तत्र कर्माणि कुर्वीत ह्यसवृद्धी न कारणम् ” ॥ इति

स्मरणात् । उभयत्र तद्व्यापित्वतद्व्यापित्वरूपयोः पक्षयोः पूर्वबुधरेवानुष्ठानम् ।

२० तथा च सति “अपराणहस्तथा ज्ञेयः पित्र्येषु तु शुभावहः ।

“दिनांते पंचनाड्यस्तु पुण्याः प्रोक्ता मनीषिभिः । उदये च तथा पित्र्ये दैवे चैव तु कर्मणि ॥

“दैवकार्ये तिथिर्ज्ञेया यस्यामभ्युदितो रविः । पितृकार्ये तिथिर्ज्ञेया यस्यामस्तमितो रविः ” ॥

इत्यादीन्यपराणहसायान्हास्तमयव्यापिविषयाणि पित्र्यसामान्यवचनान्यनुगृहीतानि भवन्ति । उभ-

यत्र सामान्येनैकदेशव्याप्तौ खर्वादिवाक्यं द्रष्टव्यम् । तच्च पार्वणप्रस्तावे योजयिष्यते । वैषम्ये-

२५ णैकदेशव्याप्तौ तु यदा पूर्वबुधर्महती तदा महत्त्वानुग्रहात्सामान्यानुग्रहाच्च पूर्वबुधेवानुष्ठानम् ।

यदा तु परेबुधरेव महती तदा सामान्यशास्त्रमुपेक्ष्यापि महत्वमेवादरणीयम् । यदाह मरीचिः—

“अपराणहव्यापिनी चेदाब्दिकस्य यदा तिथिः । महतीं तत्र तद्विद्वां प्रशंसति महर्षयः” ॥ इति ।

अनेनैव न्यायेनात्रापि परेबुधेवानुष्ठानं द्रष्टव्यमिति कालनिर्णयादावुक्तोऽयमेकोद्दिष्टनिर्णयः ।

एतच्च “सर्पिंडीकरणात्पूर्वं दैवहीनं विधीयते” इति सर्पिंडीकरणात्पूर्वं यदेकोद्दिष्टं तत्रैव माध्यान्ह-

३० व्यापिनी तिथिः । न तु “अपुत्रस्य पितृव्यस्य भ्रातृश्रैवाग्रजन्मनः ” इत्यादिना सर्पिंडी-

करणात्परमपि विहिते एकोद्दिष्टश्राद्धे पितृणामपराणहे स्यादित्यादिना सर्पिंडीकरणेन पितृत्वं

प्राप्तस्य सर्वस्याप्यविशेषेणापराणहविधानादित्याहुः । अत्र कश्चित्संग्रहकारः—

“ग्राह्या वर्तनकालिकीद्विदिवसे यथेवमत्राधिका शस्ता तत्र समा क्षये यदि तदा पूर्वा तु वृद्धौ परा ।

“वृद्धिहासवियुक्समापि च परा मध्यान्हयोः सा न चेत्पूर्वैवेति तिथिः सर्पिंडनकृते प्राङ्मासिके

३५ नित्यशः ” ॥ इति ।

पार्वणश्राद्धकालनिर्णयः । अथ पार्वणश्राद्धकालस्य निर्णयः । तस्यापराणहः कर्मकालः । तथा च शातातपः—“अपराणहे पितृणां तु तत्प्रदानं विशिष्यते” इति ।

मनुरपि—(३१२७८) “तथा श्राद्धस्य पूर्वाण्हादपराणहो विशिष्यते” इति । **शंखोऽपि—**“पूर्वाणहे दैविकं कृत्यमपराणहे पितृक्रिया । ग्रहणे निशि वा कार्या न रात्रौ पैतृकं पुनः”॥ इति । **हारितोऽपि—**

“अपराणहः पितृणां तु याऽपराणहानुयायिनी । सा ग्राह्या पितृकार्ये तु न पूर्वाणहानुयायिनी”॥ इति ।

बृहन्मनुरपि—

“यस्यामस्तं रविर्याति पितरस्तामुपासते । तिथिस्तेभ्यो यतो दत्तो ह्यपराणहः स्वयंभुवा”॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—“अपराणहे तु पैतृकम्” इति । **श्रुतिरपि—**“अपराणहः पितृणाम्” इति । **कालादर्शे—**

“चोदनादपराणहस्य गजच्छायोपदेशनात्” इति श्रुत्या स्मृत्या चापराणहस्य पार्वण- १०
श्राद्धांगत्वेन विधानात् तथा स्मृत्या गजच्छायायाः पार्वणांगत्वेन विधानात् सा चापराणहे
भवतीति अपराणहादर इत्यर्थः । तदुक्तं **भरद्वाजेन—**

“वनस्पतिगते सोमे या छाया पूर्वतोमुखी । गजछाया हि सा प्रोक्ता पितृणां दत्तमक्षयम्”॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

“द्विगुणा यामनश्छाया दर्शे स्यादपराणहिकी । गजच्छाया हि सा प्रोक्ता पितृणां वृत्तिकारिणी”॥ इति । १५
देवलः—

“पूर्वाणहे दैविकं कर्म अपराणहे तु पैतृकम् । एकोद्दिष्टं तु मध्यान्हे प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्”॥ इति ।

ननु । सायान्हव्यापिनः कर्मकालत्वं क्वचित्स्मर्यते—

“दिनति पंचनाड्यस्तु पुण्याः प्रोक्ता मनीषिभिः । उदये च तथा पित्र्ये दैवे चैव हि कर्माणि”॥ इति ।

मैवम् । यमेन प्रतिषिद्धत्वात्

२०

“सायाह्निस्त्रिमुहूर्तः स्यात् श्राद्धं तत्र न कारयेत् । राक्षसी तामसी वेला गर्हिता सर्वकर्मसु”॥ इति ।

तथाहि पंचनाडीवचनं निर्विषयं स्यादिति केनापि निमित्तेनापराणहासंभवे गौणकालत्वाभ्यनुज्ञा-
परत्वात् । अत एव **व्यासः—**“स्वकालातिक्रमे कुर्याद्रात्रेः पूर्वं तथा विधिः” इति ।

व्याघ्रपादोऽपि—

“विधिज्ञः श्रद्धयोपेतः सम्यक्पात्रे नियोजकः । रात्रेरन्यत्र कुर्वाणः श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम्”॥ इति । २५

ननु सायान्हेऽपि यथाकथंचित्प्रत्यूहः । तदा किं श्राद्धस्य लोप एव किं वा रात्रावपि कर्तुं
शक्यते । तत्र लोप एवेति तावत्प्राप्तः । कुतः ? मुख्यकालगौणकालत्वयोरुभयोरपि निषेधात् ।
मुख्यकालत्वं प्रतिषेधति **मनुः** (३१२८०)—

“रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा । संध्ययोरुभयाश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते”॥ इति ।

न चैवं सति ग्रहणश्राद्धमपि तत्र निषिध्यते इति शंकनीयम् । **शातातपेन** विशेषितत्वात् ; ३०

“रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत रात्रेरन्यत्र दर्शनात् । सूर्योदयमुहूर्ते च संध्ययोरुभयोस्तथा”॥ इति ।

गौणकालत्वमपि व्यासव्याघ्रपादाभ्यां पर्युदस्तम् । रात्रेः पूर्वं रात्रेरन्यत्रेति ताभ्यामुक्तत्वात्

तस्मादन्हि श्राद्धासंभवे लोप एवेति प्राप्ते ब्रूमः । न तावद्रात्रौ श्राद्धस्य सर्वात्मना निषेधो वक्तुं शक्यः । आपस्तम्बेन रात्रौ श्राद्धसमाप्त्यभ्युपगमात् । न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीतारब्धे चाभोजनमासमापनात् । इति । ननु संध्यासमीपे प्रारब्धस्य रात्रौ समाप्तिः प्रसक्ता । तादृशस्तु प्रारंभस्कंदे न निषिद्धः ।

५ “उपसंध्यं न कुर्वीत पितृपूजां कथंचन । स काल आसुरः प्रोक्तः श्राद्धं तत्र विसर्जयेत्” ॥ इति । मैवम् । संध्यासामीप्यस्य मुख्यकालत्वस्य निषेधात् । गौणकालत्वं तु पूर्वमभिहितम् । तत्र प्रारब्धस्य रात्रौ समाप्तिः संभाव्यते । नन्वेवमपि रात्रौ समाप्तिरेवाभ्यनुज्ञायते न त्वारंभ इति चेन्मैवम् । आरंभस्यापि समाप्त्या उपलक्षणीयत्वादाब्दिकश्राद्धपरित्यागे प्रत्यवायबाहुल्यस्मरणात् ।
तथा जाबालिः—

१० “रात्रावपि च शंसन्ति श्राद्धं केचन सूरयः । पितॄणां दिनभागित्वात्त्यागे दोष इति स्मृतः” ॥ इति । देवलश्च—

“पितृकर्माणि सर्वाणि प्रेतकर्माणि यानि च । रात्रावपि च कर्तव्यान्यत्र भुक्त्यादिनाचरेत्” ॥ इति ।

मनुस्तु—

“पितॄणां तु दिवाभावे यदि रात्रावपीरितम् । पैतृकं कर्म मुनिभिर्ग्राह्यमेतच्च संकटे ॥

१५ “श्राद्धकर्म निशाकाले कर्तव्यं मनुजैर्भुवि । मध्यपिंडाशनं पत्न्या स्वभुक्तिं च न कारयेत् ॥

“यथाकथंचित्कर्तव्यं नित्यं कर्म विजानता । न प्रातस्य विलोपोऽस्ति पैतृकस्य विशेषतः” ॥ इति ।

अन्यत्रापि—

“दिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि वै । यामिन्याः प्रथमे यामे तानि सर्वाणि कारयेत्” ॥ इति ।

“दिवा श्राद्धक्रियाया असंभवे रात्रावारंभसमापने कार्ये” इति कालनिर्णयकृन्मतम् । अन्ये तु

२० रात्रिश्राद्धवचनानि सर्वाणि दिवारब्धविषयाणि । आपस्तम्बेन रात्रिश्राद्धं प्रतिषिध्य तत्समापनमात्रस्य विधानादित्याहुः । अपरे तु—“संध्यारात्र्योर्न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः” इत्यादिभिः रात्रिश्राद्धमात्रस्य निषेधात् दिवारब्धस्यापि श्राद्धस्य रात्रौ समापनं नास्ति । अपरेद्युर्दिवैव श्राद्धशेषकरणमिति वदन्ति । तथैव आपस्तम्बवचनं हरदत्तेनान्यथा व्याख्यातम् । न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीत श्राद्धकर्मरण्यारब्धे करणविलम्बेन मध्ये यथादित्योऽस्तं विद्यात्तदा श्राद्धशेषं न कुर्वीत २५ अपरेद्युर्दिवैव कुर्वीतेति । आरब्धे चाभोजनमासमासमाप्तेरन्यत्र राहृदर्शनादिति । पूर्वद्युर्निवेदनप्रभृति आपिंडनिधानान्मध्ये कर्तुर्भोजनप्रतिषेधः । अन्यत्र राहृदर्शनादिति । न च नक्तमित्यस्यापवादः । राहृदर्शने नक्तमपि कुर्वीतेति । केचित्तु—

“श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अविज्ञाते मृतेऽहनि । एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विधुक्षये” ॥ इति मरीचिस्मरणाद्दिवा श्राद्धारम्भासंभवे तद्धिने श्राद्धप्रतिनिधीनामन्यतमं कृत्वा तन्मासि

३० कृष्णैकादश्यामवास्यायां वा श्राद्धं कर्तव्यमित्याहुः । यथोचितमत्र ग्राह्यम् ।

ननु “रात्रेरन्यत्र कुर्वाणः श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम्” इति स्मरणादपराणह्वन्मुख्यत्वेन वा सायान्हवद्गौणत्वेन वा प्रातःसंगवावपि कर्मकालौ प्रसज्येयाताम् । नायं दोषः । शिवराघवसंवादे प्रातःकालस्य निषिद्धत्वात्

“प्रातःकाले तु न श्राद्धं प्रकुर्वीत द्विजोत्तमः । नैमित्तिकेषु श्राद्धेषु न कालानेयमः स्मृतः” ॥ इति ।

यद्यपि संगवो न साक्षान्निषिद्धः तथापि कुतपमुहूर्ते मुख्योपक्रमस्य गांधर्वमुहूर्ते गौणोपक्रम-
स्याभिधाने सति अर्थान्निषेधः परिशिष्यते । तथा शिवराघवसंवाद एव

“ग्रहादिव्यतिरिक्तस्य प्रक्रमे कुतपः स्मृतः । कुतपादधवाऽप्यर्वाग्भासनं कुतपे भवेत्” ॥ इति ।
ग्रहो ग्रहणं आदिशब्देन संक्रान्त्यादिनिमित्तमुच्यते । तस्य च निमित्ताधीनत्वान्न कुतपे^१ नियंतुं
शक्यते । इतरस्य तु सांवत्सरादिकादेरस्ति कुतपनियमः । स च मुख्य उपक्रमकालः कदाचि- ५
त्कार्यवशाच्छ्राद्धस्य सहसा करणीयत्वे सति कुतपादर्वाचीनो गांधर्वोऽप्युपक्रमकालतयाभ्य-
नुज्ञायते । कुतपस्य मुख्यत्वमनेकवचनविहितत्वादवगन्तव्यम् ।

तत्र कुतपस्वरूपं भविष्यपुराणेऽभिहितम्

“प्रविश्य भानुः स्वां छायां शङ्कुवयत्र तिष्ठति । स कालः कुतपो नाम मंदीभूतस्य संज्ञया” ॥ इति ।

नारदः—

१०

“संत्यज्य सप्तमं भागमष्टमं क्रमते यदा । स कालः कुतपो ज्ञेयो मंदीभूतस्य संज्ञया” ॥ इति ।

आपस्तंबः—

“सप्तमात्परतो यस्तु नवमात्पूर्वतः स्थितः । उभयोरपि मध्यस्थः कुतपः समुदाहृतः” ॥ इति ।

स च कुतपो मुख्यत्वाद्वायुपुराणे प्रशस्यते—

“दिवसस्याष्टमे भागे मंदीभवति भास्करः । स कालः कुतपो नाम पितृणां दत्तमक्षयम्” ॥ इति । १५

कुतपात्पूर्वोक्तयोः गान्धर्वरौहिणयोः गौणोपक्रमकालत्वं सूचयितुं छत्रिन्यायेन मुहूर्तत्रयं
कुतपशब्देन व्याजहार नारदः—

“मध्याह्ने त्रिमुहूर्तं तु यदा चलति भास्करः । स कालः कुतपो नाम पितृणां दत्तमक्षयम्” ॥ इति ।

कुतपे प्रक्रांतस्य सायान्हादर्वाचीनः सर्वोऽपि मुख्यानुष्ठानकालः । तदुक्तं मत्स्यपुराणे—

“अन्हो मुहूर्ता विख्याता दश पंच च सर्वदा । तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः” ॥ २०

“अष्टमे भास्करो यस्मान्मंदीभवति सर्वदा । तस्मादनंतफलदस्तत्रारंभो विशिष्यते ॥

“ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम् । मुहूर्तपंचकं ह्येतत्स्वधाहवनमिष्यते” ॥ इति ।

ननु अपराणहस्यांतिमो भागो निषिद्धः । तथा च यमः—

“चतुर्थे प्रहरे प्राप्ते यच्छ्राद्धं कुरुते नरः । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं दाता च नरकं व्रजेत्” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरेऽपि—

२५

“चतुर्थे प्रहरे प्राप्ते यच्छ्राद्धं कुरुते द्विजः । तदन्नं राक्षसो भुंक्ते निराशाः पितरो गताः” ॥ इति ।

अपराणहस्यांतिमेन पादन्धूनमुहूर्तेन सह सायान्हश्चतुर्थप्रहरो भवति । सत्यम् । तत्र सायान्ह-
भागकटाक्षेणायं निषेधः । न त्वपराणहभागकटाक्षेण । तामेतां विवक्षां विशदीकर्तुं यमो वचनांतरेण
सायान्हं निराचकार—“सायान्हस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत्” ॥ इति ।

ननु अपराणहस्य मुख्यकालत्वं न प्रतिनियतम् । शुक्लपक्षे व्यभिचारात् । तथा च मार्कंडेयः— ३०

“शुक्लपक्षे तु पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । कृष्णपक्षेऽपराह्णे तु रौहिणं तु न लंघयेत्” ॥ इति ।

नैष दोषः । अत्र शुक्लकृष्णपक्षशब्दयोर्देवपित्र्यपरत्वाद्देवानुद्दिश्य क्रियमाणं श्राद्धं देवं तज्जु फल-
कामिन उत्साहेतुतया चित्तप्रसादं जनयतीति शुक्लशब्देनाभिधीयते । पित्र्यं तु पितृमरणादि-
स्मारकतया चित्तकालुष्यं जनयतीति कृष्णशब्देनाभिधीयते । शुक्लस्य देवस्य कर्मणः पक्षः

शुक्लपक्षः । यदा दैवं श्राद्धं करिष्यामीति बुद्धिस्तदेत्यर्थः । एवमितरत्रापि योजनीयम् । एवं च सत्यपराणहेन पार्वणं श्राद्धं व्यभिचरति । 'रौहिणं तु न लंघयेत्' इत्येकोद्दिष्टविषयम् । यद्यापात-
प्रतीत एवार्थो वचनस्यास्य परिगृह्येत तदा पूर्वोदाहृतं वचनजातं निखिलमपि व्याकुलीभवेदिति **कालनिर्णये** व्याख्यातम् । अन्येः त्वाहुः **मार्कण्डेयवचनमिदं** युगादिश्राद्धविषयम् ।

५ तदाह बृहस्पतिः—

“द्वौ शुक्लौ द्वौ तथा कृष्णौ युगादीन्मुनयो विदुः । शुक्ले पौर्वाण्हिकी ग्राह्या कृष्णे चैवापराण्हिकी”॥इति । तस्माद्युगादिश्राद्धं पूर्वपक्षे विहितम् । पूर्वाणहे संगवात्परं पंचदशनाड्यभ्यंतरे कुर्यात् । अपरपक्षे विहितमपराणहे आवर्तनात् परं सार्धमुहूर्तभ्यंतरे कुर्याद्रौहिणं तु न लंघयेदित्युक्तत्वाद्भेदेनैव न्यायेन पूर्वपक्षविहितश्राद्धस्य सर्वस्यापि पूर्वाणहे सार्धमुहूर्तः काल इति । तदेवं पार्वणश्राद्धस्य
१० ग्रहणादिश्राद्धवर्जितस्य अपराणहः कर्मकालः कुतपः प्रारंभकाल इति स्थितम् ।

आब्दिकादौ किंपूर्वविद्धा तिथिग्राह्या उतोत्तरविद्धेति विवक्षायां देवस्वामी ब्रूते—
“यस्मिन्काले याद्विहितं कर्मोपक्रमोपसंहारयुक्तं तस्मिन्काले तस्यां तिथौ यस्मिन्नहनि संभावयितुं शक्यते तदुत्तरं पूर्वं वा ग्रहीतव्यम्” इति ।

एवं च कुतपापराणहोभयव्यापिनी तिथिग्राह्येत्युक्तं भवति । यदा तदुभयव्यापिनी न
१५ संभवति तदा केवलापराणहव्यापिन्यपि ग्रहीतव्या । “पित्रर्थं चापराण्हिकी । अपराणहः पितृणां तु याऽपराणहानुयायिनी” इत्यादि स्मरणात् । ननु केवलापराणहव्याप्तिवत्केवलकुतपव्यापिन्यपि स्मृत्यंतरे प्रतीयते

“मध्यान्हव्यापिनी या स्यात्तिथिः पूर्वाऽपरापि वा । तत्र कर्माणि कुर्वीत न्हासवृद्धी न कारणम्”॥इति ।
२० मैवम् । वचनांतरसंवादेनास्यैकोद्दिष्टविषयत्वेनोपपत्तेः । अपराणहव्याप्तिरपि एकोद्दिष्टन्यायेन षोढा भिद्यते । तत्र पूर्वेषुरेवापराणहव्याप्तौ यथोक्तवचनेन

“क्षयाहस्य तिथिर्विप्रा यदि खंडतिथिर्भवेत् । व्याप्तापराण्हिकायां तु श्राद्धं कार्यं विजानता”॥इति नारदवचनेन सा ग्राह्या । अपरेषुरेवापराणहव्याप्तौ यथोक्तवचनात्प्रारंभकालसंभवाच्च प्रशस्ततरः । उभयत्रापराणहव्यापित्वे **बोधायेन** आह—

“अपराणहद्वयव्यापिन्यतीतस्य च या तिथिः । क्षये पूर्वा तु कर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा”॥ इति ।
२५ अतीतस्य मृतस्य अत्र ग्राह्यतिथेः वृद्धिक्षयाभ्यां न निर्णयः । किंतु तदुत्तरतिथिवृद्धिक्षयाभ्यां कुतः अपराणहद्वयव्यापित्वाभिधानात्पूर्वेषुरा मध्यान्हावसानं पूर्वतिथिः प्रवृत्ता । ततोऽपराणहोप-
क्रममारभ्यापरेषुरपराणहावसानपर्यंतत्वे सति मृताहतिथेः अपराणहव्यापित्वं भवति । तच्च त्रिमुहूर्तवृद्ध्या संपद्यते । न तु क्षयेण । तथा सति ‘क्षये पूर्वा तु कर्तव्या’ इत्येतन्नोपपद्यते ।
उत्तरतिथिगतवृद्धिक्षयस्वीकारे त्विदं वचनमुपपद्यते । यदुत्तरतिथिः सायान्हं प्रविशति तथा
३० तिथिवृद्धिः । तत्रापरेषुरनुष्ठानं न्याय्यम् । कुतपमारभ्य त्वविशेषमुख्यकालव्यापित्वाद्यदा उत्तर-
तिथिरपराणहेऽपि अपक्षीयते कियती क्षियते तदा मृतातिथिः पूर्वविद्धा कर्तव्या । उत्तरविद्धायास्तस्या ज्योतिशास्त्रप्रक्रियया अपराणहव्यापित्वेऽपि पारिभाषिक्या स्मार्तप्रक्रियया तदव्यापित्वात् ।
तथा च स्मर्यते—

“तिथ्यादौ तु भवेद्यावद्ग्रासो वृद्धिः परेऽहनि । तावद्ग्रासश्च पूर्वेषुरदृष्टोऽपि स्वकर्मणि”॥ इति

तिथ्यादावित्यादिशब्देन नक्षत्रयोगौ गृह्येते^१ । तिथिनक्षत्रयोगेषु क्षीयमाणेषु क्षयो यावद् घटिका-परिमितो भवति तावद् घटिकापरिमितः क्षयः तेभ्यः पूर्वेषु तिथिनक्षत्रयोगेषु ज्योतिःशास्त्रेऽदृष्टोऽपि स्मार्तपरिभाषया ग्रहीतव्यः । एवं वृद्धिरपि द्रष्टव्या । तथा सति प्रकृते उत्तरतिथेरपराणहे यावान् क्षयः तावान्पूर्वद्युर्ग्राह्यतिथौ योजनीयः । तथा सत्युत्तरविद्धा मृततिथिः नापराणहव्यापिनी पूर्वविद्धा तु तद्व्यापिनीति सैव ग्रहीतव्या भवति । उत्तरतिथेः साम्ये तु देवस्वामिवचनादुत्तरविद्धैव^५ ग्राह्येति तिथिनिर्णयः ।

यदा दिनद्वयेऽप्यपराणहस्पर्शाभावः तदा पूर्वविद्धा ग्राह्या । तदाह मनुः—

“या ब्रह्मव्यापिनी चेत्स्यान्मृताहे तु यदा तिथिः । पूर्वे विद्धैव कर्तव्या त्रिमुहूर्ता भवेद्यदि” ॥ इति ।

सुमंतरापि—

“न ब्रह्मव्यापिनी चेत्स्यान्मृताहस्य च या तिथिः । पूर्वेऽस्यां निर्वपेत्पिंडानित्यांगिरसभाषितम्” ॥ इति । १०

ननु अपराणहस्पर्शाभाव उभयोः समानः । प्रारंभकाले तु कुतपेऽपरेद्युस्तिथिसद्भावो विशिष्यते । तत्र परविद्धैव कुतो न ग्राह्येति चेद्व्यापिनीयात् पूर्वविद्धैव ग्राह्या । परेद्युः कुतपव्याप्तिरेको गुणः पूर्वद्युस्तिथिमूलसंबन्धः त्रिमुहूर्तमस्तमयव्याप्तिश्चेति गुणद्वयम् ।

तिथिमूलसंबन्धस्य प्राशस्त्यं नारदीयपुराणे दर्शितम्—

“पित्र्ये मूलं तिथेः प्रोक्तं शास्त्रज्ञैः कालकोविदैः । तथैव देवकार्येषु तिथेरन्त्यं प्रशस्यते” ॥ इति । १५

सौरपुराणे—“मूलं हि पितृवृत्त्यर्थं तिथेरुक्तं मनीषिभिः” इति ।

अस्तमयव्याप्तेः प्राशस्त्यमाह मनुः

“यस्यामस्तं रविर्याति पितरस्तामुपासते । सा पितृभ्यो यतो दत्ता ह्यपराणहः स्वयंभुवा” ॥ इति ।

व्यासः—

“अन्धस्तमयवेलायां कलामात्राऽपि या तिथिः । सैव प्रत्याब्दिके श्राद्धे नेतरा पुत्रहानिदा” ॥ इति । २०

न चापराणहवेलायामविद्यमानतया कर्मकालव्याप्तिरहितायाः तिथेरनुपादेयत्वं शङ्कनीयम् । आद्यापायास्तद्व्याप्तेर्विद्यमानत्वात् । अत एव वसिष्ठः—“पित्र्येऽस्तमयवेलायां स्पृष्टा पूर्णा निगद्यते” इति । नारदीयपुराणेऽपि—

“पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता । पित्र्येऽस्तमयवेलायां स्पृष्टा पूर्वा निगद्यते” ॥ इति ।

सुमंतुः—

“उदिते दैवतं भानौ पित्र्यं चास्तमिते रवौ । द्विमुहूर्त्तस्त्रिरहो या सा तिथिर्हव्यकव्ययोः” ॥ इति ।

यथाक्रमं उदये द्विमुहूर्त्ता तिथिर्दैवकर्मणि ग्राह्या । सायं त्रिमुहूर्त्ता कव्ये ग्राह्येत्यर्थः । एवं च सति

“दर्शं च पूर्णमासं च पितुः संवत्सरं दिनम् । पूर्वविद्धामकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते” ॥ इति

नारदवचनं “यस्यामस्तं रविर्याति” इत्यादिपूर्वोक्तमन्वादिवचनजातं च अपराणहद्वयस्पर्शाभावे

सायं त्रिमुहूर्त्तव्यापितिथिग्रहणपरं द्रष्टव्यम् । त्रिमुहूर्त्तव्यापित्वाभावे तु गोभिलः—

“त्रिमुहूर्त्ता न चेद् ग्राह्या परैव कुतपे हि सा । कुर्वीत कुतपे श्राद्धं सायान्हव्यापिनी न च” ॥ इति ।

यदा तु दिनद्वयेऽप्यपराणहैकदेशव्यापिनी तदाऽपि वैषम्येण तद्व्याप्तौ महत्त्वेन निर्णेतव्यम् ।

तदाह मरीचिः—

“अपराणहव्यापिनी चेदाब्दिकस्य यदा तिथिः । महतीं तत्र तद्विद्धां प्रशंसन्ति महर्षयः” ॥ इति ।

साम्येनोभयत्र व्याप्तिश्च ऊर्ध्वतिथिगतैः वृद्धिक्षयसाम्यैस्त्रिधा भिद्यते । तत्र गोभिलः—

“स्वर्वादेर्वा तथा हिंसा द्विविधं तिथिलक्षणम् । स्वर्वादेर्वात्परा कार्या हिंसा स्यात्पूर्वकालिकी ” ॥ इति ।

“स्वर्वा वृद्धिक्षयरहिता । अपराणहद्वये समा देर्वा ।

वृद्धिपक्षे अपराणहस्य व्यापिका गृह्यतां तिथिः । क्षये पूर्वोत्तरा वृद्धौ व्याप्तिश्चेदपराह्वयोः ।

“न ग्राह्या तिथिगोवृद्धी क्षयावूर्ध्वतिथेस्तु तौ । साम्ये तूर्ध्वतिथिग्राह्या परविद्धैव वृद्धिवत् ” ॥

न द्वये समा हिंसा क्षयपक्षे अपराणहद्वये पक्षे समेतीह विवक्षतोऽर्थः । उक्तं च कालनिर्णयसंग्रहे—

“कुतपाद्यपराणहांतव्याप्तिराब्धिक उक्तमा । तदभावेऽपराणहस्य व्यापिका गृह्यतां तिथिः ॥

“क्षये पूर्वोत्तरा वृद्धौ व्याप्तिश्चेदपराणहयोः । न ग्राह्यातिथिगोवृद्धिक्षयावूर्ध्वतिथेस्तु तौ ॥

“साम्ये तूर्ध्वतिथिग्राह्या परविद्धैव वृद्धिवत् । न स्पृशत्यपराणहौ चेत्पूर्वा स्यात्कुतपोऽन्यथा ॥

१० “वैषम्येणैकदेशस्य व्याप्तौ ग्राह्या महत्त्वतः । साम्येन चेत्क्षये पूर्वा परा स्याद्वृद्धिसाम्ययोः ॥

“वृद्धिसाम्यक्षया ग्राह्या तिथिगा नोर्ध्वगा इह ” ॥ इति । षड्धर्मीये—

“सायंतन्यपरत्र चेन्मृततिथिः सैवाब्दिके मासिके । ग्राह्या सा व्यपराणहयोर्यदि तदा यत्राधिका सा मता ।

“तुल्या चेदुभयेऽपराणहसमये पूर्वा न चेत्सा द्वयोः । पूर्वैव त्रिमुहूर्तगास्तसमये नो चेत्परैवोदिते” ॥ इति ।

कालादर्शोऽपि—

१५ “प्रत्याब्दिकेऽप्येवमेव तिथिग्राह्याऽपराणहिकी । उभयत्र तथात्वे तु महत्त्वेन विनिर्णयः ॥

“समत्वे पूर्वविद्धैव ह्ययथात्वेऽपि सा यदि । त्रिमुहूर्ता भवेत्सायं सर्वेष्वेवं विनिर्णयः ” ॥ इति ।

इत्याब्दिकतिथिनिर्णयः ।

प्रथमाब्दिकादीनां विभक्तैः पृथगनुष्ठानम् । प्रथमाब्दिकादीनि श्राद्धानि विभक्तैः

पुत्रैः सर्वैरपि पृथगेव कार्याणि

२० “नवश्राद्धं सपिंडत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि ” ॥

इत्येवकारेण ऊनाब्दिकपर्यंतस्यैव अनेककर्तृकत्वव्यावृत्तिप्रतीतिः । तत्रापि

“मासिकं सोदकुम्भं च सपिण्डीकरणं तथा । पृथग्विभक्ताः कुर्वीरन् मिलित्वा वाऽप्यशक्तितः ” ॥ इति

गौणत्वोक्तेः ।

“एकपाके निवसतां पितृदेवद्विगार्चनम् । एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद् गृहे गृहे ॥

२५ “विभक्ता भ्रातरः सर्वे स्वस्वार्जितधनाशनैः । दर्शाब्दिकादिकं पित्रोः श्राद्धं कुर्युः पृथक्पृथक्” ॥

इत्यादि स्मरणाच्च । अत एव पैठीनसिः—

“विभक्तैस्तु पृथक्कार्यं प्रतिसांवत्सरादिकम् । एकेनैवाविभक्तेषु कृते सर्वैस्तु तत्कृतम् ” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—

“भिन्नस्थानगतैः पुत्रैरविभक्तधनैरपि । प्रत्याब्दिकं पृथक्कार्यमन्यश्राद्धानि संभवे ” ॥ इति ।

३० अन्नेनैवाब्दिकादिविधिः । एतच्च सांवत्सरिकश्राद्धमन्नेनैव कार्यम् । तदाह लोकाक्षिः—

“पुष्पवत्स्वपि दारेषु विदेशस्थोऽप्यनग्निकः । अन्नेनैवाब्दिकं कुर्याद्धेम्ना वाऽऽमेन न क्वचित्” ॥ इति ।

मरीचिरपि—

“अनग्निश्च प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत न तत्कुर्यान्मृतेऽहनि” ॥ इति ।

केचिन्मातापित्रोः क्षयादृत इति चतुर्थपादं पठित्वा पितृग्रहणादन्येषामाब्दिकमामेन कुर्यादिति

३५ व्याचक्षते ।

हारीतोऽपि—

“श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते ” ॥ इति ।

माधवीये वचनमिदं व्याख्यातम्—मासं मासिकं संवत्सरं सांवत्सरिकम् । एतद्व्यतिरिक्तं यद्-
मावास्यादिनियतमस्ति तत्र भार्यारजोदर्शादिना श्राद्धविघ्ने सति आमश्राद्धं प्रकीर्तितमिति ।

अन्यैस्तु व्याख्याततम्—नियतं अमावास्यादिश्राद्धं मासिकं सांवत्सरिकं च वर्जयित्वा अन्यत्र ५
श्राद्धे आपदादिना विघ्ने^१ सति तत्रामश्राद्धं कर्तव्यमिति । तथा च **कालादृशे**—

“रजस्वलांगनोऽनग्निः विदेशस्थोऽपि वाब्दिके । दर्शादावपि नामेन त्वन्नेन श्राद्धमाचरेत्” ॥ इति ।

रजस्वला अंगना यस्य स तथाविधः । अनग्निरौपासनाग्निरहितः । विदेशस्थः प्रवासी । एवंविधोऽपि
वा द्विजः मृताहे दर्शादावपि नामेन श्राद्धमाचरेत् । किंतु अन्नेनैव कुर्यादित्यर्थः । **संग्रहे**—

“विदेशगो वाऽपि गताग्निको वा रजस्वलयायामपि धर्मपत्न्याम् ।

१०

“श्राद्धं मृताहे विदधीत पक्वेर्न चामदाने न च पंचमेऽहनि ” ॥ इति ॥

मृताहव्यतिरिक्तश्राद्धस्य विघ्ने त्वामश्राद्धमाह **उशानाः**—

“अपत्नीकः प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला । सिद्धाग्नेन न कुर्यात्स आमं तत्र विधीयते” ॥ इति ।

गालवः—

“तीर्थेऽनग्नावापदि च देशभ्रंशे रजस्यपि । हेमश्राद्धं द्विजैः कार्यं शूद्रैः कार्यं सदैव हि” ॥ इति । १५

कात्यायनोऽपि—

“आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पुत्रजन्मानि । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत यस्य भार्या रजस्वला ” ॥ इति ।

व्याघ्रपादः—

“आर्तवे^२ देशकालानां विप्लवे समुपस्थिते । आमश्राद्धं द्विजैः कार्यं शूद्रः कुर्यात्सदैव हि” ॥ इति ।

न चैतादृशवचनैर्मासिकाब्दिकयोरप्यामश्राद्धत्वं प्राप्नोतीति वाच्यम् । “माससंवत्सरादृते न तत्कुर्यात्- २०
न्युतेऽहनि” इति विशेषवचनैरामश्राद्धस्य तद्व्यतिरिक्तविषयतावगमात् । यत्तु स्मृत्यन्तरे भार्यायां
रजस्वलायां मृतेऽहनि श्राद्धनिषेधवचनम्

“मृतेऽहनि तु संप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । श्राद्धं तदा न कर्तव्यं कर्तव्यं पंचमेऽहनि” ॥ इति ।

यदपि **मरीचिवचनम्**—

“आब्दिके समनुप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । पंचमेऽहनि तच्छ्राद्धं न तत्कुर्यान्मृतेऽहनि ” ॥ इति २५

एतादृशस्य वचनस्यायं विषयः । अपुत्रायाः पत्न्या एव पत्युर्मृताहश्राद्धेऽधिकाराद्यदा सा रजस्वला
स्यात्तदा मृतेऽहनि श्राद्धं न कर्तव्यं किंतु पंचमेऽहनि कर्तव्यमिति । तथा च **श्लोकगौतमः**—

“अपुत्रा तु यदा भार्या संप्राप्ते भर्तुराब्दिके । रजस्वला भवेत्सा तु तत्कुर्यात्पंचमेऽहनि ” ॥ इति ।

प्रभासखंडेऽपि—

“सा शुद्धा स्याच्चतुर्थेऽन्हि स्नानान्नारी रजस्वला । दैवे कर्मणि पित्र्ये च पंचमेऽहनि शुद्ध्यति” ॥ इति ३०

माधवीयादौ विशेषोऽभिहितः । **अन्ये तु**—

“श्राद्धीयेऽहनि संप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । श्राद्धं तत्र न कर्तव्यं कर्तव्यं पंचमेऽहनि ” ॥ इति ।

श्लोकगौतमवचनमन्यथा पठित्वा श्राद्धादौ कर्मणि भार्यायाः सहैवाधिकारश्रवणात्तस्यां रजोदर्शन-
दूषितायामधिकारे निवृत्ते मुख्यकालमतिक्रम्य पंचमेऽहनि श्राद्धं कर्तव्यमिति मन्यन्ते । तत्रैक-
भार्येण मृताहश्राद्धं रजोदर्शनरूपविघ्नोपरमकाल एव कर्तव्यम् । भार्यातिरयुक्तेन त्वधिकारान- ३५

पायान्मुख्य एव काले कर्तव्यमिति । यदत्र युक्तं तद्वाह्यमिति ।

“रजस्वलायां भार्यायां क्षयाहं यः परित्यजेत् । स वै नरकमाप्नोति यावदा भूतसंभ्रवम् ॥

“पित्रोः क्षयदिने प्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । अग्निं संधाय विधिवच्छ्राद्धं कृत्वा विसर्जयेत्” ॥

इत्यादि स्मरणादेकपत्नीकोऽपि भार्यायां रजस्वलायां पित्रोर्मृताह एवाग्नेन सांवत्सरिकं कुर्यादिति युक्तमित्याहुः । आपदादिना विघ्ने सति विशेषमाह मरीचिः—

५ “श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने चाविज्ञाते मृतेऽहनि । कुर्यादग्नेन कृष्णायामेकादश्यां विधुक्षये ” ॥ इति । विधुक्षये अमावास्यायाम् । कृष्णाजिनिरपि—

“आपन्नोऽप्याब्दिकं नैव कुर्यादामेन कर्हिचित् । अग्नेन तदमायां तु कृष्णे वा हरिवासरे” ॥ इति ।

कालादर्शोऽपि—

“आपद्यपि च नामेन तन्मासि हरिवासरे । कृष्ण इंदुक्षये वापि कुर्यादग्नेन वार्षिकम् ” ॥ इति ।

१० आशौचान्तरितश्राद्धे विशेषः । आशौचेन विघ्ने सति विशेषमाह देवलः—

“देये प्रत्याब्दिके श्राद्धे त्वन्तरा मृतसूतके । आशौचानंतरं कुर्यात्तन्मासींदुक्षयेऽपि वा” ॥ इति ।

आशौचानंतरकरणासंभवे दर्शे वा कुर्यादित्यर्थः । अत एव ऋष्यशृंगः—

“शुचीभूतेन दातव्यं या तिथिः प्रतिपद्यते । सा तिथिस्तस्य कर्तव्या न त्वन्या वै कदाचन” ॥ इति ।

शुचिना तावच्छ्राद्धं कर्तव्यम् । तत्र मुख्यकाले शुद्धचभावे शुद्धचनन्तरं या तिथिः प्रतिपद्यते

१५ लभ्यते सा ग्राह्या । आशौचदुष्टा तु न ग्राह्येत्यर्थः । एतदेवाभिप्रेत्य व्यासोऽपि—

“श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने त्वन्तरा मृतसूतके । अमायां वा प्रकुर्वीत शुद्धावैके मनीषिणः ” ॥ इति ।

अमायामिति कृष्णैकादश्या अप्युपलक्षणम् । तथा च ‘श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने’ इति पूर्वोक्त-मरीचिवचनं द्रष्टव्यम् । ऋष्यशृंगः—

“आब्दिके चैव संप्राप्ते आशौचं जायते यदि । आशौचे तु व्यतिक्रांते तेभ्यः श्राद्धं प्रदीयताम्” ॥ इति ।

२० आब्दिके चैव संप्राप्ते इति विशेषणाद्दर्शादिश्राद्धस्य नित्यत्वेऽपि कालान्तरे विधानाभावेन लोप एव ।

यत्तु—

“वर्षश्राद्धे तु संप्राप्ते पित्रोराशौचसंभवे । तदानीमशुचिर्न स्यात्कुर्याच्छ्राद्धं मृतेऽहनि ” ॥ इति तच्छ्राद्धोपक्रमानंतरमागताशौचविषयम्

“निमंत्रितेषु विघ्नेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्माणि । देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते कचित् ” ॥ इति

२५ स्मरणात् । श्राद्धोपक्रमश्च कुतपकाले द्वितीयवरणम्

“प्रारंभो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नांदिमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ” ॥ इति वचनं कुतपकालवरणादूर्ध्वमारब्धपाकविषयमित्येतत्सर्वमधस्तान्नेरूपितम् । विस्मृतिविषये

“अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा मोहाद्वा न करोति यः । कुर्वीत पश्चात् स्वापितृन् प्रतिज्ञानागते सुतः” ॥ इति वचनस्यापि स्मरणे सति पश्चाद्विहिते काले कृष्णैकादश्यादावित्यर्थः ।

३० ग्रहणादिसंभवे सांवत्सरिकश्राद्धविधिः । सांवत्सरिकश्राद्धे चंद्रग्रहणादिसंभवे संग्रहकारः—

“चंद्रसूर्योपरागे तु पित्रोः श्राद्ध उपस्थिते । हेम्ना वाऽऽमेन वा कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्परेऽहनि” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे तु—

“आब्दिके समनुप्राप्ते ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । उपोष्य तद्दिनं सम्यक् परेऽहनि श्राद्धमाचरेत्” ॥ इति ।

वसिष्ठश्च—

“दर्शे रविग्रहे पित्रोः प्रत्याब्दिकमुपस्थितम् । आमश्राद्धं तु कर्तव्यं हेमश्राद्धमथापि वा ” ॥

स्मृत्यन्तरे—“ग्रहणे तु द्वितीयेऽन्हि रजोदृष्टौ तु पंचमे ” इति । तथा—

“श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने सूतकान्मृतकादपि । सोमसूर्योपरागाभ्यां श्राद्धं कुर्यात्परेऽहनि ” ॥ इति ।

अत्र विशेषमाह **संग्रहकारः—**

“भुजेर्निषेधकाले तु श्राद्धकालो भवेत्तदा । आमश्राद्धं तु कर्तव्यं हेमश्राद्धमथापि वा ” ॥ इति ।

भोजननिषेधकालश्च **वृद्धवसिष्ठोक्तः—**

“सूर्यग्रहे तु नाश्रीयात्पूर्वयामचतुष्टयम् । चंद्रग्रहे तु यामांस्त्रीन्बालवृद्धातुरैर्विना ॥

“संध्याकाले यदा राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ । तदहर्नैव भुंजीत रात्रावपि कदाचन ” ॥ इति ।

एतच्च सविस्तरं प्रतिपादितमधस्तात् । यत्तु **स्मृत्यन्तरवचनम्—**

“दर्शे रविग्रहे पित्रोः प्रत्याब्दिकमुपस्थितम् । अन्नेनासंभवे हेम्ना कुर्यादामेन वा सुतः ” ॥ इति

तस्याप्ययमर्थः—निषेधादन्नेनासंभवे सति हेम्ना आमेन वा कुर्यादिति । एवं च कर्मकाला-

त्प्रागेवमुक्ते सूर्यग्रहे अपराण्हे श्राद्धमन्नेन कार्यमित्युक्तं भवति । एतमेव विषयमभिप्रेत्य

कालादर्शकारः—

“प्रत्याब्दिकस्य चालभ्य योगेषु विहितस्य च । संपाते देवताभेदात् श्राद्धयुगं समाचरेत्” ॥ इति । १५

ग्रहणार्थेदियादिरलभ्ययोगः रात्रौ यामद्वयादूर्ध्वं चन्द्रग्रहे पितृश्राद्धं कर्तव्यं द्वितीययामे ग्रहणेऽपि

यामत्रयात्पूर्वं गान्धर्व उपक्रम्य दिवा पञ्चदश नाड्याः पूर्वं कर्तव्यम् । तत्र भुजेरनिषेधादित्याहुः ।

ग्रहणनिमित्तं श्राद्धमाह **मनुः—**

“संध्यारात्र्योर्न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः । तयोरपि च कर्तव्यं यदि स्याद्राहुदर्शनम्” ॥ इति ।

महाभारतेऽपि—

“सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने । अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पके गौरिव सीदति” ॥ इति ।

आश्वमेधिके—“उपप्लवे चन्द्रमसो रवेश्च श्राद्धस्य कालो ह्ययनद्वये च ।

“पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ” ॥ इति । **अंगिराः—**

“सर्वो वर्णः सूतके च मृतके राहुदर्शने । स्नात्वा श्राद्धं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितम्” ॥ इति ।

अत्र राहुदर्शनग्रहणात्संक्रांत्यादिष्वाशौचे श्राद्धं न कर्तव्यमित्युक्तं भवति । इदं ग्रहणादिश्राद्ध- २५

मामेनैव कार्यम् । तथा **बोधायनः—**

“संक्रमेऽन्नाद्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । आमश्राद्धं संग्रहे च द्विजः शुद्धवदाचरेत्” ॥ इति ।

संक्रमे चान्नाभावे द्विजाभावे च प्रवासादौ संग्रहे ग्रहणे चेत्यर्थः । “हिरण्ये तूदकं पश्चान्मृतेऽहनि

परेऽहनि” इति **वचनात्** तदनन्तरमेव तर्पणं कार्यम् । प्रतिनिधित्वेन तिलतर्पणमात्रे क्रियमाणेऽपि

तर्पणानन्तरं क्षेत्रपिण्डदानमिति **पूर्णसंग्रहे ।**

श्राद्धोद्देश्यनिरूपणम् । पितुर्मृताहे पितृपितामहप्रपितामहास्त्रय एवोद्देश्याः । मातुर्मृताहे मातृ-

पितामहीप्रपितामह्य एव देवताः । तदुक्तं **सायणीये—**

“पितुः प्रत्याब्दिकं कार्यमुद्दिश्यैव त्रिपुरुषम् । वर्गान्तरं न वृणुयाद्वृत्तं चेन्निष्फलं भवेत् ॥

“पुंसां मृताहे पुरुषा एव भोज्या न तु स्त्रियः । एवं स्त्रीणां मृताहेऽपि स्त्रिय एव न चापरे” ॥ इति ।

प्रयोगसारे—

“पितुरेव पितुः कुर्यान्मातुरेव मृतेऽहनि । मोहाच्चेदन्यथा कुर्याद्दौरवं नरकं व्रजेत्” ॥ इति ।

पाद्वेऽपि—

“पितुरेव पितुः कुर्यान्मातुरेव मृतेऽहनि । यदि कुर्यात्सपत्नीकं तच्छ्राद्धमसुरालयम्” ॥ इति ।

५ पितुर्मृताहे पित्रादीनामेव कुर्यान्न सपत्नीकानाम् । मातुर्मृताहे मात्रादीनामेव कुर्यादित्यर्थः ।

तथा च शंखः—

“पित्रादित्रयपत्नीनां भोज्या मातुः प्रति द्विजाः । स्त्रीणामेव तु तस्मात्तु मातृश्राद्धमिहोच्यते” ॥ इति ।

मातुः प्रति मातृपितामहीप्रपितामहीरुद्दिश्य भोज्या द्विजाः । पित्रादित्रयपत्नीनां स्त्रीणामिह पृथगेवैतच्छ्राद्धं यस्मात्तस्मान्मातृश्राद्धमुच्यत इत्यन्वयः ।

१० शातातपः—“सपिंडीकरणं कृत्वा कुर्यात्पार्वणवत्सदा ॥

“प्रतिसंवत्सरं विद्वान् शाकैलेयोदितो विधिः । सपिंडीकरणाद्धर्षं पितामह्यादिभिः सह” ॥ इति

हारीतः—

“अनुयानेन सापिण्ड्यं जनकेन सहात्मजः । पितामह्यादिभिः सार्धं आब्दिकश्राद्धमाचरेत्” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

१५ “नांदीमुखेऽष्टकाश्राद्धे गयायां च मृतेऽहनि । पितामह्यादिभिः सार्द्धं मातुः श्राद्धं समाचरेत्” ॥ इति ।

यमः—

“मातुर्मृताहे पित्रादीन्पूजयेद्यदि नाशयेत् । तथा पितुर्मृताहेऽपि न पूज्या मातरः स्मृताः” ॥ इति ।

अन्यत्रापि—

“मातुर्मृताहे पित्रादीन्नाशयेद्विजसत्तमः । तथा पितुर्मृताहेऽपि न भोज्याः तत्स्त्रियः स्मृताः” ॥ इति ।

२० नाशयेन्न भोजयेदित्यर्थः । पारिजाते—

“पित्रोः श्राद्धे समयाते तत्तद्वर्गं निमंत्रयेत् । वर्गांतरं न वृणुयाद्वृत्तं चेन्निष्फलं भवेत् ॥

“मातुः श्राद्धं मातृवर्गवरणेनैव कारयेत् । तत्र पित्रादिवर्गस्य वरणे मातृहा भवेत्” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“प्रत्यब्दाङ्गं तिलं दद्यान्निषिद्धेऽपि परेऽहनि । वर्गैकस्य वचो येषामन्येषां तु विवर्जयेत्” ॥ इति ।

२५ येषां पितृपितामहप्रपितामहानां मातृपितामहीप्रपितामहीनां वा वचः उद्देश्यस्त्वोक्तिः तेषामेकस्य वर्गस्य निषिद्धेऽपि परदिने तिलोदकं दद्यादनुद्दिष्टानां वर्जयेदित्यर्थः । ततश्चैकस्य वर्गस्य तिलोदकविधानात् “यानुद्दिश्य भवेच्छ्राद्धं तेभ्यस्तर्पयति द्विजः” इति विष्णुस्मरणाच्च ।

“कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथायश्राद्धषोडशम् । प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिंडाः स्युः षडिति स्थितिः” ॥ इति

कात्यायनेन प्रत्याब्दिकपर्युदासेन षट्पिंडविधानाच्चैकस्य वर्गस्योद्देश्यत्वम् ।

३० अत्र पितृमेधसारकृत्—‘मातृमृताहे मात्रादय एव भोज्याः न पित्रादयो निषेधादयुगमत्वविरोधात्पार्वणत्वभंगादाचाराभावाच्च’ इति ।

“निमंत्रयेत् त्र्यवरान्सर्वविप्रान्यथोदितान् । अयुगमांश्च्यवरानर्थपेक्षो भोजयेत्” ॥ इति

मन्वापस्तंबादिभिरयुगमब्राह्मणभोजनं विहितम् । तत्र पित्रादीनामपि भोजने अयुगमत्वविरोध इत्यर्थः । अत्र विज्ञानेश्वरः—येनकेनापि मातुः सापिण्ड्ये यत्राष्टकादिषु मातुः श्राद्धं पृथग्विहितम् ।

“अष्टकासु च वृद्धौ च गयायां च मृतेऽहनि । मातृश्राद्धं पृथक्कुर्यादन्यत्र पतिना सह” ॥ इति । तत्र पितामह्यादिभिरेव पार्वणश्राद्धं कर्तव्यमिति । एवं पितृश्राद्धे पित्रादय एव भोज्याः । न मात्रादयः । अत्र तात्पर्यदर्शनम्—अत्र यद्यपि मात्रादिभ्यः पृथगेव पिंडदानदर्शनं तथापि तासां पृथग् ब्राह्मणभोजनं न भवति । होमाभिमर्शनयोः पृथकादर्शनात्पितृमात्रार्थब्राह्मणसंख्या-संकलने सत्ययुगमत्वविरोधादाचाराभावाच्च । अपि च—“अष्टकासु च वृद्धौ च” इति वचनादष्ट- ५ कादिभ्योऽन्यत्र मासिश्राद्धौ पृथक्त्वाभावः स्पष्ट एवावगम्यत इति पृथग्देशाभावेऽपि मातृवर्गीस्यापि तत्र वृत्तिर्भवतीत्युक्तं चंद्रिकायाम् । बृहस्पतिरपि—

“स्वेन भर्त्रा समं श्राद्धं माता भुंक्ते सदैवतम् । पितामही तथा स्वेन स्वेनैव प्रपितामही” ॥ इति । सदैवतं पार्वणश्राद्धमित्यर्थः । शातातपः—

“एकमूर्तिवमायाति सपिंडीकरणे कृते । पत्नीपतिपितृणां तु तस्मादंशेषु भागिनी” ॥ इति । १० स्मृत्यन्तरेऽपि—

“सपिंडीकरणादूर्ध्वं यत्पितृभ्यः प्रदीयते । सर्वत्रांशहरा माता इति धर्मेषु निश्चयः” ॥ इति ।

मनुः—

“स्नेहाद्धर्त्रा समं श्राद्धं माता भुंक्ते स्वधाशनम् । पितामही स्वधां स्वेन तथैव प्रपितामही” ॥ इति । चंद्रिकायाम्—एभिर्वचनैः सपिंडीकरणोत्तरकालं पत्यादिदेवत्ये श्राद्धे पृथग्देशाभावेऽपि मातृणां १५ सहभावेन देवतात्वं भवतीत्येतावन्मात्रमभिधीयते । न तु येन सह सपिंडीकरणं कृतं तदैवत्ये श्राद्धे सह भावेन देवतात्वमिति । एषु वचनेषु तथाविधविशेषानवगमात्ततश्च पितामह्यादिभिः सह सपिंडीकृतायामप्यष्टकादिभ्योऽन्यत्र मातुर्न पृथक्श्राद्धमिति । पितृमेधसारोऽपि—श्वश्रादि-सापिंड्येऽपि दर्शमासिश्राद्धादौ पित्रादिभिरेव सह मात्रादयो भुंजते । अर्घ्यसंसर्गेण भर्तृ-साहित्यात्स्नेहाच्च । तदर्थं हि पित्रर्घ्येषु मात्रर्घ्यसंसर्गं कुर्यादिति । एवं चाष्टकादिष्वेव पृथक्त्व- २० विधानात्तद्व्यतिरिक्तेषु युगादिमन्वादिदर्शमासिश्राद्धादिषु पृथग्देशाभावोऽवगम्यते ।

यत्तु चतुर्विंशतिमतेऽभिहितम्—“केचिदिच्छन्ति नारीणां पृथक्श्राद्धं महर्षयः” इति तदष्टकाश्राद्धविषयम् । अत्राष्टकासु च वृद्धौ चेतिवचनं पूर्वमुक्तम् । तथा जातुकार्णिः—

‘अन्वष्टक्यं तथा वृद्धिं मातुः श्राद्धं मृतेऽहनि । एकोद्दिष्टं तथा मुक्त्वा स्त्रीणां नास्ति पृथक् क्रियाः’ ॥ इति ।

चंद्रिकायाम्—

२५

“अन्वष्टकासु वृद्धौ च प्रतिसंवत्सरे तथा । अत्र मातुः पृथक्श्राद्धमन्यत्र पतिना सह” ॥ इति ।

तत्रैव—

“क्षयाहं वर्जयित्वैकं स्त्रीणां नास्ति पृथक् क्रिया । केचिदिच्छन्ति नारीणामन्यत्रापि महर्षयः” ॥ इति ।

अन्यत्राष्टकादिषु । पारिजातेऽपि—“अन्वष्टकासु वृद्धौ च प्रतिसंवत्सरे तथा ।

“महालये गयायां च सपिंडीकरणात्पुरा । एषु मातुः पृथक् कुर्यादन्यत्र पतिना सह” ॥ ३०

स्मृत्यन्तरे—“अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च महालये ।

“चन्द्रसूर्योपरागे च व्यतीपाते मृतेऽहनि । मातुः श्राद्धं पृथक्कुर्यादन्यत्र पतिना सह” ॥ इति ।

अन्वष्टकादौ मातृपितामहीप्रपितामह्यः पृथक् तत्र विहितदेवताभिः सहोद्देश्याः । मातृश्राद्धे तु ता एवोद्देश्याः । अष्टकावृद्धिगयामहालयोपरागव्यतीपातव्यतिरिक्तेषु पतिभोजनेन तासां सह वृत्ति-रित्यर्थः । शातातपोऽपि—“मासिके चाब्दिके श्राद्धे मातुः कुर्यात्पृथग्विधिम्” ॥ इति । ३५

यनु “सपत्नीकत्वहानेऽपि पितुर्दार्शं समाचरेत् । पितामहादिषु तथा सपत्नीकत्वसंभवात्” ॥ इति तस्यार्थः । मातरि स्थितायामपि पितामहादीनां दार्शं पिंडं तिलोदकं च समाचरेदिति । एवं च पितुर्मृताहे पितृपितामहप्रपितामहानामेवोद्देश्यत्वं । मातृमृताहे मातृपितामहीप्रपितामहीनामुद्देश्यत्वं न पित्रादीनामिति स्थितम् । ननु मा भूत् । पितुर्मृताहे मातुरुद्देश्यता तद्विधायकवचनाभावात् ।

५ मातृमृताहे तु

“मातुर्मृताहे संप्राप्ते पितरं तत्र पूजयेत् । अपूजिते तु पितरि मात्रा पिंडो न गृह्यते” ॥ इति । विधिबलेन पितुरप्युद्देश्यता स्यादिति चेदत्र केचिदाहुः । वचनमेतदापस्तंबिनां मातृमृताहे पित्रादे-
होमपिंडदानविधिपरम् । अत्र एव ‘मात्रा पिंडो न गृह्यते’ इत्युक्तम् । तथा च स्मृत्यंतरे—

“स्त्रीमृताहे स्त्रियो भोज्याः पितरः स्त्रीसपिंडने । पित्रादेरेव होमः स्यात्पिंडदानं तु वर्गयोः” ॥ इति ।

१० मातृमृताहे पित्रादेरेव होमो मात्रादेरेव भोजनम् । स्त्रीसपिंडने पित्रादेरेव भोजनं उभयत्र वर्गद्वयस्यापि पिंडदानमित्यर्थः । एतच्चापस्तंबिनाम् । अन्येषां तु यथासूत्रं द्रष्टव्यम् ।
विष्णुः—“मातुर्मृताहे पित्रादीन्होमपिंडैः प्रपूजयेत्” ॥ इति ।

संग्रहेऽपि—“मातुः श्राद्धे तु पित्रादीन्होमपिंडैः प्रपूजयेत् ।

“पिंडहोमौ परित्यज्य श्राद्धं च कुरुते यदि । संततेश्च विनाशाय संपदां हरणाय च” ॥ इति ।

१५ अन्यत्रापि—

“पिता जीवेन्मृता माता तद्दिने होमदेवताः । पितामहादयो ह्येव तदुद्देशात्कृतार्थता ॥

“मंत्रे अमुष्मा इति बलात्पितरो होमदेवताः । ये च त्वामनुयाश्चेति बलात्पिंडास्तु वर्गयोः ॥

“पत्नीपतीनां श्रुत्युक्तभेदराहित्यवैभवात् । सप्ताहुतीनां पित्रादेः उद्देशाच्चरितार्थता ॥

“पित्रोः श्राद्धे समयाते पार्थक्येनाथवा सह । सप्ताहुतींश्च जुहुयाच्नोद्देशो मातुरिष्यते” ॥ इति ।

२० अपरे पुनराहुः—“मातुर्मृताहे संप्राप्ते पितरं तत्र पूजयेत्” इति वचनं होमपिंडदानमात्र-
विधिपरं न भवति किंतु पित्राद्युद्देशेन भोजनमपि तेन विधीयते । तथा च स्मृत्यंतरे—

“मातुर्मृतेऽन्हि संप्राप्ते पितरं भोजयेत्पुरा । मातरं भोजयेत्पश्चात् द्वयोः पिंडान्पृथक्पृथक्” ॥ इति ।

शिवधर्मोत्तरे—

“मासिके चाब्दिके वाऽपि मातुर्मरणसंभवे । पित्रा सहैव यद्भुक्तं तस्यास्तृप्तिकरं भवेत् ॥

२५ “पित्राहीनान् जनन्यास्तु मासिकादीन्करोति यः । तत्कुलस्य विनाशः स्यात् तस्यास्तृप्तिर्न जायते” ॥

हारीतः—

“पित्र्यं तूभयसामान्यं मातुर्मृतदिने सति । भर्तुराधिक्यभावेन ह्युभौ च परिपूजयेत् ॥

“गरीयसी तु पुत्रस्य माता संभरणाथवा । पालनाद्धरणाद्धर्ता गरीयान् सर्वदा तथा” ॥ नारदः—

“भर्तुराधिक्यभावेन तस्यास्तृप्तिर्हि शाश्वती । मातृप्रीतिं समन्विच्छन्पितृप्रीतिं तथाचरेत्” ॥

३० व्यासः—

“मातरं पितरं चैव समत्वेनैव पूजयेत् । न्यूनातिरेकं कुर्वाणः तामसीं गतिमाश्रयेत्” ॥ इति ।

संग्रहेऽपि—“पितुर्मृताहे पितरो हि भोज्याः पिंडप्रदानं तु सहैव मात्रा ॥

“मातुर्मृताहे पितृवर्गपूर्वं भोज्याः स्त्रियः पिंडविधौ षडत्र” इति ।

जीवपितृकस्य मातृश्राद्धे विशेषमाह तुः शंखलिखितौ—

“ध्रियमाणे तु पितरि माता चेन्निधनं गता । पितृस्थाने स्वपितरं तत्स्थानेऽन्यन्नियोजयेत्” ॥ इति ।
अस्यार्थः—“वर्गादियदि जीवेत्तु तं वर्गं परिवर्जयेत्” इति वचनात्पितरि जीवति सति मातृश्राद्धे पितृवरणमकृत्वा तत्स्थाने स्वपितरं तूष्णीं भोजयेत् । मातृस्थाने च वरणपूर्वकमन्यं भोजयेदिति ।

चंद्रिकायाम्—

“ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् । विप्रवद्वापितं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥

“पिता यस्य तु वृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः । पितामहो वा तच्छ्राद्धं भुंजीतेत्यब्रवीन्मनुः” ॥
तथा च स्मृत्यंतरे—

“जीवतस्तु पिता यस्य माता चेन्निधनं गता । तूष्णीं निवेद्य पितरं वरयेन्मातृवर्गजाः ॥

“होमकार्यं तदा तासां नास्त्येव पितृवर्गतः । पिंडप्रदानमूहेन वर्गयोरुभयोरपि ” ॥ इति । होमकार्यं १०
तासां नास्ति पितृवर्गस्यैव होमः ।

“पिता जीवेन्मृता माता तद्दिने होमदेवताः । पितामहादयो ह्येव तदुद्देशात् कृतार्थता ” ॥ इति
स्मरणात् । निगमेऽपि—“यो जीवति पितृणां तं न भोजयेत्पितृस्थाने इत्येके । जीवतामजीवतां
वा देयमेवेति हिरण्यकेतुः” इति । एतदेवाभिप्रेत्योक्तं पाद्रे—

“मातुर्मृताहे संप्राप्ते पितरं तत्र पूजयेत् । न जीवंतमिति प्राहुर्गार्ग्यगौतमभार्गवाः” ॥ इति । १५

जीवंतं पितरं वरणपूर्वकं न पूजयेदित्यर्थः । यत्तु कैश्चिदुक्तम्—जीवपितृकस्य श्राद्धे पितुः
पित्रादिभ्यो होमवर्गद्वयस्य पिंडदानं कार्यं पित्रादीनां होमपिंडदाननिषेधपरमेतदिति तत्पिता
जीवेन्मृता माता पिंडप्रदानमूहेनेति पूर्वोक्तवचनविरोधादुपेक्ष्यम् । तथा च पितृमेधसारकृत्
“जीवपितृकस्य मातुः श्राद्धे पितुः पित्रादिभ्यो होमो वर्गद्वयस्य पिंडदानं कार्यम्” । इति ।

अपरे तु—पितरं तत्र पूजयेदित्यादिवचनानामजीवपितृकमातृश्राद्धविषयत्वाद्योगिगोत्रमंत्रान्ते- २०
वास्यसंबंधानिति सगोत्रस्य निमंत्रणनिषेधादनिमंत्रस्य श्राद्धपंक्तौ भोजनदाने श्राद्धकर्ता आवृत्तानां
त्वित्यादिना दोषाभिधानात् “न जीवन्तमिति प्राहुर्गार्ग्यगौतमभार्गवाः” इति पाद्मपुराण-
वचनात् “प्रत्यक्षमर्चनं श्राद्धे निषिद्धं मनुरब्रवीत्” इति भविष्यत्पुराणवचनात् पितृस्थानं
स्वपितरमित्यादेः शिष्टाचाराभावेनोपेक्ष्यत्वात् जीवपितृकस्य मातृश्राद्धमातृपितामहीप्रपिता-
महीनामेव भोजनम् । होमः पितामहादेः । पितृवर्गस्य पिंडदानमुभयोरित्याहुः । २५

सामसूत्रप्रयोगवृत्तौ तु—

“मातुर्मृताहे संप्राप्ते सामतित्तिरिशाखिनाम् । पितरं भोजयेदग्रे सह तंत्रेण मातरम् ” ॥ इति ।

एवं च “पितुरेव पितुः कुर्यान्मातुरेव मृतेऽहनि ” इत्याश्वलायनस्मरणादाश्वलायनानां मातृ-
श्राद्धे मात्रादीनामेवोद्देश्यत्वं “मातुर्मृताहे संप्राप्ते पितरं तत्र पूजयेत्” इति भरद्वाजस्मरणात्
यजुःशाखिनां भरद्वाजीयानां पित्रादीनां मात्रादीनां चोद्देश्यत्वं तथा सामशाखिनामपि । इतरेषां ३०
स्वकुलाचाराव्यवस्था ।

अनुमरणादिकविषये भृगुः—

“या समारोहणं कुर्याद्भृगुचित्यां पतिव्रता । तां मृतेऽहनि संप्राप्ते पृथक्पिंडे नियोजयेत् ” ॥ इति
पृथक्पिंडनियोजनं पृथक्श्राद्धकरणम् ।

अत एव स्मृत्यन्तरम्—

“एकचित्यां समारूढौ दंपती निधनं गतौ । पृथक्पृथक् तयोः कुर्यादोदनं च पृथक्पृथक्” ॥ इति । ओदनमत्र पिंडदानं सहपाकस्य पूर्वमुक्तत्वात् । “कुर्यात्समानतंत्रेण सांवत्सरिकमेव च” इति संघातानुमृत्योः सांवत्सरिकस्य समानतंत्रत्वस्मरणमापद्विषयमिति पूर्वमेवोक्तम् । यत्तु वचनम्—

५ “पत्या सह सपिंडत्वे तन्मृताहे सहत्वभाक्” इति तस्यार्थः भिन्नतिथ्यनुमरणविषये पितुराब्दिकं पूर्वदिने कृत्वा परदिने पितृवरणपूर्वकं मातृश्राद्धं कुर्यादिति । स्मृत्यन्तरे—

“पितृव्याग्रजयोः श्राद्धे तत्तत्पितृपितामहान् । स्त्रीश्राद्धे वृणुयाद्भर्ता पत्नीमातृपितामही” ॥ इति ।

एवं यस्य मृताहे पार्वणमुक्तं तत्तत्पितृपितामहौ च तत्र वृणुयात् । कारिकारत्ने—

“मातुः पित्रोर्मासिकादीन् दौहित्रं स्वीयवह्निना । तथा महालयादींश्च कुर्यात्पार्वणतः शुचिः ॥

१० “सपिंडनस्य पश्चात्तु दौहित्रः स्वीयवह्निना । तत्सूत्राद्वत्सरादर्वाक्कुर्यात्पश्चात्स्वसूत्रतः” ॥ इति ।

यत्तु

“मातामहस्य सूत्रेण सपिंडीकरणात्पुरा । सूत्रांतरेण यः कुर्याच्छ्रुतां योनिं स गच्छति” ॥ इति तद्वत्सरांतसपिंडीकरणाभिप्रायम् । संग्रहे—

“कर्तुः सगोत्रिणश्चैव भोक्तृणां च सगोत्रिणः । न निमञ्च्याः किल श्राद्धे सोदकुम्भं विनैव तत्” ॥ इति ।

१५ अत्र भोक्तृपदं भोक्तृदेवतापरम् ।

“श्राद्धे निमंत्रयेद्विद्वान्पितृणामसगोत्रिणः । कर्तुस्तु गोत्रिणश्चैव विशेषेण विवर्जयेत्” ॥

इति स्मरणात् । पुत्रिकापुत्रस्य धनहारिणो दौहित्रस्य च मातामहमृताहश्राद्धं नित्यं तच्च प्रतिपादितं विज्ञानेश्वरे । “मातामहेन मातुः सापिंड्ये मातामहश्राद्धं पितृश्राद्धवन्नित्यमेव पत्न्या पितामह्या वा मातुः सापिंड्ये मातामहश्राद्धं तदनित्यं कृते त्वभ्युदयः अकृते न प्रत्य-

२० वायः” इति । न च वाच्यम्—

“पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि । अविशेषेण पूज्याः स्युः विशेषाभ्ररकं व्रजेत् ॥

“पार्वणं कुरुते यस्तु केवलं पितृहेतुतः । मातामहान्न कुरुते पितृहा चोपजायते” इत्यादि-
वचनात्पितृमृताहे मातामहादीनामपि श्राद्धं कार्यमिति । “पितुर्गतस्य देवत्वमौरसस्य त्रिपूरुषम्” इति विशेषस्मरणात् । तथा चंद्रिकायाम्—“याज्ञवल्क्येन कालस्तु अमावास्यादिनोदितः ॥

२५ “अविशेषेण पित्र्यस्य तथा मातामहस्य च । युगपच्च स विज्ञेयो वचनाद्वक्ष्यमाणकात् ॥

“कालभेदेन तंत्रं स्याद्देशभेदेन चैव हि । तस्मात् तंत्रविधानात्तु यौगपद्यं विधीयते ॥

“अमावास्यादिकालेषु कालैकत्वात्सहक्रिया । मृतेऽहनि तु तद्देशान्न युज्येत सह क्रिया” ॥ इति । अस्यार्थः । “अमावास्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोयनद्वयम्” इत्यादिवचनेन श्राद्धकालः सामान्येन पितृश्राद्धस्य मातामहश्राद्धस्य च याज्ञवल्क्येनोदितः

३० स च कालः । पितृयज्ञश्राद्धयोरिव न भागक्रमेण किंतु “मातामहानामप्येवं तंत्रं वा वैश्व-
देविकम्” इति वक्ष्यमाणाद्वचनाद्युगपदेवावगंतव्यः । यौगपद्यमेव समर्थयते कालभेद-
इत्यादिना । समानतंत्रतया विधानात् पैतृकस्य मातामहश्राद्धस्य च यौगपद्यं प्रतीतम् । तच्च
समानतंत्रत्वममावास्यादिकाले एव न पुनर्नृताहे इति । एवं च पितुर्नृताहे पित्रादीनामेवोद्देश्यत्वमिति
स्थितम् । संकल्पविधानेन पितृश्राद्धं न कार्यम्

“मातापित्रोर्भूतदिने संकल्पं कुरुते तु यः । संततेस्तु विनाशं स्यात्संपदामपि संक्षयः ” ॥

इति स्मरणात् । एकादश्यामपि मृताहश्राद्धमुक्तं स्मृत्यन्तरे—

“मातापित्रोः क्षयाहे च भवेदेकादशी यदा । संभाव्य पितृदेवांश्च त्वाजिघ्रेत्पितृसेवितम् ” ॥ इति ।

कात्यायनोऽपि—

“उपवासे यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् । उपवासं तदा कुर्यादाग्राय पितृसेवितम् ” ॥ इति । ५

यत्तु पुराणवचनम्—

“ये कुर्वन्ति महीदेवाः श्राद्धमेकादशीदिने । त्रयस्ते नरकं यांति दाता भोक्ता पिता तथा ॥

“यथाशौचगतं श्राद्धमाशौचांते विधीयते । तथैवेकादशीं मुक्त्वा द्वादश्यामेव कारयेत् ” ॥ इति

तत्तान्त्रिकविषयम् । अन्यथा कात्यायनादिस्मृतिविरोधप्रसंगात् ।

प्रथमाब्दिके श्राद्धांगतर्पणं नास्ति

१०

“एकोद्विधेषु सर्वेषु सर्पिण्डीकरणे तथा । मासिकेष्वब्दिके चैव न कुर्यात्तिलतर्पणम् ” ॥ इति

स्मरणात् । इत्याब्दिकनिर्णयः

अथ मलमासः । तस्य स्वरूपं ब्रह्मसिद्धांतेऽभिहितम्—

“चांद्रमासो ह्यसंक्रांतो मलमासः प्रकीर्तितः ” इति । पराशरः—

“रविणा लंघितो मासश्चांद्रः ख्यातो मलिम्लुचः । तत्र यद्विहितं कर्म उत्तरे मासि कारयेत् ” ॥ इति । १५

लघुहारितोऽपि—

“इंद्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः स प्रकीर्तितः । अग्नीषोमौ स्थितौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ ॥

“तमतिक्रम्य तु यदा रविर्गच्छेत्कदाचन । आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्राकृतः स्मृतः ” ॥ इति ।

अयमर्थः । दर्शपूर्णमासयाजिनां शुक्लप्रतिपदादिदर्शोष्टिदेवाविद्राग्नी हूयेते । कृष्णप्रतिपदि पूर्णमासेष्टि-
देवावग्नीषोमौ । अमावास्यायां पिंडपितृयज्ञदेवौ पितृसोमकौ । तत्रैवं सति शुक्लप्रतिपदादिदर्शीतो २०

मासः संक्रांतिरहितो मलिम्लुचः इति । मलिम्लुचत्वं च तस्य राक्षसैस्तस्करैराक्रांतत्वात्
तदाह शातातपः—

“वत्सरांतर्गतः पापो यज्ञानां फलनाशकृत् । नैकतेर्यातुधानाथैः समाक्रांतो विनाशकैः ॥

“मलिम्लुचैः समाक्रांतं सूर्यसंक्रांतिवर्जितम् । मलिम्लुचं विजानीयात् गर्हितं सर्वकर्मसु ” ॥ इति

मैत्रेयः—“मासद्वये यद्येकराशिं संक्रमेतादित्यस्तत्राद्यो मलमासः शुद्धोऽन्यः ” इति । मलत्वं च २५

कालाधिक्यात् । तथा च गृह्यपरिशिष्टे—“मलं वदंति कालस्य मासं कालविदोऽधिकम् ” इति ।

अधिकमासं कालस्य मलं वदंतीत्यन्वयः । श्लोकगौतमः—

“द्वौ मासावेकनामानावेकस्मिन्वत्सरे यदि । तत्राद्ये देवकार्याणि पितृकार्याणि चोभयोः ” ॥

इति राशिद्वयनिबन्धनात् द्वावित्युक्तिः । चैत्राद्येकसंज्ञकत्वात् । एकनामानाविति तन्न आद्ये देवकार्याणीत्यस्य व्यवस्था वक्ष्यते चंद्रिकायाम्—

“अमावास्याद्वयं यत्र सूर्यसंक्रांतिवर्जितम् । एवं षष्ठिदिनो मासस्तदर्थं तु मलिम्लुचः ॥ ३०

“त्यक्त्वा तमुत्तरे कुर्यात्पितृदेवादिकाः क्रियाः ” ॥ इति ।

व्यासः—

“षष्ठ्या तु दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः । पूर्वार्धं तु परित्यज्य उत्तरार्धः प्रशस्यते ” ॥ इति ।

गार्ग्यः—“अधिमासः स विज्ञेयो मासः शुद्धाख्य उत्तरः ” ॥ इति ।

नारदः—“नष्टेदुपर्वकालः स्यात्सूर्यसंक्रमणं यदि । तस्मिन्मासि पुनः पर्व स मासोऽधिकमासकः” ॥
नष्टेदुपर्वकालयुक्तदर्शकाले दर्शकाल इत्यर्थः । दर्शकालयुक्ते तस्मिन्नेव मासि पुनरपि दर्शकालश्चेत्सोऽ-
धिकमास इत्यर्थः । वसिष्ठसिद्धांते—

“द्वात्रिंशद्भिर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा । घटिकानां चतुष्केण पतत्यधिकमासकम् ” ॥ इति ।

५ विष्णुधर्मोत्तरेऽपि—

“सौरसंवत्सरस्यांते मासेन शशिजेन तु । एकादशातिरिच्यंते दिनानि भृगुनन्दन ॥

“समाद्वये साष्टमासे तस्मान्मासोऽतिरुच्यते । स चाधिकमासकः प्रोक्तः काम्यकर्मसु गृहीतः” ॥ इति ।
सौरसंवत्सरं चान्द्रात् वत्सरादेकादशदिनैरधिकम् । तथा च सति चान्द्रवत्सरद्वयात् सौरवत्सरद्वयं
द्वाविंशत्यादिनैरधिकं भवति । तत ऊर्ध्वं सौरमासाष्टकं चान्द्रमासाष्टकैः सार्धैः सप्तदशभिर्दिनैरति

१० रिच्यते । अवशिष्टदिनार्धं च यथाकालादूर्ध्वं पूर्वोक्तषोडशभिर्दिनैः संपद्यते । तथा च मिलित्वा
मासो भवति । सोऽयमधिको मास इत्यर्थः ।

स्मृत्यंतरेऽपि—“सौरे वर्षे पंचमे पंचभिः स्यान्मासैर्युक्ते चाधिकमासद्वयं हि ॥

“द्वात्रिंशद्भिर्मासैस्तत्र चैकः शिष्टैर्मासैः स्यात्तथैवापरोऽपि ” ॥ इति ।

ज्योतिःशास्त्रेऽपि—

१५ “अब्दद्वयं चाष्टमासाः षोडशाहं त्रिनाडिका । विनाड्यः पंचपंचाशदधिमासान्तरं स्फुटम्” ॥ इति ।
न च कालाधिक्यमात्रेण तिथ्यादिवृद्धेरपि मलत्वं प्रसज्येतेति शङ्कनीयम् । कालाधिक्ये सति
नपुंसकत्वेन मलत्वाङ्गीकारात् । नपुंसकत्वं च ज्योतिःशास्त्रेऽभिहितम्—

“असंक्रो हि यो मासः कदाचित्तिथिवृद्धितः । कालांतरात्समायाति स नपुंसक इष्यते ” ॥ इति ।
पुरुषस्य सूर्यस्य तत्राभावात्नपुंसकत्वम् । तदपि तत्रैवोक्तम्—

२० “अरुणः सूर्यो भानुस्तपनश्चंद्रो रविर्गर्भास्तिश्च । अर्यमा हिरण्यरेता दिवाकरो मित्रविष्णू च ॥

“एते द्वादशसूर्या माघाद्येषूदयन्ति मासेषु । निःसूर्योऽधिकमासो मलिम्लुचारख्यस्ततः पापः ॥

“मासेषु द्वादशादित्यास्तपन्ति हि यथाक्रमम् । नपुंसकेऽधिको मासि मंडलं तपते रविः ” ॥ इति ।
संक्रातिरहितमासवत् संक्रांतिद्वययुक्तोऽपि चांद्रो मलमासः । तथा च काठकगृह्यम्—

“यस्मिन्मासे न संक्रातिः संक्रांतिद्वयमेव वा । मलमासः स विज्ञेयो मासे त्रिंशत्तमे भवेत्” ॥ इति ।

२५ ‘द्वात्रिंशद्भिर्मासैः’ इति पूर्वोक्तेन मासे त्रिंशत्तमे भवेदित्यस्य विरोधे सति समाहितं माधवीये—
ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धं मध्यमं मानमाश्रित्य द्वात्रिंशद्भिरिति वचनं प्रवृत्तम् । यस्मिन्मास इति त
स्फुटमानमाश्रित्य प्रवृत्तमिति । चंद्रिकायां तु ‘मासे त्रिंशत्तमे’ इत्येतत् त्रिंशन्मासादर्वाक् न
संभवतीत्येवंपरमिति । महाभारते—

“पंचके पंचके वर्षे द्वौ मासावधमासकौ । तेषां कालातिरेकेण ग्रहाणामधिचारतः” ॥ इति ।

३० माधवीये त्वाक्षिप्य परिहृतम् । नन्वधिकमासः क्वचित्त्रिंशत्तमत्वं व्यभिचरति । न्यूनाधिक-
संख्याया अपि दर्शनात् । नायं दोषः त्रिंशत्तमत्वस्य लक्षणत्वेनानङ्गीकारादुदाहरणप्रदर्शनार्थमेतदुक्त-
मित्यविरोधः ” इति । सत्यव्रतः—

“राशिद्वयं यत्र मासे संक्रमेत दिवाकरः । नाधिमासो भवेद्दोषो मलमासस्तु केवलम् ” ॥ इति ।

ज्योतिःसिद्धांते—“असंक्रांतिमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद्विसंक्रांतिमासः क्षयाख्यः कदाचित् ।

“कात्तिकादित्रये यो नान्यदा स्यात्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च ” ॥ इति ।

अयमर्थः—

स्फुटमानेन योऽयमसंक्रांतः स स्फुटोऽधिमासः । तेनैव मानेन यो द्विसंक्रांतियुक्तः स क्षयमासः । स च कार्तिकमार्गशीर्षपौषमासेष्वेव त्रिष्वन्यतमेऽवतिष्ठते । नान्येषु माघादिनवसु । एवंविधक्षय-
मासयुक्ते वर्षे क्षयमासात्पूर्वं द्वित्रिमासेषु मध्ये कश्चिदधिमासो भवति । क्षयमासादूर्ध्वमपि मास-
त्रयमध्ये परोऽधिमासः । तदेवंविधमेकवर्षस्थं मलमासत्रयं चिरेण कालेन यदाकदाचिदायाति । ५
न त्वेकाधिकमासवत्पुनः पुनः सहसा समायाति । द्विसंक्रांतियुक्तोऽयं क्षयमासः । एकमासत्वादहसः
पापस्य पतिरिति व्युत्पत्त्याहस्पतिसंज्ञयापि व्यवहियते । तथा च बार्हस्पत्ये—

“यस्मिन्मासेन संक्रांतिः संक्रांतिद्वयमेव वा । संसर्पाहस्पती मासावधिमासश्च निंदितः ” ॥ इति ।
तत्र क्षयमासात्प्राचीनो योऽसंक्रांतः स संसर्पः । असंक्रांतत्वेनेतराधिमासवत्कर्मानर्हतायां प्राप्तायां
तदुपवादेन कर्मार्हः स च सम्यक्संसर्पतीति संसर्पः । १०

“मासद्वयेऽब्दमध्ये तु संक्रांतिर्न यदा भवेत् । प्राकृतस्तस्य पूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः ” ॥ इति
स्मरणात् । संक्रांतिरहितयोर्मासयोर्मध्ये यः पूर्वः स प्राकृतः शुद्धः सर्वकर्मार्ह इत्यर्थः ।
अस्मिन्नेवार्थे जाबालिः—

“एकस्मिन्नपि वर्षे चेत् द्वौ मासावधिमासकौ । प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः ” ॥ इति ।
ब्रह्मसिद्धांतेऽपि— १५

“मासत्रये त्रिंशदूर्ध्वं संक्रांतिर्न यदा भवेत् । प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः ” ॥ इति ।
चंद्रिकायामिदं व्याख्यातम्—त्रिंशन्मासादूर्ध्वं योऽसंक्रांतो मासः सोऽधिमासस्ततोऽवर्त्यः संक्रान्तो
मासः स प्राकृतः । नाधिमास इति । ततः ससंसर्पत्वं तस्योपपन्नम् । असंक्रांतिमासद्वयमध्य-
वर्तिनः क्षयमासस्याहस्पतित्वात्तदुत्तरभाविनोऽसंक्रांतस्य कालाधिक्येनाधिमासत्वान्मासद्वयमेत-
न्निंदितम् । त एते त्रयोऽपि ज्योतिःशास्त्रे विवाहादौ कचिन्निंदिताः । अत एवोक्तम्—“संसर्पाह- २०
स्पतीमासावधिमासश्च निंदिताः” इति । यदा तु संक्रांतिद्वययुक्तः क्षयमास एक एव वा असंक्रांति-
रेक एव वाधिमासो भवति तदा तदुभयं वर्ज्यमित्युक्तं केशवीये—

“यस्मिन्मासि न संक्रांतिः संक्रान्तिद्वयमेव वा । संसर्पाहस्पती मासौ सर्वकर्मवहिष्कृतौ ” ॥ इति ।
नारदश्च—“संक्रांतिरहितो मासो यो वा संक्रांतियुग्मयुक् ।

“पूर्वः संसर्पमासः स्यादहस्पतिरथापरः । मलमासाविमौ प्रोक्तौ सर्वकर्मवहिष्कृतौ ” ॥ इति । २५
कालादर्शेऽपि—

“संक्रांतिरहितो मासो मलमासः प्रकीर्तितः । मलिम्लुचापराख्यं च संक्रांतिद्वययुक्तया ” ॥ इति ।
मलिम्लुच इत्यपराख्या संज्ञा यस्येति विग्रहः । संक्रांतिद्वययुगपि मासस्तथा मलिम्लुचो मास
इत्यर्थः । एवं च यस्मिन्संवत्सरे संक्रांतिरहितो मासः केवलो भवेत् तदाधिमासो वर्ज्यः । तदुत्तरो
मासः शुद्धस्तत्र यद्विहितं कर्म “उत्तरे मासि कारयेत् ” इति स्मरणात् । यदा द्विसंक्रांति- ३३
युक्तो मासो भवेत्तदा क्षयमासो वर्जनीयः । तत्पूर्वमासः शुद्धः

“दर्शद्वयं यदैकस्मिन्सौरै संसर्पको भवेत् । अहस्पतिर्यदेकस्मिंश्चांद्रे द्वौ संक्रमौ तथा ॥

“संसर्पाहस्पतिश्चेति द्विविधावधिमासकौ । मतौ पूर्वापरौ दुष्टौ परपूर्वौ शुभावहौ ” ॥ इति
स्मरणात् । संसर्परूपोऽधिमासाख्यः पूर्वो दुष्टः । तदुत्तरः कर्मार्हः । अहस्पतिरूपोधिमासाख्य

इत्युत्तरो दुष्टः । तत्पूर्वो मासः शुभावह इत्यर्थः । संक्रांतिद्वययुक्तस्य क्षयमासस्य षष्टिदिनात्म-
कत्वाभावेन दिनाधिक्याभावेऽपि संक्रांतेरपि मासव्यपदेशकप्रयोजकतया तदाधिक्येनात्राधि-
मासत्वव्यपदेशः । पितृमेधसारे—“चांद्रात् सौरातिरेकेण संवत्सरः कदाचित्त्रयोदशमासः
स्यात्सोऽधिमासः । तत्र द्वौ मासावेकनामानौ षष्टिदिनात्मकौ । तत्राद्यः कर्मसु निंदितः । उत्तरस्तु
५ शुद्धश्चांद्रे मास्यैकस्मिन् द्वेधा संक्रमश्चेदंहस्पतिरत्रोत्तरो दुष्टः । सौरे चेत् द्वौ दर्शौ संसर्पो मलिम्लुच-
श्चाद्यो दुष्टः । तान्मलमासानाचक्षते । वर्षेऽप्येकस्मिन्यदि द्वौ मलमासौ पूर्वोऽसंक्रांतोऽपि
कर्मण्यः परो मलमासः इति । नन्वेकाधिकमासोपेतसंवत्सरस्य त्रयोदशमासात्मकत्वं यथा
तथा अधिमासद्वयोपेतसंवत्सरस्य चतुर्दशमासात्मकत्वं प्राप्तम् । न च तद्युक्तम् । अस्ति त्रयो-
दशो मास इत्याहुरिति वच्चतुर्दशमासस्याश्रयमाणत्वाच्चैष दोषः । असंक्रांतित्वेनाधिकप्रसक्ति-

११ युक्तयोर्मध्ये पूर्वस्याधिकमासत्वनिषेधात् । उक्तं ज्योतिःसिद्धान्ते—

“यदा कन्यागते सूर्ये वृश्चिके वाथ धन्वनि । मकरे वाथ कुंभो वा नाधिमासो विधीयते” ॥ इति ।
अयमर्थः—वृश्चिकादिषु चतुर्मासेषु यदा मलमासः प्राप्नोति तदा सूर्ये तुलाकन्ययोर्वर्त्तमाने
सत्यसंक्रांतेऽपि नाधिमास इति । यदा कन्यागत इत्युपलक्षणम् । पूर्वेषु प्रसक्तोऽसंक्रांतो
नाधिमासः । तदुक्तं ब्रह्मासिद्धान्ते—“चैत्रादर्वाक् नाधिमासः परतस्त्वधिको भवेत्” । चैत्रा-

१५ दारभ्य उपरितनेषु मासेषु यदा यौ कौ चित् द्वौ मासावसंक्रान्तौ तदा तयोरर्वाचीनः पूर्वो
नाधिमासः । उत्तरस्तु भवत्यधिमास इत्यर्थः ।

स्मृत्यंतरे च—“एकत्र मासद्वितयं यदि स्याद्वर्षेऽधिकं तत्र परोधिमासः ।

“त्रयोदशं तु श्रुतिराह मासं चतुर्दशः कापि न चैव दृष्टम्” ॥ इति ।

नन्वेवमपि द्विसंक्रांतियुक्तक्षयमासोपेतवत्सरस्य एकादशमासत्वं प्रसज्येत । तच्च “द्वादश-
२० मासाः संवत्सरः । अस्ति त्रयोदशो मास इत्याहुः” इत्यादि श्रुत्या विरुद्धमिति चेत् द्विसंक्रांति-
युक्तस्य क्षयस्य मासद्वयत्वेन परिगणनात् । तथा च कालनिर्णये—

“तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वे द्वितीयेऽर्थे तदुत्तरः । मासाविति बुधैश्चित्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ” ॥ इति ।
क्षयमासस्य स्वतंत्रत्वेऽपि “परपूर्वौ शुभावहौ” इति वचनान्मासप्रयुक्तं कर्म पूर्वत्रमासे कर्त्त-
व्यम् । शुद्धमासवत्स्वतंत्रत्वात्तत्रैव कर्त्तव्यमिति केचित् । तदसाधु । “संसर्पाहस्पतीमासौ सर्वकर्म-

२५ बहिष्कृतौ” इति स्मरणात् । असंक्रांतेरधिमासस्य तु “एवं षष्टिदिनो मासः पूर्वार्धं तु
मलिम्लुचः” इति स्मरणेन उत्तरशेषत्वात् उत्तरमास एव कर्त्तव्यमिति चंद्रिकाकालादर्शकाल-
निर्णयपितृमेधसारादौ निरूपितम् ।

मलमासस्वरूपमभिहितम् । अत्र परस्परविरुद्धानि वचनानि सन्ति तान्यप्यत्रैवार्थे कथं-
चिद्योजनीयानि । दुर्योजनां च त्याज्यानि । ननु श्रीधरीयादौ पूर्णिमाद्वययोगे तदयोगे च

३० मलमासत्वमुक्तम् । तथा हि—

“अमा च पूर्णिमा चैव यन्मासि युगलं भवेत् । यस्मिन् दृश्यते वापि चौलकर्मादि वर्जयेत् ॥

“द्वितीयपूर्णिमायुक्तं विषमासं वदन्ति हि । पूर्णिमा च न दृश्येत मलमासः प्रकीर्तितः ॥

“एकमासे द्वे च पूर्णे दर्शस्यैकस्य संभवे । अग्निज्वालेति विख्याता शुभकर्मविनाशिनी” ॥ इति ।

अत्र व्यवस्थाभिहिता ज्योतिःशास्त्रे—

“दर्शातः पूर्णिमांतश्च चांद्रो मासो द्विधा मतः । जातिभेदाद्देशभेदात्तौ च मासौ व्यवस्थितौ ॥

“दर्शातमासौ यद्देशे तत्र दर्शप्रयुक्तिः । मलमासादिदोषः स्यान्नान्यदेश इति स्थितिः ॥

“पौर्णमास्यंतमासोऽपि यस्मिन् देशे प्रवर्तते । तत्र तन्मलमासादिदोषो नान्यत्र विद्यते ॥

“नर्मदादक्षिणे भागे दर्शातो मास इष्यते । नर्मदोत्तरभागे तु पूर्णिमांत इति स्थितिः ॥ ५

“अमावास्यापरिलिप्तो मासः स्याद् ब्राह्मणस्य तु । संक्रांतिपौर्णमासाभ्यां तथैव नृपवैश्ययोः” इति ।

यत्तु “अहस्पतिरवंतीषु संसर्पः कोसलेषु च । अधिमासस्तु पांचाले समदृष्टिस्तु भारते ” इति

तत् “तस्मादाहिताग्निर्नान्तं वदेत्” इति वदोषाधिक्यप्रदर्शनपरम् । उक्तं च कालदीपे—

“सर्वत्रदोषा दोषाः स्युर्दोषकालव्यवस्थिताः । तेषां तु तत्र तत्रैषा दोषाधिक्याय केवलम्” इति ।

दर्शातचांद्रमासानुष्ठातृणामेव श्रान्द्धादौ मलमासदोषः । न तु सौरानुवादिनां तत्रैकसंज्ञमासद्वयाभावात् ॥ १०

मलमासे कर्तव्यानि । मलमासे कर्तव्यान्याह यमः—

“गर्भे वार्षाधिके भृत्ये श्राद्धकर्मणि मासिके । सपिंडीकरणे नित्ये नाधिसं विसर्जयेत् ॥

“तीर्थस्नानं जपो होमो यवव्रीहितिलादिभिः । जातकर्मन्त्यकर्मणि नवश्राद्धं तथैव च ॥

“मघात्रयोदशीश्राद्धं श्राद्धान्यपि च षोडश । चंद्रसूर्यग्रहे स्नानं श्राद्धदानजपादिकम् ॥

“कार्याणि मलमासेऽपि नित्यं नैमित्तिकं तथा ” इति । गर्भे गर्भयुक्ते पुंसवनसीमंत इति ॥ १५

यावत् । वार्षाधिके “अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासिमासि संबंधके” इत्यादिवचनोक्तवृद्धिग्रहणे ।

भृत्ये संवत्सरादिपर्यंतकालकृते भृत्ये । नित्ये नित्यदाने । होमोऽत्रौपासनहोमः । अंत्यकर्मणि

दहनोदकपिंडदानास्थिसंचयनादीनि । **गौतमः—**

“जातकर्मणि यच्छ्राद्धं नवश्राद्धं तथैव च । ग्रहणे पुंसुवादौ च तत्पूर्वत्रपरत्र च” इति ।

निमित्तवशादिति वार्क्यशेषः । **कालनिर्णये—**

२०

“जातकर्म च पुंसूतिसीमंतोन्नयनव्रतम् । मल्लिभुचेऽपि कुर्वीत निमित्तं यदि जायते” इति ।

मरीचिः—

“रोगे चालभ्ययोगे च सीमंते पुंसुवेऽपि च । यद्वाति समुद्दिष्टं पूर्वत्रापि न दुष्यति” इति ।

रोगे रोगशांतौ । अलभ्ययोगे अर्धोदयादिविहितश्राद्धादौ । **मत्स्यपुराणे—**

“चंद्रसूर्यग्रहे चैव मरणे पुत्रजन्मनि । मलमासेऽपि देयं स्यात्तत्तत्क्षयकारकम्” इति ॥ २५

सत्यतपाः—

“मल्लिभुचाव्हये मासे विपत्तिर्यदि जायते । तस्मिन्नपि च कर्तव्या पिंडदानोदकक्रिया” इति ।

चंद्रिकायाम्—

“जातकर्मणि यच्छ्राद्धं दर्शश्राद्धं तथैव च । प्रतिसंवत्सरं यच्च पूर्वमासे प्रकीर्तितम्” इति ।

तत्रैव—

३०

“श्राद्धजातकनामानि ये च संस्कारसद्व्रताः । रोगशान्तिरलभ्यैश्च योगैः श्राद्धं व्रतानि च ॥

“मल्लिभुचेऽपि कर्तव्या इष्टीः काम्याश्च वर्जयेत्” इति । संस्काराः अन्नप्राशनादयः । सद्व्रता-

श्रातुर्मास्यव्रतादयः । **कालादर्शे—**

“द्वादशाहसपिंड्यंतं कर्मग्रहणजन्मनोः । सीमंते पुंसुवे श्राद्धं द्वावेतौ जातकर्म च ॥

“रोगशांतिरलभ्ये च योगो श्राद्धव्रतानि च । प्रायश्चित्तनिमित्तस्य वशात्पूर्वं परत्र च” इति ॥ ३५

द्वादशाहसर्पिड्यन्तं कर्म द्वादशाहकालीनम् । यत्सर्पिडीकरणं तदन्तं यस्येति विग्रहः । मरणादारभ्य दहननग्रप्रच्छादनतिलोदकपिण्डदाननवश्राद्धदशाहहोमषोडशश्राद्धसर्पिडीकरणात्मकं कर्मेति यावत् । ग्रहणे पुत्रादिजन्मनि सीमन्ते पुंसुवे च विहितं श्राद्धं एतौ द्वौ पुंसवनसीमन्तौ जातकर्म च आहिताग्ने-
रिष्टिः अनाहिताग्नेर्होमः प्रायश्चित्तं संध्यातिक्रमादा प्रायश्चित्तं तन्निमित्तस्य वशाद्यदा पूर्वमासे
५ निमित्तमुत्पद्यते तदा पूर्वमासे कुर्यात् । यदा परमासे निमित्तमुत्पद्यते तदा परत्र । यदा मासद्वये
निमित्तमुत्पद्यते तदोभयत्रेत्यर्थः । अत्र द्वादशाहग्रहणं वत्सरांतसर्पिडीकरणस्याप्युपलक्षणम्
“ श्राद्धं सर्पिडनं कुर्यात्कालदोषं न चिंतयेत् । वर्षाते द्वादशाहे वा सर्पिडीकरणं यदि ॥
“ गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये बाल्ये वा वार्धकेऽपि वा । मलमासेऽपि कर्तव्याः क्रियाः पूर्वाश्च मध्यमाः ” ॥
इत्यादि स्मरणात् । अन्ये तु

१० “ प्रेतस्य वत्सराद्वर्षाक् यदा संस्कारमिच्छति । न कालनियमो ज्ञेयो न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ” ॥ इति
स्मरणात् । प्रागेवोक्तकाले त्रिपक्षादिसर्पिड्येऽपि न कालनियम इत्याहुः । एवं च वत्सरात्पूर्वं
यत्कर्त्तव्यं तत्र नाधिमासदोष इति गम्यते । स्मृत्यर्थसारे—सर्पिडीकरणात्प्रागेवोक्तकाले नैमित्तिक-
वृषोत्सर्गस्तत्र न मासादिदोष इति । यत्तु वसिष्ठवचनम्—

“ अग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च । वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः ॥

१५ “ मांगल्यमभिषेकं च मलमासे विसर्जयेत् ” ॥ इति तत् “ कार्तिक्यां वैशाख्यां ग्रहणे
संक्रमे वा ” इति बोधायनोक्तकाम्यवृषोत्सर्गविषयम् । तथा च तत्र वर्जनीयेषु मध्ये कालादर्श-
कारेण संग्रहीतम्—“ आश्रमस्वीकृतिः काम्यवृषोत्सर्गश्च निष्क्रमः ” इति । तथा आद्यैकोद्दिष्टं
मलमासे कुर्यादाद्यमेकादशेऽहनि ।

“ एकादशेऽन्हि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् । एकादशेऽहनि श्राद्धं कुर्यादेवाविचारयन् ” ॥

२० इत्यादिभिः मृताहादेकादशाह एवाद्यैकोद्दिष्टविधानात् । तथा च जाबालिः—

“ एकराशौ स्थिते सूर्ये यदि मासो द्विधा भवेत् । एकोद्दिष्टं तु पूर्वत्र न परत्र कदाचन ” ॥ इति ।
कालादर्शकारेणैवं व्याख्यातम्—“ पूर्वमासस्थनिमित्ताधीनमेकोद्दिष्टं तत्र कृत्वा उत्तरत्र न
कुर्यात् ” इति । एवं च

“ सूतकांते नरः कुर्यादेकोद्दिष्टद्वयं बुधः । सूतके पतिते चापि स्वतंत्रं नातिलंघयेत् ” ॥ इति

२५ व्यासस्मरणात् । मध्ये सूतकांतरापाते स्वतंत्रं महैकोद्दिष्टमेकादशे कृत्वा आशौचापगमानंतर-
मावृत्ताद्यं यथा क्रियते तद्वन्मलमासेऽप्येकादशाहे आद्यश्राद्धं कृत्वा शुद्धमासे त्वावृत्ताद्यमून-
मासिकात्पूर्वं कुर्यात् । तथा च स्मृत्यर्थसारे—“ आद्यश्राद्धविघ्ने तु भार्गववारनंदाच्चतुर्दशीत्रि-
जन्मानि त्यक्त्वा ऊनमासिकात्पूर्वमनुष्ठेयम् ” इति । तथा च पराशरः—

“ अधिमासमृतानां तु आद्यमेकं समाचरेत् । शुद्धमासे तदावृत्तं शुद्धे चैवोनमासिकम् ” ॥ इति ।

३० एवं च षष्ठिदिनात्मकमृतमासस्थद्वितीयतिथौ द्वितीयमासिकं कर्त्तव्यम् । तदा मृतमासात्पूर्वमासे
प्रथमाब्दिकं भविष्यति

“ बुधश्चांद्रमासस्यैवमामलेदिवसे सति । आद्याब्दिकं प्रकुर्वीत ” इति स्मरणात् ।

स्मृत्यन्तरे—

“ आवृत्तिरन्यमास्थानां द्वादशाहे सर्पिडने । तथा नावृत्तयेदाद्यं मले त्वावृत्तिरिष्यते ” ॥ इति ।

गभस्तिरपि—

“एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते । तत्कार्यं पर्वमासे च कालाधिक्येऽपि धर्मतः ” ॥ इति ।
अस्यार्थः **चंद्रिकायामुक्तः—**“एतत्सर्पिंडीकरणात्प्राक्तनमासिकविषयं च शब्दादुत्तरमासेऽपि कार्यम् ” इति । एवं सर्पिंडीकरणादुत्तरभावीनि मासिकान्युभयत्र कार्याणि । तथा च **हारीतः—**
“अधिमासे न कर्त्तव्यं श्राद्धमभ्युदयं तथा । तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादृते ॥ ५

“सर्पिंडीकरणादूर्ध्वं यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकं भवेत् । इष्टं वाऽप्यथवा पूर्त्तं तन्न कुर्यान्मल्लिमुचे ” ॥ इति ।
अस्यार्थः **चंद्रिकायामुक्तः—**“सर्पिंडीकरणादूर्ध्वं यत्प्रथमवत्सरे प्रतिमासं क्रियमाणं त्रैपुरुषकं मासिकं श्राद्धं तन्मल्लिमुचेऽपि मासे कार्यमितिवक्तुं “वत्सरात्प्रथमादृते ” इत्युक्तम् इति ।
अस्मिन्विषये **वसिष्ठोऽपि—**“संवत्सरमध्ये यद्यधिकमासो भवेन्मासिकार्थं दिनमेकं वृद्धिं नयेत् ” इति । **सत्यव्रतः—**

१०

“आब्दमंबुषटं दद्यादन्नमाज्येन संयुतम् । संवत्सरे विवृद्धेऽपि प्रतिमासं च मासिकम् ” ॥ इति ।

गभस्तिः—

“न कुर्यान्मलमासे तु कर्म किञ्चित्कथंचन । मुक्त्वा नैमित्तिकश्राद्धं तद्धि तत्रैव कीर्तितम् ” ॥ इति ।

मरीचिरपि—

“प्रतिमासं मृताहे च यच्छ्राद्धं प्रतिवत्सरम् । मन्वादौ च युगादौ च तच्छ्राद्धमुभयत्र च ” ॥ इति । १५

संग्रहेऽपि—

“यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपक्षिकम् । मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च ” ॥ इति ।
तैर्थिकमिति पूर्वदृष्टतीर्थाविषयम् । अपूर्वदर्शनस्य निषिद्धत्वात् । तथा

“मासिके समनुक्रांते चांद्रमाने तिथिद्वयम् । यदि स्यात्तत्र कुर्वीत मासिकद्वितयं क्रमात् ” ॥ इति ।
एकमेव मासिकं पूर्वत्र च परत्र च कुर्यादित्यर्थः । तथा च **स्मृत्यंतरे—**

२०

“अन्यमासे प्रमीतानां मलमासे समागमे । एकनाम्ना तु कर्त्तव्यं मासिकद्वयमीरितम् ” ॥ इति ।
अन्यमासे अधिमासव्यतिरिक्तमासे । **बृद्धवसिष्ठः—**

“श्राद्धीयेऽहनि संप्राप्ते अधिमासो भवेद्यदि । मासद्वयेऽपि कुर्वीत श्राद्धमेकं न दुष्यति ” ॥ इति ।

व्यासः—

“षष्ठिभिर्दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः । उत्तरे देवकार्याणि पितृकार्याणि चोभयोः ” ॥ इति । २५

श्लोकगौतमश्च—

“द्वौ मासावेकनामानावेकस्मिन्वत्सरे यदि । उत्तरे देवकार्याणि पितृकार्याणि चोभयोः ” ॥ इति ।
एषु श्राद्धपितृकार्यशब्दो मासिकादिश्राद्धपरः । त्रैपक्षिको न मासिकविषये पितृमेधसारे अभिहितम्—“तत्तन्मासवृद्धौ त्रैपक्षिकमूनानि च पूर्वत्रैव परत्र न पुनः कुर्यात् ” इति ।
सुधीवीलोचने व्याख्यातमेतत्—द्वितीयमासवृद्धौ मृताहास्त्रिपक्ष एव त्रैपक्षिकं कुर्यात् । न च ३० परत्रमासे अत्रिपक्षत्वादेवं षष्ठमासवृद्धौ ऊनषाणमासिकं षष्ठमास एव कुर्यात् । न च परमासे तस्य सप्तमत्वात् । एवं द्वादशमासवृद्धावूनाब्दिकं द्वादशमास एव कुर्यात् । न त्रयोदशमासे ।
“मृतेऽहनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमासं तु मासिकम् ” इति मृताहदिहितः । शिष्टस्यैव प्रतिमासं कर्त्तव्यत्वविधानात् ।

“त्रैपक्षिको न षाण्मास्ये ऊनाब्दिकमथाचरेत् । एतेषामेव काले तु न पुनःकरणं भवेत् ” ॥ इति ऊनानां पुनःकरणनिषेधात् । इति । अन्ये तु ‘ षष्टिभिर्दिवसैः ’ इति षष्टिदिनानामेकमासत्वस्मरणेन उत्तरमासानामपि आद्यषष्ठद्वादशमासत्वाद्विभिन्नैरूनेषु तु ऊनानां करणसंभवात्

“ संवत्सरे प्रवृद्धे च प्रतिमासं तु मासिकम् ” इति मासिकमात्रस्य प्रतिमासं कर्तव्यत्वविधानात्

५ “माघत्रयोदशीश्राद्धं श्राद्धान्यपि च षोडश । कार्याणि मलमासेऽपि नित्यं नैमित्तिकं तथा ” ॥ इति षोडशानामपि मासिकानामुभयत्र कर्तव्यत्वविधानात्

“एकादशेऽन्हि मास्यूने आद्ये षष्ठे तथांतिमे । प्रतिमासं मृतेऽन्धाब्दं स्युस्त्रिपक्षे च षोडश” ॥ इति त्रैपक्षिको न मासिकानामपि षोडशमध्यपातित्वात्

“ श्राद्धं दर्शेऽप्यहरहः श्राद्धमूनादिमासिकम् । तर्पणं च निमित्तस्य नित्यत्वाद्भयत्र च ” ॥ इति

१० कालादर्शकारेण ऊनादीनामुभयत्र विधानात्त्रैपक्षिको न षाण्मास्ये इति पुनः करणनिषेधस्य ऊनानां नापकर्षः स्यात्पुनरप्यपकर्षेण इति वचनेन उत्सवार्थापकर्षविषयत्वप्रतीतिः पुनःकरणमात्र विषयत्वे

“ अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिंडीकरणं कृतम् । षोडशानां द्विरावृत्तिं कुर्यादित्याह गौतमः ” इत्यादिवचनविरोधप्रसंगात् । अतः आद्यश्राद्धादीनि षोडशमासिकानि मलमासे तदुत्तरमासे चावृत्त्य कार्याणीत्याहुः ।

१५ प्रथमाब्दिकविषये हारीतः—“असंक्रांतेऽपि कर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं द्विजैः” ॥ इति । स एव—“असंक्रमे तु कर्तव्यमाब्दिकं मासिकं तथा । एवं सपिंडनांतं च वत्सरोऽथ घटादिकम् ” ॥ इति । लघु हारीतोऽपि—

“प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्या पिण्डक्रिया सुतैः । क्वचित् त्रयोदशेऽपि स्यात् आद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम्” ॥ इति । पिण्डक्रिया मृताहश्राद्धे क्रिया । द्वादशे मासि पूर्णे सति त्रयोदशे मासीति यावत् ।

२० क्वचिदधिमासयुक्तवत्सरे त्रयोदशे मासि परिपूर्णं सति चतुर्दशमासीति यावत् । आद्यमाब्दिकं त्वधिमासवत्यपि संवत्सरे द्वादशे मासि पूर्णे सति कार्यं त्रयोदशे मासि कार्यमित्यर्थः ।

चंद्रिकायाम्—

“ आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे । त्रयोदशे च संप्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम् ” ॥ इति । पुनराब्दिकं प्रत्याब्दिकम् । उत्तरे मासि संप्राप्ते कुर्वीतेत्यर्थः । अतः शुद्धमासमृतानां प्रथमाब्दिकं

२५ मलमासागमे सति तत्र कर्तव्यम् । द्वितीयाद्याब्दिकं तु तदुत्तरे शुद्धमासे कर्तव्यम् । न पूर्वत्र मलमासे । तथा च सत्यव्रतः—

“वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि । मलमासे न कर्तव्यं व्याघ्रस्य वचनं यथा ” ॥ इति । स्मृत्यंतरे—

“ मासे संवत्सरे चैव तिथिद्वैधं यदा भवेत् । तत्रोत्तरा तिथिर्ग्राह्या न पूर्वा तु मलिम्लुचा ” ॥ इति ।

३० एवं च “ मलिम्लुचस्तु यो मासः स मासः पापसंज्ञकः ।

“ त्यक्त्वा तमुत्तरे कुर्यात्पितृदेवादिकाः क्रियाः । वर्जितः पितृदेवाभ्यां स मासः पापसंज्ञितः ” ॥ इत्यादीनि वचनानि शुद्धमासमृतानां प्रत्याब्दिकविषयतया योजनीयानि । मलमासमृतानां तु प्रत्याब्दिकं मलमासागमे सति तत्रैव कर्तव्यम् । तथा च भृगुः—

“मलमासे मृतानां तु यच्छ्राद्धं प्रतिवत्सरम् । मलमासे तु तत्कुर्यान्नान्येषां तु कथंचन ” ॥ इति । अन्येषां शुद्धमासमृतानां मलमासे न कार्यम् । किंतु शुद्धमास एवेत्यर्थः ।

सत्यतपाश्च—

“वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मृताहे तु मलिम्लुचे । कुर्यात्तत्र प्रमीतानामन्येषामुत्तरत्र तु” ॥ इति ।

पैठीनसिरपि—

“मलमासमृतानां तु श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् । मलमासे तु कर्तव्यमन्येषां तु कदाचन” ॥ इति ।

एवं च

“गर्भे वार्धुषिके भृत्ये प्रेते नित्येऽनुमासिके । आब्दिके च तथा श्राद्धे नाधिसां विसर्जयेत् ॥

“प्रतिसंवत्सरश्राद्धं मलमासे न वर्जयेत् । नित्यानि यानि कर्माणि निमित्तार्थानि यानि च ॥

“एकसंज्ञौ यदा मासौ स्यातां संवत्सरे क्वचित् । तत्राद्ये पितृकार्याणि देवकार्याणि चोत्तरे ॥

“द्वौ मासावेकनामानौ स्यातां संवत्सरे यदि । पूर्वत्र पितृकार्याणि देवकार्याणि चोत्तरे” ॥ इति ।

कात्यायनप्रचेतःशातातपपैठीनसिवचनानि मलमासमृतविषयाणि । यत्तु गालववचनम्— १०

“वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि । मासद्वयेऽपि तत्कुर्याद्ब्राह्मणस्य वचनं यथा” ॥ इति ।

यदपि मरीचिवचनम्—

“प्रतिमासं मृताहे यच्छ्राद्धं च प्रतिवत्सरम् । मन्वादौ च युगादौ च मासयोरुभयत्र च” ॥ इति ।

यदपि कालादर्शे वचनम्—

“मलिम्लुचान्यमासेषु मृतानां श्राद्धमाब्दिकम् । तर्पणं च निमित्तस्य नित्यत्वादुभयत्र च” ॥ इति । १५

एवमादीन्युभयत्र सांवत्सरिकश्राद्धप्रतिपादकवचनानि मलमासे मृतानां प्रत्याब्दिकं मलमास एव कर्तव्यम् । शुद्धमासमृतानां प्रथमाब्दिकं मलमासे द्वितीयाद्यादिभ्यं तु शुद्धमासे इत्येतन्निर्णयमभिप्रेत्य पितृकार्याणि चोभयोरित्यादिवचनानि प्रवृत्तानि । अपरार्के—

“अधिसासमृतानां तु मृताहं तत्र नोत्तरे । अन्येषामुत्तरे कुर्यात्प्रथमं त्वधिके चरेत्” ॥ इति ।

अन्यान्यपि वर्ज्यावर्ज्यकार्याणि कालादर्शकारः संग्रहोदाजहार—

“आब्दोदकुंभमन्वादि महालययुगादिषु । श्राद्धं दर्शेऽप्यहरहः श्राद्धमूनादिमासिकम् ॥

“मलिम्लुचान्यमासेषु मृतानां श्राद्धमाब्दिकम् । श्राद्धं च पूर्वदृष्टेषु तीर्थेषु च युगादिषु ॥

“मन्वादिषु च यज्ञानं दानं दैनंदिनं च यत् । तिलगोभूहिरण्यानां संध्योपासनयोः क्रियाः ॥

“पर्वहोमाश्चाग्रयणं साग्निरष्टिश्च पर्वणोः । नित्याग्निहोत्रहोमश्च देवतातिथिभोजनम् ॥

“स्नानं च स्नानविधिना चाभक्ष्यापेयवर्जनम् । तर्पणं च निमित्तस्य नित्यत्वादुभयत्र च ॥ २५

“अनित्यमनिमित्तं च दानं च महदादिकम् । अग्न्याधानाध्वरापूर्वतीर्थयात्रामरक्षणम् ॥

“देवारामतटाकादिप्रतिष्ठासौम्यजिबन्धनम् । आश्रमः स्वीकृतिः काम्यवृषोत्सर्गश्च निर्गमः ॥

“राज्ञोभिषेकप्रथमचूडाकर्मव्रतानि च । अन्नप्राशनमारंभो ग्रहाणां च प्रवेशनम् ॥

“स्नानं विवाहो नामातिपन्नदेवमहोत्सवः । व्रतारंभसमाप्ती च काम्यं कर्म च पाप्मनः ॥

“प्रायश्चित्तं च सर्वस्य मलमासे विसर्जयेत् ॥

“उपाकर्मोत्सर्जने च पवित्रदमनार्पणम् । अवरोहश्च हैमंतः सर्पाणां बलिरेष्टकाः ॥

“ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम् । दुर्गोद्वस्त्रापनोत्थाने ध्वजोत्थानं च वज्रिणः ॥

“पूर्वत्र प्रतिषिद्धानि परत्रान्यच्च दैविकम्” इति । अत्र नित्यत्वादुभयत्र च इत्यंतेन

ग्रंथेन कर्तव्यं संगृहीतम् । अनित्यमनिमित्तं च इत्यारभ्य वर्जयेत् इत्यंतेन वर्जनीयसंग्रहः ।

उपाकर्मैत्यारभ्य परत्रान्यच्च दैविकम् इत्यंतेन मलमासे वर्जितानां शुद्धमासेऽवश्यकर्तव्यत्वेन संग्रहः । अत्र केषुचित्साक्षिवचनान्युक्तानि अवाशिष्टेष्वप्युच्यन्ते । ३५

ननूदाहते संग्रहवचने भाद्रपदापरपक्षश्राद्धस्याप्युभयत्र कर्त्तव्यता प्रतीयते । महालययुगा-
दिष्विति तत्र पठितत्वात् । अन्यत्रापि “ यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपक्षिकम् ” इति
उभयत्र कर्त्तव्यता प्रतीयते । सा च स्मृतिविरुद्धा । तथा च काठकगृह्ये—

“ महालयाष्टकाश्राद्धोपक्रमाद्यपि कर्म यत् । स्पष्टमासविशेषाख्यविहितं वर्जयेन्मले ” ॥ इति ।

५ भृगुरपि—

“ वृद्धिश्राद्धं तथा सोममग्न्याधेयं महालयम् । राज्याभिषेकं काम्यं च न कुर्याद्भानुलंघिते ” ॥ इति ।

पराशरः—

“ यातुधानप्रियो मासः कन्याकै जायते यदि । पित्र्यं दैवं तथा कर्म ह्युत्तरे मासि युज्यते ” ॥ इति ।

यातुधानप्रियः अधिमास इत्यर्थः । पितामहश्च—

१० “ सोमयागादिकर्माणि षष्ठीष्ट्याग्रयणं तथा । महालयाष्टकाश्राद्धे मलमासे विसर्जयेत् ” ॥ इति ।

षष्ठीष्टिः काठकशाखादौ प्रसिद्धा । ज्योतिःपराशरः—

“ सिनीवालीमतिक्रम्य यदा कन्यां व्रजेद्रविः । तदा कालस्य वृद्धत्वादतीतैव पितृक्रिया ” ॥ इति ।
अतीतैव पंचमपक्षातिक्रांतैवेत्यर्थः । नागरखंडे—

“ नभो वाथ नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत् । सप्तमे पितृपक्षः स्यादन्यत्रैव तु पंचमः ” ॥ इति ।

१५ एवं चोभयत्रानुष्ठानमयुक्तम् । कालनिर्णयादौ परिहृतमेतत् । संग्रहवाक्ये महालयापरपक्षिक-
शब्देन मघात्रयोदश्याविवक्षितत्वान्न दोष इति । ‘ मघात्रयोदशीश्राद्धं श्राद्धान्यपि च षोडश ’
इति । तस्योभयत्रानुष्ठानमभिहितम् । यत्तु पराशरवचनम्—

“ मासः कन्यागते भानावसंक्रांतो यदा भवेत् । पित्र्यं दैवं तदा कर्म तुलास्थे कर्तुरक्षयम् ” ॥ इति
तत्पूर्वोक्तकाले श्राद्धानुष्ठानासंभवे द्रष्टव्यं तस्य गौणकालत्वात् । दर्शश्राद्धमधिमासेऽपि कर्त्तव्यम्

२० “ जातकर्माणि यच्छ्राद्धं दर्शश्राद्धं तथैव च । प्रतिसंवत्सरं यच्च पूर्वमासे प्रकीर्तितम् ” ॥ इति
स्मरणात् । यत्तु ऋष्यशृंगवचनम्—

“ संवत्सरातिरेकेण मासो यः स्यान्मलिम्लुचः । तस्मिन् त्रयोदशे श्राद्धं न कुर्यादिदुसंक्षये ” ॥ इति ।
अत्र विरोधः परिहृतः कालादर्शो नास्ति विरोधः काम्यश्राद्धविषयत्वादस्य निषेधस्य । संभवति
हि दर्शे काम्यश्राद्धं ‘ कन्यां कन्यादिन ’ इत्यादिना तिथिवारनक्षत्रविहितम् । तेन काम्यश्राद्ध-

२५ विषयोऽयमृष्यशृंगनिषेध इति । चंद्रिकायां तु ऋष्यशृंगवचनमन्यथापठितम् “ तस्मिन्त्रयोदशे
श्राद्धं न कुर्यान्नोपतिष्ठते ” इति । मत्स्यपुराणे—

“ दर्शे चाहरहःश्राद्धं दानं च प्रतिवत्सरम् । गोभूतिलहिरण्यानां मासे च स्यान्मलिम्लुचे ” ॥ इति ।

मैत्रेयसूत्रे— “ मासद्वये यद्येकराशिं संक्रमेतादित्यस्तत्राद्यो मलिम्लुचः शुद्धोऽन्यः पार्वणहिरमि-
होमः अग्निहोत्राग्रयणं संध्योपासनं पार्वणस्थालीपाकश्च यान्यन्यानि नित्यानि इहापि यत्नेन

३० क्रियन्ते ” ॥ इति । यत्तु पैठीनसिवचनम्—

“ श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वा द्वादशे मासि कीर्तिताः । त्रयोदशे तु सर्वास्ता निष्फला इति विश्रुताः ॥

“ तस्मात् त्रयोदशे मासि कुर्यात्तान्न कथंचन । कुर्वन्ननर्थमेवाशु कुर्यादात्मविनाशनम् ” ॥ इति

अत्र निष्फला इत्यभिधानात्फलकामनया प्रवृत्तं कर्म निषिद्धं इति गम्यते । तथा च स्मृत्यंतरम्—

“ इष्ट्यादि सर्वं काम्यं तु मलमासे विसर्जयेत् ” ॥ इति । न च सर्वास्ता इत्यभिधानात्

नित्यनैमित्तिकयोरपि निषेधः शङ्कनीयः—“ नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रयतः स मल्लिमुचे ” इति बृहस्पतिवचनात् । जाबालिनापि तथैवोक्तम्—

“ नित्यं नैमित्तिकं चैव श्राद्धं कुर्यान्मल्लिमुचे । तिथिनक्षत्रवारोक्तं काम्यं नैव कदाचन ” ॥ इति । योऽयं मलमासे काम्यनिषेधः असावारंभसमाप्तिविषयः

“ असूर्या नाम ये मासा न तेषु मम संमता । व्रतानां चैव यज्ञानां आरंभश्च समाप्तये ” ॥ ५ इत्यारंभसमाप्त्योरेवाधिमामसे प्रतिषेधादारंभसमाप्त्योर्मध्यपातिन्यधिमामसेऽपि तदारब्धं काम्यमनुष्ठेयम् ।

“ अधिमामसे निपातितेऽप्येष एव विधिः स्मृतः ” इति स्मरणात् ।

यत्तु काठकगृह्ये समाप्तिप्रतिपादकवचनम्—

“ प्रवृत्तं मलमासात्प्राक्काम्यं कर्म समापितम् । आगते मलमासेऽपि तत्समाप्यं न संशयः ” ॥ इति तत्सावनमासप्रवृत्तकुच्छूचांद्रायणादिविषयं तत्रावश्यकं तु यत्काम्यं कर्म तन्मलमासेऽप्यनुष्ठेयम् । १०

तद्यथा—“ प्रक्रांते मलमासे यदि कश्चिद्बालग्रहब्रह्मराक्षसादिना गृह्यते तदा ‘ अग्नये रक्षोघ्ने पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् ’ इति विहिता रक्षोघ्नेष्टिः सद्य एव कर्तव्या । मलमाससमाप्ति-प्रतीक्षायां बालादिमरणप्रसंगात् । यदा वृष्ट्यभावात्सस्यानि शुष्यन्ति मलमासश्चागतः तदा ‘ कारीर्या वृष्टिकामो यजेत ’ इति विहितेष्टिर्न कालविलंबं सहते । एवमन्या इष्टयः स्मार्तान्य-प्यावश्यकान्युदाहरणीयानि । नित्यनैमित्तिकयोरपि यदनन्यगतिकं यस्यातिक्रमे प्रायश्चित्त- १५ प्राप्तिर्यस्य च मासांतरे विहितकालालाभः तदेव मलमासे कार्यम् “ अनन्यगतिकं नित्यं कुर्या-न्नैमित्तिकं तथा ” इति स्मरणात् । काठकगृह्येऽपि —

“ मलेऽनन्यगतिं नित्यां कुर्यान्नैमित्तिकीं क्रियाम् ” इति । चंद्रिकायाम्—

“ मलं वदंति कालस्य कालं कालविदोऽधिकम् । नेह कुर्यादशेषेज्यामन्यत्रावश्यकद्विधेः ” ॥ इति ।

अनन्यगतिकानि च नित्यानि गृह्यपरिशिष्टे उदाहृतानि

२०

“ अवषट्कारहोमश्च पर्व चाग्रयणं तथा । मलमासे तु कर्त्तव्यं काम्या इष्टीस्तु वर्जयेत् ” ॥ इति । अवषट्कारहोमः अग्निहोत्रौपासनवैश्वदेवादयः । पर्व दर्शपूर्णमासौ पार्वणस्थालीपाकश्च । दर्शादीनां नित्यत्वं अकरणे प्रत्यवायश्रवणात् । कालांतरनिमित्तप्रायश्चित्ताम्नादवगंतव्यम् । तथा चार्थव- २५ णिका आमनन्ति “ यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमनाग्रयणं न तिथिवर्जितं चाहुतं वैश्वदेवम् । विधिना हुतमासतमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ” ॥ इति । तैत्तिरीयकेऽपि—

“ अग्नये पथिकृते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यो दर्शपूर्णमासयाजी सन्नमावास्यां पौर्णमासीं वाति-पादयेत् ” इति । गत्यंतरयुक्तानि तु नित्यानि तत्र वर्ज्यानि । तदुक्तं काठकगृह्यपरिशिष्टे—

“ सोमयागादिकर्माणि नित्यान्यपि मल्लिमुचे । षष्ठीष्ट्याग्रयणाधानचातुर्मास्यादिकान्यपि ॥

“ महालायाष्टकाश्राद्धोपाकर्मार्थपि कर्म यत् । स्पष्टमासविशेषाख्यविहितं वर्जयेन्मले ” ॥ इति ।

न चाग्रयणस्य सगतिकगतिकयोरुदाहरणं विरुद्धमिति शङ्कनीयम् । तस्य मलमासे विकल्पितत्वात् । ३०

तदाह पैठीनासिः—“ संक्रांतिरहिते मासि कुर्यादाग्रयणं न वा ” इति । अनन्यगतिकानि नैमित्तिकानि ग्रहणस्नानादीनि । तेषां मलमासेऽपि कर्त्तव्यतामाह यमः—

“ चंद्रसूर्यग्रहे स्नानं श्राद्धं दानं जपादिकम् । कार्याणि मलमासेऽपि नित्यं नैमित्तिकं तथा ” ॥ इति । सगतिकानि नैमित्तिकानि जातेष्ट्यादीनि ‘ वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत्पुत्रे जाते ’ इति

विहिताया इष्टेराशौचेऽवसिते यथानुष्ठानं तद्वन्मलमासेऽप्यवसितेऽनुष्ठानं तु शक्यत्वात्सगतित्वम् ।
शंखोऽपि—

“सावकाशं तु यत्कार्यं न कुर्यान्मासि दूषिते । कुर्यान्निरवकाशं तु नित्यं नैमित्तिकं तथा” ॥ इति ।

वृद्धगार्ग्योऽपि—

५ “नामान्नाशानं चौलं विवाहो मौजिबंधनम् । निष्कामजातकर्मापि काम्यं व्रतविसर्जनम् ॥

“अस्तगे च गुरौ शुके वृद्धे बाले मलिम्लुचे । उद्यापनमुपारंभं व्रतानां नैव कारयेत्” ॥ इति ।
जातकर्मादीनां चौलात्पूर्वभाविनां निषेधः स्वकालातिपत्तिविषयः । तथा गार्ग्यः—

“नामकर्म च जातेष्टिं यथाकालं समाचरेत् । अतिपाते तु कुर्वीत प्रशस्ते मासि पुण्यमे” ॥
अत्रिः—

१० “मासप्रोक्तेषु कार्येषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः । अधिमासादिदोषाश्च न स्युः कालविधेर्वलात् ॥

“गर्भादिप्राशनांतानि प्राप्तकालं न लंघयेत्” ॥ बृहस्पतिः—

“बाले वा यदि वा वृद्धे शुके चास्तंगते गुरौ । मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम्” ॥ इति ।
गार्ग्यः—

“अनादिदेवतादृष्ट्याशुचि स्यान्नष्टभार्गवे । मलमासेऽप्यनावृत्ततिर्थयात्रां विसर्जयेत्” ॥

१५ मात्स्येऽपि—

“आधानं यज्ञकर्मापि प्रायश्चित्तं व्रतानि च । न कुर्यान्मलमासेऽपि शुक्रगुर्वोरुपप्लवे” ॥ इति ।
दर्शपूर्णमासाग्निहोत्राणां यज्ञत्वेऽपि प्रथमानुष्ठानमेव तेषां निषिद्धम् । तथा च स्मृत्यन्तरं—

“आरंभदर्शपूर्णष्टयोरग्निहोत्रस्य चोदितम् । प्रतिष्ठापनकर्माद्या मलमासे विवर्जयेत्” ॥ इति ।

ज्योतिःशास्त्रे—

२० “तत्र दत्तमदत्तं स्याद्भुतं न हुतमेव च । सुजप्तमप्यजप्तं स्यान्नोपवासः कृतो भवेत् ॥

“न यात्रा न विवाहं च न च वास्तुनिवेशनम् । न प्रतिष्ठां च देवानां प्रासादग्रामभूरुहाम् ॥

“न हिरण्यं सुवासांसि धारयेदिति निश्चयः” ॥ इति । वृद्धवसिष्ठः—

“वापीकूपतटाकानां प्रतिष्ठा यज्ञकर्म च । न कुर्यान्मलमासे तु महादानव्रतानि च” ॥ इति ।
महादानानि तुलापुरुषादीनि षोडश कनकादीनि दश । एतच्च पूर्वं निरूपितम् । हारीतः—

२५ “उपक्रमं वृषोत्सर्गं काम्यमुत्सवमष्टकाः । मासि वृद्धौ पराः कार्या वर्जयित्वा तु पैतृकम्” ॥ इति ।

मरीचिः—“गृहप्रवेशगोदानस्नानाश्रममहोत्सवान् । न कुर्यान्मलमासे तु गुरौ शुके तथास्तगे” ॥
शुक्रबृहस्पत्योर्मौढ्यादिप्रतिपादनपूर्वकं मलमासवर्ज्यानि । तत्रातिदिशति कालादर्शकारः—

“मिहिरेण सहात्यंतं संनिकर्षाद्बृहस्पतेः । कवेश्वादर्शनं यत्तन्मौढ्यामहर्भर्षयः ॥

“ततोऽर्वाग्वार्धकं मौढ्यादूर्ध्वं बाल्यं प्रकीर्तितम् । पक्षः प्राक् दिशि वृद्धत्वं पश्चात् पंचदिनं कवेः ॥

३० “शैशवं प्राक्तु पंचाहं पश्चाद्दशदिनं स्मृतम् । शैशवं वार्धकं पक्षः प्राक्पश्चाच्च बृहस्पतेः ॥

“मलिम्लुचे निषिद्धानि कर्माण्यत्रापि वर्जयेत्” ॥ इति । मिहिरः सूर्यः । कवेः शुक्रस्य । प्राग्दिशि-
वृद्धत्वं पक्षः पंचदशदिनानि पश्चात् प्रतीच्यां दिशि पञ्चदिनं वृद्धत्वं स्मृतम् । शैशवं बाल्यं

प्राक् प्राच्यां दिशि पंचदिनं स्मृतम् । पश्चात् प्रतीच्यां दिशि दशदिनं स्मृतम् । प्राच्यां प्रतीच्यां
दिशि च वार्धकं शैशवं च बृहस्पतेः पक्षः । “मलिम्लुचे निषिद्धानि कर्माणि गुरुशुक्रयोः” मौढ्ये

वार्षिकशैशवयोरपि वर्जयेदित्यर्थः । “ दशाहं शुक्रवार्षिक्ये सप्ताहं वार्षिकं भवेत् । शुक्रः पञ्चदिनं वृद्धः ” इत्यादिभेदस्तु गणितभेदापेक्षया । वाक्यकरणं गणितसारं परहितस्फुटं दृग्गणितं चेति गणितभेदाः । तेषु भेदेषु दश दिनानि पौर्वापर्येणास्तमयानि भवन्ति क्रमेण दिनत्रयतारतम्यम् । मलमासस्यैव द्विराषाढासंज्ञकं विशेषमाह वृद्धमिहरः—

“ माघवाद्येषु षट्सर्वेकमासि दर्शद्वयं यदा । द्विराषाढः स विज्ञेयः शेते कर्कटकेऽच्युतः ॥

५

“ मेषादिमिथुनांतेषु यदा दर्शद्वयं भवेत् । अब्दांतरे तदाऽवश्यं मिथुनार्थे हरिः स्वपेत् ॥

“ कर्कटादित्रिके वापि यदा दर्शद्वयं भवेत् । अब्दान्तरे तदावश्यं कर्कटके हरिः स्वपेत् ” ॥ इति ।

अधमासे क्षयमासेऽपि वर्ज्यावर्ज्यविवेकसमान इत्युक्तं काठकगृह्ये—

“ रविसंक्रमहीने यो वर्ज्यावर्ज्यं विधिः स्मृतः । स एव तद्विसंक्रांतौ मलमासेऽप्युद्गीरितः ” ॥ इति ।

कालादर्शेऽपि—

१०

“ मलमासे द्विसंक्रांतौ संक्रांतिरहिते तथा । कार्यवर्ज्यविवेकः स्यादिति शास्त्रविदो विदुः ” ॥ इति ।

तदेवं कार्याकार्यविवेकः पंचधा संपन्नः । तत्र किञ्चिन्मलमास एव कर्तव्यम् । तद्यथा मलमास-

मृतानां यदाकदाचित्प्रत्याब्धिकमन्यमासमृतानां प्रथमाब्दिकं च किञ्चित्तु शुद्धमास एव कर्तव्यं

तद्यथोपाकर्मादि । किञ्चिदुभयत्रापि कर्तव्यं तद्यथाब्दोदकुंभादि । किञ्चिदुभयोरन्यतरस्मिन्निमित्त-

वशात्कर्तव्यं तद्यथा द्वादशाहादिसर्पिंडादि । किञ्चिन्मलमासे वर्ज्यं तद्यथा नित्यमनित्यं चेत्यादि १५

अनित्यमनित्यमित्तम् । इति मलमासनिर्णयः ॥

दर्शश्राद्धनिर्णयः । अथामावास्याश्राद्धम् । तत्र लोकाक्षिः—

“ श्राद्धं कुर्यादवश्यं तु प्रमीतपितृको द्विजः । इंदुक्षये मासि मासि वृद्धौ प्रत्यब्दमेव च ” ॥ इति ।

मनुः (३।१२७)—

“ प्रथिता प्रेतकृत्यैषा पित्र्यं नाम विधुक्षये । तस्मिन्पुत्रस्यैति नित्यं प्रेतकृत्या हि लौकिकी ” ॥ इति । २०

विधुक्षये अमावास्यायां यत्पित्र्यं नाम कर्म क्रियते सैषा प्रेतकृत्येति प्रथिता लोके ।

प्रेताः पितृपितामहादयः तदर्थं क्रिया प्रेतकृत्या लौकिकी लोकविदिता प्रेतकृत्या तस्मि-

न्विधुक्षये युक्तस्य श्रद्धानस्य नित्यं प्रतिमासमेति आगच्छति कर्तव्यत्वेनोपतिष्ठते इत्यर्थः ।

गौतमोऽपि (१।४।१०२)—“ अथ श्राद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात् ” इति । हारीतोऽपि—

“ यथाकथंचिन्नित्यानि कुर्यादिंदुक्षयादिषु ” इति । विष्णुपुराणे—

२५

“ श्राद्धं श्रद्धान्वितः कुर्वन्प्रीणयत्यखिलं हि तत् । मासि मास्यसिते पक्षे पंचदश्यां नरेश्वर ” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—

“ प्रमीतपितृकः कुर्याद्दर्शाब्धिकमहालयान् । जनन्यामपि जीवंत्यामेष धर्मः सनातनः ” ॥

व्याघ्रोऽपि—

“ न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः । इंदुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्तीयते हि सः ” ॥ इति । ३०

कार्ष्णाजिनिः—

“ दर्शं स्नात्वा पितृभ्यस्तु दद्यात्कृष्णतिलोदकम् । अन्नं च विधिवद्द्यात्संततिस्तेन वर्धते ॥

“ दर्शश्राद्धमतिक्रम्य यो भुंक्ते तु नराधमः । चंडालत्वमवाप्नोति जन्मानि नव पंच च ” ॥ इति ।

पितामहोऽपि—

“अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु च । विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणः प्रायश्चित्तीयते तु सः ” ॥ इति ।
व्यतीपातलक्षणमुक्तं माधवीये—

“श्रवणाश्विनिष्ठाद्र्नागदैवतमस्तकैः । यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते” ॥ इति ।
नागदैवतमाश्लेषानक्षत्रम् । मस्तकं मृगशिरः । यद्यमावास्या श्रवणादीनामन्यतमनक्षत्रेण रविवारेण
५ च युक्ता स व्यतीपात इत्यर्थः । एतेषु वचनेषु नित्यत्वसाधकनित्यादिपदश्रवणादर्शाष्टकादि-
श्राद्धं नित्यम् । नित्यत्वसाधकानि च कालनिर्णये दर्शितानि—

“नित्यं सदा यावदायुर्न कदाचिदतिक्रमेत् । इत्युक्त्यातिक्रमे दोषश्रुतेरत्यागचोदनात् ॥
“फलश्रुतेर्वीप्सया च तन्नित्यमिति कीर्तितम्” ॥ इति । अत्र चोद्देश्यदेवताः पितृपितामहाप्रपिता
महाः । मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहाश्च

१० “दर्शश्राद्धं तु यत्प्रोक्तं पार्वणं तत्प्रकीर्तितम् । सपिंडीकरणं कृत्वा कुर्यात्पार्वणवत्सदा ” ॥ इति
शातातपस्मरणात् । “त्रीनुद्दिश्य तु यत्तद्धि पार्वणं मुनयो विदुः ” इति कण्वस्मरणाच्च
दर्शश्राद्धस्य पार्वत्वेन तत्र पित्रादीनां त्रयाणामुद्देश्यत्वम् ।

“पितृन्मातामहान्श्चैव द्विजः श्राद्धेन तर्पयेत् । अतृणः स्यात्पितृणां तु ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥

“कृत्वा तु पैतृकं श्राद्धं पितृप्रभृतिषु त्रिषु । कुर्यान्मातामहानां च तथैवानुष्ठानकारणात् ॥

१५ “पितरो यत्र पूज्यंते तत्र मातामहा अपि । अविशेषेण पूज्याः स्युर्विशेषाच्चरकं व्रजेत् ॥

“पार्वणं कुरुते यस्तु केवलं पितृहेतुतः । मातामहाश्च कुरुते पितृहा स प्रजायते ” ॥

याज्ञवल्क्येन कालास्तु अमावास्यादिनोदितः

“अविशेषेण पित्र्यस्य तथा मातामहस्य च । अमावास्यादिकालेषु तद् ज्ञेयं न मृतेऽहनि ॥

“अमावास्यादिकालेषु कालैकत्वात्सह क्रिया । मृताहनि तु तद्भेदाच्च युज्येत्तु सह क्रिया ॥

२० “कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाग्रश्राद्धषोडश । प्रत्याब्धिकं च शेषेषु पिंडाः स्युः षडिति स्थितिः ” ॥
इत्यादिस्मरणादर्शमहालायादिषु मातामहादीनां त्रयाणामप्युद्देश्यत्वं सिद्धम् । न चात्रः मात्रादीनां
मातामहादीनां च पृथगुद्देश्यत्वमस्ति । ‘अष्टकासु च वृद्धौ च’ इत्यादिना अष्टकादिभ्योऽन्यत्र
दर्शादिश्राद्धे तन्निषेधस्योक्तत्वात् । न च ‘अन्यत्र पतिना सह’ इति वचनात्सपत्नीकानां वरणं
कार्यमिति वाच्यम् । तासामुद्देश्यत्वाभावेऽपि पतिभोजनेन सह तासामपि तृप्तिर्भवतीति चंद्रिकादौ

२५ तस्य व्याख्यातत्वात् । अतोऽष्टकादिभ्योऽन्यत्र दर्शादौ पृथगुद्देश्यत्वं सपत्नीकत्वेनोद्देश्यत्वं च
नास्तीति निबंधनेषु निर्णीतम् । यत्तु

“सपत्नीकत्वहानेऽपि पितुर्दर्शं समाचरेत् । पितामहादिषु तथा सपत्नीकत्वसंभवात् ” ॥ इति
तन्मातरि जीवंत्यामपि पित्रादीनां पितामहादीनां तिसृणां च दर्शं पिंडतिलोदकदानं कार्यमित्येवं
परम् । तदुक्तं चंद्रिकायाम्—

३० “न मातृषु पृथक्श्राद्धं मुनिभिर्भ्यत्र कीर्तितम् । पत्युः पिंडोदकं साध्वी भुंक्ते याऽनपकारिणी ” ॥
यत्तु विष्णुवचनम्—“यानुद्दिश्य भवेच्छ्राद्धं तेभ्यस्तर्पयति द्विजः ” इति तत्प्रत्याब्धिक-
विषयम् ।

“प्रत्यब्दांगं तिलं दद्यान्निषिद्धेऽपि परेऽहनि । वर्गेकस्य वचो येषामन्येषां तु विसर्जयेत्” ॥ इति
स्मरणात् । येषां वच उद्देश्यत्वोक्तिरित्यर्थः । एवं चामावास्यायां मात्रादीनामुद्देश्यत्वं नास्ति ।

पित्रादीनां भोजने सपत्नीकत्वेन वरणमपि नास्ति । तिलोदकं पिंडदानं च अस्ति मात्रादीनां मातामह्यादीनां च । शिष्टाचारोऽपि तथैवेत्याहुः । स्मृत्यन्तरे—

“स्वभर्तृप्रभृतिभिः स्वपित्रादिभ्य एव च । विधवा कारयेच्छ्राद्धं नित्यं नैमित्तिकं तथा” ॥ इति । तिलोदकं दर्शं श्राद्धात्पूर्वं कार्यम्

“अमाष्टकासु संक्रांतौ पातादौ ग्रहणेषु च । स्नात्वा तिलोदकं दत्त्वा ततः श्राद्धं समाचरेत् ॥ ५

“दर्शं तिलोदकं पूर्वं पश्चाद्दद्यान्महालये । प्रत्यहं तु कृते श्राद्धे परेऽहनि तिलोदकम् ” ॥

इत्यादि स्मरणात् । दर्शप्रत्याब्दिके सति विशेष उक्तः स्मृत्यन्तरे—

“आब्दिके समनुप्राप्ते दर्शश्चित्तर्पणं न हि । ब्राह्मणान्भोजयेत्पूर्वं पिंडात्पूर्वं तु तर्पणम् ” ॥ इति । हारीतः—

“वसित्वा वसनं शुक्लं स्थल आस्तीर्णवर्हिषि । विधिज्ञस्तर्पणं कुर्यात्सर्वान्पितृगणांस्तथा ” ॥ इति । १० स्मृत्यन्तरे—

“दर्शं तिलोदकं दद्याच्छुष्कवासा जलाद्ब्रुहिः । तर्पयेद्दर्द्रवासाश्चेत् त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ” ॥

मरीचिः—“उपरागे पितृश्राद्धे तीर्थेऽमायां च संक्रमे । निषिद्धेऽपि हि सर्वत्र साक्षतैस्तर्पयेत्तिलैः” ॥

कात्यायनः—“सव्यान्वारब्धेन पाणिना तर्पयेत्तिलाभावे सुवर्णेन दर्भैर्वा यत्राशुचिस्थलं वा दर्भहीनं वा काममप्सु तर्पयेत् । तिलग्रहणे तर्जन्यगुष्ठयोगं वर्जयेत् । सा राक्षसी मुद्रा । १५ दक्षिणांगुष्ठेनैवांजलौ तिलान्प्राक्षिपेत् ” ॥ इति । योगयाज्ञवल्क्यः—

“आवाह्यं पूर्वं तन्मंत्रैरास्तीर्य च कुशाञ्जुमान् । गोत्रनामस्वधाकारैस्तर्पयेदनुपूर्वशः ” ॥ इति

“आयात पितरः ” इति पितृनावाह्य “सकृदाच्छिन्नम्” इति दर्भानास्तीर्य तेषु वत्सगोत्रान् यज्ञशर्मणः पितृन्स्वधा नमस्तर्पयामि इति तर्पयेदित्यर्थः । चन्द्रिकायाम्—

“सच्यं जानु ततोऽन्वाच्य पाणिभ्यां दक्षिणामुखः । तल्लिङ्गैस्तर्पयेन्मन्त्रैः सर्वान् पितृगणांस्तथा ॥ २०

“उद्दीरतामंगिरस आर्यत्वित्यूर्जम् इत्यपि । पितृभ्य इति ये चेह मधुवाता इतित्यृचम् ॥

“पितृन्ध्यायनप्रसिंचेद्वै जपेन्मन्त्रान्यथाक्रमम् । तृप्यध्वमिति च पठेत्ततः प्रांजलिरानतः ॥

“नमो व इति जप्त्वा वै ततो मातामहानपि । तर्पयेदान्वशंस्यार्थं परमं धर्ममास्थितः ॥

“गोत्रनामस्वधाकारैस्तर्पयेदनुपूर्वशः ” ॥ इति । स्मृत्यन्तरे—

“तर्पयेत् तिलसंमिश्रं पितृनुदिश्य वाग्यतः । आसीनः प्राङ्मुखः कुर्यादक्षिणाभिमुखोऽजलिम्” ॥ इति । २५

अत्र प्राङ्मुखत्वदक्षिणाभिमुखत्वयोर्विकल्पः । सर्वमेतन्निरूपितमधस्तात् । जीवपितृको मातरि भृतायामपि दर्शादिश्राद्धं तर्पणं च न कुर्यात् । प्रमीतपितृकस्तु जीवंत्यामपि मातरि कुर्यात् ।

तत्र लोकाक्षिः—

“अमाश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । न जीवपितृकः कुर्यात्तिलैः कृष्णैश्च तर्पणम् ॥

“प्रमीतपितृकः कुर्याद्दर्शाब्दिकमहालयान् । जनन्यामपि जीवंत्यामेष धर्मः सनातनः” ॥ ३०

क्रतुश्च—“अन्वेषकासु संक्रांतौ मन्वादिषु युगादिषु । चंद्रसूर्यग्रहे पाते स्वेच्छया पूज्ययोगतः ॥

“जीवत्पिता नैव कुर्याच्छ्राद्धं काम्यं तथाखिलम् ” ॥ इति । कात्यायनः—

“सपितुः पितृकृत्येषु ह्यधिकारो न विद्यते । न जीवन्तमतिक्रम्य किंचिद्दद्यादिति श्रुतिः ” ॥ इति ।

कालादर्शेऽपि—“न जीवपितृकः कुर्यात् श्राद्धं दर्शादि चोदितम्” ॥ इति । अस्यापवाद उक्तस्तत्रैव—

“ पित्रेष्ट्यां पितृयज्ञे च वृद्धौ मातृमृतेऽहनि । विप्रसंपदि तीर्थेषु सोऽपि श्राद्धं समाचरेत् ॥
 “ पितुर्या देवता प्रोक्तास्ता एवात्र च देवताः । मृताहे मातरः शेषे सर्वा एव प्रकीर्त्तिताः ” ॥ इति ।
 पित्रेष्ट्यां चातुर्मास्येषु पित्रेष्टिर्नामास्ति । तस्यां पितृयज्ञे पिंडपितृयज्ञे । वृद्धौ विवाहादिनिमित्ताया
 मातृमृताहे । विप्रसंपदि त्रिमधुस्त्रिसुपर्ण इत्यादिगुणयुक्तविप्रसंभवे । तीर्थेषु महानदीस्नानेषु च
 गयास्थानस्य तीर्थत्वेऽपि निषेधान्न तत्र कुर्यात् । सोऽपि जीवत्पिता पितृश्राद्धं कुर्यात् । पितृकर्तृक
 श्राद्धे या देवताः प्रोक्तास्ता एवात्र पुत्रकर्तृकेऽपि श्राद्धे देवताः । मातृमृताहे मातरो देवताः ।
 शेषे पित्रेष्ट्यादिश्राद्धकर्मणि सर्वा देवता इत्यर्थः । तदुक्तं मैत्रेयगृह्यपरिशिष्टे—

“ उदाहे पुत्रजनने पित्रेष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः ॥

“ महानदीषु तीर्थेषु सर्वासु च गयामृते । जीवत्पिताऽपि कुर्वीत श्राद्धं पार्वणधर्मवत् ” ॥ इति ।

१० हारितः—

“ येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत सामिकः । अनमिकोऽपि कुर्वीत जन्मादौ वृद्धिकर्मणि ” ॥ इति ।
 व्याध्यादिनिमित्ताशक्त्या सर्वांगयुक्तं श्राद्धं कर्तुमक्षमो दर्शद्वौ संकल्पश्राद्धं कुर्यात् ।
 कालादर्शे—

“ अशक्त्या पावर्ण श्राद्धं यथावत्कर्तुमक्षमः । पिंडार्घ्यादिविहीनं तु संकल्पश्राद्धमाचरेत् ” ॥ इति ।

१५ स्मृत्यंतरेऽपि—

“ अङ्गानि यस्तु दशदिर्ददा कर्तुं न शक्नुयात् । संकल्पश्राद्धमेवासौ कुर्याद्वर्णादिवर्जितम् ” ॥ इति ।
 आपस्तम्बेऽपि— “ संकल्पश्राद्धे अर्घ्यावाहनाग्निकरणपिंडदानानि वर्जयेत् ” ॥ इति । संग्रहे—

“ संकल्पं तु यदा कुर्यान्न कुर्यात्पात्रपूरणम् । विकिरश्च न दातव्यः पिंडांश्चैव न निर्वपेत् ” ॥ इति ।
 शातातपः— “ पिंडनिर्वापरहितं यत्तु श्राद्धं विधीयते । स्वधानयनलोपोऽत्र विकिरश्च विलुप्यते ।

२० “ अक्षय्यदक्षिणास्वास्ति सौमनस्यं यथास्थितम् ” ॥ इति । स्मृत्यंतरे—

“ आवाहनाग्नौकरणं स्वधानिनयनं तथा । विकिरं पिंडदानं च संकल्पे पंच वर्जयेत् ” ॥ इति ।

“ अज्ञश्चेदप्यवेलायामापदि ब्रह्मवित्तमः । संकल्पेन विधानेन कुर्याच्छ्राद्धं न पार्वणम् ” ॥ इति

आवाहनशब्देन मंत्रावाहनमुच्यते । मानसावाहनस्य न निषेधः । स्वधानिनयनमर्घ्यदानम् ।
 शेषं व्यक्तम् ।

२५ दर्शश्राद्धकालनिर्णयः । अथ दर्शश्राद्धकालः । पार्वणत्वात्तस्य कर्मकालत्वमपराहस्य
 कुतपस्य प्रारंभकालत्वमित्येतदाब्दिके निर्णये प्रपञ्चितम् । तथा सत्यपराहस्य मुख्यकर्मकालत्वा-
 त्पूर्वधुरेव वापरेधुरेव वाऽपराहव्यापिन्यमावास्या गृहीतव्या । पूर्वधुरेवापराहव्याप्तौ जावालिः—
 “ पूर्वाह्णे चेदमावास्या नापराह्णे भवेद्यदि । भूतविद्भैव सा ग्राह्या पितृकार्येषु सर्वदा ” ॥ इति ।
 प्रतिपदि पूर्वाह्णे भवेच्चेदपराह्णे यदि न भवेदित्यर्थः । तथा—

३० “ प्रतिपद्यम्यामावास्या पूर्वाह्णव्यापिनी यदि । भूतविद्भैव सा ग्राह्या पित्र्ये कर्माणि सर्वदा ” ॥ इति ।
 हारीतोऽपि—

“ सस्यां संध्यागतः सोमो मृणाल इव दृश्यते । अपराह्णे तदा तस्यां पिंडानां करणं ध्रुवम् ” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः — “ यो यस्य विहितः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः ” ॥ इति ।

यत्तु कार्ष्णाजिननोक्तम्—

“भूतविद्धाममावास्यां मोहादज्ञानतोऽपि वा । श्राद्धकर्मणि ये कुर्युस्तेषामायुः प्रहीयते” ॥ इति । तदपराणहव्याप्त्यभावविषयं द्रष्टव्यम् । अपराणहव्यापिन्या उत्तरतिथेर्ग्राह्यतामाह हारीतः—
“अपराणहः पितृणां तु याऽपराणहानुयायिनी । सा ग्राह्या पितृकार्ये तु न पूर्वाणहानुयायिनी” ॥ अस्तमयकालव्यापिनी पूर्वा न ग्राह्येत्यर्थः । उभयत्रापराणहव्यापित्वं द्वेधा भिद्यते । एकदेशेन ५ कात्स्न्येन वेति । एकदेशव्याप्तिश्च द्वेधा भिद्यते । वैषम्येण साम्येन चेति । तत्र वैषम्येणैकदेश-
व्याप्तौ महत्त्वेन निर्णयः

“अपराणहद्वयव्यापिन्यमावास्या यदा भवेत् । तत्राल्पत्वमहत्वाभ्यां निर्णयः पितृकर्मणि” ॥ इति स्मरणान्महत्त्वेन ग्राह्येत्यभिप्रायः । तथा च शिवराघवसंवादे—

“अल्पापराणहे त्याज्याऽमा ग्राह्या स्यादधिका भवेत्” ॥ इति । साम्येनोभयत्रैकदेशव्याप्ति- १० स्तुतिविधौ तृद्विंशत्यसाम्यैस्त्रिधा भिद्यते । तत्र सर्वादिशास्त्रेण निर्णयः । सर्वादिवाक्यं च पूर्व-
मुक्तम् । तच्च सर्वतिथिसाधारण्येन प्रवृत्तत्वादमावास्यायामपि वर्तते । तथाऽमावास्यायामेव विशेषेण शिवराघवसंवादे स एवार्थो दर्शितः—

“अमावास्या तु या हि स्यादपराणहद्वये समा । क्षये पूर्वा परा वृद्धौ साम्येऽपि च परा स्मृता” ॥ इति । स्मृत्यन्तरेऽपि—

“तिथिक्षये सिनीवाली तिथिवृद्धौ कुहूर्मता । साम्येऽपि च कुहूर्जेया वेदवेदांगवेदिभिः” ॥ इति । चतुर्दशीमिश्रा सिनीवाली प्रतिपन्मिश्रा कुहूः । तथा च व्यासः—

“दृष्टचंद्रा सिनीवाली नष्टचंद्रा कुहूर्मता” ॥ इति । नारदोऽपि—

“अपराणहद्वयव्यापिन्यमावास्या यदा भवेत् । क्षये पूर्वा तु कर्त्तव्या वृद्धौ साम्ये तथोत्तरा” ॥ इति । कात्स्न्येनोभयत्रापराणहव्याप्तावपि तिथिवृद्धित्वात्कुहूरेव ग्राह्या । यदा दिनद्वयेऽप्यपराणहं न २० स्पृशति तदा सामान्यनग्निभेदेन व्यवस्था द्रष्टव्या । तथाह जाबालिः—

“अपराणहद्वयव्यापी यदि दर्शः तिथिक्षये । आहिताग्नेः सिनीवाली निरग्न्यादेः कुहूर्मता” ॥ इति । आदिशब्दात्स्त्रीशूद्रयोर्ग्रहणम् । तथा च लोकाक्षिः—

“सिनीवाली द्विजैः कार्या सामिकैः पितृकर्मणि । स्त्रीशूद्रैश्च कुहूर्जेया तथा चानग्निकैर्द्विजैः” ॥ इति । एवं शास्त्रार्थे व्यवस्थितं सति अन्यानि बहुविधानि सर्वाणि वचनानि प्रोक्तेषु अमावास्याभेदे- २५ ष्वन्यतमविषयत्वेन यथायोग्यं योजनीयानि । तथा हि तत्र तावद्धोधायन आह—

“मध्यान्हात्परतो यत्र चतुर्दश्यनुवर्तते । सिनीवाली तु सा ज्ञेया पितृकार्येषु निष्फला” ॥ बृहस्पतिरपि—

“मध्यान्हात्वा त्वमावास्या परस्तात्संप्रवर्तते । भूतविद्धा तु सा ज्ञेया न सा पंचदशी भवेत्” ॥ इति । अत्र मध्यान्हाद्वृद्धमपराणहमतिक्रम्य परस्तादमावास्या प्रवर्तते इति व्याख्येयम् । तदेतद्वचनद्वयं ३० परेद्युरेवापराणहव्याप्तौ योजनीयम् । यत्तु बोधायनवचनम्—

“घटिकैकाऽप्यमावास्या प्रतिपत्सु न चेत्तदा । भूतविद्धैव सा ग्राह्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि” ॥ इति । प्रतिपत्सु घटिकैकापि कर्मकालसंबन्धिनी यदि न स्यादित्यर्थः । तदेतद्वचनं पूर्वद्युरेवापराणहव्याप्तौ द्रष्टव्यम् । यच्च हारीतेनोक्तम्—

“पूर्वाणहे चंदमावास्या अपराणहे न चेत्तु सा । प्रतिपद्यपि कर्त्तव्यं श्राद्धं श्राद्धविदो विदुः” ॥ इति ।

दिनद्वयेऽप्यपराणहव्यापित्वाभावे सति कुतपकालव्यापित्वेन अनग्निकेन परदिने कर्तव्यमित्येवं-
परम् । तथा च तैनेवोक्तम्—

“भूतविद्धा त्वमावास्या प्रतिपन्मिश्रिताऽपि वा । पित्र्ये कर्मणि विद्वद्भिर्ग्राह्या कुतपकालिकी” ॥ इति ।

श्लोकगौतमोऽपि—

५ “पूर्वाणहे चेत्प्रतिपदो भूते सायममा यदि । आरभ्य कुतपे श्राद्धं रौहिणं नैव लंघयेत्” ॥ इति ।
भृगुरपि—

“मध्यंदिनं पितृणां यदमावास्यांत्यलितिका । तस्माद्यदन्हि पर्वतस्तत्र श्राद्धं समाचरेत्” ॥ इति ।
यत्र मध्याह्ने दर्शवसानं तत्र श्राद्धमित्यर्थः । यत्तु भरद्वाजवचनम्—

“यदि संगवकालस्पृगमावास्यांत्यनाडिका । तदा तस्मिन्दिने श्राद्धं कुर्यात्पूर्वेद्युरन्यथा” ॥ इति ।

१० यदपि नारदवचनम्—

“संगवस्पृगमावास्या चेदह्न्येव पार्वणम् । ऊना चेद्धटिकाषट्पाद्भवेत् पूर्वदिने विधिः” ॥ इति ।
तदमाश्राद्धविषयम् । तच्च वक्ष्यते । यत्तु हारीतवचनम्—

“कन्यामकरमीनेषु तुलायां मिथुने तथा । भूतविद्धैव सर्वेषां पूज्या भवति यत्नतः” ॥ इति ।
तद्वतविषयम् । तथा च जाबालिः—

१५ “तुलायां मकरे मीने कन्यायां मिथुनेऽप्यमा । भूतविद्धा व्रते ग्राह्या शेषेषु प्रतिपद्युता” ॥ इति ।
सर्वमेतत्संगृहीतं कालनिर्णये—

“श्राद्धेऽपराणहकालीनो दर्श आब्धिकवन्मतः । दिनद्वयेऽप्येकदेशवृद्धो ग्राह्यो महत्त्वतः ॥

“तुल्यत्वं चेदेकदेशे क्षये पूर्वोऽन्यथोत्तरः । कृत्स्नव्याप्तौ द्वयोरन्होरुत्तरास्तिथिवृद्धितः ॥

“साग्न्यनग्निव्यवस्था स्यान्न स्याच्चेदपराणहयोः । पूर्वेषुः साग्निकः कुर्यादुत्तरेद्युरनग्निकः” ॥ इति ।

२० अत्र दिनद्वयेऽप्यपराणहे स्पर्शाभावपक्षे साग्न्यनग्निव्यवस्था कृता षड्धर्मीये—

“दर्शो यत्रापराणहं स्पृशति स दिवसः श्राद्धकालो द्वयोश्चेत्

“यत्रानल्पः स तु स्याद्यदि भवति समः क्षीयमाणे तु पूर्वः ।

“वृद्धौ साम्येऽप्यनग्न्येवतिवृषलयोश्च श्व एवाहिताग्नेः

“पूर्वो न त्वापराणहं स्पृशति स कुतपः श्राद्धकालः प्रशस्तः” ॥ इति । पूर्वदिने परदिने

२५ वाऽपराणहस्पर्शे तदेव दर्शस्पर्शयुक्तं दिनं ग्राह्यम् । उभयत्र स्पर्शे यत्रापराणहे दर्शस्पर्शोऽनल्पः
अधिकः तदेव दिनं ग्राह्यम् । द्वयोरपराणहयोः स्पर्शसाम्ये क्षयपक्षे सर्वैः पूर्वदिनं ग्राह्यम् । वृद्धौ
साम्ये च साग्नेः पूर्वं निरग्नेस्त्रीशूद्रयोश्च परदिनं ग्राह्यमित्यर्थः । प्रकारान्तरमुक्तं कालादर्शे—

“अमावास्या द्विधा शुद्धा भूतविद्धा च सा पुनः । चतुर्थी प्रतिपद्येव भूत एवापराणहिकी ॥

“तथा विद्धोभयत्र स्यादुभयत्र तथाविधा । शुद्धा निःसंशया विद्धा प्रथमा परकालिकी ॥

३० “द्वितीया तु भवेत्पूर्वा तृतीया तु तिथेः क्षये । साग्न्यनग्निस्त्रीशूद्राणां पौर्वापर्यात् व्यवस्थिता ॥

“वृद्धौ परैव सर्वेषां सैव साम्येऽपि संमता । चतुर्थ्यपि परा ग्राह्या यत्सा कुतपकालिकी” ॥ इति ।

उभयत्रापराणहिकी तृतीया सा अमावास्याक्षये आहिताग्नेः पूर्वा अनग्न्यादीनां परा तिथि
वृद्धौ साम्ये च परैवेत्यर्थः । अत्र कृत्स्नापराणहव्यापित्वे तदेकदेशव्यापित्वेऽप्ययमेव निर्णय
इति स्पर्शाधिक्यमनादृत्योक्तम् । एतत् “तत्राल्पत्वमहत्त्वाभ्यां निर्णयः पितृकर्मणि” इत्यादि

३५ स्मरणादुपेक्ष्यम् ।

एवं च पूर्वत्र वा परत्र वैकस्मिन्दिने अमावास्यास्पर्शे अपराणहे सति तदेव ग्राह्यम् । दिनद्वयेऽप्येकदेशवैषम्येणापराणहव्याप्तौ यत्राधिकव्याप्तिस्तदेव ग्राह्यम् । साम्येनैकदेशव्याप्तौ अमावास्याक्षये पूर्वदिनं वृद्धौ उत्तरदिनं दिनद्वयेऽपि कृत्स्नापराणहव्याप्तावुत्तरदिनं दिनद्वयेऽप्यपराणहस्पर्शाभावे आहिताग्नेः पूर्वदिनमनाहिताग्नेः स्त्रीशूद्राणां परादिनमिति कालनिर्णयोक्तदर्शनिर्णयः शिष्टसंमतः । आहिताग्नेर्दर्शश्राद्धमेव मासिश्राद्धं नापरमित्याह मनुः (३।१२२) —

“पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चंद्रक्षयेऽग्निमान् । पिंडान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥

“पिंडानां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः । न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ॥” इति ।

अग्निमान्विप्रः आहिताग्निः द्विजश्चंद्रक्षये अमावास्यायां पितृयज्ञं श्रौतं पिंडपितृयज्ञं निर्वर्त्य पिंडान्वाहार्यकं पिण्डपितृयज्ञांगभूतानां पिंडानामनु पश्चादाहार्यं प्रयोज्यम् । आहार्यमेवाहार्यकं मासानुमासिकं प्रतिमासं कुर्यान्मासिकं श्राद्धं मासिश्राद्धमेव पिंडानामन्वाहार्यं पश्चात्प्रयोज्यं विदुर्बुधाः । दर्शश्राद्धेन विना मासिश्राद्धं नापरमित्यर्थः । अस्य कालमाह कात्यायनः —

“पिंडान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते । वासरस्य तृतीयेशो नातिसंध्यासमीपतः ॥

“अष्टमेशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चंद्रमाः । अमावास्याष्टमांशे च पुनः क्लीलौ भवेद्गुः ॥” इति ।

अत्र ‘नातिसंध्यासमीपतः’ इति सायंकालस्य निषेधादपराणहः कर्मकाल इति कालनिर्णये व्याख्यातम् । यत्तु गौतमवचनम् —

“अमावास्योदये यत्र विद्यते तत्र वासरे । प्रतिपद्यपि कुर्वीत श्राद्धकर्म विशेषतः ॥” इति ।

यच्च बृहस्पतिवचनम् —

“अमावास्या कलामात्रमुदये यत्र विद्यते । तत्र स्नानजपश्राद्धव्रतहोमादि कारयेत् ॥” इति ।

तत्र श्राद्धशब्दः पिंडपितृयज्ञपरः । अन्यथा “सिनीवाली द्विजैर्ग्राह्या साम्रिकैः पितृकर्मणि ॥”

इतिवचनविरोधप्रसंगात् । एवं च प्रतिपदिने किंचिदमावास्यासंबंधेऽपि तत्र पिंडपितृयज्ञः पूर्वदिने २०

श्राद्धं कर्तव्यम् । न चेवं “पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य” इति पितृयज्ञस्य पूर्वभावित्ववचनं विरुध्यतेति शंकनीयम् । तस्य प्रायिकमभिप्रायत्वात् । न पुनः सर्वत्र कृतपिंडपितृयज्ञस्यैवाग्निमतः श्राद्धाधिकार इति मनुना नियम्यते । परमार्थतस्तु पितृयज्ञशब्दस्तर्पणपरः । तथा च अत्युपुराणे —

“पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य तर्पणाख्यं तु योऽग्निमान् । पिंडान्वाहार्यकं कुर्याच्छ्राद्धमिदुक्षये सदा ॥” इति ।

आहिताग्नेर्ब्राह्मणभोजनात्मकमपि श्राद्धं नावश्यकं तत्कलस्यान्यथासिद्धत्वादित्याह

मनुः (३।२९९) —

“यदेवं तर्पयत्यग्निः पितृन् स्नात्वा द्विजोत्तमः । तेनैव सर्वमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥” इति ।

तेन आहिताग्निविहितेन पितृयज्ञेनैव ब्राह्मणभोजनात्मकश्राद्धफलमाप्नोतीत्यर्थः । एवं चाहिताग्नेस्तिलतर्पणं पिंडपितृयज्ञश्चावश्यकः । ब्राह्मणभोजनात्मकं पिंडान्वाहार्यकश्राद्धं तु वैकल्पिकमित्युक्तं भवति ।

पिंडान्वाहार्यकश्राद्धं प्रकृत्य जीवपितृकस्य पिंडदाने विशेषमाह मनुः (३।२२०) —

“अथिमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् । विप्रवद्वापि तच्छ्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥

“पिता यस्य तु वृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः । पितुः स्वनाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रापितामहम् ॥

“पितामहोऽपि तच्छ्राद्धं भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः । कामं वा तदनुज्ञातो युक्तमेव समाचरेत् ॥” इति ।

विप्रवन्निमंत्रितविप्रवद्भूतः मृतपितुः पितामहस्य वा भोजनपक्षे द्वयोरेव पिंडदानम् । पिंडदानस्थाने भोजनविधानात्

“ जीवमानेन देयं स्याद्यस्मात् भरतसत्तम । तस्माज्जीवपिता कुर्यात् द्वाभ्यामेव न संशयः ” ॥ इति भविष्यत्पुराणवचनाच्च । “पितुः स्वनाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम्’ इत्यस्मिन्पक्षे प्रपितामह-

५ पितुरपि पिंडं दद्यात् । ‘ त्रिषु पिंडः प्रवर्तते ’ इति नियमात् । “कामं वा तदनुज्ञात” इत्यनेन पक्षांतरमुक्तम् । तदनुज्ञातः युक्तसमाचरणं चात्र पितामहस्यापि पिंडदानं समस्तपिंडविलोपो वा कुतः पक्षांतरस्यासंभवादिति मानवे व्याख्यानेऽभिहितम् । तथा निगमे—“ यो वा जीवति पितृणां तं भोजयेत्पितृस्थान इत्येके जीवतामजीवतां वा देयमेवेति हिरण्यकेतुः ” इति । ततश्च “ सपितुः पितृकृत्येषु ह्यधिकारो न विद्यते । न जीवन्तमतिकम्य किंचिद् दद्यादिति श्रुतिः ” इति

१० कात्यायनवचनं आहिताग्निकर्तृकपिंडान्वाहार्यकश्राद्धे न प्रवर्तते । तथा च सुमंतुः—

“ न जीवपितृकः कुर्याच्छ्राद्धमिष्टिमृते द्विजः । येभ्य एव पिता दद्यात् तेभ्यः कुर्वीत सामिकः ॥

“ सामिकोऽपि न कुर्वीत जीवति प्रपितामहे ” ॥ इति प्रपितामहग्रहणं पितृपितामहोपेत-प्रपितामहप्रदर्शनार्थम् । अत एव विष्णुः (७५।२)—“ पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव दद्यात् ” इति । स एव (७१।१)—“ पितरि जीवति श्राद्धं कुर्यात् । स येषां पिता कुर्या-

१५ तेषां कुर्यात्पितरि पितामहे च येषां पितामहः ” । इति पित्रादिषु द्वयोरेकस्य वा मरणेऽपि तेनैवोक्तम् (७५।४-७)—“ यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिंडं निधाय प्रपितामहात्परं द्वाभ्यां दद्यात् । यस्य पितामहः प्रेतः स्यात्स तस्मै पिंडं निधाय प्रपितामहात्परं द्वाभ्यां दद्यात् । यस्य पितामहः प्रपितामहश्च प्रेतौ स्यातां स पित्रे पिंडं निधाय पितामहात्परं द्वाभ्यां दद्यात् ” इति ।

पिंडपितृयज्ञेऽप्याह । यज्ञपाद्वर्षः—

२० “ होमांतः पितृयज्ञः स्याज्जीवे पितरि जानतः । पितरं भोजयित्वाऽपि पिंडौ निर्वृणुयात्परौ ॥

“ उभौ यस्य व्यतीतौ तु जीवेच्च प्रपितामहः । पिंडौ निर्वृणुयात्पूर्वौ भोजयेत्प्रपितामहम् ” ॥ इति यमो विशेषमाह—

“ पित्र्यं जीवपितुर्नोक्तमग्नौ होमोऽपि पाक्षिकः । येभ्यो वाऽपि पिता तेभ्यो दद्याद्वैतानकर्मणि ॥

“ दद्यात्तेभ्यः परेभ्यस्तु जीवेच्च त्रितयं यदि ” ॥ इति । पित्र्यं पिंडदानम् । वैतानकर्मणि पिंडपितृ-

२५ यज्ञे इत्यर्थः । भविष्यत्पुराणे तु निषेधः कृतः—

“ प्रत्यक्षमर्चनं श्राद्धे निषिद्धं मनुब्रवीत् । पिंडनिर्वापणं चापि महापातकसंमितम् ” ॥ इति ।

मनुत्र ज्ञानवान् । मनुना प्रत्यक्षार्चनस्योक्तत्वात् । आपस्तंबः—“ यदि जीवपिता न दद्यादा होमात्कृत्वा विरमेत् ” ॥ इति । आश्वलायनस्तु—“ पिंडान्निर्वृणुयात्पराचनिपाणिः पित्रे पितामहाय प्रपितामहायैतत्तेऽसौ ये च त्वामन्विति तस्मै येषां प्रेताः स्युः ” ॥ इति ।

३० गणकारिकः—

‘ प्रत्यक्षमितरानर्चयेत्तदर्थत्वात्सर्वेभ्य एव निर्वृणुयात् ’ इति । तौल्वलिः—“ क्रियागुणत्वादपि जीवान्त आदिभ्यः प्रेतेभ्य एव वृणुयात् ” इति । गौतमः—“ क्रिया ह्यर्थकारिता उपाय-विशेषो जीवमृतानां न परेभ्योऽनधिकारात् पिंडं दद्यादितरांस्तु जीवतः प्रत्यक्षं न जीवेभ्यो वृणुयात् जीवांतर्हितेभ्यो जुहुयाज्जीवेभ्यः सर्वहुतं सर्वजीवनः ” इति । एषां पित्रादीनां

त्रयाणां मध्ये यो यः प्रेतस्तस्मै तस्मै निर्वृणुयात्पिण्डं दद्यादितरांस्तु जीवतः प्रत्यक्षमर्चयेत्परियेत् । तदर्थत्वात्पित्रादितृप्तिकरपिण्डार्थत्वात्प्रत्यक्षमर्चनस्येति गौणकारिमतम् । सर्वेभ्यः पित्रादिभ्यस्त्रिभ्यः जीवेभ्यः प्रेतेभ्यश्च निर्वृणुयात् । क्रियां प्रति तेषां पित्रादीनां गुणभूतत्वादिति तौल्वलिमतम् । अपि जीवान्ते पित्रादिषु त्रिषु मध्ये यो जीवति तदंते आ त्रिभ्यः प्रेतेभ्यः जीवाव्यवहितेभ्यः निर्वृणुयात् । क्रिया ह्यर्थकारिता । अर्थो मरणं तत्प्रवर्तिता यतः क्रियेति गौतममतम् । उपायेत्यादि । ५ जीवतां मृतानां च पिण्डदाने उपायशेषो वक्ष्यत इत्यर्थः । अत्रोपन्यस्तेषु पक्षेषु तावद्गौतममतं दूषयति 'न परेभ्यः' इति । पित्रादिभ्यस्त्रिभ्यः परेभ्यो न निर्वृणुयादनधिकारात्पित्रे दद्याति पितामहाय दद्याति प्रपितामहाय दद्याति इति श्रुतेः । तेभ्यः परेषां पिण्डदानेऽनाधिकार आहिताग्ने-रित्यर्थः । सर्वप्रतिषेधेऽप्यनधिकारादित्ययमेव हेतुः गौणकारिमतं दूषयति । न प्रत्यक्षमिति । प्रेतेभ्यो दद्यादिति श्रुतेः । 'प्रत्यक्षमर्चनं श्राद्धे निषिद्धं मनुब्रवीत्' इति स्मृतेश्च । तौल्वलि— १० मतं दूषयति न जीवेभ्य इति । सर्वपक्षानुगतं दूषणमाह 'न जीवांतर्हितेभ्यः' इति । अथोपाय-विशेष उच्यते । 'जुहुयाज्जीवेभ्यः' इति । पिण्डनिर्वापमन्त्रेण स्वाहान्तेन जीवेभ्यो जुहुयात् । प्रेतेभ्यो निर्वृणुयात् । सर्वे जीवनश्चेत्सर्वेषां पिण्डानां हवनमित्यर्थः । यथास्वसूत्रमिह व्यवस्था ।

अमायां योगविशेषः । अथान्यान्यप्यमावास्याविषयाणि वचनानि लिख्यन्ते ।
विष्णुपुराणे—

१५

“अमावास्या यदा मैत्रविशाखास्वातियोगिनी । श्राद्धे पितृगणस्तृप्तिमवाप्नोत्यष्टवार्षिकीम् ॥
“अमावास्या यदा पुष्ये रौद्रेऽथर्क्षे पुनर्वसौ । द्वादशाब्दं तथा वृत्तिं प्रयांति पितरेऽर्चिताः ॥
“वासवाजैकपादार्क्षे पितृणां वृत्तिमिच्छताम् । वारुणे चाप्यमावास्या देवानामपि दुर्लभा ॥
“न वस्वर्क्षेष्वामावास्या यदेतेष्ववनीपते ॥” इति । मैत्रमनूराधानक्षत्रं रौद्रमाद्रानक्षत्रं वासवं धनिष्ठा अजैकपादृक्षं पूर्वाभाद्रपदा वारुणं शतभिषकूनक्षत्रम् । तत्रैव—

२०

“माघासिते पंचदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन ।
“ऋक्षेण कालः स वः पितृणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप लभ्यतेऽसौ ॥
“गायन्ति चैतत्पितरः कदानु वर्षामवावृत्तिमवाप्य भूयः ।
“माघासितांते शुभतीर्थतोयैः यास्याम वृत्तिं तनयादिदत्तैः ॥
“काले धनिष्ठा यदि नाम तस्मिन्भवेत्तु भूपाल तदा पितृभ्यः ।
“दत्तं जलान्नं प्रददाति वृत्तिं वर्षायुतं तत्कुलजैर्मनुजैः ॥” इति । तस्मिन्काले माघासित-पंचदश्यामित्यर्थः । महाभारतेऽपि—

२५

“तत्रैव चेद्भाद्रपदस्तु पूर्वः काले तदा यत्क्रियते पितृभ्यः ।
“श्राद्धं परां वृत्तिमुपेत्य तेन युगान्सहस्रं पितरः पिबन्ति” ॥ इति । तत्रैव माघासितपंचदश्या-मित्यर्थः । महाभारत एव—

३०

“श्रवणाश्विधनिष्ठाद्वा नागदैवतमापतेत् । रविवारयुतामायां व्यतीपातः स उच्यते ॥
“व्यतीपाताख्ययोगोऽयं शतार्कग्रहसंनिभः ॥
“अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पुण्यमाधयोः । अर्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः ॥
“बुधवारेण योगोऽयं महोदय इति स्मृतः” । इति । अर्कः आदित्यवारः । पातः व्यतीपातः ।

संग्रहे—“पातस्यान्ते पूर्वभागस्त्वमायाः श्रोणामध्यं भास्करस्योदयश्च ।

“भानोर्वारे त्वेष चार्धोदयः स्यात्सौम्ये वारे तमन्हा पूर्वमाहुः” इति । एष भानुवारः । एषा अमातिथिर्वा न तु भास्करोदयमात्रं पूर्वोक्तभारतवचनात् । भास्करोदयसमये एतादृग्योग-
श्रेद्दिशेषः । उदयानन्तरममा चेदपि भारतवचनानुरोधेन योगे अर्धोदय एव । व्यासः—

५ “अमा वै सोमवारेण रविवारेण सप्तमी । चतुर्थी भौमवारेण विषुवैः सहशं फलम्” ॥ इति । शंखोऽपि—

“अमावास्या तु सोमेन सप्तमी भानुना सह । चतुर्थी भूमिपुत्रेण सोमपुत्रेण चाष्टमी ॥

“चतस्रस्तिथयस्त्वैताः सूर्यग्रहणसंनिभाः” ॥ इति । कालादर्शो संगृह्यैतदुक्तम्—

“भैत्रेद्राग्निस्वातियुक्ते दर्शे श्राद्धं करोति यः । प्रीतिं पितृणामादध्यात्सोऽलभ्यामष्टवार्षिकीम् ॥

“आदित्यपुष्यरौद्रक्षयुक्ते दर्शो यदा तदा । श्राद्धदः प्रीतिमादध्यात्पितृणां द्वादशाब्दिकम् ॥

१० “वारुणाजैकपाटक्षवासवैर्यद्यमा युता । तदा श्राद्धकृदादध्यात्पितृणां वृत्तिमुत्तमा ॥

“पूर्वभाद्रपदं प्राप्तामाध्यमाश्राद्धदो नरः । योगसाहस्रिकीं वृत्तिं पितृणामुपकल्पयेत् ॥

“वासवेन यदा युक्ता सैवास्यामन्नमंबु वा । दत्तं वर्षायुतं वृत्तिं पितृणां जनयेत् ध्रुवम् ॥

“रविवारसमेतायाममायां यदि वासवम् । वैष्णवं रौद्रमाहेयमाश्विनं च भवेदुडु ॥

“यस्माद्वतीपातयोगः शतार्कग्रहसंनिभः । अर्कश्रुतिव्यतीपातयुक्तामापुष्यमाषयोः ॥

१५ “असावर्धोदयो योगः कोट्यर्कग्रहसंनिभः । सोमवारयुतो दर्शः सूर्यग्रहणसंनिभः” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“अमा सोमेन भौमेन गुरुणा वा युता यदि । सा तिथिः पुष्कला नाम सूर्यग्रहणसंनिभा” ॥ इति ।
इत्यमावास्यानिर्णयः ।

अष्टकाश्राद्धनिरूपणम् । अथाष्टकाः । ताश्चतस्रः मार्गशीर्षादिमासचतुष्टयापरपक्षाष्टम्यः ।

२० तथा च शौनकः—“हेमंतशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टकाः” इति । अत्र विशेषमाह
विष्णुः (७४)—“अष्टकास्ति स्रः अष्टम्योऽन्वष्टक्याः पूर्वयुः प्रौष्ठपदे हेमंतशिशिरयो-
रपरपक्षेषु” इति । अन्वष्टक्या नवम्यः पूर्वयुः सप्तम्यः । कालादर्शे च—

“मार्गशीर्षे च पौषे च माघे प्रौष्ठे च फाल्गुने । कृष्णपक्षेषु पूर्वयुरन्वष्टक्यं तथाष्टमी” ॥

“इति तिस्त्रोष्टकास्तासु श्राद्धं कुर्वीत पार्वणम्” ॥ इति । अत्र पार्वणोक्त्या पित्रादीनां त्रयाणा-

२५ मुद्देश्यत्वम् । ‘अष्टकासु च वृद्धौ च’ इति पूर्वोक्तवचनेन मात्रादीनामपि तिसृणामुद्देश्यत्वम् ।
तथा च पितृदेवस्थाने—“अष्टकास्वष्टौ विप्रा द्वौ विप्रौ विश्वेदेवौ पित्रादयस्त्रयो मात्रादयस्त्रयः”
इति । “पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि” इति वचनात् मातामहादीनामपि त्रय
एको वेति केचित् । तन्न । अष्टानामेव विधानात् । आपस्तम्बः—“तमष्टथा कृत्वा
ब्राह्मणेभ्य उपहरति” इति । तात्पर्यदर्शने व्याख्यातमेतत्—अष्टथा कृत्वेति अष्टम्यो ब्राह्मणेभ्य

३० इति विधानम् । तेनेह ब्राह्मणैकत्वबाध इति । यस्त्वापस्तम्बेनोक्तम्—“या माध्याः पौर्णमास्या
उपरिष्ठाद्व्यष्टका तस्यामष्टमी ज्येष्ठया संपद्यते तामेकाष्टकेत्याचक्षते” इति । व्यष्टकाकृष्णपक्ष
इत्यर्थः । ‘एतदपूपं चतुःशरावम्’ इति इत्यादेर्वक्ष्यमाणप्रयोगस्य माघकृष्णाष्टम्यामेव
प्रापणार्थम् । न त्वष्टकांतरान्वष्टक्यादिनिरासार्थम् । तथा च तेनैवोक्तं—“श्वोभूतेन्यष्टकां
तस्या मासि श्राद्धेन कल्पो व्याख्यातः” इति । आश्वलायनः—

३५ “हेमन्तशिशिरतोस्तु चतुर्णामपि सत्तमः । समर्थैरष्टका कार्या कृष्णानामष्टमीषु च” ॥

“ एकस्यां ह्यशक्तेन कार्या गृह्यस्य वर्त्मना ” ॥ बोधायनोऽपि—“ उपरिष्ठान्माध्याः पौर्णमास्या अपरपक्षस्य सप्तम्यामष्टम्यां नवम्यामिति क्रियेतापि वाष्टम्यामेव ” इति । एतच्चाष्टकाश्राद्धं नित्यम् ।
“ अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु च । विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणः प्रायश्चित्तयते हि सः ” ॥ इति पितामहस्मरणात् । तथा चानुकल्पमाहाश्वलायनः—“ अप्यनुद्धो यवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोषेदेषाष्टकेति न त्वेवानष्टकः स्यात् ” इति । स्मृत्यन्तरेऽपि—
“ अपि वानूचानेभ्य उदकुंभमाहरेदपि वा श्राद्धमंत्रानधीयीत न त्वेवानष्टकः स्यात् ” ॥ इति ।
आश्वलायनस्मृतौ—

“ तिलोदकं प्रदातव्यं निर्धनेनातिभक्तिः । अष्टकाश्राद्धसिद्धयर्थं प्रोष्टपन्माघमासयोः ।
“ अष्टकां ये न कुर्वन्ति स्वशक्त्या मासयोस्तयोः । अन्त्यायां मध्यमायां वा सिताष्टम्यां यतात्मना ॥
“ ते विरूपा दरिद्राश्च भविष्यन्ति भवे भवे ” ॥

अथ महालयश्राद्धं निरूप्यते ॥ तत्र वृद्धमनुः—
“ नभस्यस्यापरः पक्षो यत्र कन्यां व्रजेद्विः । स महालयसंज्ञः स्याद्गजछायावह्यस्तथा ” ॥ इति ।
मार्कण्डेयः—

“ कन्यागते सवितरि दिनानि दशपञ्च च । पार्वणेनैव विधिना तत्र श्राद्धं विधीयते ॥
“ प्रतिपद्धनलाभाय द्वितीया हि प्रजाप्रदा । वरार्थिनां तृतीया च चतुर्थी शत्रुनाशिनी ॥
“ श्रियं प्राप्नोति पञ्चम्यां षष्ठ्यां पूज्यो भवेन्नरः । गणाधिपत्यं सप्तम्यामष्टम्यां वृद्धिमुत्तमम् ॥
“ स्त्रियो नवम्यां प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम् । वेदांस्तथाप्नुयात्सर्वानेकादृश्यां क्रियापरः ॥
“ द्वादश्यां हेमलाभं च प्राप्नोति पितृपूजकः । प्रजा मेधां पशून्पुष्टिं स्वातंत्र्यं बुद्धिमुत्तमम् ॥
“ दीर्घमायुरथैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम् । अवाप्नोति न संदेहः श्राद्धं श्राद्धपरो नरः ॥
“ युवानः पितरो यस्य स्मृताः शस्त्रेण वै हताः । तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषामृद्धिमभीप्सता ॥
“ श्राद्धं कुर्वन्नमावास्यामन्नेन पुरुषः शुचिः । सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गे चात्यन्तमश्रुते ” ॥ इति ।

यत्तु शाट्यायनिनोक्तम्—

“ नभस्यस्यापरे पक्षे तिथिषोडशकं च तत् । कन्यास्थार्कान्वितं चेत्स्यात्स कालः श्राद्धकर्मणः ” ॥ इति ।
तदाश्वयुक्शुक्लप्रतिपदा सह नभस्यापरपक्षस्य षोडशत्वाभिप्रायेण तस्यापि क्षीणचंद्रत्वाविशेषेणा-
परपक्षानुप्रवेशसंभवात् । तदाह देवलः—

“ अहः षोडशकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह । चंद्रक्षयाविशेषेण सापि दर्शात्मिका स्मृता ” ॥ इति ।
कालादर्शोऽपि—

“ नभस्यस्यापरः पक्षः शुक्लप्रतिपदा सह । महालय इति प्रोक्तो गजछायावह्यस्तथा ” ॥ इति ।
श्लोकगौतमः—

“ कन्यागते सवितरि यान्यहानि तु षोडश । क्रतुभिस्तानि तुल्यानि संपूर्णव्रतदक्षिणैः ” ॥ इति ।
अत्र पञ्चदशदिवसषोडशदिवसविध्यो ब्रीहियववद्विकल्प इति माधवीये अभिहितम् । नभस्यापर-
पक्षस्य कन्यारथार्कान्वितत्वेन प्रशस्ततरत्वमुच्यते । तदभावेऽपि प्रशस्तत्वात् । तदाह जाबालिः
“ आगतेऽपि रवौ कन्यां श्राद्धं कुर्वीत सर्वथा । आषाढ्याः पञ्चमः पक्षः प्रशस्तः पितृकर्मसु ॥

“ पुत्रानायुस्तथारोग्यमैश्वर्यमतुलं तथा । प्राप्नोति पंचमे दत्वा श्राद्धं कामांस्तथा वरान् ” ॥ इति बृहन्मनुः—“ आषाढीमवधिं कृत्वा पंचमं पक्षमाश्रिताः ।

“ कांक्षंति पितरः क्लिष्टा अन्नमप्यन्वहं जलम् । तस्मात्तत्रैव दातव्यं दत्तमन्यत्र निष्फलम् ॥

“ आषाढीमवधिं कृत्वा यः पक्षः पंचमो भवेत् । तत्र श्राद्धं प्रकुर्वीत कन्यास्थार्को भवेन्न वा ” ॥ इति ।

५ जातुर्गणिश्च—

“ नैयोगिकी तिथिर्येषा पक्षो वै पंचमः स्मृतः । तस्मिन् हुतं हविर्दत्तं पितृणामक्षयं भवेत् ॥ ” इति ।

कौत्सः—

“ उत्तराहस्तचित्रासु कन्यायां भास्वति स्थिते । कृष्णपक्षे गजच्छायासमानः पितृकर्मसु ॥

“ पार्वणस्यावृता कुर्यादक्रोधः श्राद्धमत्वरः ” ॥ इति । आवृता प्रकरणेण । आदित्यपुराणे—

१० “ पक्षांतरेऽपि कन्यास्थे रवौ श्राद्धं प्रशस्यते । कन्यागते पंचमे तु विशेषेणैव कारयेत् ॥ ” इति । शाट्यायनिः—

“ पुण्यः कन्यागतः सूर्यः पुण्यः पक्षश्च पंचमः । कन्यास्थार्कान्वितः पक्षः सोऽत्यंतं पुण्यमुच्यते ” ॥ आदिमध्यावसानेषु यत्र कचन कन्यार्कस्थार्कान्वितत्वेन कृत्स्नः पक्षः पूज्य इत्यर्थः । अत एव काष्णार्जिनिः—

१५ “ आदौ मध्येऽवसाने वा यत्र कन्यां व्रजेद्विः । स पक्षः सकलः पूज्यः श्राद्धं शोडशकं प्रति ” ॥ इति ।

कालादर्शोऽपि—

“ रवेः कन्यागतत्वेन पक्षोऽयं पूज्य इष्यते । आदिवैवान्तरान्ते वा शस्तः कन्यागते रवौ ” ॥ इति ।

पितृमेधसारे—“ सिंहांतं कृष्णपक्षस्यादौ मध्येऽंते वा कन्यार्कसंक्रमे तु कृत्स्नः पक्षो महालये प्रशस्तः । पंचम्यादि दशम्यादि अष्टम्यादि वा दर्शांतं कचिद्दिने वा यथाशक्ति महालयश्राद्धं

२० कुर्यात् ” ॥ इति । प्रतिपदादिदर्शांतं शुक्लप्रतिपदन्तं वा श्राद्धं कर्तुमशक्तश्चेत्पंचम्यादिदर्शांतमष्टम्यादिदर्शांतं दशम्यादिदर्शान्तं वा चतुर्थ्या ऊर्ध्वमनिषिद्धे एकस्मिन् दिने वा यथाशक्ति कुर्यादित्यर्थः । तदाह गौतमः—“ अपरपक्षे श्राद्धं पितृभ्यो दद्यात्पंचम्यादिदर्शांतमष्टम्यादि-सर्वस्मिन्वा ” इति । ब्रह्मांडपुराणे—

“ नभस्य कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कुर्याद्दिने दिने । त्रिभागपक्षहीनं वा त्रिभागं चार्धमेव वा ” ॥ इति ।

२५ पंचम्यादिदशम्याद्यष्टम्यादि वेत्यर्थः । तथा कालादर्शो—

“ पक्षाद्यादि च दर्शांतं पंचम्यादि दिगादि च । अष्टम्यादि यथाशक्ति कुर्यादापरपक्षिकम् ” ॥ इति ।

पक्षादिः प्रतिपद्दिगादि दशम्यादि । अत्र सर्वत्र दर्शांतमिति संबध्यते । कात्यायनः—

“ अपरपक्षे श्राद्धं कुर्वीत ऊर्ध्वं चतुर्थ्या च यदहः संपद्यते सप्तम्या ऊर्ध्वं यदहः संपद्यते ऋते चतुर्दशी शाकेनापि अपरपक्षं नातिक्रमेत् ” इति । चतुर्थ्याः सप्तम्या वा ऊर्ध्वं यस्मिन्नहनि द्रव्यादि संपद्यते

३० तस्मिन्वा कुर्यादित्यर्थः । अनेन एकस्मिन्नहनि श्राद्धं कुर्यादित्युक्तं भवति । तथा च गौतमः—

“ सर्वस्मिन्वा द्रव्यदेशब्राह्मणसंनिधाने वा कालनियमः शक्तितः ” इति । नागरखंडेऽपि—

“ आषाढ्याः पंचमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे । यो वै श्राद्धं नरः कुर्यादिकस्मिन्नपि वासरे ॥

“ तस्य संवत्सरं यावत्तुताः स्युः पितरो ध्रुवम् ” ॥ इति । वसिष्ठः । “ ऊर्ध्वं चतुर्थ्याः पितृभ्यो दद्यात् ” इति ।

मनुरपि (३२७६)—

“कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् । श्राद्धे प्रशस्ताः तिथयो यथैता न तथेतराः” ॥ इति ।
पक्षमहालये नैव चतुर्दश्यादि वर्ज्यम्

“नभस्य कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कुर्याद्दिने दिने । नैव नंदादि वर्जं स्यान्नैव वर्ज्या चतुर्दशी ” ॥ इति
काष्णाजिनिः स्मरणादत एव च माधवीये अभिहितम् ५

“ प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम् । शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते ” ॥ इति
याज्ञवल्क्यवचनं (आ. २६४) पंचम्यादिपक्षविषयम् । अन्यथा काष्णाजिनिवचनस्यानर्थक्यं
प्रसज्येतेति । तथा कालादर्शं— “ मुक्त्वाद्यपक्षं नंदादिवर्ज्यमाहुर्महालयः ” इति । प्रतिपदादिः
दर्शान्तः पक्ष आद्यः । तं मुक्त्वाऽन्येषु पक्षेषु नंदा शुक्रवारचतुर्दश्यादि वर्ज्यमाहुरित्यर्थः ।
अपरपक्षे यदहः संपद्यते ताममावास्यायां विशेषेणेति वचनात् यदामावास्यायां सकृन्महालयः १०
क्रियते यदा च पक्षमहालयादि क्रियते तदा अमावास्याश्राद्धं पृथगेव कार्यम् ।

“आब्धिकं प्रथमं कुर्यान्मासिकं तु ततः परम् । दर्शश्राद्धं तृतीयं स्याच्चतुर्थं तु महालयः” ॥ इति ।
एकस्मिन्दिने दर्शमहालयश्राद्धयोः पौर्वापर्यविधानद्वेवताभेदाच्च । तच्च वक्ष्यते चंद्रिकायाम्—
यदैकस्मिन्नहनि तथा पृथगेवामावास्याश्राद्धं अमावास्याष्टकावृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम् इति पृथगुपा-
दानादतो यत्कैश्चिदुक्तं अमावास्याश्राद्धमापरपक्षिकेन श्राद्धेन विकल्पित इति तदपास्तमिति । १५
तदेवं कृत्स्नः पंचमः पक्षः पंचम्यादिदर्शान्तमष्टम्यादिदर्शान्तदशम्यादिदर्शान्तपंचमीदर्शयोर्मध्ये
अनिषिद्धमेकं वा दिनं महालयश्राद्धकालः । अत्राप्यसामर्थ्ये पंचमपक्षस्य पंचमीमारभ्यानंतरपक्ष-
पंचमीपर्यन्तासु तिथिषु अनिषिद्धायामेकस्यां तिथौ यथासंभवं गृही श्राद्धं कुर्यात् । तदाह यमः—
“ हंस वर्षासु कन्यास्थे शाकेनापि गृहे वसन् । पंचम्योरंतरे दद्यादुभयोरपि पक्षयोः ” ॥ इति ।
अत्राप्यशक्त्या श्राद्धाकरणे यावत्कन्याराशौ सूर्यस्तिष्ठति तावच्छ्राद्धं कुर्यात् । तत्राप्यकरणे २०
यावद्वृश्चिकदर्शनमिति । तदाह सुमंतुः—

“ कन्याराशौ महाराज यावत्छिद्येद्विभावसुः । तस्मात्कालात् भवेद्देयं वृश्चिकं यावदागतः ॥
“ येयं दीपावली राजन्स्याता पंचदशी भुवि । तस्यां दद्यान्न चेद्दत्तं पितृणां वै महालये ” ॥ इति ।

पुराणेऽपि “ पितृपक्षं प्रतीक्षन्ते गुरुवांछासमन्विताः ।

“ प्रेतपक्षे व्यतिक्रान्ते यावत्कन्यागतो रविः । ततस्तुलागतेऽप्येते सूर्यं वांछन्ति मानव ॥ २५

“तस्मिन्नपि व्यतिक्रान्ते काले वृश्चिकगे रवौ । निराशाः पितरो दीनास्ततो यांति निजालयम्” ॥ इति ।

माधवीये—

“ कन्यागते सवितरि पितरो यांति वै सुतान् । शून्या प्रेतपुरी सर्वा यावद्वृश्चिकदर्शनम् ॥

“ततो वृश्चिकसंप्राप्तौ निराशाः पितरो गताः । पुनः स्वभवनं यान्ति शापं दत्वा सुदारुणम्” ॥ इति ।

काष्णाजिनिः—

३०

“ हस्तक्षस्थे दिनकरे प्रेतराजस्य शासनात् । तावत्प्रेतपुरी शून्या यावद्वृश्चिकदर्शनम् ॥

“ वृश्चिके समनुप्राप्ते पितरो दैवतैः सह । निश्चस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्वा सुदारुणम् ” ॥ इति ।

आदित्यपुराण—

“ प्रावृद्धतौ यमः प्रेतान् पितृश्चाथ यमालयात् । विसर्जयित्वा मानुष्ये कृत्वा शून्यं स्वकं पुरम् ॥

“ क्षुधातार्त्ताः संस्मरन्तश्च दुष्कृतं तु स्वयं कृतम् । काक्षन्तः पुत्रपौत्रेभ्यः पायसं मधुसंयुतम् ॥ ३५

- “ तस्मात्तां तत्र विधिना तर्पयेत्पायसेन तु । मध्वाज्यतिलमिश्रेण तथा शीतेन चांभसा ॥
 “ ग्रासमात्रं परगृहादन्नं यः प्राप्नुयान्नरः । भैक्षमात्रेण यः प्राणान्संभारयति वा स्वयम् ॥
 “ यो वा संवर्धयेद्देवं प्रत्यहं स्वात्मविक्रयात् । श्राद्धं तेनापि कर्त्तव्यं तैस्तैर्द्रव्यैः सुसंचितैः ” ॥ इति ।
 यमालयाद्विसर्जयित्वा स्वपुरं शून्यं कृत्वा मनुष्यलोके पितृन्वासयतीत्यध्याहृत्य योजना । पायसं
 ५ कांक्षतः पितरस्तिष्ठतीत्यध्याहरः ।
 विशेषमाह कालादर्शकारः—“ अस्मिन्या भरणी सा तु महाभरणीरुच्यते ॥
 “ त्रयोदशी गजच्छाया गयामध्याष्टमीति च । आसु श्राद्धं गयाश्राद्धसममाहुर्महर्षयः ” ॥ इति ।
 अस्मिन्महालयपक्ष इत्यर्थः । तथा मत्स्यपुराणे—
 “ भरणी पितृपक्षे तु महती परिकीर्तिता । अस्यां श्राद्धं कृतं येन स गयाश्राद्धकृद्भवेत् ” ॥ इति ।
 १० ब्रह्मांडपुराणे—
 “ आषाढाः पंचमे पक्षे गयामध्याष्टमी स्मृता । त्रयोदशी गजच्छाया गयानुत्या तु पैतृकी ” ॥ इति ।
 हेमाद्रौ—
 “ अमापाते भरण्यां च द्वादश्यां पक्षमध्यके । तथा तिथिं च नक्षत्रं वारं च न विशोधयेत् ” ॥ इति ।
 तत्र वर्ज्यान्याह गार्ग्यः—
 १५ “ नन्दायां भार्गवदिने त्रयोदश्यां त्रिजन्मसु । एषु श्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् ” ॥ इति ।
 त्रयाणां जन्मनि श्राद्धकर्तुस्तत्पत्न्या ज्येष्ठपुत्रस्य च जन्मनक्षत्रे न कुर्यादिति कैश्रिब्याख्यातम् ।
 तथा च स्मृत्यंतरे—“ कर्तुश्च पुत्रदाराणां जन्मक्षाणि विवर्जयेत् ।
 “ विपदि प्रत्यरे चैव वधे चंद्राष्टमे तथा । वैनाशिके तदंशे च श्राद्धकर्म प्रशस्यते ” ॥ इति ।
 संग्रहेऽपि—“ वर्ज्यं पौष्णमथांगनातनययोर्जन्मत्रयं चात्मनः ” ॥ इति । बृहद्गार्ग्योऽपि—
 २० “ प्राजापत्ये च पौष्णे च पित्रर्क्षे भार्गवे तथा । यस्तु श्राद्धं प्रकुर्वीत तस्य पुत्रो विनश्यति ” ॥ इति ।
 प्राजापत्यं रोहिणी । पौष्णं रेवती । पित्रर्क्षं मघानक्षत्रम् । यत्तु बृहन्मनुवचनम्—
 “ रेवत्यादिषु ऋक्षेषु स्वात्यंतेषु यदा शशी । अर्के नभस्यकन्यास्थे श्राद्धकर्म प्रकीर्तितम् ” ॥ इति
 तद्विशेषवचनेन बाधितत्वाद्देवतीरोहिणीमघाव्यतिरिक्तविषयम् । कालादर्श—
 “ न नंदासु भृगोर्वीरे रोहिण्यां च त्रिजन्मसु । रेवत्यां च मघायां च कुर्यादापरपक्षिकम् ” ॥ इति ।
 २५ “ नंदायां भार्गवदिने त्रयोदश्यां त्रिजन्मसु । एषु श्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् ” ॥
 हेमाद्रौ—
 “ दर्शपाते भरण्यां च द्वादश्यां पक्षमध्यके । तथा तिथिं च नक्षत्रं वारं च न विशोधयेत् ” ॥
 स्मृत्यंतरे—
 “ अपुत्रोऽनग्निकश्चैव विधवाब्रह्मचारिणः । दर्शे महालयं कुर्युः पुत्रवान्वर्जयेद् गृही ” ॥ इति ।
 ३० गार्ग्यः—“ मघासु कुर्वतः श्राद्धं ज्येष्ठपुत्रो विनश्यति ” । कार्णाजिनिस्तु—
 “ ऋते नैमित्तिकं काम्यं श्राद्धं यस्तु मघादिने । कुर्यात्तज्ज्येष्ठपुत्रस्य नाशः स्यादिति निश्चितम् ” ॥ इति
 अङ्गिराश्च—
 “ त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे यः श्राद्धं कुरुते नरः । पञ्चत्वं तस्य जानीयात् ज्येष्ठपुत्रस्य निश्चितम् ” ॥
 अत्र त्रयोदश्यां निषेधः केवलपितृवर्गश्राद्धविषयः ।

तथा च कार्णाजिनिः—

“श्राद्धं तु नैकवर्गस्य त्रयोदश्यामुपक्रमेत् । अतुतास्तत्र ये च स्युः प्रजां हिंसन्ति तेऽग्रजान्” ॥ इति ।

“इच्छेत्रयोदशीश्राद्धं पुत्रवान्यः सुतायुषोः । एकस्यैव तु नो दद्यात्पार्वणं स समाचरेत्” ॥ इति ।

यः पुत्रवान्सुतायुषोरभिवृद्धिमिच्छेत्स एकस्य एकवर्गस्य श्राद्धं नो दद्यात् । अपि तु मातामहवर्गो-
द्देशेनापि पार्वणं समाचरेदित्यर्थः । अत्राक्षिप्य समाहितं माधवीये—“ननु केवलपितृवर्गोद्देशेन ५
श्राद्धप्राप्तौ सत्यां तन्निषेधो युक्तः “पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम्” इति धौम्य-

वचनेन केवलैकवर्गोद्देशेन श्राद्धनिषेधात्प्राप्तिरेव नास्ति । अतो नैवं व्यवस्था युक्ता । मैवम् ।

सत्यामपि धौम्यस्मृतौ व्यामोहादिना प्राप्तस्यैकवर्गश्राद्धस्य निषेधाद्यधारागप्राप्तस्य कलञ्ज-

भक्षणस्य न कलञ्जं भक्षयेत् इति निषेधः । तस्मादेकवर्गोद्देशेन मघात्रयोदश्यां श्राद्धनिषेधः ।

न तु श्राद्धस्यैव तत्र श्राद्धस्य प्रशस्तत्वात्” इति । मघायुक्तत्रयोदश्यामेकवर्गोद्देशेन श्राद्धं १०

कर्तव्यम् । वर्गद्वयोद्देशेन तु श्राद्धं तत्र प्रशस्तम् । वर्गद्वयोद्देशेनापि केवलत्रयोदश्यां केवल-

मघायां वा श्राद्धं न कर्तव्यमिति चन्द्रिकामाधवीयादौ निर्णीतम् । कालादर्शपितृमेघसारयोस्तु

केवलत्रयोदश्यामपि वर्गद्वयोद्देशेन श्राद्धं प्रशस्तमित्युक्तम् । तथा च वृद्धगार्ग्यः—

“नभस्यापरपक्षे या तिथिः स्यात्तु त्रयोदशी । गजच्छायेति सा प्रोक्ता पितृणां वृत्तिकारिणी” ॥

महाभारतेऽपि—

“ज्ञातीनां तु भवेच्छ्रेष्ठः कुर्वच्छ्राद्धं त्रयोदशीम् । नावश्यं तु युवानोऽस्य प्रमीयन्ते नरा गृहे” ॥ इति ।

शंखः—“प्रोष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् । प्राप्य श्राद्धं तु कर्तव्यं मधुना पायसेन च ॥

“प्रजामिष्टां यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा । नृणां श्राद्धे सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि (आ. २६१)—

“यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानंत्यमश्रुते । तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च विशेषतः” ॥ इति । २०

अत्र विज्ञानेश्वरः (पृ. ७९ पं. २१-२२)—“तथा वर्षात्रयोदश्यां भाद्रपदकृष्णपक्षत्रयोदश्यां

विशेषतो मघायुक्तायां यत्किञ्चिद्दीयते तत्सर्वमानंत्यमश्रुते इति गतेन संबंधः” इति ।

मनुरपि (३१७४)—

“अपि नः सकुले भूयाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् । पायसं मधुसर्पिर्भ्यां छायायां कुंजरस्य च” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—

“यदेदुः पितृदेवत्ये हंसश्चैव करे स्थितः । याम्या तिथिर्भवेत्सा हि गजच्छाया प्रकीर्तिता” ॥ इति ।

पितृदेवत्यं मघा । हंसः सूर्यः । करो हस्तनक्षत्रम् । याम्या त्रयोदशी । चन्द्रिकायामपि—

“हंसं हस्तस्थिते या तु मघायुक्ता त्रयोदशी । तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुंजरस्य तु” ॥ इति ।

तत्रैव—

“त्रयोदशी भाद्रपदी कृष्णा मुख्या पितृप्रिया । तृप्यन्ति पितरस्तस्यां वदन्ति च शतं समाः” ॥ ३०

“मघायुतायां तस्यां तु जलाद्यैरपि तोषिताः । कृष्णायां पितरस्तद्द्वर्षाणामयुतायुतम्” ॥ इति ।

हेमाद्रौ—

“विभक्ता वाऽविभक्ता वा कुर्युः श्राद्धं पृथक्सुताः । मघायुक्तत्रयोदश्यां विभक्ता एव चान्यदा” ॥ इति ।

अत्र मघात्रयोदश्यां श्राद्धे पिण्डनिर्वापणं न कुर्यात् । तस्या युगादित्वेन पिण्डदाननिषेधात् ।

तथा च पुलस्त्यः—

“अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा । युगादिषु च सर्वासु पिण्डनिर्वापणादृते ” ॥ कर्तव्य-
मित्यध्याहार्यम् । मघान्वितत्वेन पिण्डनिर्वापणं नास्ति । तथा चादिपुराणे—

“संक्रांतावुपवासेन पारणेन च भारत । मघायां पिण्डदानेन ज्येष्ठः पुत्रो विनश्यति ” ॥

५ स्मृतिरत्ने—“अत्र मघात्रयोद्दृश्यां त्रयोदशीनिर्बन्धनं एकवर्गश्राद्धनिषेधः । मघानिर्बन्धनः पिण्डदान-
निषेधश्च द्रष्टव्यः ” इति । एतन्मघात्रयोद्दृशीश्राद्धं मलमासेऽपि कर्त्तव्यम् । महालयश्राद्धं तु मल-
मासे न कर्त्तव्यमिति प्रतिपादितमधस्तात् । चतुर्दश्यां महालयनिषेधोऽप्यशस्त्रहतविषयः । अप-
मृत्युहतानां तु चतुर्दश्यामेव महालयश्राद्धमेकोद्दिष्टं कार्यम् । यदाह सुमंतुः—

“समत्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्य तु । एकोद्दिष्टं सुतैः कार्यं चतुर्दश्यां महालये ” ॥ इति ।

१० समत्वमागतस्य सपिण्डीकृतस्य उभयतो नियमोऽत्राभिप्रेतः । शस्त्रादिहतस्यैव चतुर्दश्यां चतुर्दश्या-
मेव शस्त्रादिहतस्येति च महालयग्रहणान्महालयविषय एवायं नियमः । अतः शस्त्रहतस्य
मृताहादौ यथातिथि पार्वणमेव कार्यम् । शस्त्रहतस्यैवेति दुर्मरणोपलक्षणम्

“विषयशस्त्रादिपदादितिर्यक्ब्राह्मणघातिनाम् । चतुर्दश्यां क्रिया कार्या अन्येषां तु विगर्हिता ” ॥ इति
मरीचिस्मरणात् । यत्तु गार्ग्यवचनम्—

१५ “चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणात्परम् । एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शस्त्रघातिनः ” ॥ इति ।
अस्यार्थश्चन्द्रिकायामुक्तः—“शस्त्रघातिनो यदाऽपरपक्षिकश्राद्धं चतुर्दश्यां क्रियते तदैवेकोद्दिष्ट-
विधानेन नान्यदेत्यर्थः ” ॥ इति । अत एव सुमंतुः—

“एकपिण्डकृतानां तु पृथक्त्वं नोपपद्यते । सपिण्डीकरणाद्धर्ध्वमृते कृष्णचतुर्दशीम् ” ॥ इति ।
एतच्च सदैवतं कार्यम्—

२० “प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं सदैवतम् । तच्छ्राद्धं दैवहीनं चेत्कुलक्षयकरं भवेत् ” ॥ इति
स्मरणात् । माघवीथे दिनांतरेऽपि पितामहादितृप्त्यर्थं महालयश्राद्धं कार्यम् । चतुर्दश्यां महालय-
श्राद्धस्य एकोद्दिष्टत्वेन विहितत्वात्तेन तत्र पितामहादितृतेरभावादिति । यस्य पितृपितामहप्रपिता-
महास्रयोऽपि शस्त्रादिना हताः तेषां मध्ये द्वौ वा शस्त्रादिहतौ तेषां चतुर्दश्यां प्रत्येकमेकोद्दिष्ट-
श्राद्धं कार्यमिति पूर्वं प्रतिपादितम् । त्रिदंदिन एकदंदिनो वा यतेर्महालयश्राद्धं द्वादश्यामेव

२५ पार्वणविधानेन कुर्यान्न तिथ्यंतरे । तदुक्तं वाराहे—

“संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि । महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणेन तु ” ॥ इति ।
संग्रहेऽपि—

“द्वादश्यां पार्वणेनैव श्राद्धं कुर्यान्महालये । सुतः संन्यासिनोऽन्यत्र यथातिथि समाचरेत् ” ॥ इति ।
संन्यासिनो द्वादश्यामेव महालयश्राद्धमिति नियमः । न तु द्वादश्यां संन्यासिन एवेति । तेन

३० द्वादश्यामन्येषामपि महालयश्राद्धं भवति । तथा च “अमापाते भरण्यां च द्वादश्यां पक्षमध्यके”
इति वचनं पूर्वमुदाहृतम् । इममेवार्थं मभिप्रेत्य कालादर्शकारः—

“श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये । द्वादश्यामेव कुर्वीत यतेरिति विनिश्चयः ” ॥ इति ।
तिथिविशेषात्फलविशेषमाह याज्ञवल्क्यः (आ. २६२-२६४)—

“कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून् सत्सुतानपि । ब्रूतं कृषिं वणिज्यां च द्विशफैकशफास्तथा ॥

३५ “ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान्त्वर्णरूप्ये सकुप्यके । ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानामोति श्राद्धदः सदा ॥

“प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम् । शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते” ॥ इति ।
कन्यावेदिनः जामातारः । कुप्यं त्रपुसीसादि । एतन्न नित्यत्वनिराकरणार्थं किंतु कालविशेषा-
त्फलविशेषो भवतीत्येवंपरम् । अयं कृष्णप्रतिपक्षादितिथिषु श्राद्धविधिः सर्वेष्वेवापरपक्षेषु न
भाद्रपदापरपक्ष एव । अत एव शौनकः— “प्रौष्ठपद्यापरपक्षे मासि मासि चैवम्” इति । मासि-
मासीति वीप्सया मासिश्राद्धस्य नित्यत्वमवगम्यते । आपस्तम्बः— “मासि मासि कार्य- ५
मपरपक्षस्यापराणहः श्रेयांस्तथाऽपरपक्षस्य जघन्यान्यहानि सर्वेष्वेवापरपक्षस्याहःसु क्रियमाणे
पितृन्प्रीणाति । कर्तुः कालनियमात्फलविशेषः प्रथमेऽहनि क्रियमाणे स्त्रीप्रायमपत्यं जायते ।
द्वितीये स्तेनाः । तृतीये ब्रह्मवर्चसिनश्चतुर्थे क्षुद्रपशुमान्पंचमे पुमांसो बह्वपत्यो न चानपत्यः
प्रमीयते । षष्ठे अध्वशीलो अक्षशीलश्च । सप्तमे कृषेराद्धिः । अष्टमे पुष्टिर्नवमे एकसुरः ।
दशमे व्यवहारराद्धिरेकादशे कृष्णायसं त्रपुसीसं द्वादशे पशुमांस्रयोदशे बहुपुत्रो बहुमित्रो १०
दर्शनीयापत्यो युवमारिणस्तु भवति । चतुर्दश्याम् आयुधेराद्धिः पंचदशे पुष्टिम्” इति ।
“अमावास्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम्” इति स्मृतिश्च । अत्र मासिश्राद्धे उद्देश्याः आप-
स्तम्बोक्ताः— “पितृपितामहप्रपितामहा उद्देश्याः । महालये इति उद्देश्याः कारुणिकाः । महालये तु
पित्रादयस्त्रयः मात्रादयस्तिन्न अशक्तौ सपत्नीकाः पित्रादयस्तिन्नः मातामहादयश्च त्रय उद्देश्याः ।
कालादर्श—

१५

“वर्गद्वयं समुद्दिश्यं श्राद्धमाद्यन्तदैविकम् । कुर्यात्पार्वणमार्गेण नो चेद्दोषो महान्भवत्” ॥ इति ।
वर्गद्वयं पितृवर्गं मातामहवर्गं च समुद्दिश्य आद्यंतदैविकं आदौ वैश्वदेविकं अंते वैष्णवं
यस्येत्यर्थः । तदाह देवलः—

“दैवाद्यं नैव कुर्वीत दैवांतं नैव कुत्रचित् । दैवाद्यंतं हि कुर्वीत श्राद्धरक्षणहेतुना” ॥ इति ।

“पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि” । इति वचनेन मातामहानामप्युद्देश्यता । २०

“अन्वष्टकासु वृद्धौ च प्रतिसंवत्सरे तथा । महालये गयायां च सपिंडीकरणात्पुरा ।

“एषु मातुः पृथक्कुर्यादन्यत्र पतिना सह” इति वचनान्मात्रादीनामप्युद्देश्यत्वमिति
प्रतिपादितमधस्तात् । पितरि मृते मातरि जीवन्त्यां पितामहादीनामत्र वरणं नास्ति “जीवेद्यदि
तु वर्गादिस्तद्वर्गं परिवर्जयेत्” इति स्मरणात् ।

पिंडदानं तु कर्तव्यं तत्सहभावात्तिलोदकमपि कार्यमित्याहुः । तथा च स्मृत्यंतरे— २५

“जीवन्त्यां मातरि श्राद्धं तद्वर्गस्य न कारयेत् । सपत्नीमातरि तथा जीवेन्मातामहोऽपि च” ॥ इति ।

उभयविधमात्रोरपि जीवन्त्योयं निषेध इत्यर्थः । तथा च पूर्णसंग्रहे— “महालयादिषु सपत्नी-
मातरमारभ्य वरणं कर्तव्यम्” इति । कारुणिकसंज्ञानां पितृव्यादीनामप्युद्देश्यत्वमुक्तं स्मृत्यंतरे—

“दैवं पिता ततो माता सपत्नी जननी तथा । मातामहाः सपत्नीकाः पितृव्या भ्रातरः सुताः ॥

“पितृव्वसा मातुलश्च तद्भगिन्यश्च जामयः । भगिनी दुहिता भार्या श्वशुरो भावुकः स्नुषा ॥ ३०

“स्यालको गुरुराचार्यः स्वामी सख्यादयः क्रमात् । भोज्या महालयश्राद्धे एते कारुणिकाव्हाः” ॥ इति ।

मनुः—

“अपुत्राः स्वकुले ये च स्त्रियो वा पुरुषा मताः । एकोद्दिष्टेन तेभ्योऽपि दद्यादापरपक्षिकम्” ॥

अन्यच्च—

“श्राद्धं कुर्यादपुत्रस्य नित्यश्राद्धं महालये । एकोद्दिष्टेन विधिना न कुर्यात्पुत्रिणे क्वचित्” ॥ इति । ३५

चतुर्विंशतिमतेऽपि—

“आचार्यगुरुशिष्येभ्यः सखिज्ञातिभ्य एव च । तत्पत्नीभ्यश्च सर्वाभ्यस्तथैव च जलांजलीम् ॥

“एतेभ्यस्तु सदा पिंडान्दद्याद्भद्रपदे नरः । एकस्मिन्ब्राह्मणे सर्वानाचार्यादिन्प्रपूजयेत्” ॥ इति ।
स्वयमकृत्वा परमहालये नाश्रियात्—

५ “अकृत्वाऽन्यत्र नाश्रियाच्छ्राद्धं चापरपक्षिकम् । पश्चात्कृतेऽपि श्राद्धेऽस्मिंस्तच्छ्राद्धं निष्फलं भवेत्” ॥
इति स्मृतेः । स्मृत्यंतरे—

“पित्रोर्भूतदिनात्पूर्वं न तन्मासे महालयम् । पित्रोः श्राद्धं तु निर्वर्त्य महालयमथाचरेत्” ॥ इति ।
एतच्च महालयश्राद्धं नित्यम् । शाकेनाप्यपरपक्षं नातिक्रामेत्

“सूर्ये कन्यागते श्राद्धं यो न कुर्याद् गृहाश्रमी । धनं पुत्राः कुतस्तस्य पितृनिश्वासपीडनात्” ॥

१० इत्यादि स्मृतेः । तथा च काष्णार्जिनिः—

“मृताहेऽहरहर्दर्शे श्राद्धं यच्च महालये । तन्नित्यमुदितं सद्भिर्नित्यवत्तद्विधानतः” ॥ इति ।

अहरहः अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तदपि नित्यमित्यर्थः । तत्र भास्करः—

“अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तन्नित्यमिति कीर्तितम् । वैश्वदेवविहीनं तु अशक्ताबुदकेन तु” ॥ इति ।
अस्य पार्वणत्वेन प्राप्तं वैश्वदेवं निरस्यति वैश्वदेवविहीनमिति । अहन्यहनीत्येतदत्यन्तश्रद्धालु-

१५ विषयं सुसमृद्धविषयं वा । यदाह देवलः—

“एतेन विधिना श्राद्धं कुर्यात्संवत्सरं सकृत् । त्रिधनुर्वी यथा श्राद्धं मासे मासे दिने दिने” ॥ इति ।
एतेन विधिना पार्वणविधिना प्रतिसंवत्सरमेकवारं विशिष्टेऽन्हि प्रतिसंवत्सरं त्रिवारं वा चतुर्षु
चतुर्षु मासेषु विशिष्टेऽन्हि प्रतिसंवत्सरं चतुर्वारं वा त्रिषु त्रिषु मासेषु विशिष्टेऽन्हि मासे मासे वा
विशिष्टेऽन्हि दिने दिने वा यथाश्राद्धं श्रद्धानुसारेण शक्यनुसारेण च नित्यश्राद्धं कुर्यादित्यर्थः ।

२० अस्य च नित्यश्राद्धस्य कल्पः सम्यगान्हिकेऽस्माभिः प्रपंचितः ।

वृद्धिश्राद्धनिरूपणम् । अथ वृद्धिश्राद्धम् । तच्च नैमित्तिकम्

“प्रेतश्राद्धं सपिंड्यंतं संक्रांतिग्रहणेषु च । संवत्सरोदकुंभं च वृद्धिश्राद्धं निमित्ततः” ॥ इति
गालवस्मरणात् । कात्यायनः—

“स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु । पिंडानोद्वाहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्कमत्” ॥ इति ।

२५ अयमर्थः—सुतसंस्कारकर्मसु जातकर्मादिषु तेषां सुतानामोद्वाहनाद्विवाहपर्यन्तेषु पार्वणेषु पिता
स्वपितृभ्यः पिंडान्दद्याद्वृद्धिश्राद्धं दद्यात्तस्याभावे तु तत्कमात् “असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः
पूर्वसंस्कृतैः” इत्यादि वचनांतेषु जातकर्मादिषु यो गम्यमानः कर्तुः क्रमस्तेन क्रमेण ज्येष्ठभ्रात्रादिः
कुर्यात्पूर्वसंस्कृतमात्राद्यसंभवे व्रतसमावर्तनादौ स्वयं कुर्यादिति ।

“असगोत्रः सगोत्रो वा य आचार्य उपायने । तदोपनेयपित्रादीनुद्दिश्याभ्युदयं चरेत् ॥

३० “कन्यकानामयं मार्गो मुनिभिः परिकीर्तितः । उपनीतस्तु पित्रादेरभावेऽन्यं नियोजयेत् ।

“आचार्यपितरस्तत्र वृद्धिश्राद्धे तु देवताः” ॥ इति ।

विष्णुपुराणेऽपि—

“जातस्य जातकर्मादिक्रियाकांडमशेषतः । पुत्रस्य कुर्वीत पिता श्राद्धं चाभ्युदयात्मकम्” ॥ इति ।

वसिष्ठोऽपि—

“जन्मन्यथोपनयने विवाहे पुत्रकस्य च । पितृन्नादीमुखाभ्राम तर्पयेत् विधिपूर्वकम् ” ॥ इति ।

सायणीये—

“नांदीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्यपाणिग्रहावधि । अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नांदिकम् ” ॥ इति ।
आद्यपाणिग्रहावधि प्रथमविवाहपर्यन्तमित्यर्थः ।

“नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यात्पुत्रीपुत्रविवाहयोः । उत्तरेषु विवाहेषु स्वयं कुर्यात्तु नान्दिकम् ” ॥ इति ।
द्वितीयादिविवाहे तु जीवत्पितापि स्वयमेव कुर्यात्

“उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः ” ॥ इति
स्मरणात् । नांदीमुखश्राद्धस्यानुष्ठानं कचिद्विषये तंत्रेण कार्यं न त्वावृत्त्येत्याह कात्यायनः—

“गणशः क्रियमाणेषु मातृभ्यः पूजनं सकृत् । सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ” ॥ १०
अस्यार्थः—उपनयनात्प्राक् स्वकाले कथंचिदकृतचौलपर्यंतसंस्कारस्य यानि जातकर्मादीनि उप-
नयनात्पूर्वं संभूय क्रियंते तथा व्रतानि यदा संभूय क्रियंते तथा देशांतरगतस्य मृत इति बुद्ध्या
कृतप्रेतकार्यस्य कालांतरे आगतस्य यानि जातकर्मादीनि पुनः संभूय क्रियंते तथा पतितस्य
कृतप्रायश्चित्तस्य यानि जातकर्मादीनि पुनः संभूय क्रियंते तेषु गणशः संभूय क्रियमाणेषु जात-
कर्मादिषु संस्कारेषु प्रथमं क्रियमाणस्य संस्कारक्रमेण आदौ मातृपूजायां नांदीश्राद्धस्य सकृत् १५
तंत्रेणानुष्ठानं न पृथगादिषु संस्कारकर्मणामादिषु न पृथगनुष्ठानम् ” इति । स्मृत्यंतरेऽपि—

“एकदा क्रियमाणानामनेकशुभकर्मणाम् । वृध्वांकुरप्रतिसरान्सकृदेव समाचरेत् ” ॥ इति ।
आश्वलायनः—“सहैवाभ्युद्यश्राद्धं स्वस्तिवाचनमेव च । सहकर्माणि कुर्याद्वा पृथग्वा क्रमतश्चरेत् ॥

“नामानिष्कामणौ कार्यौ सहापदि विजानता । तथा पुंसवसीमन्तौ बलिसीमन्तकौ च वा ॥

“जातकृत्ये त्वतीते तु नाम्ना वा सह संचरेत् । अकृतानामतीतानां निष्कृतिः स्याद्धि कर्मणाम् ॥ २०

“चौलोपनयने चैव समावर्तविवाहकौ । सह कर्मत्रयं जातु सामस्वपि समाचरेत् ॥

“एतेभ्योऽन्यानि कर्माणि द्वावकार्यौ सहैव तु ” ॥ यतु कात्यायनोक्तम्—

“मातृयागक्रियापूर्वं कार्यं श्राद्धं तु मंगले । ऋतुत्रयेऽपि कर्तव्यं न चान्यल्लघुमंगलम् ” ॥ इति
तद्यथाकालं क्रियमाणसंस्कारविषयम् । मातृपूजाऽपि तेनोक्ता—

“कर्मादिषु च सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः । पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयंति ताः ।

“प्रतिमासु च शुद्धासु लिखिता वा पटादिषु । गंधपुष्पाक्षतैश्चैव नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ।

“गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया । देवसेनाः स्वधा स्वाहा मातरौ लोकमातरः ॥

“धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिः आत्मदेवतया सह । आभ्योऽर्घ्यं गंधपुष्पं च धूपदीपं निवेदयेत् ।

“आयुष्याणि च शांत्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः । षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत् ” ॥ इति ।

आत्मदेवता आत्मनोऽभीष्टदेवताः आयुष्याणि च ‘आ नो भद्राः कृतव’ इत्यादिसूक्तानि । षड्भ्यः ३०
पितृभ्यः पित्रादिभ्यः मातामहादिभ्यश्च मातृश्राद्धपूर्वकं श्राद्धदानमुपक्रमेदित्यर्थः । तत्र शातातपः—

“मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितृणां तदनंतरम् । ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ।

“नांश्राद्धं तु पितृश्राद्धे कर्म वैदिकमाचरेत् ” ॥ इति । मातुः मामृपितामहीप्रपितामहीनां पितृणां
पितृपितामहप्रपितामहानां मातामहानां मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहानां क्रमेण पार्वणविधिना
श्राद्धत्रयं कुर्यादित्यर्थः ।

तथा चंद्रिकायाम्—

“वृद्धौ समर्चयेद्विद्वान्निबन्धं नांदीमुखान् पितॄन् । संपादितो विशेषस्तु शेषं पार्वणवद्भवेत्” ॥ इति ।
वृद्धिश्राद्धे नांदीमुखसंज्ञान् समर्चयेदिति विशेषः । नांदीमुखसंज्ञारूपो वैशेषिको धर्मः संपादितः
प्रतिपादितः । शेषं वैशेषिकधर्मादन्यद्धर्मजातं पार्वणवदित्यर्थः ।

५ उक्तश्राद्धत्रयस्य कालभेदमाह गार्ग्यः—

“मातृश्राद्धं तु पूर्वद्युः कर्माहन्येव पैतृकम् । मातामह्यं चोतरेद्युः वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्” ॥ इति ।
अत्र विशेषमाह शातातपः—

“पूर्वाह्णे मातृकं श्राद्धं मध्याह्ने पैतृकं तथा । ततो मातामहानां तु वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्” ॥ इति ।
एवं दिनत्रयपक्षो यदा दुष्करः तदा त्वाह शातातपः—

१० “पृथक् दिने त्वशक्तश्चेदेकस्मिन्पूर्वाहारे । श्राद्धत्रयं तु कुर्वीत वैश्वदेवं तु तांत्रिकम्” ॥ इति ।
फलेदेशकालद्रव्यदेवतासाधारण्याद् अत्र वैश्वदेविकं तंत्रेणैव कार्यमित्यर्थः । एतच्च पूर्वाह्णे कर्त्तव्यम्
“पूर्वाह्णे देविकं कार्यमपराह्णे च पैतृकम् । एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्” ॥ इति
प्रचेतः स्मृतेः । प्रातः शब्देनात्र पूर्वाह्ण उच्यते “पूर्वाह्णे वै भवेद्बुद्धिः विना जन्मनिमित्तकम्”
इति स्मरणात् । तथा च गार्ग्यः—

१५ “ललाटसंमि ते भानौ प्रहरः प्रथमः स्मृतः । स एवाध्यर्धसंयुक्तः प्रातरित्यभिधीयते” ॥ भरद्वाजोऽपि
“पूर्वाह्ण एव नांदी स्यादपराह्णे तु पैतृकम्” ॥ इति । अग्न्याधाननिमित्तं त्वपराह्णे कार्यम्—
“आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे सिद्धाग्नेन तु मध्यतः । पार्वणं चापराह्णे तु वृद्धिश्राद्धं तथाग्रिकम्” ॥ इति
गालवस्मरणात्तत्र । नियतकालसीमन्तान्नप्राशनचौलोपनयनादिनिमित्तं ब्राह्मणभोजनमुपनयनवद्-
ब्राह्मणान्भोजयित्वेत्यादिना कर्मादिषु विहितं श्राद्धं तस्मिन्नेव दिने पूर्वाह्णे अनुष्ठेयं विवाहादावन्ते
२० विहितमभ्युदयश्राद्धं पूर्वाह्णे विवाहादौ सति तस्मिन्नेव दिने पूर्वाह्णे कर्त्तव्यम् । रात्रौ विवाहादौ
सति श्वः प्रातः कर्त्तव्यम् । अनियतनिमित्तं पुत्रजन्मग्रहणादिश्राद्धं निमित्तानंतरं कुर्यात् । यदाह
लोकाक्षिः—

“नियतेषु निमित्तेषु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् । पुत्रजन्मानि कुर्वीत श्राद्धं तात्कालिकं बुधः” ॥ इति ।
तथा काष्णीजिनिः—

२५ “प्रादुर्भावे पुत्रपुत्र्योर्ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । स्नात्वाऽनंतरमात्मीयान्पितॄन् श्राद्धेन तर्पयेत्” ॥ इति ।
उक्तमर्थमभिप्रेत्य कालादर्शकारः—

“नैमित्तिकं तु यच्छ्राद्धं निमित्तानंतरं भवेत् । नांदीमुखाद्वयं प्रातः आन्हिकं त्वपराह्णके” ॥ इति ।
नांदीमुखनिमित्तान्याह स एव—

“सीर्मतवतचौलनामकरणाप्रशानोपायनस्नानाधानविवाहयज्ञतयोत्पत्तिप्रतिष्ठासु च ।

३० “पुंसूत्यावसथप्रवेशनसुताद्यास्यावलोकः श्रमस्वीकारक्षितिपाभिषेकदयितायत्तौ च नांदीमुखम्” ॥ इति ।
व्रतानि प्राजापत्यादीनि । उपायनमुपनयनं स्नानं समावर्तनं प्रतिष्ठा देवताप्रातिष्ठा वापीकूपतटाकादि
प्रतिष्ठा च । पुंसूतिः पुंसवनम् । आवसथप्रवेशनं गृहप्रवेशनं । सुताद्यास्यावलोकः सुतस्य सुता-
याश्च आद्यः प्रथमः आस्यावलोकः मुखप्रेक्षणं दयितायाः भार्यायाः आद्यर्तुः प्रथमरजः प्रादुर्भावः ।
एतेषु निमित्तेषु नांदीमुखं कार्यमित्यर्थः । तत्र लोकाक्षिः—

३५ “नामान्नचौलगोदानसोपानयनपुंसवे । स्नानाधानविवाहेषु नांदीश्राद्धं विधीयते” ॥

काष्ठाजिनिः—

“कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशे नववेश्मनः । नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ॥
“सीमंतोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने । नांदिमुखान्पितृगणान्पूजयेत्प्रयतो गृही” ॥ इति । **कात्यायनः—**
“पुत्रोत्पत्तिप्रतिष्ठासु तन्मौजीत्यागबंधयोः । चूडायां च विवाहे च वृद्धिश्राद्धं समाचरेत्” ॥ इति ।

वृद्धगार्ग्यः—

“अग्न्याधानाभिषेकादविष्टापूर्ते स्त्रिया ऋतौ । वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत आश्रमग्रहणे तथा” ॥ इति ।

पारस्करः—

“निषेककाले सोमे च सीमंतोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्मांगं वृद्धिवत्कृतम्” ॥ इति ।
निषेककाले गर्भाधानकाले सोमशब्दोऽत्राधानाग्निहोत्रादिकर्मणामुपलक्षणार्थः ।

“गर्भाधाने विवाहे च सुवने जातकर्मणि । नामोपाकर्मस्नानेषु व्रतेषु च समापने ॥

“ब्राह्मणान् भोजयेदादौ” इति । तत्रैव—

“सीमंतोन्नयने चैव अन्नप्राशनचौलयोः । उपायने च गोदाने चादावेव समाचरेत्” ॥ इति ।
एतच्च कर्मांगश्राद्धमसकृत्क्रियमाणे अग्निहोत्रादिषु कर्मसु प्रथमप्रयोग एव कर्तव्यम् ।

यदाह कात्यायनः—

“नानिष्ठा तु पितृन् श्राद्धे कर्म वैदिकमाचरेत् । असकृद्यानि कर्माणि क्रियेरन्कर्मकारिभिः ॥ १५
“प्रतिप्रयोगं नैताः स्युर्मातरः श्राद्धमेव च” ॥ इति स एव—

“आधाने होमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च । बलिकर्मणि दर्शे च पौर्णमासे तथैव च ॥

“नवयज्ञे च यज्ञादौ वदन्त्येव मनीषिणः । एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक्पृथक्” ॥ इति ।
होमयोरित्यनेनाधानसमभिव्याहारात् द्विवचनाच्च सायंप्रातरग्निहोत्रहोमावुक्तौ अष्टकौदिश्राद्धेषु
पृथक्प्रयोगेऽपि कर्मांगश्राद्धं न कर्तव्यं यतोऽनंतरमाह स एव “नाष्टकादौ भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे २०
श्राद्धमिष्यते” । **वृद्धशातातपोऽत्र** विशेषमाह—

“त्रिष्वप्येतेषु युग्मांस्तु ब्राह्मणान्नियतः शुचिः । प्रदक्षिणं तु सव्येन पूजयेद्देवपूर्वकम्” ॥ इति ।
अयमर्थः—दैवे द्वौ ब्राह्मणौ मातृश्राद्धे द्वौ पितृश्राद्धे द्वौ सपत्नीकमातामहश्राद्धे द्वौ एवमष्टावरा-
न्ब्राह्मणां निमंत्रणादिविसर्जनांतं सर्वमुपचारजातं प्रदक्षिणं यथा भवति तथा कुर्वन्सव्येन सव्यां-
सगतैर्नैव यज्ञसूत्रेणोत्तरवाससा चान्वितः श्राद्धकर्त्ता भोजयेत्” इति । **याज्ञवल्क्य—**(आ. २५) २५
“एवं प्रदक्षिणावृत्को वृद्धौ नांदिमुखान्पितृन् । यजेत दधिकर्कधुमिश्रांन्पिडान्यवैः क्रियाः” ॥ इति ।
कर्कधुः बदरीफलम् । प्रचेताः—

“न जपेत्पैतृकं जप्यं न मांसं तत्र दापयेत् । प्राङ्मुखो दैवतीर्थेन क्षिप्तं देशविमार्जनम्” ॥ इति ।

आश्वलायनः— “अथाभ्युदयिके युग्मा ब्राह्मणा अमूला दर्भाः प्राङ्मुखो यज्ञोपवीती
स्यात् । प्रदक्षिणमुपचारो यवास्तिलार्था गंधादिदानं च ऋजुदर्भा वासने दद्यात्” ॥

“यवोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवैर्निर्मितः । प्रत्तवभ्यः प्रत्तः पुनर्नांदिमुखान्प्रीणयाहि नः स्वाहा” इति ॥
यववापनमिति । **मुद्गलः—** “देवेषु द्वावेको वा पित्रेष्वेको द्वौ वा ब्राह्मणौ श्राद्धे कल्पयेत्” इति ।

कात्यायनः— यवस्तिलार्थः । तत्र यवोसीति ऊहो न स्वधां प्रयुंजीत ।

“सदा पश्चिरेद्भक्त्या पितृनप्यत्र देववत् । निपातो हि न सव्यस्य जानुनो विद्यते क्वचित्” ॥ इति ।

स एव—“नांदीमुखान्पितृनावाहयिष्य ‘इति पृच्छति’ । अस्तु स्वधेत्यस्य स्थाने नांदीमुखः पितरः प्रीयंतामिति संपन्नामिति वृत्तिप्रश्ने दधिबदराक्षतमिश्राः पिंडाः” ॥ इति ।

वृद्धवसिष्ठोऽपि—

“दधिकर्कधुसंमिश्राः पिण्डाः कार्या यथाक्रमम् । प्राङ्मुखो देवतीर्थेन प्राक्कूलेषु कुशेषु च” ॥

५ “दत्त्वा पिंडान्न कुर्वीत पिंडपात्रमधोमुखम्” ॥ इति । पिंडदानमत्र भोजनशालायाः बहिः-कार्यम् । यदा प्रचेताः “बहिस्तु प्राक्कूलेषु च दध्यक्षतर्कधुमिश्रान्पिंडान् निर्वापयेत्” इति ।

चतुर्विंशतिमते—“एकं नाम्नापरं तूष्णीं दद्यात्पिंडान्पृथक्पृथक्” इति । पृथक्पृथगेऽस्मिन्द्वौ द्वौ पिंडौ दद्यात् । तत्र प्रथमपिंडं नाम्ना गोत्रसहितेन दद्यात् । द्वितीयं तूष्णीं दद्यादित्यर्थः ।

आश्वलायनोऽपि—“प्राचीनाग्रान्दूर्भान्संस्तीर्य तेषु पृषदाज्यमिश्रेण भुक्तशेषेणैकैकस्य १० द्वौ द्वौ पिंडौ दद्यात्” इति । पिंडदानं वैकल्पिकमित्युक्तं भविष्यत्पुराणे—

“पिंडनिर्वापणं कुर्यान्न वा कुर्यान्नराधिप । वृद्धिश्राद्धे महाबाहो कुलधर्मानवेक्ष्य तु” ॥ इति । एतच्चाभ्युदयश्राद्धमापदादिनिमित्तेषु आमेन हेम्ना वा कुर्यात् । तत्र मरीचिः—

“अनग्निश्च प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत मातापित्रोः क्षयादृते” ॥ इति ।

व्याघ्रपादः—

१५ “आर्त्तवेऽन्नद्विजाभावे ग्रहणे देशविप्लवे । आमश्राद्धं द्विजः कुर्याच्छूद्रः कुर्यात्सदैव हि” ॥ इति ॥ **गालवः—**

“तीर्थेऽनग्नावपदि च देशभ्रंशे रजस्यपि । हेमश्राद्धं द्विजैः कार्यं शूद्रैः कार्यं सदैव हि” ॥ इति ।

पराशरः—

“असमर्थोऽन्नदानस्य धान्यमामं स्वशक्तितः । प्रदास्यति द्विजाग्रेभ्यः स्वल्पामपि च दक्षिणाम्” ॥ इति ।

२० **पुराणेऽपि—**

“आमं ददातु कौंतेय दद्यादन्नाच्चतुर्गुणम् । सिद्धान्ने तु विधिर्यः स्यादामश्राद्धेऽप्ययं विधिः” ॥ इति ।

अत्र विज्ञानेश्वरः—

“यद्यद्ददाति विप्रेभ्यः श्रुतं वा यदि वाऽश्रुतम् । तेनाग्नौ करणं कुर्यात्पिंडास्तेनैव निर्वपत्” ॥ इति ।

चतुर्विंशतिमते—

२५ “आमश्राद्धं यदा कुर्यात्पिंडदानं कथं भवेत् । गृहादाहृत्य पक्वान्नं पिंडं दद्यात्तिलैः सह ।

“येनाग्नौकरणं कुर्यात्पिंडास्तेनैव निर्वपेत्” ॥ इति । हेमपिंडदानयोः संनियोगशिष्टत्वा-

द्वधारणत्वाच्च । संकल्पविधानेन त्वग्नौहोमाभावे पिंडदानं नास्ति इति गम्यते । तथा

पितृमेघसारे—“यद्यद्विप्रेभ्यो दद्यात्तेनैव होमस्तेन वा गृहादाहृताग्नेन वा पिंडान् दद्याद्यदा होमस्तदा

पिंडदानं होमाभावे पिंडदानाभावः । आमश्राद्धे चरोरभावात्तद्धर्माणामभावे भोजनाभावात्तत्संबंधिनां

३० चाभावः । संकल्पो वरणं पादप्रक्षालनं गंधपुष्पादिदानतंडुलादिप्रदानं दक्षिणेत्यामश्राद्धं कार्यम्” इति ।

तद्धर्माणामुपस्तरणावदानादीनां तत्संबंधिनां पात्राभिर्मंत्रणादीनामित्यर्थः ।

“हिरण्ये तूदकं पश्चान्मृतेऽहनिपरेऽहनि” इति वचनात् तर्पणं तदैव कार्यम् ।

इति वृद्धिश्राद्धं निरूपितम् ।

श्राद्धभेदाः ॥ अथ श्राद्धभेदाः । प्रेतोद्देशेन पित्रोद्देशेन वा द्रव्यत्यागः श्राद्धम् । तदाह मरीचिः—
“प्रेतं पितृंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः । श्रद्धया क्रियते यत्तु तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्” ॥ इति ।

ब्रह्मांडपुराणेऽपि—

“देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत् । पितृनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम्” ॥ इति ।
तच्च पुनः पार्वणैकोद्दिष्टभेदेन द्विविधम् । त्रिपुरुषोद्देशेन यत्क्रियते तत्पार्वणम् । एकपुरुषोद्देशेन ५
क्रियमाणमेकोद्दिष्टम् । तदाह कण्वः—

“एकमुद्दिश्य यच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं प्रकीर्तितम् । त्रीनुद्दिश्य तु यत्तद्धि पार्वणं मुनयो विदुः” ॥ इति ।
एतद्विविधमपि श्राद्धं नित्यनैमित्तिककाम्यभेदेन त्रिधा भिद्यते । तदुक्तं कालादौ—

“श्राद्धद्वयं तथोद्दिष्टमेकोद्दिष्टं च पार्वणम् । नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति तच्च पुनस्त्रिधा” ॥ इति ।
तत्र नियतोपाधौ चोदितं नित्यम् । यथा अमावास्यादौ विहितं श्राद्धम् । अनियतनिमित्तं १०
हि न नैमित्तिकम् । यथा उपरागादौ कामनोपाधिकं काम्यम् । यथा तिथिनक्षत्रादिषु ।
तदुदाहरति काष्ण्णजिनिः—

“मृताहेऽहरहर्दशैः श्राद्धं यच्च महालये । तन्नित्यमुदितं सद्भिर्नित्यवत्तद्विधानतः ॥

“प्रेतश्राद्धं सपिण्डत्वं संक्रांतिग्रहणेषु च । संवत्सरोदकुंभं च वृद्धिश्राद्धं निमित्ततः ॥

“तिथ्यादिषु च यच्छ्राद्धं मन्वादिषु युगादिषु । अलभ्येषु च योगेषु तत्काम्यं समुदाहृतम्” ॥ इति ११
यत्तु विश्वामित्रेण द्वादशविधत्वमुक्तम्

“नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धं सपिण्डनम् । पार्वणं चेति विज्ञेयं गौष्ठ्यं शुध्यर्थमष्टम् ॥

“कर्मणि नवमं प्रोक्तं दैविकं दशमं स्मृतम् । यात्रास्वेकादशं प्रोक्तं पुष्ट्यर्थं द्वादशं स्मृतम्” ॥

इति तत् नित्यनैमित्तिककाम्यावांतरविवक्षयैव न तु ततः पार्थक्यविवक्षया ।

तथा च वृद्धवसिष्ठः—

“अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तन्नित्यमिति कीर्तितम् । एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते ॥

“अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं काम्यं पार्वणवत्स्मृतम् । पुत्रजन्मविवाहादौ वृद्धिश्राद्धमुदाहृतम् ॥

“नवानीतार्घ्यपात्रं च पिण्डं च परिकीर्त्यते । पितृपात्रेषु पिण्डेषु सपिण्डीकरणं तु तत् ॥

“प्रतिपर्व भवेद्यस्मात्प्रोच्यते पार्वणं तु तत् । गोष्ठ्यां यत्क्रियते श्राद्धं गोष्ठीश्राद्धं तदुच्यते ॥

“बहूनां विदुषां प्राप्तौ सुखार्थं पितृवृत्तये । क्रियते शुद्धये यत्तु ब्राह्मणानां तु भोजनम् ॥ २५

“शुध्यर्थमिति तत्प्रोक्तं श्राद्धं पार्वणवत्कृतम् ।

“निषेककाले सोमे च सीमंतोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्मणि विधिवत्कृतम् ॥

“देवानुद्देश्य क्रियते यत्तद्वैविकमुच्यते । तन्नित्यश्राद्धवत्कुर्यात् द्वादश्यादिषु यत्नतः ॥

“गच्छन् देशांतरं यद्धि श्राद्धं कुर्यात्तु सपिण्डी । तद्यात्रार्थमिति प्रोक्तं प्रवेशे च न संशयः” ॥ इति ।

श्राद्धदेशाः । अथ श्राद्धदेशाः । रत्नावल्याम्—

“देशः कालस्तथा पात्रं द्रव्यं कर्ता पितामहाः । निष्पत्तिकारणान्याहुः कर्मणोऽस्य विपश्चितः” ॥ इति ।

विष्णुः—

“दक्षिणाप्रवणे देशे तीर्थीदौ वा गृहेऽपि वा । भूसंस्कारादिसंयुक्ते श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नतः” ॥ इति ।

तीर्थं देवार्थसेवितं जलम् । आदिशब्देन पुण्याश्रमादि गृह्यते । भूसंस्कारो गोमयादिनोप-
लेपः । आदिशब्देन अशुचिद्रव्यापसरणम् ।

स एव

“गोमयेनोपलिप्तेषु विविकेषु गृहेषु च । कुर्याच्छ्राद्धमथैतेषु नित्यमेव यथाविधि” ॥ इति ।
याज्ञवल्क्योऽपि—(आ. २२७) “परिश्रिते शुचौ देशे दक्षिणाप्रवणे तथा” इति ।
परिश्रिते परितः प्रच्छादिते दक्षिणावनते देशे श्राद्धं कुर्यादित्यर्थः । स्वतो दक्षिणाप्रवणत्वासंभवे
५ देशस्य यत्नतो दक्षिणाप्रवणत्वं कार्यम् । तथा च मनुः—(३१२०६)

“शुचिदेशं विवक्तं तु गोमयेनोपलिप्य च । दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत्” ॥ इति ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

“तस्माच्छ्राद्धानि देयानि पुण्येष्वायतनेषु च । नदीतीर्थेषु तीर्थेषु स्वभूमौ च प्रयत्नतः” ॥ इति ।
देवलः—

१० “स्थलीषु गिरिष्ठेषु तीर्थेष्वायतनेषु च । विविकेषु च तुष्यंति श्राद्धेषु पितरः सदा” ॥ इति ।
स्थलीषु अकृत्रिमभूमिष्वित्यर्थः । तथा च शंखः—

“गोगजाश्वादिष्ठेषु कृत्रिमायां तथा भुवि । न कुर्याच्छ्राद्धमेतेषु पारक्यासु च भूमिषु” ॥ इति ।
कृत्रिमायां भुवि वेदिकादावित्यर्थः । यमः—

“परकीयप्रदेशेषु पितॄणां निर्वपेत्तु यः । तद्भूमिस्वामिपितृभिः श्राद्धकर्म विहन्यते” ॥ इति ।

१५ भारते च—

“पारक्ये भूमिदेशे च पितॄणां निर्वपेत्तु यः । तद्भूमिस्वामिपितृभिः श्राद्धकर्म विहन्यते ॥

“तस्मात् क्रीत्वा महीं दत्त्वा स्वल्पापि विचक्षणः।पिण्डः पितृभ्यो दत्तो वै तस्यां भवति शाश्वतः” ॥ इति ।

परकीयप्रदेशाः परपरिगृहीतगृहगोष्ठारामादायः । न पुनस्तीर्थादीनि ।

तथा चादित्यपुराणे—

२० “अटवी पर्वताः पुण्या नदीतीराणि यानि च । सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तेषु परिग्रहः ॥

“वनानि गिरयो नद्यस्तीर्थान्यायतनानि च । देवखाताश्च गर्ताश्च न स्वामी तेषु विद्यते” ॥ इति ।

“कृमिकीटाद्युपहतं देशं श्राद्धे विवर्जयेत्” । तदाह यमः—

“रुक्षं कृमिहतं क्लिन्नं संकीर्णानिष्ठगंधिकम् । देशं त्वनिष्ठशब्दं च वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि” ॥ इति ।
क्लिन्नं सकर्दमम् । संकीर्णमन्येनाकीर्णम् । मार्कण्डेयः—

२५ “वर्ज्या जंतुमया रुक्षा क्षितिः प्लुष्टा तथाग्निना । अनिष्टदुष्टशब्दोऽपि दुर्गंधा श्राद्धकर्मणि” ॥ इति ।
तीर्थक्षेत्रविशेषेषु कृतं श्राद्धं फलातिशयप्रदं भवति । तदाह देवलः—

“श्राद्धस्य पूजितो देशो गया गंगा सरस्वती । कुरुक्षेत्रं प्रयागश्च नैमिशं पुष्कराणि च ॥

“नदीतीरेषु तीर्थेषु शैलेषु पुलिनेषु च । विविधेष्वेव तुष्यंति दत्तेनेह पितामहाः” ॥ इति ।

आश्वलायनः—

३० “गङ्गा गोदावरी वेण्णा गौतमी कौशिकी तथा । नर्मदा शरयूश्चैव कावेरी च सरस्वती ॥

“गया प्रयागः श्रीशैलः गोकर्णं पुष्करं शुभम् । नैमिशं च कुरुक्षेत्रं केदारं सेतुबन्धनम् ॥

“द्वारका बदरी कौब्जः मुख्या वाराणसी तथा । पुरुषोत्तमस्वामिवेश्म सर्वोत्कृष्टमहोदधिः ॥

“एतेषु तीर्थमुख्येषु क्षेत्रेषु च शुभाशुभम् । कृतमक्षयमाप्नोति मनुष्याणां न संशयः” ॥

व्यासः—

“ पुष्करेष्वक्षयं श्राद्धं जपहोमतपांसि च । महोदधौ प्रयागे च काश्यां च कुरुजांगले ” ॥ इति ।

शंखोऽपि— “ वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे भृगुतुंगे हिमालये ।

“ गंगाद्वारे प्रयागे च नैमिषे पुष्करे तथा । संनिहत्यां गयायां च दत्तमक्षयतां व्रजेत् ॥

“ नदीसमुद्रतीरे वा ऋदे गोष्ठे च पर्वते । समुद्रगानदीतीरे सिंधुसागरसंगमे ॥

“ नद्योर्वा संगमे राजन्सालग्रामशिलांतिके । शालग्रामे च गोकर्णे गयायां च विशेषतः ॥

“ क्षेत्रेष्वेषु तु यः श्राद्धं पितृभक्तिसमन्वितः । करोति विधिवन्मर्त्यः कृतकृत्यो विधीयते ” ॥ इति ।

स एव “ यत्रकचन नर्मदातीरे यमुनातीरे गंगायां विशेषतो गंगाद्वारे प्रयागे गंगासागरसंगमे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते । कुब्जाहे भृगुवृन्दे केदारे लिङ्गायां सुगन्धायां फल्गुतीर्थे महागङ्गायां तण्डुलिकाश्रमे कुमारधारायां प्रभासे यत्रकचन सरस्वत्यां विशेषतो नैमिषारण्ये वाराणस्यामगस्त्या- १०
श्रमे कण्वाश्रमे कौशिक्यां सरयूतीरे शोणायां भागीरथ्याश्च संगमे श्रीपर्वते कल्पोदके उत्तर-
मानसे वडवायां सतर्चे विष्णुपदे स्वर्गप्रदेशे गोदावर्यां गोमत्यां वेत्रवत्यां विपाशायां वितस्तायां मरुद्वायां शतद्रुति चंद्रभागायां ऐरावत्यां सिंधोस्तीरे दक्षिणे पंचनदे औजसे चैवमादिष्वन्येषु तीर्थेषु सरिद्रासु पुष्करेषु प्रस्रवणेषु पर्वतेषु निकुंजेषु वनेषूपवनेषु च गोमथेनोपलितेषु मनोज्ञेषु चेति ” । अत्र पितृगाथा- १५

“ कुलेऽस्माकं स जंतुः स्याद्यो नो दद्याज्जलाञ्जलिम् । नदीषु बहुतोयासु शीतलासु विशेषतः ॥

“ अपि जायेत सोऽस्माकं कुले कश्चिन्नरोत्तमः । गयाशीर्षे वटे श्राद्धं यो नो दद्यात्समाहितः ॥

“ एष्टव्या बहवः पुत्राः यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । यजेत वाऽश्वमेधं वा नीलं वा वृषमुत्पृजेत् ” ॥ इति ।

ब्रह्मकैवर्त्त—

“ गयाशीर्षे यदा पिंडं नाम्ना येषां प्रकुर्वते । नरकस्था दिवं यांति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः ॥ २०

“ तत्राक्षय्यवटो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । पितॄणां तत्र वै दत्तमक्षय्यं भवति प्रभो ॥

“ वटवृक्षं समासाद्य शाकेनाप्युदकेन वा । एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिताः ॥

“ आत्मनस्तु महाबुद्धे गयायां तु तिलैर्विना । पिंडनिर्वापणं कार्यं मृतानां तु तिलैः सह ” ॥

नद्यादिषु तीर्थश्राद्धमुक्तं **मत्स्यपुराणे—**

“ स्नात्वा नदीषु सर्वासु पितृदेवांश्च तर्पयेत् । तत्र तत्र यथावित्तं कुर्याच्छ्राद्धादिकं तथा ” ॥ २५

“ अकालेऽप्यथ काले वा तीर्थश्राद्धं तथा नरः । श्राद्धं कृत्वा तदा तीर्थे कर्त्तव्यं पितृतर्पणम् ” ॥ इति ।

पाद्मेऽपि—

“ तीर्थे तु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कथंचन । अनर्थिनमनुप्राप्तं भोजयेन्मनुशासनात् ॥

“ सक्तुभिः पिंडदानं स्यात्संयावैः पायसेन वा । कर्त्तव्यमृषिभिर्दृष्टं पिण्याकेनैगुदेन वा ॥

“ पिण्याकेन तिलानां वा भक्तिमद्भिर्नरैः सदा । श्राद्धं तत्र तु कर्त्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम् ॥ ३०

“ श्वध्वांश्च दृष्ट्वा काका वा घ्नंति दृष्ट्वा न तैः क्रियाः ” ॥ इति । ‘तीर्थेऽनग्नावापदि च’ इति पूर्वोक्तं हिरण्यश्राद्धं कर्त्तव्यम् ।

“ क्षेत्रे स्नात्वा शुष्कवासाः प्रदाय तिलवार्यथ । भोजयेद्ब्राह्मणान् श्राद्धे हिरण्यश्राद्धमेव वा ॥

“ कृत्वा समविधानेन पिण्डान्ते क्षेत्रपिण्डनात् । अन्नेनामेन मांसेन सक्तुभिर्दिन आचरेत् ” ॥

गयाव्यतिरिक्तस्थानेषु जीवपितृकेनापि तीर्थं श्राद्धं कर्त्तव्यं इत्यधस्तात्प्रातिपादितम् । ३५

श्राद्धकालाः ॥ अथ श्राद्धकालाः । तत्र याज्ञवल्क्यः— (आ. २१७-२१८)

“अमावास्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम् । द्रव्यब्राह्मणसंपत्तिः विषुवत्सूर्यसंक्रमः ॥

“व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चंद्रसूर्ययोः । श्राद्धं प्रतिरुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः” ॥ इति ।
द्रव्यं कुसरमांसादि । ब्राह्मणः श्रुताध्ययनसंपन्नस्तयोः संपत्तिर्लाभो यस्मिन्काले स तथोक्तः

५ अत्र हारीतः—

“तीर्थद्रव्योपपत्तौ तु न कालमवधारयेत् । पात्रं च ब्राह्मणं प्राप्य सद्यः श्राद्धं विधीयते” ॥ इति ।
तीर्थं गंगादि । विषुवं मेषतुलासंक्रांतिः । अयनविषुवयोः संक्रांतित्वे सिद्धेऽपि पृथग्पादानं फलातिशयज्ञापनार्थम् । गजच्छायालक्षणं “यथेदुः पितृदेवत्य” इत्यादिना पूर्वमुक्तं ग्रहणमुपरामः ।
अत्र विशेषमाह वृद्धवसिष्ठः—

१० “त्रिदशाः स्पर्शसमये तृप्यन्ति पितरः सदा । मनुष्या मध्यकाले तु मोक्षकाले तु राक्षसाः” ॥ इति ।
श्राद्धं प्रति रुचिः यदा श्राद्धं प्रतीच्छा तदैव कर्त्तव्यमिति । चकारेणान्येऽपि श्राद्धकालाः संगृह्यन्ते । अत एव यमः—

“आषाढ्यामथ कार्तिक्या माध्यां त्रीन्यं च वा द्विजान् । तर्पयेत्पितृपूर्वं तु तदस्याक्षयमुच्यते” ॥ इति ।
जातुकार्णिः—“ग्रहोपरागे विषुवे च जाते कृष्णे मघायामयनद्वये च ।

१५ “नित्यं च शंखे च तथैव पद्मे दत्तं भवेन्निष्कसहस्रतुल्यम्” ॥ इति । शंखादिस्वरूपमपि तेनैवोक्तम्—
“शंखं प्राहुरमावास्यां क्षीणसोमा द्विजोत्तमः । अष्टका तु भवेत्पद्मं तत्र दत्तं तथाक्षयम्” ॥ इति ।
“यदा विष्टिव्यतीपातो भानुवारस्तथैव च । पद्मकं नाम तत्प्रोक्तमयनाच्च चतुर्गुणम्” ॥ इति ।
शंखोक्तमपि पद्मं ग्राह्यम् । काठकीश्रुतिः “एतद्धि देवपितृणामयनं यद्धास्तिच्छायायां श्राद्धं दद्यात्” इति ।
शंखोऽपि—

२० “हस्तिच्छायासु यदत्तं यदत्तं राहुदर्शने । विषुवत्ययने चैव सर्वमानन्त्यमश्रुते” ॥ इति ।
अनेकविधा गजच्छायाः स्मृतिषु प्रतिपाद्यन्ते—

“हंसे हस्तस्थिते या तु मघायुक्ता त्रयोदशी । तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुंजरस्य तु ॥

“हंसे करस्थिते या तु अमावास्या करान्विता । सा ज्ञेया कुंजरछाया इति बोधायनोऽब्रवीत्” ॥
करो हस्तनक्षत्रम् ।

२५ “वनस्पतिगते सोमे या च्छाया प्राङ्मुखी भवेत् । गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥
अमावास्यायामपराह्ण इत्यर्थः ।

“सैहिकेयो यदा सूर्यं ग्रसते पर्वसंधिषु । गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत्” ॥
सैहिकेयो राहुः ।

३० “घृतेन भोजयेद्विप्रान्घृतं भूमौ समुत्सृजेत् । ग्रहणाख्ये गजच्छाये श्राद्धं दत्त्वा न शोचति” ॥
भोक्तुरपि दोषस्तेनैव दर्शितः । युगादिकालं सूचयति

“वैशाखे कार्तिके माघे शुद्धाग्निग्रहपूर्णिमाः । नभस्यकृष्णपादूरोमामा वा तु युगादयः” ॥
अग्निः तृतीया । ग्रहाः नवमी । पादूरः त्रयोदशी । मामावा माघामावास्या ।

“कृष्णाजिनप्रतिग्राही विक्रीय वा हरेत यः । गजच्छायाश्रितो भुक्त्वा न भूयः पुरुषो भवेत्” इति ॥
देवलः—

“तृतीया रोहिणीयुक्ता वैशाखस्य सिता तु या । मघाभिः सहिता कृष्णा नभस्ये तु त्रयोदशी ॥
“तथा शतभिषगयुक्ता कार्तिके नवमी तथा । इंदुक्षये गजच्छाया वैधृतेषु युगादिषु ॥
“एते कालाः समुद्दिष्टाः पितृणां प्रीतिवर्धनाः” ॥ इति । ५

युगादिश्राद्धनिरूपणम् ।

युगादयो मत्स्यपुराणे दर्शिताः—“वैशाखस्य तृतीया तु नवमी कार्तिकस्य तु ।
“माघे पंचदशी चैव नभस्ये च त्रयोदशी । युगादयः स्मृता होता दत्तस्याक्षयकारकाः” ॥ इति ।
विष्णुपुराणेऽपि—

“वैशाखमासस्य च या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे १०
“नभस्य मासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पंचदशी च माघे ॥
“पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।
“श्राद्धं कृतं तेन समासहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति” ॥ इति । अत्र शुक्लपक्षे या
तृतीया पंचदशी कृष्णपक्ष इत्यन्वयः । अत एव नारदीयपुराणम्— “द्वे तु शुक्ले द्वे तु कृष्णे
युगाद्याः कवयो विदुः” ॥ इति । ब्राह्मपुराणे तु माघस्य पौर्णमासी युगादिरित्युक्तम्— १५
“वैशाखशुक्लपक्षस्य तृतीयायां कृतं युगम् । कार्तिके शुक्लपक्षे च त्रेता तु नवमेऽहनि ॥
“अथ भाद्रपदे कृष्णे त्रयोदश्यां द्वापरं युगम् । माघे तु पौर्णमास्यां तु घोरं कलियुगं तथा ॥
“युगारंभास्तु तिथयो युगाद्यास्तेन मिश्रितान्” ॥ इति ।
अत्र कल्पभेदेन व्यवस्थेति चंद्रिकायाम् । पुलस्त्यो विशेषमाह—
“अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा । युगादिषु च सर्वासु पिंडनिर्वापणाहते” ॥ इति । २०

स्मृत्यंतरे—

“सूर्यस्य सिंहसंक्रांत्यामंतः कलियुगस्य तु । तथा वृश्चिकसंक्रांत्यामंतश्चेतायुगस्य तु ॥
“जेयस्तु वृषसंक्रांत्या द्वापरान्तश्च संख्यया । तथा च कुंभसंक्रांत्यामंतः कलियुगस्य च ॥
“युगादिषु युगांते तु श्राद्धमक्षय्यमश्रुते” ॥

मन्वादिश्राद्धनिरूपणम् । मन्वादयोऽपि श्राद्धकालाः ॥

२५

“तथा मन्वन्तरादौ च देयं श्राद्धं विजानता” ॥ इति स्मरणात् ।

मन्वन्तरादयो मत्स्यपुराणे दर्शिताः—

“आश्वयुक्शुक्लनवमी कार्तिकी द्वादशी सिता । तृतीया चैत्रमासस्य सिता भाद्रपदस्य च ॥
“फाल्गुनस्याप्यमावास्या पुष्यस्यैकादशी सिता । आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ।
“श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तदाषाढी च पूर्णिमा । कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठी पंचदशी सिता ॥ ३०
“मन्वन्तरादयश्चैते दत्तस्याक्षयकारकाः” ॥ इति । तत्रैव—
“कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु । हायनानि द्विसाहस्रं पितृणां वृत्तिदं भवेत् ॥
“आसु स्नानं जपो होमः पुण्यानंत्याय कल्पते” ॥ इति ।

महाभारतेऽपि—

“या मन्वाद्या युगाद्याश्च तिथयस्तासु मानवाः । स्नात्वा हुत्वा च दत्त्वा च तदनंतफल भवेत्” ॥ इति ।
कालादर्शेऽपि—

“मन्वाद्यासु युगाद्यासु प्रदत्तः सलिलांजलिः । सहस्रवार्षिकीं वृत्तिं पितृणामावहेत्परां ॥
५ “द्विसहस्राब्दिकीं वृत्तिं कृतं श्राद्धं यथाविधि । स्नानं दानं जपो होमः पुण्यानंत्याय कल्पते” ॥ इति ।

संग्रहकारः—

“तिथ्यग्नीनतिथिस्तिथ्याशे कृष्णेभोऽनलो ग्रहाः । तिथ्यर्को न शिवोऽश्वोमातिथी मन्वादयो मताः” ॥ इति
चैत्रमासमारभ्य द्वादशमासानामेकैकस्य एकैकं पदं योजनीयम् । तिथिः पौर्णिमा अग्निस्तृतीया ।
चैत्रे पौर्णिमा शुक्लतृतीया चेत्यर्थः । वैशाखे नास्ति । ज्येष्ठे तिथिः पौर्णिमासी । आषाढे तिथ्यांशे
१० पौर्णिमासी । शुक्लदशमी च । श्रावणे कृष्णेभः कृष्णाष्टमी । अत्र कृष्णेति विशेषणादितरत्र सर्वत्र
शुक्लतिथेर्ग्रहणम् । भाद्रपदे अनलः तृतीया । आश्वयुजे ग्रहा नवमी । कार्तिक्यां तिथ्यर्को पूर्णा
द्वादशी च । मार्गशीर्षे पूर्णाद्वादशी न नास्ति । पुष्ये शिवः एकादशी । माघे अश्वः सप्तमी ।
फाल्गुने अमातिथी अमावास्या पौर्णिमासी चेत्यर्थः । स्मृत्यन्तरे—

“अमापातश्च संक्रांतिस्तथा वैधृतिरेव च । अष्टका चैव मन्वादि युगादिश्च महालयः ॥
१५ “चंद्रसूर्योर्परागश्च गजच्छाया तथैव च । द्रव्यब्राह्मणसंपत्तिः श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः” ॥ इति ।
“अमाष्टकाव्यतीपातमन्वादिषु युगादिषु । विद्वान् श्राद्धमवकुर्वाणः प्रायश्चित्तीयते द्विजः” ॥ इति
वचनान्मन्वादि युगादिव्यतीपातेषु श्राद्धं नित्यम् ।

“तिथ्यादिषु च यच्छ्राद्धं मन्वादिषु युगादिषु । अलभ्येषु च योगेषु तत्काम्यं समुदाहृतम्” ॥ इति
गालवः । वचनं तु न नित्यत्वापाकरणार्थं वचनद्वयेनाग्निहोत्रादिवन्नित्यत्वकाम्यत्वयोरविरोधादित्या-
२० हुः । एवमेव—“प्रेतश्राद्धं सपिंडत्वं संक्रांतिग्रहणेषु च” इति । प्रतिपादितस्य नैमित्तिकस्य

“संक्रांतिर्विषुवच्चैव विशेषेणायनद्वयम् । व्यतीपातोऽथ जन्मर्क्षं चंद्रसूर्यग्रहस्तथा ॥
“इत्येतान् श्राद्धकालांस्तु काम्यानाह प्रजापतिः । श्राद्धमेतेषु यद्दत्तं तदानंत्याय कल्पते” ॥ इति ।
विष्णूक्तस्य काम्यत्वस्य च न विरोधः । अत एव कूर्मपुराणे—

“नैमित्तिकं तु कर्त्तव्यं ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । बांधवानां च मरणे नरकी स्यादतोऽन्यथा ॥
२५ “काम्यानि चैव श्राद्धानि शस्यंते ग्रहणादिषु ” । तथा च शातातपः—
“सर्वस्वेनापि कर्त्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने । अकुर्वाणस्तु यः श्राद्धं पंके गौरिवसीदिति” ॥
“राहुदर्शनदत्तं हि श्राद्धमा चंद्रतारकम् । गुणवत्सर्वकामीयं पितृणामुपतिष्ठते ” ॥ इति

मार्कण्डेयोऽपि—

“विशिष्टब्राह्मणप्राप्तौ सूर्येदुग्रहणेऽयने । विषुवे रविसंक्रांतौ व्यतीपाते च पुत्रक ॥
३० “श्राद्धार्हद्रव्यसंप्राप्तौ तथा दुस्वप्नदर्शने । जन्मर्क्षग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया” ॥ इति ।
यदापि इच्छा कामः तदापि श्राद्धं कुर्वीतित्यर्थः । एवं च नित्यनैमित्तिकयोः फलेच्छायां सत्यां
काम्यत्वं न विरुध्यते ।

काम्यश्राद्धकालः । कृत्तिकादिनक्षत्राणि काम्यश्राद्धकालः ।

तदाह याज्ञवल्क्यः (आ. २६५-२६८)

“स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा । पुत्रं श्रेष्ठ्यं च सौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभम् ॥
“प्रवृत्तचक्रतां चैव वाणिज्यप्रभृतीनिपि । अरोगित्वं यशो वीतशोकरतां परमां गतिम् ॥
“धनं वेदान्भिषक्सिद्धिं कुप्यं गामप्यजाविकम् । अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं संप्रयच्छति ॥ ५
“कृत्तिकादिभरण्यंतं स कामानानुयादिमान् । आस्तिकः श्रद्धधानश्च व्यपेतमदमत्सरः ” ॥ इति ।
प्रवृत्तचक्रता अप्रतिहताज्ञता । कुप्यं सुवर्णरजतव्यतिरिक्तताप्रादि । विष्णुरपि (७८।८) “स्वर्गं कृत्तिकासु अपत्यं रोहिणीषु ब्रह्मवर्चसं सौम्ये कर्मणां सिद्धिं रौद्रे भुवं पुनर्वसौ पुष्टिं पुष्ये सार्पे सर्वान्कामान्श्रेष्ठ्यं पित्र्ये सौभाग्यं फाल्गुनीषु धनमर्थम्णे ज्ञातिश्रेष्ठ्यं हस्ते रूपवतः सुतान् त्वाष्ट्रे वाणिज्यवृद्धिं स्वातौ कनकं विशाखासु मित्राणि मैत्रे शाके राज्यं कृषिमूले समुद्रयानसिद्धिमाप्ये १०
सर्वान्कामान्वैश्वदैवे वेदश्रेष्ठ्यमभिजिति सर्वान्कामान्द्रवणे बलं वासवे आरोग्यं वारुणे रूपद्रव्यमाजे गृहमहिर्बुध्न्ये गाः पौष्णे तुरंगानाश्विने जीवितं याम्ये ” इति । आदित्याद्यो वाराश्च काम्यश्राद्धकालाः । तदाह विष्णुः— (७८।१) “सततमादित्येऽन्हि श्राद्धं कुर्वन्नारोग्यमवाप्नोति । सौभाग्यश्चाद्रे समरविजयं कौजे सर्वान्कामान्वौधे विद्यामभीष्टां जीवे धनं शौके जीवितं शनैश्चरः ” इति । १५

कूर्मपुराणेऽपि —

“आदित्यवारे त्वारोग्यं चान्द्रे सौभाग्यमेव च । कुजे सर्वत्र विजयं सर्वान्कामान् बुधस्य तु ।
“विद्यामभीष्टां च गुरौ धनं वै भार्गवे पुनः । शनैश्चरे भवेदायुरारोग्यं च सुदुर्लभम् ” ॥ इति ।
विष्णुधर्मोत्तरे— “अथ काम्यानि वक्ष्यामि श्राद्धानि तव पार्थिव ।
“आरोग्यमथ सौभाग्यं समरे विजयं तथा । सर्वान्कामांस्तथा विद्यां धनं जीवितमेव च ॥ २०
“आदित्यादिदिनेष्वेवं श्राद्धं कुर्वन्सदा नरः । क्रमेणैतान्यवाप्नोति नोत्र कार्या विचारणा ” ॥ इति ।
अत्र विशेषमाह मनुः (३।२७७)—

“युष्मद् कुर्वन् दिनर्क्षेषु सर्वान्कामानवाप्नुयात् । अयुष्मद् तु पितृनर्च्यं प्रजां प्राप्नोति पुष्कलम् ” ॥ इति ।
युष्मद् युगमेषु दिनेषु सूर्यादिवारेषु । ऋक्षेषु कृत्तिकादिनक्षत्रेषु । कुर्वन्श्राद्धमिति शेषः । प्रतिपदादि-
तिथयोऽपि काम्यश्राद्धकालाः । तदाह मनुः— २५

“कुर्वन्प्रतिपदि श्राद्धं सुरूपान्विन्दते सुतान् । कन्यकां तु द्वितीयायां तृतीयायां तु वंदिनः ॥
“पशून्क्षुद्रां चतुर्थ्यां च पंचम्यां शोभनान् सुतान् । षष्ठ्यां धूतं कृषिं चापि सप्तम्यां लभते नरः ॥
“अष्टम्यामपि वाणिज्यं लभते श्राद्धदो नरः । स्यान्नवम्यामेकसुरं दशम्यां द्विसुरं बहु ॥
“एकादश्यां तथा रूप्यं ब्रह्मवर्चसिनः सुतान् । द्वादश्यां जातरूपं च रजतं रूप्यमेव च ॥
“ज्ञातिश्रेष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तु सुप्रजाः । प्रियंते पितरश्चास्य ये शस्त्रेण रणे हताः ॥ ३०
“श्राद्धदः पंचदश्यां तु सर्वान्कामानवाप्नुयात् ” ॥ इति । कात्यायनोऽपि— “सुरूपाः सुताः प्रतिपदि स्त्रियोऽप्रतिरूपा द्वितीयायां वंदिनस्तृतीयायां चतुर्थ्यां क्षुद्रपशवः पुत्राः पंचम्यां धूतं षष्ठ्यां कृषिः सप्तम्यां वाणिज्यमष्टम्यामेकशफं नवम्यां दशम्यां वा गावः परिचारकाः एकादश्यां द्वादश्यां धनधान्यरूप्यं ज्ञातिश्रेष्ठ्यं हिरण्यानि त्रयोदश्यां युवानस्तत्र प्रियंते शस्त्रहतस्य चतुर्दश्याममावास्यायां सर्वम् ” ॥ इति । ३५

एतच्च तिथिश्राद्धं कृष्णपक्षे कर्तव्यम्—

“पित्र्यं श्राद्धं कृष्णदिनेऽस्तमययोगिनि” इति स्मरणात् । तथा च मनुः (३।२७८)—

“यथैव चापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते । तथा श्राद्धस्य पूर्वाण्हादपराणहो विशिष्यते” ॥ इति ।
कामश्राद्धं प्रकृत्य स्मृत्यन्तरेऽपि “कृष्णपक्षेऽपराणहे तु रौहिणं तु न लंघयेत्” इति ।

५ अपराणहः द्वेधा विभक्तस्यान्हो द्वितीयभागः । रौहिणोऽन्हो नवमो मुहूर्तः । एवं कुतपादिघटिका-
त्रययुक्तायां प्रतिपदादित्थौ काम्यश्राद्धं कार्यं न तु कुतपाद्यसंयुक्तायामिति मंतव्यमिति ।
चंद्रिकायाम्—काम्यश्राद्धं काम्यसिद्धिपर्यन्तमेकसंवत्सरपर्यंतं वा यथाकाममुक्तदिनेऽवश्यमनुष्ठेयम् ।
तथा देवस्वामिना नक्षत्रश्राद्धमुदाहृत्योक्तम्—“नक्षत्रेषु तु काम्यश्राद्धेषु तत्कामप्रदं नक्षत्रप्राप्तौ
आ तत्कामप्राप्तेरब्दमेकं वा तस्मिन् ऋक्षे श्राद्धं कुर्यात्” इति । हारीतः—

१० “काम्यश्राद्धानि काम्यार्थं सम्यग्यत्नेन साधयेत् । शरीरारंभहेतुत्वाच्च मुहुस्तानि कारयेत् ॥

“यथाकथंचिन्नित्यानि कुर्याद्विदुक्षयादिषु । पात्रद्रव्यादिसंपत्सु सत्सु काम्यफलं भवेत्” ॥ इति ।
विष्कंभादियोगाश्च काम्यश्राद्धकालाः । तत्र कृत्तिकादिनक्षत्रेषूक्तं फलं क्रमात् ज्ञेयम् । तदाह
मरीचिः—

“कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु श्राद्धे यत्फलमीरितम् । विष्कंभादिषु योगेषु तदेव फलमिष्यते” ॥ इति ।

११ रव्यादिवारश्राद्धफलं बवादिकरणेषु श्राद्धकरणेषुऽपि द्रष्टव्यम् । तदाह बृहस्पतिः—

“सूर्यादिवासरेष्वेतत् श्राद्धकुलभते परम् । बवादिकरणेष्वेतच्छ्राद्धकुच्चाश्रुते फलम्” ॥ इति ।
संगृह्य दर्शयति कालादर्शकारः—

“पक्षाद्याद्यासु तिथिषु वर्जयित्वा चतुर्दशीम् । कन्यादिकामिनः कुर्युः श्राद्धं पार्वणरूपवत् ॥

“कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु भरण्यंतेषु पार्वणम् । कुर्युः श्राद्धं श्रद्धावानाः स्वर्गादिफलगामिनः ॥

२० “विष्कंभादिषु योगेषु फलं नक्षत्रवत्स्मृतम् ।

“श्राद्धं रव्यादिवारेषु ह्यारोग्यादिफलेप्सवः । कुर्युः फलमिदं ज्ञेयं बवादिकरणेष्वपि” ॥ इति ।
काम्यश्राद्धस्य कालान्तरमप्याह गार्ग्यः—

“माससंज्ञे यथा ऋक्षे चंद्रः संपूर्णमंडलः । गुरुणा यदि संयुक्तः सा तिथिर्महती स्मृता” ॥ इति ।
पौर्णमास्यां चंद्रस्तन्मासनक्षत्रे चित्रादौ गुरुणा युक्तश्चेत्सा पौर्णमासी महाचैत्र्यादिसंज्ञेत्यर्थः ।

२५ स एव—

“मेषराशौ यदा सौरिः सिंहे चन्द्रबृहस्पती । भास्करः श्रवणक्षेत्रे च महामाघी च सा स्मृता” ॥ सौरिः
शनेश्वरः मेषे यदि स्याद्गुरुश्चंद्रश्च सिंहे यदि स्याद्भास्करः श्रवणक्षेत्रे यदि स्यात्तदा पूर्णिमा
महामाघीत्यर्थः । स एव—

“वृषे वा मिथुने भानौ जीवचंद्रौ तथेदुभे । पौर्णमासी गुरोर्वीरे महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥

३० “महाचैत्र्यादिषु कृतं दानं श्राद्धमुपोषणम् । अनंतफलदं प्राहुर्मुनयो धर्मवेदिनः” ॥

इति श्राद्धकालः ।

अथ श्राद्धे भोजनीयवर्जनीयब्राह्मणनिरूपणम् । तत्र मनुः— (३।१२४)

“तत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वर्ज्या द्विजोत्तमाः । यावन्तश्चैव यैश्चान्नैस्तांश्च वक्ष्याम्यशेषतः” ॥ इति ।
द्विजोत्तमा द्विजेषु त्रैवर्णिकेषूत्तमाः ब्राह्मणा इति यावत् । भोजनीयानभोजनीयांश्च ब्राह्मणान्वेत्तुं
गुणदोषपरीक्षणं कार्यमित्याह स एव—(३।१००)

“ दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् । तीर्थं तद्व्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथि स्मृतः ” ॥ इति । ५
पात्रपरिग्रहकालात्पूर्वमेतत्पितृपितामहपरीक्षा कार्या । तीर्थमुत्तमं पात्रमतिथितुल्यश्चेत्यर्थः ।
वेदपारगग्रहणमुपादेयगुणानामुपलक्षणार्थम् । अत एव छागलेयः—

“ सर्वलक्षणसंयुक्तैर्विद्याशीलगुणान्वितैः । पुरुषत्रयविरुद्धैः सर्वं श्राद्धं प्रकल्पयेत् ” ॥ इति ।
यमोऽपि—

“ पूर्वमेव परीक्षेत ब्राह्मणान् वेदपारगान् । शरीरप्रभवेर्दोषैः शुद्धांश्च चरित्रव्रतान् ” ॥ इति । १०
शरीरप्रभवा दोषाः कुष्ठापस्मारकादयः । तद्रहितान्पितामहादारभ्य भोजनीयब्राह्मणपर्यन्तं परीक्षेते-
त्यर्थः । अत एव पितुः श्रोत्रियत्वेन पुत्रस्य श्रेष्ठ्यमाह मनुः (३।१३६)—

“ अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः । अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः ॥

“ ज्यायांसमनयोर्विधस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता । मंत्रसंपूजनार्थं तु सत्कारमितरोऽर्हति ” ॥ इति ।

इतरः अश्रोत्रयपितृकः श्रोत्रिय इत्यर्थः । स एव—(३।१४९)

“ न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् । पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ” ॥ इति ।
प्रयत्नत इति दैवेऽप्यपकृष्य योजनीयम् । दैवे कर्मणि प्रयत्नतो न परीक्षेत । अनेन
किञ्चित्परीक्षणं कार्यमित्युक्तं भवति । तथा च स एव—(३।१२८)

“ श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि दातुमिः । अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महत्फलम् ॥

“ एकैकमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् । पुष्कलं फलमाप्नोति नामंत्रज्ञान्वहूनपि ॥ (१२९) २०

“ सहस्राणि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते । एकस्तान्मंत्रविद्विप्रः सर्वानर्हति धर्मतः ॥ (१३१)

“ ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च । न हि हस्तावसृग्द्विगधौ धाव्येते रुधिरौ वै ॥ (१३२)

“ यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बहूचं वेदपारगम् । शाखांतगं वाऽप्यध्वर्युं छंदोगं वा समाप्तिकम् ॥ (१४५)

“ एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः । पितृणां तस्य वृषिस्त्याच्छास्वती सप्तपौरुषी ॥ (१४६)

“ ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्त्वृणाग्निरिव शाम्यति । तस्मै व्यं न दातव्यं न हि भस्मानि हूयते ” ॥ (१६८) २५

बृहस्पतिः—

“यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे छंदोगं तत्र भोजयेत् । ऋचो यजुंषि सामानि त्रयं तत्र तु विद्यते ॥

“अटेत पृथिवीं सर्वां सशैलवनकाननाम् । यदि लभ्येत पित्र्यर्थे साम्नामक्षरचित्तकः ” ॥

“ऋचा तु वृष्यति पिता यजुषा तु पितामहाः । पितुः पितामहः साम्ना छंदोगो ह्यधिकस्ततः” ॥ इति ।

शातातपः—

“ भोजयेद्यस्त्वथर्वाणं दैवे पित्र्ये च कर्मणि । अनंतमक्षयं चैव फलं तस्योति वै श्रुतिः ” ॥

यमः—“ वेदविद्याव्रतस्नाताः श्रोत्रिया वेदपारगाः । स्वकर्मनिरताः शांताः क्रियावन्तस्तपस्विनः ॥

“ तेभ्यो हव्यं च कव्यं च प्रसन्नेभ्यः प्रदीयते ” ॥

“येसोमपा विरजसो ब्रह्मज्ञाः शांतबुद्धयः । व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिनः ॥

“ पंचाग्निरप्यधीयानो यजुर्वेदविदेव च । बह्वचश्च त्रिसौपर्णास्त्रिमधुर्वाऽथ यो भवेत् ॥ ३५

“ त्रिणाचिकेतो विरजाश्छंदोगो ज्येष्ठसामगः । अथर्वशिरसोऽध्येता सर्वे ते पंक्तिपावनाः ॥

“ शिशुरप्यग्निहोत्री च न्यायविच्च षडंगवित् । मंत्रब्राह्मणविच्चैव यश्च स्याद्धर्मपारगः ॥

“ ब्रह्मदेयासुतश्चैव भावशुद्धः सहस्रदः । चांद्रायणव्रतचरः सत्यवादी पुराणवित् ॥

“ निष्णातः सर्वविद्यासु शांतो विगतकल्मषः । गुरुवेदाम्निपूजासु प्रसन्नो ज्ञानतत्परः ॥

५ “ विमुक्तश्च सदा धीरो ब्रह्मभूतो द्विजोत्तमः । न मित्रो नैव चामित्रो मैत्र आत्मविदेव च ॥

“ स्नातको जप्यनिरतः सदा पुष्पबलिप्रियः । ऋजुर्धृष्टः क्षमी दांतः शांतः सत्यव्रतः शुचिः ॥

“ वेदज्ञः सर्वशास्त्रज्ञ उपवासपरायणः । गृहस्थो ब्रह्मचारी च चतुर्वेदविदेव च ॥

“ वेदविद्याव्रतस्नाता ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः” ॥ इति । “ब्रह्म मे तुमाम्” इत्यादयस्त्रयोऽनुवाकाः प्रत्येकं त्रिसुपर्णीसंज्ञास्तान्छीनेकं वाऽयोधीते स त्रिसुपर्णः । ‘मधुवाता क्रतायते’ इत्याद्या-
१० स्तिस्रः ऋचो योऽधीते स त्रिमधुः । ‘उशन्ह वै वाजःश्रवस’ इत्यादिभिस्त्रिभिरनुवाकैर्विहितानां नाचिकेतसंज्ञानामग्नीनां चेतावेत्ता वा त्रिणाचिकेतः । ब्रह्मदेयासुतः ब्राह्मविवाहोढायाः पुत्र इत्यर्थः । शंखः—

“ ब्रह्मदेयानुसंतानो ब्रह्मदेयाप्रदायकाः । ब्रह्मदेयापतिश्चैव ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः ॥

“यजुषां पारगो यश्च साम्नां यश्चापि पारगः । अथर्वशिरसोऽध्येता ब्राह्मणः पंक्तिपावनः” ॥ इति ।

१५ बोधायनोऽपि—“त्रिमधुस्त्रीणां चिकेतस्त्रिसुपर्णः पंवाग्निः षडङ्गवित् त्रिशीर्षगो ज्येष्ठसामगा” इति । पंक्तिपावनाः इति । ‘सहस्रशीर्षा पुरुषः’ ‘अभ्यः संभूतः’ ‘सहस्रशीर्षि देवम्’ इत्यनुवाकत्रयस्या-
ध्येता । हारीतौऽपि स्थितिरविच्छिन्नवेदेवेदिता आर्षेयवत्त्वं चेति कुलगुणाः । वेदा अंगानि धर्मोऽध्यात्मवित्त्वं विज्ञानं स्मृतिश्चेति षड्विधं श्रुतं ब्रह्मण्यता देवपितृभक्तता समता सौम्यता अपरो-
२० पतापिता अनसूयता अनुद्धतता अपारुष्यं मित्रता प्रियवादित्वं कृतज्ञता शरण्यता प्रशांतिश्चेति

“क्षमा दमो दया दानमहिंसा पूजनं तथा । शौचं स्नानं जपो होमस्तपः स्वाध्याय एव च ॥

“ सत्यवचनं संतोषो दृढव्रतत्वमुपव्रतत्वमिति षोडशगुणं वृत्तम् । तस्मात्कुलीनाः श्रुतशील-
वंतो व्रतस्थाः सत्यवादिनोऽव्यंगाः पंक्त्या द्वादशोभयत्र श्रोत्रियस्त्रिणाचिकेतस्त्रिसुपर्णस्त्रिमधु-
त्रिशीर्षगो ज्येष्ठसामगः पंचाग्निषडंगविद्वद्रजाप्यूध्वरेता ऋतुकालगामी तत्त्वाविच्चेति पंक्तिपावना

२५ भवंतीति स्थितिरविच्छिन्नसंतानत्वं अविच्छिन्नवेदेवेदितेति । हविरासादनार्थं देशविशेषवाची वेदि-
शब्दो हविः साध्यंयागं लक्षयति । आर्षेयत्वं प्रवरगतऋषिज्ञातृत्वं धर्मो धर्मशास्त्रं विज्ञानं वैशेषिकादि
शास्त्रज्ञानं स्मृतिः वेदशास्त्राद्यविस्मरणम्” ॥ विष्णुरपि—

“ ये क्षांतदांताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेंद्रियाः प्राणिवधे निवृत्ताः ।

“प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः” ॥ इति । मत्स्यपुराणेऽपि—

३० “ अर्थज्ञो वेदवित्सत्री ज्ञातवंशः कुलान्वितः । पुराणवेत्ता सर्वज्ञः स्वाध्यायजपतत्परः ॥

“ शिवभक्तः पितृपरः सूर्यभक्तोऽथ वैष्णवः । ब्रह्मण्यो योगविच्छान्तो विजितात्मार्थशीलवान् ॥

“ श्राद्धे नियोजनीयाः स्युर्यदेते पंक्तिपावनाः” इति ॥ याज्ञवल्क्यः (आ. २१९)

“अग्र्यः सर्वेषु वेदेषु श्रोत्रियो ब्रह्मविद्युवा । वेदार्थविज्येष्ठसामा त्रिमधुस्त्रिसुपर्णकः ॥

“कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः पंचाग्निर्ब्रह्मचारिणः । पितृमातृपराश्रैव ब्राह्मणाः श्राद्धसंपदा ” ॥ इति ।

मनुः (३।१८३-१८६)—

“अपांक्त्योपहता पंक्तिः पाव्यते यैर्द्विजोत्तमैः । तान्निबोधत कात्स्न्येन द्विजाभ्यान्पंक्तिपावनान् ॥

“अभ्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च । श्रोत्रियान्वयजाश्रैव विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ॥

“त्रिणाचिकेतः पंचाग्निस्त्रिमुपर्णः षडंगवित् । ब्रह्मदेयानुसंतानः छंदोगो ज्येष्ठसामगः ॥ ५

“वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः । शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः ” ॥ इति ।
सहस्रदः गवां सुवर्णानां वा । व्यासोऽपि—

“अग्निहोत्रपरो विद्वान् न्यायविच्च षडंगवित् । मंत्रब्राह्मणविच्चैव यश्च धर्मस्य पालकः ॥

“गुरुदेवाग्निपूजासु प्रसक्तो ज्ञानतत्परः । महादेवार्चनरतो वैष्णवः पंक्तिपावनः ” ॥ इति ।

मनुः (२।११८)—

“गायत्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयंत्रितः । नायंत्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्वविक्रयी ” ॥

मत्स्यः—

“गायत्रीजप्यनिरतं हव्यकव्ये नियोजयेत् । पापं तिष्ठति नो तस्मिन् बिंदुरिव पुष्करे ” ॥ इति ।

पुष्करं पद्मपत्रम् । आश्वलायनः—

“अविषुतब्रह्मचर्यौ पितरौ यस्य तिष्ठतः । सन्ध्याग्निहोत्रनिष्ठश्चेत् श्राद्धे सोऽर्हो न वेदवित् ॥ १५

“त्यक्ताग्निस्त्यक्तसन्ध्यो यो वेदविच्चापि सद्भिजः । स्वपित्रोरात्मनः शुद्धिविहीनस्तं च वर्जयेत् ” ॥

व्यासोऽपि—

“चीर्णव्रता गुणैर्युक्ता भवेद्युगे च कर्षकाः । सावित्रीज्ञाः क्रियावंतस्ते राजन्वचनक्षमाः ॥

“सावित्री तु जपन्यस्तु त्रिकालं भरतर्षभ । भैक्षवृत्तिः क्रियावांश्च स राजन्केतनक्षमः ” ॥ इति ।

केतनं निमंत्रणम् । क्षमो योग्य इत्यर्थः । यमः—

“गृहस्थो ब्रह्मचारी च यजुर्वेदविदेव च । वेदविद्याव्रतस्नाता ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः ” ॥ इति ।

चशब्दाद्यतिरप्युक्तः । उक्तं च साक्षाद्भस्मिन्—“यतीन्साधून्वेति ” । भोजयेदिति शेषः ।

ब्रह्मांडपुराणे—“शिखिभ्यो धातुरक्तेभ्यः त्रिदंढिभ्यश्च दापयेत् ” ॥ इति । शिखिनो

ब्रह्मचारिणः । धातुरक्तः धातुरक्तवस्त्रधारिणो वानप्रस्थाः । त्रिदंढिनो वाक्कायमनोदंडैरुपेता यतयः ।

अत्र परः परः श्रेष्ठः । अत एव नारदः—

“यो वै यतीननादृत्य भोजयेदितरान्द्विजान् । विजानन्वसतो ग्रामे कव्यं तथाति राक्षसान् ” ॥ इति ।

नागरखंडे—

“आमंत्रयेद्यतीन्पूर्वं वनस्थान्वा त्रिकर्मणः । तदभावे गृहस्थांश्च ब्रह्मज्ञानपरायणान् ” ॥ इति ।

त्रिकर्मणः ब्रह्मचारिणः । ब्रह्मपुराणे—

“अलाभे ध्यानिभिक्षूणां भोजयेद्ब्रह्मचारिणः । तदलाभे ह्युदासीनं गृहस्थमपि भोजयेत् ” ॥ इति । ३०

ध्यानी वानप्रस्थः । उदासीनो धातुरसंबंधी । तथा चापस्तंबः—“ब्राह्मणान्भोजयेद्ब्रह्मविदो

योनिगोत्रमंत्रांतेवास्यसंबंधान् ” इति । योनिसंबंधः मातुलादयः । गोत्रसंबंधाः सर्पिडाः ।

मंत्रसंबंधा वेदाध्यापकादयः । अंतेवासिसंबंधाः शिल्पिशास्त्रोपाध्यायाः । एवंविधसंबंधव्यतिरिक्ता-
न्ब्राह्मणान् गृहस्थादीन्भोजयेदित्यर्थः ।

चंद्रिकायाम्—

“ गृहस्थानां सहस्रेण वानप्रस्थशतेन च । ब्रह्मचारिसहस्रेण वानप्रस्थशतेन च ॥

“ ब्रह्मचारिसहस्रेण यो योगी स विशिष्यते ” ॥ पद्मपुराणेऽपि—

“ सांगान्यश्चतुरो वेदानधीते संस्कृतोऽर्थवित् । कर्मवान्कर्मसंशुद्धः स श्राद्धे प्रथमो मतः ॥

५ “ तादृशादयुताच्छ्रेयानेको योगसमाश्रयः ॥ ” वृद्धशातातपः—

“ ज्ञानी यस्य सदाश्राति उदकं वा पिवेद्यदि । कृतं तेनेह तत्कृत्यं तारितं च कुलत्रयम् ॥

“ योगिनं समतिक्रम्य गृहस्थं यदि पूजयेत् । न तत्फलमवाप्नोति स्वर्गस्थमपि पातयेत् ॥

“ योगिनं तु व्यतिष्ठस्य पूजयंति परस्परम् । भोक्तास्तु सदातारो नरके स्युः सर्वांधवाः ” ॥ इति ।

एतत्सर्वं वृत्तस्थदृष्टतत्त्वयोनिविषयम् । तथा च शातातपः—

१० “ योगिनं भोजयेन्नित्यं दृष्टत्वं मनीषिणम् । तेषां तु दत्तमक्षय्यं भवतीति न संशयः ” ॥

चंद्रिकायामपि—“ भोजनीयास्तथा नित्यं ज्ञानिनो ध्यानिनस्तथा ” ॥ इति ।

एवं च “ यथाकथंचिदपि यो योगधर्मं समाश्रितः । सम्यग्वर्णाश्रमस्थेभ्यस्तत्पात्रं परमं मतम् ” ॥

इत्युशनसो वचनं योगिप्रशंसापरम् । तथा चाश्वलायनः—

“ त्यक्तसंगं मुनिं शांतं सुनिर्विण्णममत्सरम् । शुद्धमेकाकिनं भिक्षुं सश्रद्धं च निराशिषम् ॥

१५ “ ईषणात्रयनिर्मुक्तं लोकवर्त्मविदूषकम् । यतिमेतादृशं यत्नात् श्राद्धे सम्यक्प्रपूजयेत् ॥

“ आहुतं वाप्यनाहूतं सिद्धं वा ब्राह्मणाज्ञया । आत्मना विदितं विप्रं यतिं सिद्धं च योगिनम् ॥

“ पूजयेद्देव मतिमान्श्राद्धेनाविदितं बुधः ॥

“ ये चाप्यविदिताः काले सिद्धायाः स्वयमागताः । शिवबुद्ध्याऽर्चयेदेतान् सिद्धान्विप्रानुमोदितान् ” ॥

हेमाद्रौ—

२० “ भिक्षार्थमागतांश्चापि काले संयमिनो यतीन् । भोजयेत्प्रणिपाताद्यैः प्रसाद्य यतमानसः ” ॥

यमः—

“ भिक्षुको ब्रह्मचारी च भोजनार्थमुपस्थितः । उपविष्टेष्वनुप्राप्तः कामं तमपि भोजयेत् ” ॥

वरणानंतरं प्राप्तमतिथिवद्भोजयेदित्यर्थः । छागलेयः—

“ पूजयेच्छ्राद्धकालेऽपि यतिं च ब्रह्मचारिणम् । विप्रानुद्धरते पापात्पितृमातृगणानपि ” ॥ इति ।

२५ उपवेशनस्थानविशेषमाह बृहस्पतिः—

“ अभावे स्नातकानां तु व्रतिनं श्राद्धकर्मणि । देवार्थं केतयेद्योग्यं न पित्रर्थं कदाचन ॥

“ श्राद्धकाले यतिं प्राप्तं पितृस्थाने तु भोजयेत् । देवस्थानेन वृणुयात्प्रथमं परिवेषयेत् ” ॥ इति ।

व्रतिनं ब्रह्मचारिणमित्यर्थः । यत्तु ब्रह्मकैवर्त्यवचनम्—“ मुंडान् जटिलकाषायांश्च श्राद्धकाले विवर्जयेत् ” इति तदाश्रमाचाररहितव्यर्थमुंडिविषयम् ।

३० “ वर्णाश्रमविरुद्धानां धर्मीणां ये तु सेवकाः । मुंडान् वसनकाषायांस्तास्तु श्राद्धे विवर्जयेत् ॥

“ अनाश्रमी तु यो विप्रो जटी मुंडी वृथाचयः । वृथाकाषायवारी च श्राद्धे तं दूरतस्त्यजेत् ” ॥ इति

स्मरणात् । ब्रह्मचारिणः श्राद्धे एकान्नभोजनमनुजानाति मनुः (२।१८९)—

“ व्रतवदेवदैवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथर्विवत् । काममभ्यर्थितोऽश्रीयाद्भ्रतमस्य न लुप्यते ” ॥ इति ।

देवदैवत्ये दैविके कर्मण्यभ्यर्थितो ब्रह्मचारी व्रतवद्भ्रताविरोधेन मधुवर्जं भुंजीत । पित्र्ये पितृकर्मणि

३५ ऋषिवत् ऋषिरिव मधुमांसादि वर्जयन् कामं इच्छया भुंजीत । एवमस्य ब्रह्मचर्यव्रतं न लुप्यते ।

अन्यथा लुप्यत इत्यर्थः ।

याज्ञवल्क्योऽपि (आ. ३२)—

“ ब्रह्मचर्ये स्थितो नैकमन्नमद्यादनापदि । ब्राह्मणः कामश्रीयाच्छ्राद्धे व्रतमपीडयन् ” ॥ इति । व्रतपीडाकरं मधुमांसादिवर्जयन्भुंजीतेत्यर्थः । परानुग्रहार्थं यतेः एकान्नभोजनमनुजज्ञे काष्ण्ण-जिनिः—“ अशकानुग्रहार्थं वा यतिरेकान्नभुग्भवेत् ” ॥ इति । वसिष्ठोऽपि—

“ ब्राह्मणकुलेऽभ्यर्थितो यतिर्भुंजीत ” इति । स्मृत्यन्तरे—

५

“ मधुमांसं न दातव्यं यतीनां ब्रह्मचारिणाम् । गंधं माल्यं च तांबूलमनुज्ञाप्यान्यतो दिशेत् ” ॥ इति ।

मनुः—(३।१४७-१४८)

“ एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः । अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥

“ मातामहं मातुलं च स्वस्त्रीयं इवशुरं गुरुम् । दौहित्रं विट्पतिं बंधुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ” ॥ इति ।

एष इति त्रिणाचिकेतः पंचाग्निरित्याभिरुक्तस्य परामर्शः । अयमिति मातामहं मातुलं चेति १०

वक्ष्यमाणस्य प्रथमः श्रेष्ठः कल्पः । अनुकल्पः प्रथमकल्पादधमः । “ मुख्यः स्यात् प्रथमः कल्पो ह्यनुकल्पस्ततोऽधमः ” (२।७४०) इत्यमरसिंहेनाभिधानात् । प्रथमकल्पाभावे अनुकल्पोऽप्यनुष्ठेय इत्युक्तम् । सदा सद्भिरनुष्ठेय इति । विट्पतिर्जामाता भोजयितुर्मातामहादय इह गृह्यन्ते ।

न तु भोक्तुः पित्रादेः तेषां संबंधिशब्दत्वात् । आश्वलायनः—

“ सत्पात्राणामलाभे तु पात्रभूतान् स्वबान्धवान् । कृतोपकारिणश्चापि श्राद्धे पूजितुमर्हति ॥ १५

नियतेर्दोषनिर्मुक्ता गुणेश्चोक्तैः समन्विताः । अनुकल्पेऽर्चनीयाः स्युः बान्धवाश्चोपकारिणः ॥

“ एतान्मोहान्तु यः श्राद्धे निर्गुणान् बान्धवान् द्विजान् । कृतोपकारिणश्चाचैत् श्राद्धहा स भवेन्नरः ॥

“ दौहित्रस्तु गुणैर्युक्तो विद्वान्प्रेतस्य संस्कृतः । अर्च्यः प्रथमकल्पेऽपि निर्गुणो न तु गृह्यते ” ॥

संभवति मुख्यकल्पे अनुकल्पो नानुष्ठेयः ।

“ प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेऽनुवर्तते । न सांपरायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ” ॥ इति । २०

मनुस्मरणात् (१।१३०)—सांपरायिकमुत्तरकालीनं स्वर्गादिफलमित्यर्थः ।

याज्ञवल्क्येनाप्यनुकल्पो दर्शितः (आ. २२०)—

“ स्वस्त्रीयक्रत्विग्जामातृयाज्यश्चशुरमातुलाः । त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसंबंधिबांधवाः ” ॥ इति ।

बोधायनः—“ तदभावे रहस्यविदो यजूर्षि सामानीति श्राद्धस्य महिमा तस्मादेवंविधं सपिंड-

मप्याशयेत् ” इति । त्रिभ्य ऊर्ध्वं यः सपिंडस्तद्विषयमेतत् । तथा च सपिंड इत्यनुवृत्तौ गौतमः २५

(१५।२१-२२)—“ भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवन्तम् ” इति । अत्रिस्तु—

‘ षड्भ्यस्तु परतो भोज्याः श्राद्धे स्युर्गोत्रजा अपि । षड्भ्यस्तु पुरुषेभ्योऽर्वाक् अश्राद्धेयाः सगोत्रिणः ’ ॥ इति ।

यत्तु—

“ पितृव्यगुरुदौहित्रानृत्विक्स्वस्त्रीयमातुलान् । पूजयेद्व्यकव्येन वृद्धानतिथिबांधवान् ” ॥ इति ।

विष्णुपुराणे—पितृव्यस्य भोजनीयत्वमुक्तं तत्तस्य गुणवत्तरत्वे वैश्वदेविकस्थाने भोजनीयत्वाभि- ३०

प्रायेण । तथा चात्रिः—

“ पिता पितामहो भ्राता पुत्रो वाऽथ सपिंडकः । न परस्परमर्घ्याः स्युर्न श्राद्धे ऋत्विजस्तथा ॥

“ ऋत्विक्पुत्रादयो ह्येते सकुल्या ब्राह्मणा द्विजाः । वैश्वदेवे नियोक्तव्या यथेते गुणवत्तराः ” ॥ इति

एवं च—

“आत्मानं वा नियुंजीत पुत्रं वाऽपि गुणान्वितम् । सोदर्यमेव वा श्राद्धे भोजयेत्तु द्विजोत्तमः” ॥ इति ।

पराशरवचनं

“योनिगोत्रसंबंधानामपि कामं श्रुतवृत्तये हि स्वधानिधीयते” इति बोधायनवचनं—“भोजये-
द्ब्राह्मणान्ब्रह्मविदो योनिगोत्रमंत्रांतेवास्यसंबंधान् गुणहान्यां तु परेषां समुदेतः सोदर्योऽपि
५ भोजयितव्य एतेनांतेवासिनो व्याख्याता” इत्यापस्तंबवचनमपि वैश्वदेविकस्थानाभिप्रायम् ।
अंतेवासिनामपि तत्स्थान एव निवेशः । तथा चामंत्रयतीत्युवृत्तौ कात्यायनः—

“अभावे शिष्यान्स्वाचारान्वैश्वदेवार्थम्” इति । सगुणानामनुकल्पानां मातामहादीनामभावे
निर्गुणानामनुकल्पतया ग्रहणमुक्तं चंद्रिकायाम्—

“यस्त्वासन्नमतिक्रम्य ब्राह्मणं पतिताहते । दूरस्थं भोजयेन्मूर्खो गुणाख्यं नरकं व्रजेत् ॥

१० “तस्मात्संपूजयेदेनं गुणं तस्य न चिंतयेत् । केवलं चिंतयेज्जातिं न गुणान्वितां द्विजः ॥

“सन्निकृष्टं द्विजं यस्तु युक्तजातिं प्रियंवदम् । मूर्खं वा पंडितं वापि वृत्तहीनमथापि वा ॥

“नातिक्रमेन्नरो विद्वान्दारिद्र्याभिहतं तथा” ॥ इति । संनिकृष्टं शरीरतः संनिकृष्टं दौहित्रादि-
मित्यर्थः । तथा च पुराणे—

“संबंधिनस्तथा सर्वान्दौहित्रं विट्पतिं तथा । भागिनेयं विशेषेण तथा बंधुं स्वगाधिप ॥

१५ “नातिक्रमेन्नरस्वेतान्न मूर्खानपि गोपते । अतिक्रम्य महारौद्रं रौरवं नरकं व्रजेत्” ॥ इति ।

मनुरपि (३२३४)—“व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत्” ॥ इति । व्रतस्थं केवल-
व्रतस्थमध्ययनादिरहितमित्यर्थः ।

“दौहित्रस्तु गुणैर्युक्तो विद्वान् प्रयतसंयतः । अर्च्यः प्रथमकल्पेऽपि निर्गुणो न तु गृह्यते” ॥

इत्याश्वलायनः । शरीरतः सन्निकृष्टदौहित्राद्यभावे तु चंद्रिकायामुक्तम्—

२० “गायत्रीमात्रसारोऽपि ब्राह्मणः पूज्यतां गतः । गृहासन्नो विशेषेण न भवेत्पतितः स चेत्” ॥ इति ।

द्विविधसंनिकृष्टविषयेऽपि गुणादिभिः श्रेष्ठेऽतिक्रांते सति भवत्येव दोषातिशयः । तदप्युक्तं तत्रैव—

“सप्तपूर्वांस्तप्तपरान्पुरुषानात्मना सह । अतिक्रम्य द्विजवरं नरके पातयेत्स्वग ॥

“तस्मान्नातिक्रमेत्प्राज्ञो ब्राह्मणान्प्रातिवेशिकां । संबंधिनस्तथा सर्वान्दौहित्रं विट्पतिं तथा” ॥ इति ।

षट्त्रिंशन्मते—

२५ “संनिकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् । भोजने चैव दाने च हन्यात् त्रिपुरुषं कुलम्” ॥ इति ।

यस्तु संनिकृष्टोऽनधीयानस्तस्यातिक्रामे न दोषः । तथा च तत्रैवोक्तम्—

“यस्य त्वेकगृहे मूर्खो दूरस्थश्च गुणान्वितः । गुणान्विताय दातव्यं न हि मूर्खे व्यतिक्रमः” ॥ इति ।

व्यतिक्रमदोषो नास्तीत्यर्थः । भविष्यत्पुराणेऽपि—

“ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खे मंत्रविवर्जिते । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते” ॥ इति ।

३० मूर्खग्रहणं निर्गुणमात्रोपलक्षणार्थम् । अत एवोक्तं तत्रैव—“व्यतिक्रांते न दोषोऽस्ति निर्गुणं प्रति

कहिंचित्” इति । आसन्नस्यैवातिथेरपि गुणपरीक्षणं न कार्यमित्याह शातातपः—“अविज्ञातं
द्विजं श्राद्धे न परीक्षेत्सदा बुधः ।

“सिद्धा हि विप्ररूपेण चरंतीह महीतले । अतिथिर्यस्य नाश्राति तच्छूयन् न प्रशस्यते” ॥ इति ।

“अज्ञातकुलनामानं तत्कालसमुपस्थितम्” इत्युक्तलक्षणातिथिः ।

अनुकल्पांतरमाह वसिष्ठः—

“आवृशंस्यं परो धर्मः याचते यत्प्रदीयते । अयाचतः सीदमानान्सर्वोपायैर्निमंत्रयेत् ” ॥ इति । आवृशंस्यमुत्कृष्टो धर्मः । तेन सगुणानामनुकल्पानामभावे याचनशीलान् निर्गुणानपि सर्वोपायैर्निमन्त्रयीत यथा ते निमन्त्रणमङ्गीकुर्वन्ति तादृशैरुपायैर्निमन्त्रयीत । अयाचनशीलानामभावे याचमानाय निर्गुणायापि दीय इत्यर्थः । अनुकल्पांतरमाह मनुः (३।१४४)—

५

“कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् । द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम्” ॥ इति । अभिरूपं विद्वांसमपीत्यर्थः । अयं त्वनुकल्पः पूर्वोक्तानामप्यलाभे द्रष्टव्यः । स्वेनैव निषिद्धस्य काममर्चयेदिति सानुशयमेवाभ्यनुज्ञानात् । तथाहि श्राद्धे मित्रं निषेधति मनुः (३।१३८)—
“न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः । नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेत् द्विजम्” ॥ इति धनैः कार्यं इति वचनाद्गुणवत्तामात्रहेतुकस्य मित्रभोजनस्यानुज्ञानमर्थात् सिद्धम् ।

१०

यदाह स एव (३।३९-१४१)—

“यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च । तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हवींषि च ॥
“यः संगतानि कुरुते मोहात् श्राद्धेन मानवः । स स्वर्गाच्च्यवते लोकात् श्राद्धमित्रो विनश्यति ॥
“संभोजनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः । इहैवास्ते तु सा लोके गौरंधे वैकवेऽमनी” ॥ इति । सा दक्षिणा तन्मित्रश्राद्धं संभोजनी बहुनामेकत्र भोजनम् । तद्रूपा पैशाची पिशाचैरुपभोग्येति १५
द्विजैरभिहिता इहैवास्ते इह लोके मित्रमेव संगृह्णाति नामुत्र पितृन् । अन्यत्र गमनाशक्तौ दृष्टांत उक्तः गौरंधे वैकवेऽमनीति । स्मृत्यंतरेऽपि—

“संभोजनी नाम पिशाचभिक्षा नैषा पितृन् गच्छति नोत देवान् ॥

“इहैव सा चरति क्षीणपुण्या शालांतरे गौरिव नष्टवत्सा” ॥ इति ।

अथ भोजनीयतयोक्तश्रोत्रियादिषु ये वर्जनीयास्ते निरूप्यन्ते । तत्र क्रमदीपिकायाम्— २०

“रजस्वला च या नारी प्रसूता याश्च योषितः । दैवे कर्मणि पित्र्ये च तासां भर्तुरशुद्धता ॥

“पूर्वेभ्युः श्राद्धकर्तारं तत्कर्तारं परेऽहनि । शवानुगामिनं चैव वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ” ॥ इति ।

“श्राद्धे निमन्त्रयेद्विद्वान् पितृणां न सगोत्रिणः । कर्तुस्तु गोत्रिणश्चैव विशेषेण विवर्जयेत् ।

“सहोदराणां पुत्राणां पितुरेकदिने तथा । श्राद्धे निमन्त्रणं वर्ज्यं क्षुरकर्म तथैव च” ॥ इति ।

शंखः— मातामहादेर्ज्ञातींश्च स्वस्य ज्ञातींश्च वर्जयेत् ।

२५

“गृह्यते यदि कर्त्ता च भोक्ता च नरकं व्रजेत् । तच्छ्राद्धमासुरं प्राक्तं पितृणां नोपतिष्ठते” ॥

बृद्धमनुः—“मासिके आब्दिके प्राप्ते वरणे परिवर्जयेत् । योनिजान् गोत्रजांश्चैव ह्युभयोर्विशजांस्तथा ॥

“वर्जयेत्पितृकुल्येषु देवकार्ये यथामति । मातामहादेर्वरणादूर्ध्वं ज्ञातीन्नियोजयेत्” ॥ इति ।

नारदः—

“श्राद्धं दद्यात्सगोत्रे चेत्समानप्रवरे तथा । दातुः प्रतिग्रहीतुश्च कुलक्षयकरं तु तत्” ॥ इति । ३०

कारिकारत्ने—“अनग्निं गर्भिणीनाथं पितरं पुत्रमेव च । श्राद्धे निमंत्रयेन्नैको भ्रातृनापि च सोदरान् ॥

“नित्यश्राद्धे गयाश्राद्धे सोदकुंभे तथैव च । सगोत्रं भोजयेत्प्राज्ञ इत्युवाच बृहस्पतिः ” ॥ इति ।

“आब्दिके त्वघमेकाहं मासिकेषु च षड्दिनम् । षण्मासिके सपिण्डे च एकोद्विधे च वत्सरम्” ॥ इति ।

यान्नवल्क्यः (आ २२२)—

- “रोगी हीनातिरिक्तांगः काणः पौनर्भवस्तथा । अवकीर्णी कुंडगोलौ कुनखी श्यावदंतकः ॥
- “भृतकाध्यापकः क्लीबः कन्यादूष्यभिः शस्तकः । मित्रधुक्पिशुनः सोमविक्रयी परिविदंकः ॥
- “मातापितृपरित्यागी कुंडाशी वृषलात्मजः । परपूर्वापतिः स्तेनः कर्मदुष्टाश्च निदिताः ” ॥ इति ।
- ५ रोगी उन्मादादिरोगवान् । उन्मादादिरोगाश्च देवलेन दर्शिताः— “उन्मादस्त्वक्दोषो राज-
यक्ष्मा कासो मधुमेहो भगंदरो महोदरोऽश्मरीत्यष्टौ पापरोगाः ” इति । हीनमातिरिक्तं वांऽं
यस्यासौ हीनातिरिक्तांगः । एकोनाक्ष्णा यः पश्यति स काणः । तेन च वधिरमूर्काधादयो लक्ष्यते ।
द्विरूढा पुनर्भूः । तस्य जातः पौनर्भवः । अवकीर्णी स्वलितब्रह्मचर्यो ब्रह्मचारी ।
“प्रती यः स्त्रियमभ्येति सोऽवकीर्णी निरुच्यते । गूढलिङ्गयवकीर्णी स्यात् यश्च भग्नव्रतस्तथा” ॥ इति ।
- १० “स्त्रीगूढं यवकीर्णः स्याद्यश्च भिन्न व्रतस्तथा” देवलस्मरणात् । कुंडगोलौ—
“परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुंडगोलकौ । पत्यौ जीवति कुंडस्तु मृते भर्तरि गोलकः ” ।
इत्येवमुक्तलक्षणौ । कुनखी दुष्टनखः । श्यावदंतः स्वभावकृष्णदंतः । “स्वर्णचोरस्तु कुनखी
सुरापः श्यावदंतकः ” इति पूर्वजन्मनि महापातकित्वात्तयोः प्रतिषेधः । वेतनं गृहीत्वा योऽध्या-
पयति स भृतकाध्यापकः । तेन भृतकाध्यापितोऽपि लक्ष्यते । तावुपपातकिनौ
- १५ “भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितश्च यः । उपपातकिनौ द्वौ च स्वाध्यायक्रयविक्रयात् ” ॥ इति ।
देवलस्मरणात् । सता असता वा दोषेण कन्यां दूषयिता कन्यादूषी । महापातकाभिः शस्तोऽभि-
शस्तकः । मित्रद्रोही मित्रधुक् । परदोषसंकीर्तनशीलः पिशुनः । परिविदंकः परिवेत्ता । कुंडस्यान्नं
योऽश्नाति स कुंडाशी । एवं गोलकस्यापि ‘यस्तयोरन्नमश्नाति स कुंडाशी प्रकीर्तितः ’ इति
वचनात् । विहितकर्मपरित्यागी वृषलः । तत्पुतो वृषलात्मजः । परपूर्वापतिः पुनर्भूपतिः । अदत्ता-
- २० दायी स्तेनः । कर्मदुष्टाः शास्त्रविरुद्धकारिणः । एते श्राद्धे निदिता वर्ज्या इत्यर्थः ।
मनुरपि (३।१५०—१६७)—
- “ये स्तेनाः पतिता विभ्रा ये च नास्तिकवृत्तयः । तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥
- “जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कितवं तथा । याचयन्ति च ये पूगास्तास्तान् श्राद्धे न भोजयेत् ।
- “चिकित्सका देवलका मांसविक्रयिणस्तथा । विपणेन च जीवंतो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ।
- २५ “प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदंतकः । प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निवर्धुर्विस्तथा ॥
- “यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः । ब्रह्मद्विद् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ॥
- “कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च । पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपत्तिर्गृहे ॥
- “भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा । शूद्रशिष्यो गुरुश्चैषां वाग्दुष्टः कुंडगोलकौ ॥
- “अकारणे परित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा । ब्राह्मैर्यौनैश्च संबधैः संयोगं पतितैर्गतः ॥
- ३० “अगारदाही गरदः कुंडाशी सोमविक्रयी । समुद्रयायी वंदी च तैलिकः कूटकारकः ॥
- “पित्रान् विवादमानश्च केकरो मद्यपस्तथा । पापरोग्यभिः शस्तश्च डांभिको रसविक्रयी ॥
- “धनुःशराणां कर्त्ता च यश्चाग्नेदिधिषूपतिः । मित्रधुक् द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥
- “भ्रमरी गंडमाली च श्विज्यथो पिशुनस्तथा । उन्मत्तोऽन्धश्च वर्जाः स्युर्वेदनिंदक एव च ॥
- “हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति । पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च ॥
- ३५ “स्रोतसां भेदकश्चैव तेषामावरणे रतः । गृहसंवेशको दूतो वृक्षारोहक एव च ॥

“ श्वक्रीडी इयेनजीवी च कन्यादूषक एव च । हिंस्रो वृषलपुत्रश्च गणानां चैव याजकः ॥
“ आचारहीनः क्लीबश्च नित्ययाचनकस्तथा । कृषिजीवी शिल्पजीवी सद्भिर्निंदित एव च ॥

“ औरभ्रको माहिषिकः परपूर्वापतिस्तया । प्रेतनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥
“ एतान्विगर्हिताचारानपाङ्क्त्यान् नराधमान् । द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्र विवर्जयेत् ” ॥ इति ।

एतद्व्याख्यायते पारलौकिकफलदं कर्म नास्तीति मन्यमाना नास्तिकाः तेभ्यो वृत्तिर्जीविका ५
येषां श्रोत्रियादीनां ते नास्तिकवृत्तयः । जटिलो ब्रह्मचारी । अनधीयानः इति तस्य विशेषणम् । न
चाध्ययनरहितस्य ब्रह्मचारिणोऽश्रोत्रियत्वेन श्राद्धे प्रसक्त्यभावात्प्रतिषेधोऽनुपपन्न इति मंतव्यम् ।
यतो “व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् ” इति । अनधीयानस्यापि दौहित्रस्य ब्रह्म-
चारिणो भोजनीयत्वप्रसक्तौ प्रतिषेध इति । दुर्वालः खल्वाटः कपिलकेशः । अत्यंतकोपनो वा ।
तदुक्तं संग्रहे—“ खल्वाटकश्च दुर्वालः कपिलश्चंड एव च ” इति । कितवो धूतसक्तः । पूगयाजकः १०
गणयाजकः । चिकित्सकाः जीवनार्थं दृष्टार्थं च भैषज्यकारिणः । तस्माद् ब्राह्मणेन भेषजं न
कार्यम् ‘ अपूतो ह्येषोऽमेध्यो यो भिषक् ’ इति निर्दार्थवाददर्शनात् ।

देवलकस्वरूपं देवलेन दर्शितम्—

“ देवार्चनपरो विप्रो वित्तार्थं वत्सरस्त्रयम् । असौ देवलको नाम हव्यकव्येषु वर्जितः ॥

“ देवकोशोपजीवी च नाम्ना देवलको भवेत् । अपांक्तयः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु सर्वदा ” ॥ इति । १५

अनापदि वाणिज्येन जीवंतो विपणजीवनः । न त्वापद्यपि “ क्षात्रेण कर्मणा जीवेद्विशां
वाऽप्यापदि द्विजः ” इति वाणिज्यस्यापत्कल्पतया विहितत्वात् गुरोः प्रतिरोद्धा गुरुस्पर्धी । त्यक्ताग्निः
विहितत्यागकारणं विना श्रौतस्मार्त्ताग्निपरित्यक्ता । अल्पवृद्ध्या धनं स्वीकृत्य अधिकवृद्ध्या धन-
प्रयोजको वार्धुषिः । तथा च यमः—

“ समार्धं धनमुद्धृत्य महार्धं यः प्रयच्छति । स वै वार्धुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः ” ॥ २०
यक्ष्मी क्षयरोगी ‘ ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात् ’ इति तस्य पूर्वजन्मनि ब्रह्महन्वृत्वात्प्रतिषेधः । अनापदि
वृत्त्यर्थं यः पशून्पालयति स पशुपालः । परिवेत्तुपरिवित्तिस्वरूपमुक्तं मनुनैव (३।१७१।१७२)—

“ दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥

“ परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते । सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपंचमाः ” ॥ इति ।
परिविच्यादयः पंच वर्जनीया इत्यर्थः । अधीतविस्मृतवेदो निराकृतिः । तथा च देवलः— २५

“ अधीतविस्मृते वेदे भवेद्विप्रो निराकृतिः ” ॥ इति । कात्यायनस्तु—

“ यस्त्वाधायाग्निमालस्याद्देवादीन्यस्तु नेष्टवान् । निराकर्ताऽमरादीनां स विज्ञेयो निराकृतिः ” ॥ इति ।
गणाभ्यंतरो गणस्य नेता । कुशीलवो गायकादिः । वृषलीपतिस्तु रजस्वलायाः कन्यायाः पतिः ।
तदुक्तं देवलेन—

“ वंध्या तु वृषली ज्ञेया वृषली च मृतप्रजा । अपरा वृषली ज्ञेया कुमारी या रजस्वला ॥ ३०
“ यस्त्वेनामुद्रहेत्कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । अश्राद्धेयमपांक्त्यं तं विद्यात् वृषलीपतिम् ” ॥ इति ।

उपपत्तिस्वरूपमुक्तं देवलेन—

“ परदाराभिगो मोहात्पुरुषो जार उच्यते । स एवोपपत्तिर्ज्ञेयो यः सदा संवसेद्गृहे ” ॥ इति ।

वाग्दुष्टो निष्ठुरवाक् । अगरदाही द्वेधा देवलेन दर्शितः—

“अगारदाही स ज्ञेयः प्रेतदग्धा धनेन यः । स चाप्यगारदाही स्यात् द्वेषाद्यो वेश्मदाहकः” ॥ इति ।
तैलिकश्चक्री । कूटकारकः तुलामानादिषु वंचनाकारकः । केकरोऽध्यर्धदृष्टिः । अग्नेदिधिष्वाः पति-
रग्नेदिधिषूपतिः । ज्येष्ठायामूनूढायामूढा या कनिष्ठिका साऽग्नेदिधिषुः । तदुक्तं देवल-—

“ज्येष्ठायां यद्यनूढायां कन्यायामूढतेऽनुजा । सा चाग्नेदिधिषूर्जेया पूर्वा तु दिधिषूर्मता” ॥ इति ।

५ पुत्राचार्योक्षरपाठकः पुत्राद्वृहीतविद्यो वा । तथा चंद्रिकायाम्—

“पुत्राचार्यः स विज्ञेयो ग्रामे योऽक्षरपाठकः । पुत्रादवाप्तविद्यो वा पुत्राचार्यो निगद्यते” ॥ इति ।
भ्रामरी वृत्त्यर्थमेव भ्रमरवदर्थार्जकः । अपस्मारीत्यन्ये । गंडमाली गंडमालारोगवान् । श्वित्री
श्वेतत्वक् । हस्त्यादिदमकः शिक्षकः । गृहसंवेशकः गृहाणां निर्माता । नानाजातीया अनियतवृत्तयः ।
संहता गणाः । तेषां याजकः याजयिता । औरभ्रिकः अवीनां पालकः । माहिषिको व्यभिचारिणी-

१० पुत्रः । तदाह देवलः—

“महिषीत्युच्यते भार्या सा चैव व्यभिचारिणी । तस्यां यो जायते पुत्रः स वै माहिषिकः स्मृतः” ॥ इति ।
एतान्पूर्वोक्तानुभयत्र दैवे पित्र्ये च वर्जयेदित्यर्थः । मनुरेव (३।१६९-१७०)—

“अपांक्त्यदाने यो दातुर्भवत्यूर्ध्वफलोदयः । दैवे कर्मणि पित्र्ये च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥

“अवृत्तैर्यैर्द्विजैर्भुक्तं परिवेत्तादिभिस्तथा । अपांक्त्यैर्यदन्यैश्च तद्वै रक्षांसि भुजते ॥

१५ “अपांक्त्यो यावतः पांक्त्यान्मुंजानाननुपश्यति । तावता न फलं तत्र प्रदाताप्नोति बालिशः” ॥ १७६

“वीक्ष्यांधो नवतेः काणः षष्ठेः श्वित्री शतस्य तु । पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् ॥ १७७

“यावतः संस्पृशेदंगैः ब्राह्मणान् शूद्रयाजकः । तावतां न भवेत् दातुः फलं दानस्य पौर्तिकम् ॥ १७८

“सोमविक्रयिणे विष्टा भिषजे पूयशोणितम् । अप्रतिष्ठं वार्षुषिके नष्टं देवलके भवेत् ॥ १८०

“यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद्भवेत् । भस्मनीव हुतं हव्यं तथा पौनर्भवं द्विजे ॥ १८१

२० “इतरेषु त्वपांकेषु यथोद्दिष्टेष्वस्यधुषु । मेदोऽसृङ्मांसमज्जास्थि वंदत्यन्नं मनीषिणः” ॥ १८२ ॥ इति ।

वीक्ष्यांधो दृश्यमानांधः नवर्तर्भुजानानां दातुर्दनिं फलं नाशयते । पौर्तिकं पूर्तश्राद्धादि । तत्र
भवतीत्यर्थः । यमः—

“काणाः कुब्जाश्च कुणपाः कृतघ्ना गुरुतल्पगाः । ब्रह्मघ्नाश्च सुरापाश्च स्तेना गोघ्नाश्चकित्सकाः ॥

“राष्ट्रकामास्तथोन्मत्ताः पशुविक्रयिणश्च ते । मानकूटास्तुलाकूटाः शिल्पिनो ग्रामयाजकाः ॥

२५ “राजभृत्यांधबधिरमूकाः खल्वाटपंकवः । वृषलीफेनपीताश्च खञ्जाश्च श्रेणियाजकाः ॥

“कालोपजीविनश्चैव ब्रह्मविक्रयिणस्तथा । दग्धपूजाश्च ये विप्रा ग्रामकृत्यकराश्च ये ॥

“अगारदाहिनश्चैव गरदाः शवदाहकाः । कुंडाशिनो देवलकाः परदाराभिर्मर्शकाः ॥

“इयावदंताः कुनखिनः शिल्पिनः कुष्ठिनश्च ये । वाणिजो मधुहर्तारो हस्त्यवदमका द्विजाः ॥

“कन्यानां दूषकाश्चैव ब्राह्मणानां च दूषकाः । सूचकाः प्रेषकाश्चैव कितवाश्च कुशीलवाः ॥

३० “समयानां च भेत्तारः प्रदाने ये च बंधकाः । अजाविका माहिषिकाः सर्वविक्रयिणश्च ये ॥

“धनुःकर्त्ता धूतवृत्तिर्मित्रधुक् शस्त्रविक्रयी । गंडमाली च यक्ष्मी च दीर्धरोगी वृथाश्रमा ॥

“प्रप्रज्योपनिवृत्तश्च वृथाप्रव्रजितश्च यः । तथा प्रव्रजिताजातः प्रव्रज्यावसितश्च यः ॥

“तावुभौ ब्रह्मचंडालो प्राह वैवस्वतो यमः ।

“राज्ञः प्रेष्यकरो यश्च ग्रामस्य नगरस्य च । समुद्रयायी वांताशी केशविक्रयिणश्च ये ॥

“अवकीर्णी च वीरघ्नो गुरुघ्नः पितृदूषकः । गोविक्रयी च दुर्बालः पूगानां चैव याजकः ॥
 “मथपश्च कदर्यश्च सह पित्रा विवादकृत् । दाम्भिको वर्षकीभर्ता त्यक्तात्मा दारदूषकः ॥
 “सद्भिश्च निदिताचारः स्वकर्मपरिवर्जकः । परिविचिः परिवेत्ता भृत्याचारो निराकृतिः ॥
 “शूद्राचार्यः सुताचार्यः शूद्रशिष्यस्तु नास्तिकः । इध्वस्त्रदारकाचार्यो मानकृतैलिकस्तथा ॥
 “चोरा वार्धुषिका दुष्टाः परस्वानां च दूषकाः । चतुराश्रमवाह्यश्च सर्वे ते पंक्तिदूषकाः ” ॥ ५
 इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तान तान् द्विजान् न निर्मत्रयेदिति । ब्रह्मपुराणेऽपि—

“घटो मूकश्च कुनखी खल्वाटो दंतरोगवान् । स्यावदंतः पूतिनासो हीनांगश्चाधिकांगुलिः ॥
 “गलरोगी गंडमाली स्फुटितांगश्च सज्वरः । खंजतूबरमंदाश्च गंडुमान् दीर्घरोगवान् ” ॥ इति ।
 तूबरः श्मश्रुरहितः । यमोऽपि—
 “न खरैरुपयातस्य न रक्तोत्पणवाससः । ब्रंगुलातीतकर्णस्य भुंजते पितरो हविः ” ॥ इति । १०
 कर्णविधस्थाने तालपत्रादिप्रवेशेन विवर्धनं ब्रंगुलाधिकं निषिद्धम् । अतः ब्रंगुलातीतकर्णः श्राद्धानर्ह
 इत्यर्थः । शंखोऽपि—

“अनध्यायेष्वधीयानाः शौचाचारविवर्जिताः । शूद्राश्रमसपुष्टांगा ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः” ॥ इति ।
 आपस्तंबः—

“नीलकर्षणकारी तु नीलवस्त्रोपधारकः । किञ्चित्समै न दातव्यं चंडालसदृशो हि सः ” ॥ इति १५
 नीलीसंसर्गजदोषवान्वर्ज्य इत्यर्थः । स्मृत्यंतरे—

“स्तेनाभिःस्तनग्रासुषंढमार्जारकुक्कुटाः । कुंडगोलौ देवलकौ काणांधाः शिष्टगर्हिताः ॥
 “न वार्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालव्रतिके द्विजे । न बकवृत्तिके चैव नावेदविदि धर्मवित् ॥
 “न भ्रातरं नियुंजीत श्राद्धे पितृसुतानपि । विधुरं गर्भवंतं च विशिष्टमपि वर्जयेत् ॥
 “विद्याचोरो गुरुद्रोही नास्तिको वेदनिन्दकः । एते ब्राह्मणचंडाला जातिचंडालपंचमाः ॥ २०
 “प्रतिगृह्य तु धर्मार्थं संचयं कुरुते तु यः । धर्मार्थं नोपयुंजीत तस्करं तं विवर्जयेत्” ॥ इति ।
 नम्रादीनां लक्षणं निरूपितमधस्तात् । मनुः—(४।३०)

“पाषंडिनो विकर्मस्थान्बैडालव्रतिकान् शठान् । हैतुकान्बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ” ॥
 न केवलं भौजयित्रैव ज्ञानहीनो वर्जनीयः । किंतु स्वयमेव तेन वर्जनीया इत्याह स एव (३।३१३)
 “यावतो ग्रसते पिंडान् हव्यकव्येष्वमंत्रवित् । तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्ताच्छूलानयोहुत्वान् ॥” इति । २५
 दीप्तानग्निमयान् हुळद्विफलपत्राग्रम् । ब्रह्माण्डपुराणे—

“अस्मान् वृणीष्व श्राद्धार्थं यो वदेत्स द्विजाधमः । तं वृङ्क्ते श्राद्धकर्ता चेत् तावुभौ नरकालये ।
 “एतावद्वाक्षिणां देहि श्राद्धार्थमिति यो वदेत् । तं वृङ्क्ते श्राद्धकर्ता चेत् तावुभौ नरकालयौ” ॥
 उक्तानामेतेषां विद्यादिगुणयोगेऽपि वर्जनीयत्वमुक्तं ब्रह्माण्डपुराणे—

“श्राद्धार्हगुणयोगेऽपि नैतान् जातु कथंचन । निर्मत्रयेत श्राद्धेषु सम्यक्फलमभीप्सता ” ॥ इति । ३०
 आपत्स्वगत्या स्वीकृताः काणादयः सर्ववेदाग्न्यादिभिः पंक्तिपावनैर्यथा मिश्रिता भवंति तथा
 नियोक्तव्या इत्याह सुमंतुः—

“काणाः कुब्जाश्च खंजाश्च शिपिविष्टाः खलैर्विना । सर्वे श्राद्धे नियोक्तव्या मिश्रिता वेदपारगैः” ॥ इति ।
 अत एवोक्तं मनुनापिः (३।१८३)—अपांक्त्योपहता पंक्तिः पाव्यते यैर्दिजोक्तमैः” ॥ इति ।

मिश्रणे विशेषः उक्तः चंद्रिकायाम्—“काणादीन्भोजयेद्देवे श्राद्धे पित्र्ये तु वर्जयेत्” ॥ इति ।
 पैठीनासिरपि—“त्रिमधुस्रिसुपर्णस्त्रिणाचिकेतच्छंदोगो ज्येष्ठसामगो ब्रह्मदेयानुसंतानः सहस्रदो
 रुद्राध्यायी चतुर्वेदः षडंगविदथर्वशिरसोऽध्यायी पंचाग्निर्वेदजापीति पंक्तिपावनाः । तेषामेकैकः
 पुनाति युक्तः पंक्तिमूर्ध्नि सहस्रैरप्युपहताम्” इति । गयाश्राद्धे तु जातिमात्रोपजीविनोऽपि तत्रत्या
 ५ एव ब्राह्मणार्थे परिग्राह्याः । तदुक्तं चंद्रिकायाम्—

“यदि पुत्रो गयां गच्छेत्कदाचित्कालपर्ययात् । तानेव भोजयेद्विप्रां ब्राह्मणा ये प्रकल्पिताः ॥

“ब्रह्मकारितसंस्थाना विप्रा ब्रह्मसमाः स्मृताः । अमानुषा गयाविप्रा ब्राह्मणा ये प्रकल्पिताः ॥

“तेषु तुष्टेषु संतुष्टाः पितृभिः सह देवताः” ॥ इति ।

श्राद्धदिनात्पूर्वदिनकृत्यमुक्तम् वराहपुराणे—

१० “वस्त्रशौचादि कर्त्तव्यं श्वः कर्ताऽस्मीति जानता । स्थानोपलेपनं कृत्वा भूमिं विप्रान्निमंत्रयेत् ॥

“दंतकाष्ठं च विसृजेत् ब्रह्मचारी शुचिर्भवेत्” ॥ इति । श्राद्धभूमिं परिगृह्य गोमयादिना
 तत्स्थाने लेपनं कृत्वा वस्त्रशुद्ध्यादिकमन्त्रि कृत्वा रात्रौ विप्रान्निमंत्रयेदित्यर्थः । माधवीयेऽपि—

“पूर्वोऽह्नि रात्रौ विप्राग्यान्कृतसायंतनाशनान् । गत्वा निमंत्रयेद्देवपितृद्वेशसमान्वितः” ॥ इति ।

चंद्रिकायाम्—

१५ “निमंत्रयीत पूर्वेषुः पूर्वोक्तं द्विजसत्तमान् । दैवे नियोगे पित्र्ये च तांस्तथैवोपकल्पयेत्” ॥ इति ।

हारीतः—“यतेतैर्विधं श्राद्धमाहरिष्यन्पूर्वेषुनिमंत्रयेत्” ॥ इति । द्वेचलः—

“श्वः कर्ताऽस्मीति निश्चित्य दाता विप्रां निमंत्रयेत् । निरामिषं सकृद्भुक्त्वा सर्वभुक्तजने गृहे” ॥ इति ।

स्वगृहे यज्जनजातमास्ति तस्मिन्सर्वस्मिन्भुक्तवति सति पश्चात्निमंत्रयेदित्यर्थः । यमोऽपि—

“जातिक्रियावबोधार्थैर्गुणैर्युक्तानलोलुपान् । प्रार्थयेत् प्रदोषांते भुक्तानश्रितान् द्विजान्” ॥ इति ।

२० निमंत्रणप्रकारः प्रचेतसा दर्शितः

“कृतापसव्यः पूर्वेषुः पितृन्पूर्वं निमंत्रयेत्” ॥ भवद्भिः पितृकार्यं नः संपाद्यं च प्रसीदत ॥

“सव्येन वैश्वदेवार्थं प्रणिपत्य निमंत्रयेत्” ॥ अत्र पूर्वशब्दस्य वैश्वदेवार्थं निमंत्रयेदिति

व्यवहितेनान्वयः ।

“उपवीती ततो भूत्वा देवार्थं हि द्विजोत्तमान् । अपसव्येन पित्र्येऽथ स्वयं शिष्योऽथवा सुतः” ॥ इति

२५ बृहस्पतिस्मरणात् । अत्र “शिष्योऽथ वा सुतः” इत्युक्तत्वात् “सवर्णं प्रेषयेदातं द्विजानामुपमंत्रणे” ॥

इति प्रचेतःस्मरणाच्च कदाचिन्निमंत्रणमन्येनापि कारयेत् ।

प्रणतिपूर्वं निमंत्रणं शूद्रविषयम् । तथा च पुराणम्—

“दक्षिणं चरणं विप्रः सव्यं वै क्षत्रियस्तथा । पादावादाय वैश्यो द्वौ शूद्रः प्रणतिपूर्वकम्” ॥ इति ।

दक्षिणचरणस्पर्शो जानुप्रदेशे कर्त्तव्यः । तथा च मत्स्यः—

३० “दक्षिणं जानुमालभ्य त्वं मयाऽत्र निमंत्रितः” इति । स्मृत्यंतरे—

“पितृकार्येषु सर्वेषु पूर्वेषुः स्यान्निमंत्रणम् । प्रेतकार्येषु सर्वत्र सद्य एव निमंत्रणम्” ॥ इति ।

आश्वलायनः—कृतसायमाग्निकार्यः कृतसायमाशेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत्” इति ।

आपस्तम्बोऽपि (२।७।१७।११-१२) “पूर्वेषुनिवेदनं परेषुर्द्वितीयं तृतीयमामंत्रणम्” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि—(आ. ३२५)

“ निमंत्रयीत पूर्व्युर्ब्राह्मणानात्मवानुद्युचिः । तैश्चापि संयतेर्भाव्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ” ॥ इति ।
पूर्व्युः कथंचिन्निमंत्रणासंभवे पर्युर्निमंत्रयेत् । तथा च देवलः—“असंभवे पर्युर्वा ब्राह्मणास्त-
न्निमंत्रयेत् ” इति ।

चंद्रिकायाम्—“ निमंत्रयीत पूर्व्युस्तदहर्वा द्विजोत्तमान् ” ॥ इति । स्मृत्यन्तरेऽपि । ५

“ तस्मान्नु प्रथमं कार्यं प्राज्ञेनोपनिमंत्रणम् । अप्राप्तौ तद्दिने वापि वर्ज्या योषित्प्रसंगिनः ” ॥ इति ।

मनुरपिः (३।१८७)—

“ पूर्व्युपर्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते । निमंत्रयेत ज्यवरान्सम्यग्विप्रान्यथोदिताम् ” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः (आ. २२७)—

“ युग्मान्देवे यथाशक्तिः पित्र्येऽयुग्मांस्तथैव च । परिश्रिते शुचौ देशे दक्षिणाप्रवणे तथा ” ॥ इति । १०

पैठानसिः—“ ब्राह्मणान्सप्त पंच वा श्रोत्रियान्निमंत्रयेत् ” इति । यदा पंच ब्राह्मणास्तदा “ द्वौ दैवे
पित्र्ये त्रय ” इति विभागः । “ द्वौ देवे पितृकार्ये त्रीन् ” इति मनुस्मरणात् । यदा सप्त तदा दैवे
चत्वारः पित्र्ये त्रयः । “ अयुजो भोजयेच्छ्राद्धे न समान् दैविके समान् ” इत्यंगिरस्मरणात् ।
नन्वेतद्वचनं दैवे द्वौ पित्र्ये पंचेति विभागेऽप्युपपद्यते इति चेत् । मैवं त्रिषु पंचानामयुग्मसंख्यया
विभागानुपपत्तेः । “ दैवे युग्मान् यथाशक्तिः पित्र्ये एकैकस्य ” इति । कात्यायनेन पितृपिता- १५
महप्रपितामहानां प्रत्येकम् युग्मं ब्राह्मणविधानात् । न चैकत्र त्रयः इतरत्रैकैक इति विभाग
उपपद्यत इति वाच्यम् । ‘ समं स्यादश्रुतत्वात् ’ इति न्यायेन विषमविभागस्यान्याय्यत्वात्
तस्मादयुग्मसंख्यया समविभागार्थं पित्र्ये त्रय इत्युक्तम् । पित्र्यादिस्थानेषु सति सामर्थ्ये एकैकस्य
त्रीन्विप्रान्भोजयेत् । तथा च शौनकः—“ एकैकस्य द्वौ द्वौ त्रीन्वा ” इति । अत्र द्वौ द्वाविति
वृद्धिश्राद्धाभिप्रायम् । पार्वणश्राद्धे त्वयुजो भोजयेत् श्राद्धे न समान् इति समसंख्याया निषे- २०
धात् । अत्यंतविभवे सत्येकैकस्य पंच सप्त वा ब्राह्मणान्भोजयेत् । तथा च गौतमः (१५।७-८)—
“ नवावरान्भोजयेद्युजो यथोत्साहम् ” ॥ इति । अस्यार्थः—यथोत्साहं यथाविभवं पित्रादि-
स्थानेषु प्रत्येकमयुजः पंच सप्त वा ब्राह्मणान्भोजयेदिति । अयुजो भोजयेदिति सामान्योक्तावपि
पित्र्ये सप्तस्वेव पर्यवसानम्—

“ सामर्थ्येऽपि नवभ्योऽर्वाभोजयीत सति द्विजान् । नोर्ध्वं कर्त्तव्यमित्याहुः केचित्तद्दोषदर्शिनः ” ॥ इति २५
वचनात् । एवं शौनकगौतमाभ्यामुक्तोऽयं श्राद्धविस्तारः । मनुना तु संकोच आश्रितः—
(३।१२५-१२६)

“ द्वौ देवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा । भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्येत विस्तरे ॥

“ सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदम् । पंचैतान्विस्तरो हंति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि (आ. २२८)

“ द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उत एकैकमेव वा । मातामहानामप्येवं तंत्रं वा वैश्वदेविकम् ” ॥ इति । ३८
प्राक् प्राङ्मुखौ उदगुदङ्मुखौ उपवेश्योः । एकैकमेव वा वैश्वदेवे पित्र्ये च एकैकमुपवेशयेत् ॥
मातामहश्राद्धमपि एवं पितृश्राद्धवत्कर्त्तव्यम् । पितृपितामहदैवत्ये तु श्राद्धे पृथक् तंत्रेण वा वैश्व-
देविकं कर्त्तव्यमित्यर्थः । बृहस्पतिरपि—

“ एकैकमथ वा द्वौ त्रीन्दैवे पित्र्ये च भोजयेत् । सत्क्रियाकालपान्नादि न संपद्येत विस्तरे ” ॥ इति ॥ ३५

चंद्रिकायाम्—

“ देशकालबलाभावादेकैकमुभयत्र वा । शेषान्विज्ञानसारेण भोजयेदन्यवेष्टमनि ॥

“ यस्माद्ब्राह्मणबाहुल्याद्दोषो बहुतरो भवेत् । श्राद्धनाशौ मौननाशः श्राद्धतंत्रस्य विस्मृतिः ॥

“ उच्छिष्टोच्छिष्टसंपर्शो निंदाचाप्यन्यभोक्तृषु । वितंडा च परीवादो जल्पास्ते ते पृथग्विधाः ” ॥ इति ।

५ अत्र व्यवस्था कृता चंद्रिकायाम्—समुद्ध्यापि यस्य ब्राह्मणबाहुल्ये सत्क्रियादिसंपादनासामर्थ्यं तद्विषयं मन्त्रादिवचनं यस्य तु संपादनसामर्थ्यमस्ति तद्विषयं शौनकादिवचनमिति । यत्तु शंखेनोक्तम्—“ भोजयेदथ वाऽप्येकं ब्राह्मणं पंक्तिपावनम् ” इति तद्ब्राह्मणालाभविषयम् ।

“ पिशाचा राक्षसा यक्षा भूता नानाविधास्तथा । विप्रलुपंति सहसा श्राद्धमा रक्षवर्जितम् ॥

“ तत्पालनाय विहिता विश्वेदेवाः स्वयंभुवा । महालये चाब्दिके च सापिंड्ये मासिके तथा ॥

१० “ व्यर्थं भवति तच्छ्राद्धं वासुदेवविना कृतम् ” ॥ इति स्मृतेः ।

यदा त्वेक एव भोक्ता तदैवमाह वसिष्ठः (८।३०-३१) “ यथेकं भोजयेच्छ्राद्धे देवं तत्र कथं भवेत् ।

“ अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य तु । देवतायतने कृत्वा तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥

“ प्रास्येदग्नौ तदन्नं तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ” ॥ स्मृत्यंतरे—

“ एकश्चेद्ब्राह्मणो लब्धः श्राद्धं च प्रकृतं भवेत् । पितरश्च त्रयः प्रोक्ताः कथं तृप्यंति ते त्रयः ॥

१५ “ उरस्यश्नंति पितरो वामभागे पितामहाः । प्रपितामहा दक्षिणतः पृष्ठतस्त्वनुयायिनः ” ॥ इति ।

निमंत्रणे नियमांतरमाह मत्स्यः । “ एव निमन्त्र्य नियमान्श्रावयेत्पैतृकान्बुधः ।

“ अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः । भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा ” ॥

अत्रिरपि—

“ प्रथमेऽग्निं निवासस्थानं छेत्रियादीन्निमंत्रयेत् । कथयेत्तु तदैवेषां नियमं पितृदैविकम् ॥

२० “ सर्वायासविनिर्मुक्तैः कामक्रोधविवर्जितैः । भवितव्यं भवद्भिर्नः श्वोभूते श्राद्धकर्मणि ” ॥ इति ।

प्रथमेऽग्निं पूर्वेषुनिवासस्थानस्वीयनिवासस्थितानित्यर्थः ।

निमन्त्रितब्राह्मणकृत्यम् । निमंत्रितैर्यत्कर्तव्यं तदाह अत्रिः—

“ ते तं तथेत्यविघ्नेन गतेयं रजनी यदि । यथाश्रुतं प्रतीक्षेरन्श्राद्धकालमतंत्रिताः ” ॥ इति ।

ते निमंत्रिता विप्राः तं निमंत्रिणकर्त्तरि तथास्तु यद्यविघ्नेनेयं रजनी गतेत्युक्त्वा धर्मशास्त्रादौ

२५ यथा नियमजातं श्रुतं तथैव तं नियमजातं प्रतीक्षेरन् परिपालयेयुः श्राद्धकालस्वादितान्नपरिणाम-पर्यंतम् इत्यर्थः । तथा च प्रचेताः— “ स्यादन्नपरिणामात्तु ब्रह्मचर्यं तयोः स्मृतम् ।

“ निमंत्रितास्तु ये विप्राः श्राद्धकाल उपस्थिते । वसेरन्नियताहारा ब्रह्मचर्यपरायणाः ॥

“ अहिंसासत्यमक्रोधो दूरे च गमनक्रिया ” ॥

वृद्धमनुः— “ निमन्त्र्य विप्रास्तदहर्वर्जयेन्मैथुनक्षुरे ।

३० “ प्रमत्ततां च स्वाध्यायं क्रोधं शोकं तथाऽनृतम् । अभारोद्धहनं क्षांतिः श्राद्धस्यौपयिको विधिः ॥

“ ऋतुकाले नियुक्तोऽपि नैव गच्छेत्स्त्रियं क्वचित् । तत्र गच्छन्समाप्नोति ह्यनिष्टं फलमेव तु ” ॥ इति ।

नारदः—

“ पूर्वेषुश्चापरेषुश्च वर्जयेत् स्त्रीनिषेवणम् । व्यवायी रेतसो गर्तेन्मज्जयेदात्मनः पितृन् ॥

“ श्राद्धे निमंत्रितो यश्च मैथुनं कुरुते यदि । ब्रह्महत्यामवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ” ॥

वृषलीगमने दोषाधिक्यमाह मनुः (३।१९१)—

“ निमंत्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते । दातुर्यत् दुष्कृतं किञ्चित्सर्वं प्रतिपद्यते”॥

यमस्तु—

“ आमंत्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते । भवंति पितरस्तस्य मांसासृक् शुक्लभोजनाः”॥ इति

गौतमः (१।५।२३)—“ सद्यःश्राद्धीशुद्धातल्पगस्तत्पुरीषे मांसं नयति पितॄन् ” इति । ५
श्राद्धी श्राद्धकर्ता । सद्यस्तत्क्षणमारभ्येत्यर्थः । यमः—

“ आमंत्रितस्तु यः श्राद्धे अध्वानं प्रतिपद्यते । भवंति पितरस्तस्य तन्मांसं पांसुभोजनाः ।

“ आमंत्रितस्तु यः श्राद्धे कलहं कुरुते द्विजः । भवंति पितरस्तस्य तन्मांसं त्वश्रुभोजनाः ।

“ आमंत्रितस्तु यः श्राद्धे भारमुद्रहते द्विजः । भवंति पितरस्तस्य तन्मांसं स्वेदभोजनाः ॥

“ आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे हिंसां वै कुरुते द्विजः । भवन्ति पितरस्तस्य तन्मांसं रक्तभोजनाः ” ॥ १०

उशानाः—“आमंत्रितस्तु यः श्राद्धे द्यूतं संसेवते द्विजः । भवंति पितरस्तस्य तन्मांसं मलभोजनाः”
इति ॥ मनुः (३।१८८)—

“ निमंत्रितो द्विजः पित्र्ये नियतात्मा भवेत्सदा । न च च्छंदांस्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत्”॥
इति । स्मृत्यन्तरे—

“ श्राद्धे निमंत्रितो विप्रो मंत्रमुच्चारयेद्यदि । त्रयस्ते नरकं यांति दाता भोक्ता पिता तथा ” ॥ १५

इति । कात्यायनः—“ अनिधेनामंत्रितो नापक्रामेच्छक्तेन न प्रत्याख्यानं कर्तव्यम् ” इति ।

अनेनार्थान्निध्यामंत्रणे भोक्तुमसामर्थ्यं च प्रत्याख्यानं कर्त्तव्यमवेत्यवगम्यते । निमंत्रणानन्तरं
भोक्तुमसामर्थ्यं सति प्रत्याख्याने न दोष इत्याह स एव “ विधिवत्केतनं प्रतिगृह्य शक्तः
सन्नापकमेत् ” इति । केतनं प्रतिगृह्य आमंत्रणमंगीकृत्येत्यर्थः ।

अनिधेनामंत्रितस्य शक्तस्यांगीकृतश्राद्धातिक्रमे दोषमाह मनुः (३।१९०)

२०

“ केतितस्तु यथान्यायं हव्यकव्ये द्विजोत्तमः । कथंचिदप्यतिक्रामन् पापी सूकरतां व्रजेत्”॥इति ।

यमः—

“ आमंत्रितस्यु यो विप्रो भोक्तुमन्यत्र गच्छति । नरकाणां शतं गत्वा चंडालेष्वभिजायते”॥ इति ।

नारायणः—

“ आमंत्रितस्तु यः श्राद्धे कुर्वीतान्यस्य तु क्षणम् । संवत्सरकृतं पुण्यं तत्र नश्यति दुर्मतेः”॥ इति । १५

स्मृत्यन्तरेऽपि—

“ विद्यमानधनो विद्वान् भोज्यान्नेन निमंत्रितः । कथंचिदप्यतिक्रामन्पापः सूकरतां व्रजेत् ” ॥ इति ।

विद्यमानधनविशेषणादाह्याविषयमेतदिति केचिद्वर्णयन्ति । तदसाधु

“ निमंत्रितास्तु गुणिना निर्धनेनापि सद्विजाः । नान्यमृष्टाञ्जलोभेन तमतिक्रामयन्ति हि ॥

“ निमंत्रितास्तु येनादौ तस्माद्गृहं तु नान्यतः ” ॥ इति मत्स्यपुराणात् । कात्यायनः— १०

“ आमंत्रितोऽन्यत्र प्रतिगृह्णीयात्”इति । पूर्वमन्येन निमंत्रितः तदीयादन्नादन्यदन्नं पश्चान्निमंत्रितस्य
तंडुलादिरूपमपि न प्रतिगृह्णीयौदित्यर्थः । यः पुनः प्रतिगृह्णाति तस्य दोषमाह देवलः—

“ आमश्राद्धं गृहीत्वा तु योऽन्यश्राद्धेऽतिमोहतः । पतंति पितरस्तस्य लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥

“ पूर्वं निमंत्रितोऽन्येन कुर्यादन्यप्रतिगृहम् । भुक्ताहारोऽथ वा भुक्ते सुकृतं तस्य न दृश्यति ” ॥

स्मृत्यन्तरे—

“श्राद्धे निमन्त्रितो यस्तु यदि कुर्यात्प्रतिग्रहम् । भक्षयेत् किञ्चिदप्यन्यत्सुकृतं तस्य नश्यति ” ॥
 एवं च “इक्षूनपः फलं मूलं तांबूलं पय औषधम् । भक्षयित्वाऽपि कर्तव्या स्नानदानोदकक्रिया” ॥
 इति वचनं श्राद्धव्यतिरिक्तविषयम् । यस्त्वामन्त्रितो विप्र आहूतोऽपि श्राद्धोपक्रमकालातिपत्तिं
 ५ करोति तस्य प्रत्यवाय आदित्यपुराणेऽभिहितः—

“आमन्त्रितश्चिरञ्चैव कुर्याद्विप्रः कदाचन । देवतानां पितृणां च दातुरन्यस्य चैव हि ॥

“चिरकारी भवेद्रोगी पच्यते नरकग्निना ” ॥ इति ।

निमन्त्रितब्राह्मणपरित्यागे प्रत्यवायमाह नारायणः—

“केतनं कारयित्वा तु निवारयति दुर्मतिः । ब्रह्महत्यामवाप्नोति शूद्रयो नौ च जायते ॥

१० “निवार्यामन्त्रितं कर्त्ता ब्राह्मणं नियतं शुचिम् । यतिचांद्रायणं कृत्वा तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ” ॥
 यतिचांद्रायणं चांद्रायणविशेषः । यमः—

“ब्राह्मणं तु मुखं कृत्वा देवताः पितृभिः सह । तदन्नं समुपाश्रंति तस्मात्तं न व्यतिक्रमेत् ” ॥ इति ।
 मनुष्ये (३।१८९)—

“निमन्त्रिता हि पितर उपतिष्ठन्ति तान्द्रिजान् । वायुभूतास्तु गच्छन्ति तथासीनानुपासते ” ॥ इति ।

१५ श्राद्धदिनकृत्यम् । अथ श्राद्धदिनकृत्यम् । प्रचेताः—

“श्राद्धभुक् प्रातरुत्थाय प्रकुर्याद्विन्तधावनम् । श्राद्धकर्त्ता न कुर्वीत दंतानां धावनं बुधः ” ॥ इति ।
 देवलः— “तथैव यन्त्रितो दाता प्रातः स्नात्वा सहांवरः । आरभेत नवैः पात्रैरन्नारभं च बांधवैः ”
 इति । तथैव श्राद्धकर्त्तुं रुक्तनियमातिक्रमेणैव यन्त्रितः नवैः अनुपहतैः पाकयोग्यैः पात्रैः अन्नारभं
 श्राद्धार्थान्नस्य पाकारभं पाकोपयोगिभिर्बांधवैरुपेतः कुर्यादित्यर्थः । स्मृत्यन्तरे च—

२० “पुराणपात्रपक्वं यद्विस्तु श्राद्धकर्माणि । भुञ्जते नैव पितरो न देवाश्चासुरं भवेत् ” ॥ इति ।
 तत्रैव—

“पचेदन्नानि सुस्नातः पात्रेषु शुचिषु स्वयम् । स्वर्णादिधातुजातेषु मृन्मयेष्वपि वा पुनः ॥

“नायसेषु न भिन्नेषु दूषितेष्वपि कर्हिचित् । पूर्वं कृतोपयोगेषु मृन्मयेषु न तु कचित् ॥

“पचमानस्तु भांडेषु भक्त्या ताम्रमयेषु तु । समुद्धरति वै धोरात् पितृन्दुःखमहार्णवात् ॥

२५ “न कदाचित् पचेदन्नमयः स्थालीषु पैतृकम् । अयसो दर्शनादेव पितरो विद्रवंति हि ॥

“घण्टानादं च लोहं च विभूतिं च विशेषकम् । रुद्राक्षमालां मुद्रां च निराशाः पितरो गताः ” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“कर्त्ता भोक्ता च सर्वत्र नैकवस्त्रो द्विजो भवेत् । तस्माद्वस्त्रादिना श्राद्धे सोत्तरीयः सदा भवेत् ” ॥ इति ।

“दंतधावनतांबूलक्षौराभ्यंगमभोजनम् । रत्योषधिपरान्नं च श्राद्धकर्त्ता विवर्जयेत् ” ॥ इति ।

“पितृशेषाशनान् पूर्वं श्राद्धकर्तुश्च कर्तृता । प्रत्याब्दिके मासिके च परेऽह्नि स्यात् तिलोदकम् ॥

३० “कर्त्ता वा स्यादकर्त्ता वा पुनर्भोजनमैथुने । वर्जयेत् कर्मसिद्धयर्थं पितृद्रोह्यन्यथा भवेत् ” ॥
 न केवलं तद्दिने क्षौरानिषेधः किंतु पूर्वमपि पक्षाभ्यन्तरे न कार्यम्—

“यस्मिन्मासि मृताहः स्यात्तन्मासं पक्षमेव वा । क्षुरकर्म न कुर्वीत परान्ने च रतिं त्यजेत् ” ॥ इति
 स्मरणात् । अशक्तौ दिनत्रयं परान्नं वर्जयेत्—

“पूर्वेद्युश्च परेद्युश्च कर्त्ता श्राद्धदिनेऽपि च । परस्यान्नं तु नाश्रीयादश्रीयात्पितृधातकः ” ॥ इति ।

अत्यन्ताशक्तौ सुहृदाद्यन्नभक्षणेऽपि न दोषः । तथा चात्रिः—

“सुहृदन्नं गुरोरन्नं यदन्नं मातुलस्य च । स्वसृश्वशुरयोरन्नं परान्नं न विदुर्बुधाः” ॥ इति ।

श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे नाश्रीयत्—

“श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे यस्तु भुञ्जीत लोलुपः । पतन्ति पितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियः” ॥ इति स्मरणात् । गोमयलेपनेन महानसादिभूमिशुद्धिमुदकेन भाजनभाण्डशौचं कुर्यादित्याह ५

उशानाः—“गोमयोदकैर्भूमिभाजनभाण्डशौचं कुर्यात्” इति । महानसादिभूमिसंस्कारानन्तरकृत्यमाह

देवलः—“तिलानवकिरेत्तत्र सर्वतो बन्धयेच्च तान् । असुरोपहतं सर्वं तिलैः शुष्येज्जलेन च ॥

“ततोऽन्नं बहुसंस्कारं नैकव्यंजनभक्षयत् । चोष्यपेयसमृद्धं च यथाशक्ति प्रकल्पयेत्” ॥ इति ।

श्राद्धद्रव्याणि । अत्र द्रव्याण्याह प्रचेताः—

“कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाः स्युर्यवशालयः । महायवा व्रीहियवा गोधूमा मुद्गसर्षपाः ॥ १०

“कृष्णश्वेता लोहिताश्च ग्राह्याः स्युः श्राद्धकर्मणि” ॥ इति । यवाः सितशूकाः । शालयः कडमाद्याः ।

महायवाः व्रीहियवाश्च लोहिता यवविशेषाः । कृष्णाः स्थलजाः रक्तशालयः । कृष्णवर्णा व्रीहियवाः ।

मार्कण्डेयोऽपि—

“यवव्रीहिसगोधूमास्तिलमुद्गाः ससर्षपाः । प्रियंगवः कोविदारा निष्पावाश्चात्र शोभनाः” ॥ इति ।

अत्र निष्पावः कृष्णेतरः । चतुर्विंशतिमते तु—

“कोद्रवान्राजमाषाश्च कुलुत्थाश्चणकास्तथा । निष्पावास्तु विशेषेण पंचैतास्तु विवर्जयेत्” ॥ इति । १५

अत्र निष्पावः कृष्णनिष्पावः

“कृष्णधान्यानि सर्वाणि वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि । न वर्जयेत्तिलाश्चैव मुद्गमाषास्तथैव च” ॥ इति

स्मरणात् । अत्रिः—

“अगोधूमं च यच्छ्राद्धं कृतमप्यकृतं भवेत् । विना माषेण यच्छ्राद्धं कृतमप्यकृतं भवेत् ॥ २०

“कव्यादाः पितरो यस्मादभावे पायसादिनः” ॥ इति । वायुपुराणे—

“बिल्वामलकमुद्गीकाः पनसाम्रकण्डाडिमाः । चव्यपालेयकाक्षौटसर्जराणां फलानि च ॥

“कशरुः कोविदारश्च तालकंदस्तथा बिसम् । कालेयं कालशाकं च सुनिषण्णं सुवर्चला ॥

“खट्वफलं कौकिणी द्राक्षा लकुचं मोचमेव च । कर्कधूमावकं चारुतिन्दुकं मधुसाव्हयम् ॥

“वैक्रं कतं नालिकेरं शृंगाटकपर्णकम् । पिप्पली च मरीचं च पटोलं बृहतीफलम् ॥ २५

“सुगंधिमत्स्यमांसं च कालेयाः सर्व एव च ॥

“एवमादीनि चान्यानि स्वादूनि मधुराणि च । नागरं चात्र वेदेयं दीर्घमूलकमेव च” ॥ इति ।

मुद्गीका द्राक्षा । लकुचो लिकुचः । मोचं कदलीफलम् । कर्कधूः बदरी । बृहती कंटकारिका “निदिग्धिका

स्पृशी व्याघ्री बृहतीकण्टकारिका” (२।४।९३) इत्यमरसिंहेनाभिधानात् । नागरं शृङ्गी ।

दीर्घमूलफलं तुंडिकेरफलम् । बिल्वामलकादीनि प्रसिद्धानि । इतराण्यप्रसिद्धानि । शंखः— ३०

“आम्रांश्च कदलीभेदान्मुद्गीकांचन्यडाडिमे । बर्दयाश्च सुरंडांश्च श्राद्धकालेऽपि दापयेत् ॥

“लाक्षां मधु घृतं दद्यात्सकून् शर्करया सह । दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृंगाटककशेरुकान्” ॥

आदित्यपुराणे—

“मधुकं रामठं चैव कर्पूरं मरिचं गुडम् । श्राद्धकर्मणि शस्तानि सैधवं त्रापुषं तथा” ॥ इति ।

चंद्रिकायाम्—

“उर्वारुकं कारवल्ली पटोलं कालपत्रिका । कदली कन्दली चैव श्राद्धे ह्यत्यंतशोभनाः ॥

“गवां क्षीरं घृतं शाकं क्षौद्रमिक्षुरसो गुडम् । कालिं द्रोणपुष्पी च तंडीली चक्रवर्तिका ॥

“वालुका चर्मवल्यं कोशातकिफलं शिशुः । श्राद्धे ह्येतानि देयानि तथा पितृरुचीनि च ॥

५ “नागरं वै सदा देयं दीर्घमूलकमेव च । घृतेन भोजयेद्विप्रान्घृतं भूमौ समुत्सृजेत् ॥

“शर्कराक्षीरसंयुक्ता पृथुका नित्यमक्षयाः । सर्पिः स्नातानि सर्वाणि पाके संस्कृत्य योजयेत् ॥

“मुन्यन्नानि च सर्वाणि वन्यमूलफलानि च । श्राद्धे ह्येतानि यो दद्यात्पितरः प्रीणयंति तम् ॥” इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“निर्माल्यमपि गंगाभं उच्छिष्टमपि माक्षिकम् । निर्यासमपि वा हिं गुग्गुलुं न परित्यजेत् ॥

१० “उत्तमं चैव गोक्षीरं माहिषं चैव मध्यमम् । औष्ट्रमजाविकं चैव सर्वथा परिवर्जयेत् ॥” इति ।

विष्णुपुराणेऽपि (३।१६।५-६)—

“प्रशतिक्रौः सनीवाराः श्यामाका विविधास्तथा । वन्यौषधिप्रधानास्तु श्राद्धार्हाः पुरुषर्षभ ॥

“यवाः प्रियंगवो मुद्गाः गोधूमा व्रीहयस्तिलाः । निष्पावाः कोविदाराश्च सर्षपाश्चात्र शोभनाः ॥

“सकण्टकं च वार्ताकं पितृभ्यो दत्तमक्षयम् ॥”

१५ वायुः—“जीरकं मरिचं श्राद्धे पटोलं बृहती शिशुः । कशेरुः कोविदारश्च पनसोर्वारुदाडिमाः ॥

“कूष्माण्डं रक्तनालं च प्रदेयं श्राद्धकर्मणि ॥” इति । मनुः (३।२२६-२२७)—

“गुणांश्च सूषणाकाद्यान् पयोदधिघृतं मधु । विन्यसेत्प्रयतः सर्वं भूमौवेव समाहितः ॥

“भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च । हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च ॥

“यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यो तत्तद्दद्यादमत्सरः” ॥ इति । विज्ञानेश्वरः—(५.६९५२६-२७) “श्राद्धयोग्यं

२० व्रीहियवशालिगोधूममुद्गमाषमुन्यन्नकालशाकशुंठीमरीचहिङ्गुकर्पूरगुडसैधवसागरपनसनालिकेरवदर-

गव्यपयोदधिघृतपायसमधुप्रभृति ॥” इति । स्मृत्यन्तरे—

“कदलीजातयः पंच चूतं च पनसद्वयम् । उर्वारुकं च जंवीरं पटोलद्रोणपत्रकम् ॥

“कारवल्लीफलं चैव श्राद्धे चात्यंतमुन्नतम् । अलर्कस्य फलं पुष्पमार्द्रकं सूरणद्वयम् ॥

“धात्रीफलं चाच्युतं च श्राद्धे चात्यंतमुन्नतम्” ॥ इति । पितृमेधसारे—कादलीजातिभेदकारवल्ली-

२५ त्रयपनसोर्वारुक्निष्पावपटोलमुद्गत्रयनालिकेरफलानि हिङ्गुकालशाकमहाशाकशुद्धीकंदानि मुन्य-

न्नानि च प्रशस्यते इति । मनुः—(३।२६७; २७१-२७२)

“तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्रिर्मूलफलेन वा । दत्तेन मासं प्रीयंते पितरो विधिवन्नृणाम् ॥” इति ।

“संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन वा । कालशाकं महाशाकं खड्गलोहामिषं मधु ॥

“आनंत्यायैव कल्पंते मुन्यन्नानि च सर्वशः” ॥ इति । स्मृत्यन्तरे—

३० “अन्नेन मासं वृत्तिः स्यान्मासैः षण्मासमेव च । आज्येन वत्सरं वृत्तिर्गोधूमाद्वत्सरत्रयम् ॥” इति ।

याज्ञवल्क्यः (आ. २।५८, २६०-२६१)—“हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम् ।

“खड्गामिषं महाशलकं मधु मुन्यन्नमेव च । लोहामिषं महाशाकं मासं वाप्राणसस्य च ।

“यद्दाति गयास्थश्च सर्वमानंत्यमश्रुते” ॥ इति ।

मत्स्यपुराणे—

३५ “अन्नं तु सद्भिर्क्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम् । मासं प्रीणाति सर्वांश्चै पितृनित्याह केशवः ॥” इति

कात्यायनः—“ग्राम्याभिरोषधीभिर्मांसवृत्तिस्तदलाभे मूलफलैराद्धिर्वा सहाज्जेनोत्तरास्तर्पयन्ति” ॥ इति ।

उत्तराः मूलफलादयः । ते सहैव किञ्चिदज्जेन मांसं तर्पयन्ति न केवला इत्यर्थः ।

मार्कण्डेयोऽपि—“गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सतिलैश्चणकैरपि । श्राद्धेषु दत्तैः प्रीयन्ते मांसमेकं पितामहाः ।

“विदार्या चैव चूतैश्च विसैः शृंगाटकैस्तथा । केबुकैश्च तथा कंदैः कर्कधुवदरैरपि ॥

“पालेवतैरासैचिकैश्चाक्षौदैः पनसैस्तथा । काकोल्याक्षीरकाकोल्या तथा पिंडालकैः शुभैः ॥

“लाक्षाभिश्च शलाभिश्च पुष्पैर्षोर्वाचिद्धिलैः । सर्षपाराजशाकाभ्यामिंदुरैराजजंबुभिः ॥

“प्रियालामलकैर्मुख्यैः फल्गुभिश्च तिलंबुकैः । वेत्रांकुरैस्तालकंदैश्चक्रिकाक्षीरिकाचवैः ॥

“वैवैः समोचैर्लिङ्गकुचैस्तथा वै बीजपूरकैः । मुंजातकैः पद्मफलैर्मध्यभोज्यैः सुसंस्कृतैः ॥

“रागषाढवचाप्यैश्च त्रिजातकसमन्वितैः । दत्तैस्तु मांसं प्रीयन्ते श्राद्धेषु पितरो नृणां ॥” इति ।

विदारी कृष्णपर्णीभूकृष्णान्डफलम् । केबुकं खर्जूरस्यं शाकम् । कंदः सूरणः । उवारः १०

स्वादुकर्कटी । चिद्धिलैस्तिक्तकर्कटी । सर्षपा इति दीर्घछांदसः । राजशाकं कृष्णसर्षपः । इंदुदी तापस-

तरुः । प्रियालं राजादनम् । चक्रिका चिंचा । क्षीरिका फलाध्यक्षः । मोचा कदली । लिङ्गुचो

जंबीरफलतुल्यसर्वफलवान्मुल्मविशेषः । रागषाढवः पानविशेषः । त्रिजातकमेतालवंगगंधपत्राणि ।

प्रचेताः—“हारितमुद्गकृष्णमाषस्यामाकप्रियंगुगोधूमेक्षुविकारांश्च दद्यात्” ॥ इति ।

विष्णुरपि (८०।१)—

“शाकस्यामाकप्रियंगुनीवारमुद्गैर्मांसं प्रीयन्ते संवत्सरं तु पयसा तद्विकारैश्च” ॥ इति ।

पयसा गव्यपयसा । यत्तु ग्रीणातीत्यनुवृत्तौ पैठिनसिनोक्तम्—“पायसेन षण्मासानि”

इति तन्नरिसपयःसिद्धपायसविषयमिति चंद्रिकायाम् । तत्रैव—

“कालशाकं महाशाकं मांसं वाप्राणसस्य च । विषाणवर्जं ये खड्गा आसूर्यं तांस्तु भुंजते” ॥ इति ।

उक्तानां वृत्तितारतम्याभिधायकस्मृतीनां तत्तारतम्यानुसारेण श्राद्धकर्तुः फलेऽपि तारतम्यं भवती- २०

त्येवं तात्पर्यमवगतव्यम् । अत एव हारीतेनैकमुदाहृत्योक्तम्—“मधुना परमप्रीताः सर्वा-

न्कामान्दिशन्ति च” इति । अत्र व्यवस्थामाह पुलस्त्यः—

“मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः । मधुप्रधानं शूद्रस्य सर्वेषां चाविरोधि यत्” ॥ इति ।

मुन्यन्नं नीवारादि । मधु माक्षिकं प्रधानं समग्रफलदम् । एतन्नित्यव्यतिरिक्तं यदविरोधि अप्रतिसिद्धं

तत्सर्वेषामित्यर्थः । श्राद्धे मांसस्य कलौ निषिद्धत्वात्नेह तदभिधीयते । तच्च युगधर्मप्रकरणे २५

प्रतिपादितम् ।

श्राद्धे वर्ज्यद्रव्याणि । अथ **श्राद्धे वर्ज्यद्रव्याणि** महाभारते मदालसावाक्यम्

“यच्चोत्कोचादिना प्राप्तं पतिताद्यदुपार्जितम् । अन्यायकन्याशुल्कोत्थं द्रव्यं चात्र विगर्हितम् ॥

“पित्रर्थं मे प्रयच्छेति ह्युक्त्वा यच्चाप्युपाहृतम् । वर्जनीयं सदा सद्भिः तत्तद्वै श्राद्धकर्मणि” ॥ इति ।

वेदव्यासोऽपि—

“वेदविक्रयजं दुष्टं स्त्रिया यच्चार्जितं धनम् । न देयं पितृदेवेभ्यो यच्चक्रीवदुपार्जितम् ॥

“अश्राद्धेयानि धान्यानि कोद्रवाः पुलकास्तथा । हिगुद्रव्येषु शाकेषु कालानलशुभास्तथा” ॥ इति ।

कोद्रवः कोर्लदूषकः । पुलकः पुलाकः । छांदसो ह्रस्वः । संस्कारद्रव्येषु हिंवास्वद्रव्यम-

श्राद्धेयम् । कालः कृष्णार्जकः अनलश्चित्रकः । शुभः शुभाशुभाख्यः शाकविशेषः । शाकेषु

एतानि शाकान्यश्राद्धेयानीत्यर्थः । हिगुद्रव्यस्य विधिप्रतिषेधयोर्दर्शनादिकल्पः । एवमन्यत्रापि । ३५

१ क-कालेयकैः । ग-पारेवतैः । २ ग-च । ३ ग-आक्षौटैः । ४ ग-त्रपु । ५ ग-त्फ ।

६ क-व्योचैः । खग-वोचैः । ७ ग-क्षी । ८ ग-त्फ । ९ ग-र ।

यत्र विधिप्रतिषेधावैकस्य दृश्येते तत्र विकल्पो वेदितव्यः इति चंद्रिकामाधवीयादौ व्यवस्थापितम् । भरद्वाजोऽपि—“मुद्गाढकीमाषवर्जं विदलानि दद्यात् ” इति । यानि पाषाणयंत्र-भ्रमणेन प्रायशो द्विधा भिद्यंते तानि धान्यानि विदलानि । मुद्गः कृष्णहरितेरः । आढकी तूवरी । माषो राजमाषः । अलसान्द्रनाम्ना प्रसिद्धः । तथाहि “अलसांद्रो राजमाषः ” इति वैजयंती ५ निघण्टुः । एतैर्विना विदलानि दद्यादित्यर्थः ।

“कुलुत्थावरकाः श्राद्धे न देयाश्चैव कोद्रवाः । कटुकानि च सर्वाणि विरसानि तथैव च ॥
“यवनालानपि तथा वर्जयंति विपश्चितः ” ॥ इति । चंद्रिकायाम्—

“श्राद्धे न देयाः पालक्यास्तथा निष्पावकोद्रवाः । मसूरक्षारवार्तिकाः कुलुत्थशणशिशवः ॥” इति । पालक्या गंधद्रव्याविशेषः । क्षारो यवक्षारादिः । वार्तिकं क्षुद्रवार्त्ताकीसंज्ञकबृहतीफलं कंटकारिका-
१० स्यबृहतीफलार्त्तिकीचत्स्थूलम् । विष्णुरपि—(७९।२) “भूतृणं शिशुराजसर्षपसुरसार्जककूष्मांडालाबु-
वार्त्ताकपालक्यातंडुलीयककुसंभमाहिषीक्षीराणि वर्जयेत् ” ॥ इति । भूतृणं शाकविशेषः । सुरसैः निर्गुण्डि । मत्स्योऽपि—

“कुसंभं बीजपूरं च कपित्थं मधुकातसी । श्राद्धे नैतानि देयानि पितृभ्यः प्रीतिमिच्छता ॥” इति । बीजपुरो मातुलंगकः । कपित्थं कपित्थफलम् । मधुकं यष्टिमधुकः । विष्णुपुराणे(३।१६।७-९; ११) —

१५ “अकृताग्रयणं यच्च धान्यजातं नरेश्वर । राजमाषानणुंश्चैव मसूरांश्च विवर्जयेत् ॥
“अलाबुं गुंजनं चैव लशुनं पिंडमूलकम् । गांधारककरंभाणि लवणान्यौषराणि च ॥
“आरक्ताश्चैव निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च । वज्र्यान्धेतानि वै श्राद्धे यच्च वाचा न शस्यते ॥
“क्षीरमेकशफानां यदौष्ठमाविकमेव च । मातैंगं माहिषं चैव वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि” ॥ इति ।

शंखः—

२० “शीतपाकीमपि श्राद्धे कृष्णजीरकमेव च । वर्जयेल्लवणं सर्वं तथा जंबूफलानि च ” ॥ इति । लवणं कृतलवणम् ।

“सैधवं लवणं चैव तथा मानससंभवम् । पवित्रे परमे ह्येते प्रत्यक्षमपि नित्यशः ॥

“कृतं तु लवणं सर्वं वंशाग्रं च विवर्जयेत् ” ॥ इति तेनैवाभिधानात् । सुमंतुः—

“वज्र्याश्चाभिषवा नित्यं शतपुष्पं गवेधुका । जंबीरकं फलं वज्र्यं कोविदारं च नित्यशः” ॥

२५ अभिषवाः शुष्काः संतः क्लिन्नाः । स्मृत्यंतरे— “गांधारिकापटोलानि श्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ।

“औषरं लवणं श्राद्धे कूष्मांडं बृहतीफलम् । श्लेष्मातकं च शिशुं च प्रत्यक्षलवणं त्यजेत् ॥

“ताम्रपात्रे स्थितं गव्यं क्षीरं च लवणान्वितम् । घृतं लवणसंयुक्तं सर्वदा परिवर्जयेत् ॥

“पायसे लवणैर्योगे न दोषस्तद्युतं पचेत् ” ॥ इति ।

पात्रोऽपि—“पयसा पाचयेदन्नं लवणं तत्र योजयेत् ” ॥ इति ।

३० पायसे लवणसंयोगः शिष्टाचारविरोधादुपेक्ष्य इत्याहुः । उशानाः—

“नालिकाशणछत्राककुसुंभालालुविडभवान् । कुंभीकंबुकवृताककोविदारांश्च वर्जयेत् ॥

“वर्जयेच्च गृही श्राद्धे कांजिकां पिंडमूलकम् । करंजं येऽपि चान्ये वै रसगंधोत्कटास्तथा” ॥ इति ।

पुराणे—

“वांशं करीरं सुरसासज्जकं भूतृणानि च । अवेदोक्ताश्च निर्यासा लवणान्यौषराणि च ।

“श्राद्धकर्मणि वर्ज्यानि याश्च नार्यो रजस्वलाः” ॥ इति । वांशं करीरं वंशांकुरम् । अवेदोक्ता निर्यासाः वेदे ग्राह्यत्वेनोक्तनिर्यासव्यातिरिक्तनिर्यासाः लोहितनिर्यासाः । व्रश्चनप्रभवाश्चेति यावत् ।

“अथो खलु य एव लोहितो यो वा व्रश्चनानिर्येषति तस्य नाशयं काममन्यस्य” इति श्रुतेः । लवणान्यौषराणि कृतलवणानीति यावत् । याश्च नार्यो रजस्वलाः । या नार्यस्त्रिरात्रादूर्ध्वमप्य- निवृत्तरजस्कास्ताश्च वर्ज्या इत्यर्थः । भरद्वाजोऽपि—

“नक्तोद्धृतं तु यत्तोयं पत्वलांबु तथैव च । स्थलीकूष्मांडफलकं बहुकंदं च पिप्पली ॥

“तंडुलीयकशाकं च माहिषं च पयोदधि । शिंबुकानि करीराणि कोविदारं गवेषुकम् ॥

“कुलुथ्यशणजंजीरकरंवाणि तथैव च । कूष्मांडमार्द्रपुष्पं च शिगुक्षारं तथैव च ॥

“नीरसानि च सर्वाणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च । एतानि नैव देयानि सर्वस्मिन्श्राद्धकर्मणि ” ॥

माहिषं तु घृतं देयं पयोदधीति विशेषितत्वादिति चंद्रिकायाम् । स्मृत्यंतरे—

“अतिशुक्तोऽलवणं विरसं भावदूषितम् । राजसं तामसं चैव हव्यकव्येषु वर्जयेत् ” ॥

ब्रह्मांडपुराणे—

“आसनारूढमन्नाद्यं पादोपहतमेव च । अमेध्यादागतैः स्पृष्टं शुक्तं पर्युषितं च यत् ॥

“द्विः स्विन्नं परिदग्धं च तथैवाग्रेऽवलेहितम् । शर्कराकीटपाषाणैः केशैर्यच्चाप्युपद्रुतम् ॥

“पिण्याकं मथितं चैव तथातिलवणं च यत् । सिद्धाः कृताश्च ये भक्षाः प्रत्यक्षलवणीकृताः ॥ १५

“दग्धावदुष्टाश्च तथा दुष्टैश्चोपहतास्तथा । वाससा चावधूतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्मणि ” ॥ इति ।

यदन्नमस्रावणांतया पचिक्रियया सिद्धं मार्दवार्थं पुनरुदकं निनीयावस्त्राणांतं पच्यते तद् द्विस्विन्नं न तु यत्सिद्धमौष्ण्यार्थमग्रावधिभ्रियते ‘अत्युष्णं सर्वमन्ने स्यात्’ इति वचनादौष्ण्यार्थं पुनराधि-

श्रवणाभ्यनुज्ञानात् । अग्रावलेहितं यदर्थमुत्पादितं तन्निवृत्तेः प्रागन्येनास्वादितम् । सिद्धाः कृता इति अभक्ष्यतया सिद्धाः आमलकादयः । वटकादिरूपेण भक्षतया कृताः प्रत्यक्षलवणेन लवणीकृताः । २०

एतत्कृतभक्षविशेषणम् । प्रत्यक्षग्रहणाद्ब्रह्मादिना वस्त्वंतरेण प्रच्छादितलवणेन लवणीकृता ग्राह्या इति गम्यते । श्राद्धे कूष्मांडादिनिषिद्धद्रव्योपादाने प्रत्यवाय उक्तः स्मृत्यंतरे—

“कूष्मांडं माहिषं क्षीरमाढक्यो राजसर्षपाः । चणका राजमाषाश्च घ्नंति श्राद्धमसंशयम् ” ॥ इति ।

चंद्रिकायाम्—

“पिंडालुकं च तुंडीरं करमर्दीश्च नालिकम् । कूष्मांडं बहुबीजानि श्राद्धे दत्त्वा व्रजत्यधः ” ॥ इति । २५

बहुबीजानि मातुलुङ्गफलानि । षट्त्रिंशन्मते—

“क्षीरादिमाहिषं वर्ज्यं अभक्ष्यं यच्च कीर्तितम् ” ॥ इति । आदिशब्देन महिषीदधि गृह्यते ।

अभक्ष्यं यच्च कीर्तितं नित्यभोजने यदभक्ष्यं प्रकीर्तितं तच्च सर्वं श्राद्धकर्मणि न देयमित्यर्थः ।

नित्यभोजने यद्वर्ज्यं तन्नित्यभोजनप्रकरणे प्रतिपादितम्

“पित्रोः श्राद्धे तु संप्राप्ते दद्यात्तक्रं समूढधीः । तत्तक्रं रक्तमित्याहुर्गर्गाश्वपगौतमाः ” ॥ इति । ३०

देवलः—“इष्टापूर्तमृताहेषु दर्शवृध्वष्टकासु च । पात्रेभ्यस्तेषु कालेषु देयं नैव कुभोजनम् ” ॥ इति ।

चशब्दान्महालयादिविशिष्टकालेष्वपि कुभोजनं न देयमिति समुच्चीयते । एवं च नित्यश्राद्धादौ

दरिद्रकर्तृके कुभोजनाभ्यनुज्ञा गम्यते । यमः—

“भक्ष्यं भोज्यं तथा पेयं यत्किञ्चित्पच्यते गृहे । न भोक्तव्यं पितृणां तदनिवेद्य कथंचन ” ॥ इति ।

पक्वान्नोपहतिपरिहाराय पाकस्थानादितो बाहिष्कार्यानाह स एव—

“मद्यः स्वैरिणी या च परपूर्वापतिस्तथा । नैव श्राद्धे निरीक्षेरन्नावापात्प्रभृति क्वचित्” ॥ इति आवापः पाकं कर्तुं तंडुलादीनां पिठरादौ प्रक्षेपः । तत्प्रभृतिभोजननिष्पत्तिपर्यंतं क्वचिद्भोजनस्था । अन्यत्रावस्थितान् भोज्यपदार्थान्भुंजानांश्च विप्रान्श्राद्धकर्मणि यथा मद्यपादयो नाभिर्वीक्षेरन् तथा ५ दूरत एवापसरणीया इत्यर्थः । **मनुरपि—**(३१२३९-२४०)

“चंडालश्च वराहश्च कुक्कुटश्च तथैव च । रजस्वला च षंडश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान् ॥
“होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरवलोकितम् । दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तद्वच्छत्यथातथम्” ॥ इति ।
उशाना अपि—“विड्वराहमार्जारकुक्कुटनकुलशूद्ररजस्वलाशूद्राभर्तारश्च दूरतो नेतव्याः” ॥ इति ।
चंद्रिकायाम्—

१० “कुक्कुटो विड्वराहश्च काकः श्वा च विलालकः । वृषलीपतिश्च वृषलः षंडो नारी रजस्वला ॥
“एते तु श्राद्धकाले वै वर्जनीयाः प्रयत्नतः” ॥ इति ।

व्यासः—

“काषायवासाः कुष्ठी वा पतितो भ्रूणहाऽपि वा । संकीर्णयोनिर्विप्रश्च संबंधी पतितस्य वा ॥
“वर्जनीयास्तथैवैते निवापे समुपस्थिताः” ॥ इति । निवापः पितृभ्यो दानं ‘पितृदानं निवापः
१५ स्यादि’ त्यमरेणाभिधानात् उपस्थितशब्दात् (२।७।३१) पाकोपक्रमप्रभृतिवर्जनीया इति गम्यते ।
स्मृत्यन्तरे—

“उदकयासूतिकाशौचमृताहारैश्च वीक्षिते । श्राद्धे सुरा न पितरो भुंजते पुरुषर्षभ ॥
“आदौ माहिषकं दृष्ट्वा मध्ये तु वृषलीपतिम् । अंते वार्षुषिकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥
“नीचैर्दृष्टस्तथा स्पृष्टान् पतितैः प्रतिलोमजैः । आशौचवद्भिरपरैः शूद्रान्नं चैव वर्जयेत् ॥
२० “शूद्रैः स्पृष्टं च दृष्टं च तद्धृतं तन्निमंत्रितम् । तद्वत्तं च तदुच्छिष्टं शूद्रान्नं षड्विधं स्मृतम्” ॥ इति ।

यमः—

“खंजः काणः कुणिः श्वित्री दातुः प्रेष्यकरो भवेत् । न्यूनांगो वातिरिकांगस्तमप्यपनयेत्ततः” ॥ इति ।

देवलोऽपि—

“वीभत्सुमशुचिं नग्नं मत्तं धूर्तं रजस्वलाम् । नीलकाषायवसनं छिन्नकर्णं च वर्जयेत्” ॥ इति ।

२५ **ब्रह्मांडपुराणेऽपि—**

“नग्नादयो न पश्येयुः श्राद्धमेतत्कदाचन । श्राद्धे गच्छन्ति तैर्दृष्टे पितरोऽथ पितामहाः” ॥ इति ।
नग्नो वेदपरित्यागी । आदिशब्देन वैदिककर्मानुष्ठानत्यागिनो गृह्यन्ते । तथा च तत्रैवोक्तम्—
“सर्वेषामेव वर्णानां त्रयी संवरणं यतः । ये वै त्यजन्ति तां मोहात्ते वै नग्ना इति स्मृताः ॥
“वृथाजटी वृथामुंडी वृथाचारश्च यो नरः । महापातकिनो ये च ते वै नग्नादयः स्मृताः” ॥ इति ।
३० यदि तु नग्नादयः श्राद्धार्थं संपादितमन्नादिकं पश्येयुः तदा किं कार्यमित्यपेक्षायां तत्रैवोक्तम्—
“अन्नं पश्येयुरेते तु यदि वै हव्यकव्ययोः । उत्सृष्टव्यं प्रधानार्थं संस्कारस्त्वापदि स्मृतः” ॥ इति ।
प्रधानार्थमग्नौकारणब्राह्मणभोजनपिंडप्रदानात्मकप्रधानसंपत्त्यर्थमन्नमेतैर्वीक्षितमुत्सृज्यान्त्यदन्नं संपा-
द्यम् । अन्नांतरसंपादनासामर्थ्यं तु नोत्सृष्टव्यम् । किं तु नग्नादिदर्शनजनितदोषापाकरणार्थं स्मृतः
संस्कारः कर्त्तव्य इत्यर्थः ।

संस्कारोऽपि तत्रैवोक्तः—

“ हविषामथ पक्वानां शक्तौ स्यादपवर्जनम् । मृत्संपृक्ताभिरद्भिश्च प्रोक्षणं तु विधीयते ॥

“ सिद्धार्थकैः कृष्णतिलैः कार्यं चाप्यवकीरणम् । गुरुसूर्याग्निवस्तानां दर्शनं तु प्रयत्नतः ” ॥ इति ।

शुभ्यंतरमाह जमदग्निः—

“ शुद्धवत्योऽथ कूष्मांड्यः पावमान्यस्तरत्समाः । पूतेन वारिणा दर्भैरन्नदोषानपानुदेत् ” ॥ इति । ५

‘एतोऽन्विन्द्रंस्तावाम्’ इत्याद्याः ऋचः शुद्धवत्यः । ‘यद्देवा देवहेळणम्’ इत्याद्याः कूष्मांड्यः । ‘पवमानः सुवर्जन’ इत्याद्याः पावमान्यः । ‘तरत्समंद्दी धावती’ इत्याद्यास्तरत्समाः । शुद्धवत्यादिमंत्राभिमान्त्रित-मुदकं दर्भैरुपादायान्नदोषानपनोदनार्थमवोक्षणं कुर्यादित्यर्थः । **सुमंतुरपि**—“ चंडालाद्यवेक्षितमन्न-मभोज्यमन्यत्र मृद्गस्मभिरस्योदकस्पर्शनात् ” ॥ इति । केशाद्युपहतौ तु नित्यभोजनप्रकरणोक्ता शुद्धिर्द्रष्टव्या । अलं प्रसक्त्यानुप्रसक्त्या ।

१०

निमन्त्रितेभ्यो देयद्रव्याणि । निमंत्रितेभ्यो यदेयं तदाह कात्यायनः—

“ तैलमुद्वर्त्तनं स्नानं दंतधावनमेव च । कुत्तरोमनखेभ्यस्तु दद्यात्तेभ्यः परेऽहनि ” ॥ इति ।

उत्तरेषुः पूर्वाह्नि कुत्तरोमनखेभ्यो निमंत्रितेभ्यः स्नानसाधनं तैलादिकं दंतकाष्ठं च दद्यादि-त्यर्थः । **बोधायनोऽपि**—“ इवः करिष्यामीति ब्राह्मणान्निमंत्रयेत् तान्द्योभूते इमंश्रुकर्मभ्यंजन-स्नानैर्यथोपपातं संपूज्य स्वयमाप्लुत्य शुचौ देशे ” ॥ इति । यत्तु प्रचेतसोक्तम्—

१५

“ तैलमुद्वर्त्तनं स्नानं दद्यात्पूर्वाह्ण एव तु । श्राद्धभुग्भ्यो नस्तश्मश्रुछेदनं तु न कारयेत् ” ॥ इति तन्निषिद्धश्रुतमिति विषयमिति चंद्रिकामाधवीयादौ व्यवस्थापितम् । **सुधीविलोचने तु** इमंश्रुकर्मैकोद्दिष्टविषयमित्येके । अष्टकायामित्यपरे । विहितमपि शिष्टाचाराभावाच्चान्यश्राद्धेषु वपन-मिति वृद्धाः । अनेन निमंत्रितः स्वयमेव क्षौरी चेच्छ्राद्धार्ह एव “मृता वा एषा त्वगमेध्या यत्केश-इमंश्रुमृतामेव त्वचममेध्यामपहत्य यज्ञियो भूत्वा मेधमुपैति ” इति श्रुतेः त्रयोदशवारं तूष्णीं २० निमज्ज्य शुष्कवस्त्रं परिधाय विधिवत्पुनः स्नात्वा शुद्धो भवति इति । **आश्वलायनः**—“तांबूल-कुसरादीनि दत्त्वा अभ्यज्य स्नातेष्वेतेषु स्नातः ” इति । अभ्यज्य स्नापयित्वा एतेषु निमंत्रितेषु स्नातेषु कर्त्ता स्नात इत्यर्थः । अभ्यंगस्यावश्यकत्वमुक्तं **पुराणेऽपि**—

“ पादशौचं विनाभ्यंगं मुद्गमाषं विनाकृतम् । तत्सर्वं त्रिजटेतुस्यं यत्तु श्राद्धमदक्षिणम् ” ॥ इति ।

मार्कंडेयः—

२५

“ अह्नःषट्सु मुहूर्तेषु गतेषु त्वथ तान्द्विजान् । प्रत्येकं प्रेषयेत्प्रेष्यान्प्रदायामलकोदकम् ” ॥ इति ।

द्वादशघटिकाभ्य ऊर्ध्वं निमंत्रितब्राह्मणानां स्नानार्थं परिचारकाणां हस्तेष्वामलककल्कं प्रदाय निमंत्रितब्राह्मणेभ्यः प्रत्येकं दीयतामिति तान्द्विजान्प्रति परिचारकान्प्रेषयेदित्यर्थः ।

चंद्रिकामाधवीययोरत्र व्यवस्था कृता—एतदामलककल्कदानं प्रतिषिद्धतैलासु तिथिषु द्रष्टव्यम् ।

तास्त्वप्यमावास्याव्यतिरिक्तासु देयम् । ‘धात्रीफलैरमावास्यायां न स्नायात्’ इत्यामलकोदकस्नानस्या- ३०

प्यमावास्यायां निषेधादनिषिद्धतैलायां तिथौ तैलादिदानमिति । तथा च स्मृत्यंतरे—

“ निमंत्रितानां श्राद्धेषु निषिद्धदिवसेषु तु । अभ्यंजनं नैव दद्याद्वात् धात्रीफलोदकम् ॥

“ तच्चामायां भानुवारे सप्तम्यां परिवर्जयेत् ” ॥ इति । अत्र केचित्—

“ अष्टकायामथाष्टम्याममायां श्राद्धकर्मणि । पित्र्यस्य तु विकारेषु तैलाभ्यंगो विधीयते ” ॥ इति वचनमनुसृतं श्राद्धेषु निषिद्धदिनेऽपि तैलाभ्यंगमाचरति । यथोचितमत्र ग्राह्यम् ।

३५

तैलदाने विशेषो देवलेन दर्शितः—

“तैलमुद्धर्तनं स्नानं स्नानीयं च पृथग्विधम् । पात्रैरौदुम्बरैः दद्याद्द्वैश्वदेविकपूर्वकम्” ॥ इति ।
उदुम्बरं ताप्रम् ।

श्राद्धदेशे प्रकल्प्यद्रव्याणि । श्राद्धदेशे प्रकल्प्यानि द्रव्याणि पुराणेषुऽभिहितानि—

- ५ “उपमूलं सकलूलान् कुशांस्तत्रोपकल्पयेत् । यवांस्तिलान् ब्रसीः कांस्यमापः शुद्धैः समाहताः ॥
“पार्णराजतताप्राणि पात्राणि स्युः समिन्मधु । पुष्पधूपसुगंधादिक्षौमसूत्रं च मेक्षणम्” ॥ इति ।
ब्रसीः निर्मंत्रितानामुपवेशनार्थान्यासनानि । ‘व्रतिनामासनं ब्रसी’ इत्यमरेणा-
भिहितत्वात् । कांस्यं कांस्यमयं भाजनम् । कांस्यपार्णराजतताप्रभाजनेषु यथासामर्थ्यमुपकल्पनं
कार्यम् । सुगंधादीत्यादिग्रहणादक्षतदीपादिकं गृह्यते । मेक्षणं काष्ठमयी दर्वी । तिला जर्तिला ग्राह्या-
१० स्तदसंभवे ग्राम्या ग्राह्याः । जर्तिललक्षणमुक्तं सत्यव्रतेन— “जर्तिलास्तु तिलाः प्रोक्ताः कृष्णवर्णा
वनेभवाः” ॥ इति । स्मृत्यंतरे— ‘जर्तिलाश्चैव ते ज्ञेया अकृष्टोत्पादितास्तु ये’ इति ।

यत्पापस्तीक्ष्णोक्तम्—

“अटव्यां ये समुत्पन्ना अकृष्टफलितास्तथा । ते वै श्राद्धे पवित्रास्तु तिलास्ते जर्तिला इति” ॥
‘तदपशवो वा अन्ये गोऽश्वेभ्यः पशवः असत्रं वा एतद्यदच्छेदोमम्’ इत्यादिव्रतेषां प्रशंसापरम् ।

१५ अत एव ब्रह्मांडपुराणे—

“यत्तिस्त्रिदंडी करुणारजतं पात्रमेव च । दौहित्रः कुतपः कालः छागः कृष्णाजिनं तथा ॥
“गौराः कृष्णास्तथारण्यास्तथैव त्रिविधास्तिलाः । पितृणां वृत्तये सृष्टाः दशैते ब्रह्मणा स्वयम्” ॥ इति ।
दौहित्रलक्षणमुक्तं याज्ञवल्क्येन—

“वनस्पतिगते सोमे या गौः संचतरेत्तुणम् । तत्क्षीरसंभवधृतं दौहित्रमिति कथ्यते” ॥ इति ।

२० वृसीषु विशेषमाह मनुः (३१२३४)—“कुतपं चासैनं दद्यात्” इति । कुतपो नेपालदेश-
प्रभवरोमादिनिर्मितः कंबलः । तदुक्तं स्मृत्यंतरे—

“मध्यान्हः खड्गपात्रं च तथा नेपालकंबलः । रूप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः ॥

“पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य संतापकारणम् । अष्टावेते यतस्तस्मात्कुतपा इति विश्रुताः” ॥ इति
चंद्रिकायाम्—नेपालकंबलाभावे मेषादिलोमनिर्मितकंबलमात्रमपि पीठाद्यपेक्षया प्रशस्तम् ।

२५ आसनोपकल्पनं भोजनार्थोपवेशनस्थानेषु कार्यम् । उपकृतासनेषु दर्भास्तरणं च कार्यमिति ।

तथा च मनुः (३१२०८)—

“आसनेषूपकृतेषु बर्हिष्मत्सु पृथक् पृथक् । उपस्पृष्टोदकान्सम्यक् विप्रास्तेषूपवेशयेत्” ॥ इति ।

बर्हिष्मत्सु दर्भवत्सु । स्मृत्यंतरेऽपि—“आसनेषु सदर्भेषु विविकेषूपवेशयेत्” ॥ इति ।
हेमाद्रौ—

३० “यस्त्वासनोपभोगार्थं प्रदद्यात्कंबलं नवम् । अष्टांगयोगसंसिद्धिस्तस्य पुंसोऽभिजायते ॥

“यस्तृणैर्मुदुभिः श्लक्ष्णं निर्माय शुभमासनम् । दद्याच्छ्राद्धेषु तस्यापि सुस्थिराः सर्वतः श्रियः” ॥ इति ।
कांस्यपार्णराजतताप्रपात्राणि भोजनार्थमर्घ्यार्थं चोपकल्प्यानि । अत्र राजतस्य रजतमिश्रस्य च
वैशिष्ट्यमाह मनुः (३१२०२)—

“राजतैर्भाजनैरेषामपि वा रजतान्वितैः । वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्प्यते” ॥ इति ।

बैजावपः—

“ राजतानि प्रशस्तानि पित्र्ये हैमानि दैविके । अथवा ताम्रपात्राणि पित्र्ये हैमानि दैविके ” ॥ इति ।
राजतमधिकृत्य श्रुत्यः—

“ शिवनेत्रोद्भवं यस्मादतस्तत्पितृवल्लभम् । अमंगलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत् ” ॥ इति ।
अमंगलं रुद्रनेत्रजलप्रभवत्वादिति भावः । पार्णेषु भोजनार्थं पलाशपत्रपात्राण्येवोपकल्प्यानि न ५
त्वन्यानि पर्णपात्राणि । तथा चात्रिः—

“ न मृन्मयानि कुर्वीत भोजने दैवपित्र्ययोः । पालाशेभ्यो त्रिना न स्युः पर्णपात्राणि भोजने ” ॥ इति ।
एवं च “ पालाशपद्मपत्रेषु गृही भुक्तवैद्वं चरेत् ” इति पलाशपत्रनिषेधवचनं श्राद्धव्यतिरिक्त-
भोजनविषयम् ।

“ सद्दण्डं कदलीपत्रं वामभागाग्रमायतम् । अग्रं चेदन्यदिग्भागे निराशाः पितरो गताः ॥ १०

“ निर्दण्डं च निरग्रं च पशुचर्मसं स्मृतम् । तस्मादग्रं च दण्डं च श्राद्धेषु न निष्कृतयेत् ॥

“ श्राद्धेऽहनि तु संप्राप्ते रम्भापृष्ठं न कुन्तयेत् । कुन्तयेद्यदि मूढात्मा निराशाः पितरो गताः ” ॥
इत्यादिवचनैः श्राद्धे कदलीपत्रं भोजनाभ्यनुज्ञानां “ न जातिकुसुमानि न कदलीपत्रम् ” इति
प्रचेतसा निषेधाच्च कदलीपत्रभोजनं श्राद्धे वैकल्पिकमित्याहुः । अर्घ्यार्थं त्वन्यपर्णपात्राण्यपि
अनिषिद्धानि । अत एव बैजावपः— १५

“ स्वादिरोदुंबराण्यर्घ्यपात्राणि श्राद्धकर्मणि । अप्यश्ममृन्मयानि स्युरपि पर्णपुटस्तथा ” ॥ इति ।

कात्यायनः—“ सौवर्णराजतौदुंबरखट्वणिमयानां पात्राणामन्यतमेषु यानि वा विद्यन्ते पर्ण-
पुटेषु वा ” इति । यानि तैजसादीनि तेषु वेत्यर्थः ।

अत्रोपकल्पनीयानि पुष्पाणि ब्रह्माण्डपुराणे दर्शितानि—

“ शुक्लाः सुमनसः श्रेष्ठास्तथा पद्मोत्पलानि च । गंधरूपोपपन्नानि यानि चान्यानि कृत्स्नशः ” ॥ इति । २०

“ जातीचंपकलोध्रंश्च मल्लिकाबाणवर्बरीः । चूताशोका अरूषं च तुलसी तिलकं तथा ॥

“ पार्वती शत्रपत्रं च भृंगराजं च केतकीम् । यूथिकामतिमुक्तं च दद्यात्पुष्पाण्यमूनि च ” ॥ इति ।

मार्कण्डेयः—

“ जात्यश्च सर्वा दातव्या मल्लिकाश्चेतयूथिकाः । जलोद्भवानि सर्वाणि कुसुमानि च चंपकम् ” ॥ इति ।

जात्यः मालत्यः । यत्त्वंगिरस्तोक्तम् “ न जातिकुसुमानि ” इति यच्च क्रतुनोक्तम्— २५

“ असुराणां कुले जाता जातिः पूर्वपरिग्रहे । तस्यादर्शनमात्रेण निराशाः पितरो गताः ” ॥ इति

अत्र जातिकुसुमनिषेधो वैकल्पिकः । **सायणीये—**

“ तुलसी शतपत्रं च भृंगराजं तथैव च । मरुकं मल्लिकाश्चैव पितृणामक्षयं भवेत् ” ॥ इति ।

संग्रहे—

“ तुलसी श्राद्धकाले तु यदा शिरसि धारिता । दाता भोक्ता पिता तस्य विष्णुलोके महीयते ” ॥ इति ३०

स्मृत्यर्थसारे तुलस्या वर्ज्यत्वमुक्तं तत्र मूलं चिंत्यमिति चन्द्रिकायाम् ।

श्राद्धे वर्जनीयानि पुष्पाण्याह शंखः—

“ उग्रगंधीन्यगंधीनि चैत्यवृक्षोद्भवानि च । पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥

“ जलोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः ” ॥ इति । चैत्यवृक्षः स्मशानवृक्षः ।

विष्णुः (६६।७)—“ न कंटकिजं दद्यात्कंटकिजमपि शुक्लं सुगंधि यत्तद्दद्यान्न रक्तं दद्याद्रक्तमपि कुंकुमं जलं च दद्यात् ” इति । **मत्स्यः**—

“ पद्मबिल्वार्कधत्तूरपारिभद्राटरूषकाः । न देयाः पितृकार्येषु पयश्चैवाविकं तथा ” ॥ इति पारिभद्रो मंदारः । **ब्रह्मांडपुराणेऽपि**—

५ “ जपादिकुसुमं भंडी रूपिका सकुरंटका । पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धकर्मणि नित्यशः ” ॥ इति । आदिग्रहणेन जपाकुसुमवद्रक्तकरवीरादिकुसुमानां वर्ज्यत्वमुक्तम् । भण्डी मंजिष्ठाधूपद्रव्येषूपकल्पनीयानि **विष्णुधर्मोत्तरे** दर्शितानि—

“ धूपो गुग्गुलुजो देयस्तथा चंदनसारजः । अगरुश्च सकपूरतुरुष्कस्त्वक् तथैव च ” ॥ इति । तुरुष्कः सल्लकीवृक्षः । त्वक् लवंगम् । **मरीचिरपि**—“ चंदनागरुणी चोभे तमालो शीरपद्मकम् ” ॥

१० इति । वर्जनीयं धूपद्रव्यमाह **विष्णुः** (७९।९)—“ जीवजं च सर्वं न धूपार्थे ” इति । जीवजं कस्तूर्यादि । अनुलेपनार्थमुपकल्पनीयं द्रव्यमाह

मरीचिः—

“ कपूरकुंकुमोपेतं सुगंधि सितचंदनम् । दैविकेऽप्यथ पित्र्ये च गंधदाने प्रशस्यते ” ॥ इति । **विष्णुरपि** (७९।११)—“ चंदनं कुंकुमकर्पूरागरुपद्मकान्यनुलेपनार्थम् ” इति । **मार्कंडेयः**—

१५ “ चंदनागरुकर्पूरकुंकुमानि प्रदापयेत् । अश्वमेधमवाप्नोति पितृणामनुलेपनात् ” ॥ इति । **ब्रह्मांडपुराणेऽपि**—

“ श्वेतचंदनकर्पूरकुंकुमानि शुभानि च । विलेपनार्थं दद्यात् प्रीतिजं पितृवल्लभम् ” ॥ इति । वर्ज्यानाह **मरीचिः**—“ श्राद्धेषु विनियोक्तव्या न गंधा देवदारुजाः ।

“ कल्कीभावं समासाद्य न च पर्युषिताः क्वचित् । न विगंधाश्च दातव्या भुक्तशेषावशेषिताः ॥

२० “ पूर्तिं च मृगनाभिं च रोचनं रक्तचंदनम् । कालेयं जांगलं चैव तुरुष्कं चादि वर्जयेत् ” ॥ इति । पूर्ती वृणविशेषः । मृगनाभी कस्तूरी । रोचनं गोरोचनम् । दीपार्थस्नेहद्रव्येषु उपकल्पनीयमाह **मरीचिः**—“ घृताद्वा तिलतेलाद्वा नान्यद्रव्यात्तु दपिकम् ” । अत्र चान्यद्रव्यनिषेधो वसामेदो-रूपद्रव्यविशेषे विषयो न पुनः कुसुंभादितैलविषयः । यत आह **शंखः**—

“ घृतेन दीपो दातव्यस्त्वथवाप्योषधीरसैः । वसामेदोद्धवं दीपं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ” ॥ इति ।

२५ आच्छादनार्थमुपकल्पनीयानि **चंद्रिकायां** दर्शितानि

“ आच्छादनं तु यो दद्यादहतं श्राद्धकर्मणि । आयुः प्रकाम्यमैश्वर्यं रूपं च लभते शुभम् ॥

“ कौशेयं क्षौमकार्पासं दुकूलमहतं तथा ! श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात्कामानामोति पुष्कलान् ” ॥ इति ।

अहतलक्षणमाह **प्रचेताः**—

३० “ ईषत् धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम् । अहतं तु विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम् ॥

“ स्वंयं धौतं च देयं स्यात्सर्वर्णैः क्षालितं च यत् । प्रदेयं पितृकार्येषु कारुधौतं न जातुचित् ” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—

“ वासांसि वाससी वासो यो न दद्यान्मृतेऽहनि । सप्तजन्मसु नमः स्याद्दृष्टिश्च प्रजायते ” ॥ इति ।

शंखः—“ यथाविभवसारेण वस्त्रं दद्यात्तु पैतृके । उत्तरीयमभावे तु शोभनं दर्भनिर्मितम् ” ॥ इति ।
शातातपः “ युवा सुवासा इति वस्त्रं तदभावे यज्ञोपवीतम् ” इति ।

पुराणेऽपि—“यज्ञोपवीतं दातव्यं वस्त्राभावे विजानता । पितॄणां वस्त्रदानस्य फलं तेनाप्नुतेऽखिलम् ॥
“ यज्ञोपवीतदानेन विना आह्नं तु निष्फलम् । तस्माद्यज्ञोपवीतस्य दानमावश्यकं स्मृतम् ” ॥ इति ।
एवं दर्भादिमेक्षणान्तं द्रव्यमुपकल्प्य स्नात्वा शुक्लं वासः परिदध्यात् । ५

“स्नातोऽधिकारी भवति दैवे पित्र्ये च कर्मणि । आह्निकृच्छुकृत्कुवासा स्यात् ” ॥ इति च स्मरणात्—
आह्निकप्रकारः—स्नानानन्तरं यत्कर्तव्यं तदाह मार्कण्डेयः—“स्नातः स्नातान्समाहूतान्स्वागतेनार्चये-
त्पृथक् ” इति । पृथक्पृथक्स्वागतमिति ब्रूयादित्यर्थः । शंखश्च । “ प्रयतोऽपराणहे शुचिः शुक्ल-
वासा दर्भहस्तः स्वागतमिति ब्रूयात् ” इति । अपराणहशब्दोऽत्रावर्चनादुपरितनभागे प्रयुक्तः

“ऊर्ध्वं मुहुर्त्तत्कुतपाद्यन्मुहूर्त्तचतुष्टयम् । मुहूर्त्तपंचकं वाऽपि स्वधाहवनमिष्यते” ॥ इति स्मरणात् । १०
यमोऽपि—“ततःस्नात्वा निवृत्तेभ्यःप्रत्युत्थाय कृतांजलिः । पाद्यमाचमनीयं च संप्रयच्छेद्यथाक्रमम्” ॥ इति ।
स्वागतमित्युक्त्वा मार्गकृतोपहतिशुद्ध्यर्थं पादप्रक्षालनार्थमुदकमाचमनार्थमुदकं च क्रमेण प्रयच्छे-
दित्यर्थः । तत आसनं दत्त्वा पुननिर्मन्त्रयति । तदुक्तं ब्राह्मणीये—“ पुनरपो दत्त्वा निमन्त्रयेत्
दैवे क्षणः क्रियतां ॐ तथेति विप्रो ब्रूयात् । प्राप्नोतु भवान इति कर्त्ता ब्रूयात् । ‘ प्राप्नुवानि ’ इति
पुनर्विप्रो ब्रूयात् ” इति । निमन्त्रणं च निरंगुष्ठहस्तं गृहीत्वा कर्तव्यम् । “ निरंगुष्ठं गृहीत्वा तु विश्वान्दे- १५
वान्समावहयेत् ” इति स्मरणात्—

मण्डलकरणम् । तदनन्तरं गृहाङ्कणे मंडलद्वयं कार्यम् । तथा च स्मृत्यन्तरे—

“ संमार्जितोपलिष्ठेषु द्वारि कुर्वीत मंडले । प्राङ्कणे मंडले कुर्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥

“ अंतरेण प्रकर्त्तव्यं तयोर्मध्ये षडंगुलम् । पादोदकस्य संयोगात्पितृघाती प्रजायते ” ॥

अत्रिः—“ एकोद्दिष्टे सपिंडे च कुंडं कुर्याद्यथाविधि । अन्नश्राद्धेषु सर्वत्र मंडलं तु विधीयते ” ॥ २०

दक्षः—“ सपिंडीकरणादूर्ध्वं मंडलं तु विधीयते । यावत्कालं प्रेतनाम तावत्कुंडं प्रकीर्तितम् ॥

“ सपिंडीकरणादूर्ध्वं कुंडेषु क्षालितं यदि । कुलक्षयकरं तस्मान्नरके पातयेत् ध्रुवम् ॥

“ तदूर्ध्वं क्षालनं कुंडे स्त्रीपुत्रगृहनाशनम् ” ॥ इति ।

मत्स्यः—“ गृहद्वारसमीपे तु भवनस्याग्रतो भुवि । गोमयेनोपलिप्तायां गोमूत्रेण तु मंडले ” ॥
इति । गोमयसहितेन गोमूत्रेण मंडले कार्यं इत्यर्थः । स्मृत्यन्तरे— २५

“ प्राङ्कणे मंडले कुर्याद्देवानां चतुरश्रकम् । वितस्तिमात्रं पित्रर्थं वर्तुलं दक्षिणं भवेत् ॥

“ नांतः प्रक्षालयेत्पादौ दैवे पित्र्ये च कर्मणि । नोत्तरे दक्षिणेनैव पश्चिमे न गृहांतरे ॥

“ द्वारस्य पूर्वतः कुर्याद्गोमयैर्मंडलद्वयम् ” ॥ इति । स्मृत्यर्थसारे—

“ प्रादेशमात्रं देवानां मंडलं चतुरश्रकम् । वितस्तिमात्रं पित्रर्थं मंडलं वर्तुलं भवेत् ॥

“ देवानामुत्तरे कार्यं पित्रर्थं दक्षिणे तथा । अंतरालं तु कर्तव्यं तयोर्मध्ये षडंगुलम् ” ॥ इति । ३०

अत्र विशेषमाह शंभुः—“ उदक्प्लवमुदीच्यं स्यादक्षिणं दक्षिणाप्लवम् ” इति । उदीच्यां वैश्व-
दैविकं चतुरश्रं मंडलमुदक्प्रवणं दक्षिणं पित्र्यं वर्तुलमंडलं दक्षिणाप्रवणं कुर्यादित्यर्थः ।

मंडलकरणानन्तरं यत्कर्त्तव्यं तदाह शंभुः—

“उत्तरे क्षतसंयुक्तान्पूर्वाग्रान्विन्यसेत्कुशात् । दक्षिणे दक्षिणाग्रास्तु सतिलान्विन्यसेत् द्विजः” ॥ इति ।

पादप्रक्षालनम् । मत्स्योऽपि—

“अक्षताभिः सपुष्पाभिस्तदभ्यर्च्योपसव्यतः । विप्राणां क्षालयेत्पादानभिवंश्च पुनः पुनः” ॥ इति ।
अपसव्यतः पूर्वमुदङ्मण्डलं पश्चाद्दक्षिणमण्डलमभ्यर्च्येत्यर्थः । एवं च मण्डलकरणं तद्वर्चनं च पदार्थानु-

५ समयेन कार्यम् । न तु काण्डानुसमयेनेत्युक्तं भवति । **व्यासः—**

“अक्षताभिः सपुष्पाभिर्दूर्भाग्रैरङ्गिरेव च । विप्राणां क्षालयेत्पादान्दैवे चैव पुरोमुखः ॥

“तिलैर्दूर्भैस्तथा पुष्पैरङ्गिर्गन्धादिभिश्चितैः । पितॄणां क्षालयेत्पादांस्तथा प्रत्यङ्मुखः शुचिः” ॥
पुरोमुखः प्राङ्मुख इत्यर्थः । अत्र केचित्

“अप्रवाहोदकस्नानं विप्रपादावनेजनम् । गायत्र्या जपमर्घ्यं च ह्यादित्याभिमुखं भवेत्” ॥ इति

१० **वचनादेवपित्रोरुभयोरपि पादप्रक्षालनमादित्याभिमुखः कुर्यादित्याहुः । अपरे तु—**

“दिवा वा यदि वा रात्रौ न कुर्यात्प्राङ्मुखः शुचिः । प्रत्यङ्मुखस्तु कुर्वीत विप्रः पादावनेजनम्” ॥ इति
वचनात् । आदित्याभिमुखयोर्देवपित्रोः पादक्षालनं तदभिमुखः कुर्यादिति । शिष्टाचारादिह
व्यवस्था । घृतयुक्तेन गोमयेनालिप्य पादशौचं विशिष्यते

“आज्यं गोमयसंयुक्तं पादयोर्लेपयेद्यदि । पितरस्तस्य कल्पांतममृतेनाभिषेचिताः” ॥ इति स्मरणात् ।

१५ न पवित्रपाणिः प्रक्षालयेत्

“सर्वदा दर्भपाणिः स्यादैवे पित्र्ये च कर्मणि । पादशौचं गंधलेपं न कुर्यादर्भपाणिना ॥

“सपवित्रेण हस्तेन विप्रपादावनेजनात् । तथा वज्रहतो वृत्रस्तथैव पितृदेवताः ।

“ग्रंथिर्यस्य पवित्रस्य विप्रपादाभिषेचने । यथा वज्रहतो वृक्षो देवताः पितरस्तथा” ॥ इत्यादि
स्मरणात् । अत्र भरद्वाजः—

२० “पादावाजानु वा जंघमपि वा चरणद्वयम् । कूर्परान्तं करौ सम्यक्क्षालयेत्प्रथमं बुधः” ॥ इति ।
पारिजाते तु—

“नान्तः प्रक्षालयेत्पादौ कर्ता पित्र्यादिकर्मसु । अज्ञानाद्यदि कुर्वीत पातयेदुभयं कुलम् ॥

“पादप्रक्षालनं श्राद्धे परं गुल्फद्वयाद्यदि । कुर्वीत रोमसंस्पृशीत्ततोयं रुधिरं भवेत् ॥

“तिष्ठन्न क्षालयेत्पादौ क्षालयेत्तु तथा यदि । नरश्वंडालयोनिः स्याद्यदि गंगां न पश्यति” ॥ इति ।

२५ देवपूर्वकं पादप्रक्षालनं कुर्यात् । तथा च बृहन्निरुक्ते—

“पाथं चैव तथैवार्घ्यं दैवमादौ प्रपूजयेत् । शनोदेवीति मंत्रेण पाथं चैव प्रपूजयेत्” ॥ इति ।
पाथार्घ्ययोर्देवपूर्वानुष्ठानं निमंत्रणादीनां सर्वेषां प्रदर्शनार्थं—

“सदैवं भोजयेच्छ्राद्धं तत्पूर्वं च प्रवर्तयेत् । अन्यथा ह्यवलुंपति सहैवासुरराक्षसाः ॥

“देवकार्यात् द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते । दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमाध्यायनं स्मृतम् ॥

३० “तेषामारक्षभूतं तु दैवं पूर्वं नियोजयेत् । उपचारानपि तथा दैवान्पूर्वं प्रयोजयेत्” ॥ इति
क्रतुस्मरणात् । पादप्रक्षालनं कर्ता स्वयमेव कुर्यात् “पादप्रक्षालनं कुर्यात् स्वयमेव विनीत-
वत्” इति यमस्मरणात् । शं नो देवीरिति मंत्रांतं पुरुरवाद्रिवसंज्ञका विश्वेदेवा इदं वः पाद्यमिति

सामान्यनाम्ना विशेषनाम्ना च निर्दिश्य वैश्वदेविकब्राह्मणपादयोः पाद्योदकं प्रक्षिप्य समस्त-
संपत्समवाप्तिहेतव इत्यादिभिर्मन्त्रैः पादप्रक्षालनं कुर्यात् । विश्वेदेवा इति सामान्यनामनिर्देशः ।
विशेषेनामानि बृहस्पतिना दर्शितानि—

“क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालः काम्यस्तथैव च । धुरिश्च रोचनश्चैव तथा चैव पुरूरवाः ॥

“आर्द्रवश्च दशैते तु विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः” ॥ इति । विभज्य दर्शयति शंखः— ५

“इष्टिश्राद्धे क्रतुर्दक्षः संकीर्त्यौ वैश्वदेविके । नांदीमुखे सत्यवसू काम्ये च धुरिरौचनौ ।

“पुरूरवार्द्रवौ चैव पार्वणे समुदाहृतौ । नैमित्तिके कालकाम्यावेवं सर्वत्र कीर्तयेत्” ॥ इति
इष्टिश्राद्धं यागादिकर्मगश्राद्धमित्यर्थः । एवं पितृथर्थाह्मणपादप्रक्षालनम् । शंनेदेवीरिति मंत्रांते ‘पित-
रमुकगोत्रं देवदत्तशर्म इदं ते पाद्यं पितामहामुकगोत्रं यज्ञदत्तशर्मन्निदं ते पाद्यं प्रपितामहामुक-
गोत्रं विष्णुमित्रशर्मन्निदं ते पाद्यम्’ इति एकब्राह्मणपक्षे तु पितृपितामहप्रपितामहा अमुक- १०
गोत्रा अमुकशर्मण इदं वः पाद्यमिति वा विशेषः । पाद्यादिसमर्पणे पितृणां नामगोत्रं च वक्तव्यम् ।
तथा च मत्स्यः—“नामगोत्रं पितृणां तु प्रापकं हव्यकव्ययोः” इति । हव्यकव्यग्रहणं
पाद्यादीनामपि प्रदर्शनार्थम्

“आवाहनेऽर्घ्ये संकल्पे पिंडदाने तिलोदके । अक्षतासनयोः पाद्ये गोत्रं नाम प्रकीर्तयेत्” ॥ इति
स्मरणात् । स्मृत्यंतरे— १५

“आवाहनासने पाद्ये ह्यन्नदाने तथैव च । अक्षय्ये पिंडदाने च गोत्रं नाम च कीर्तयेत्” ॥ इति ।
हेमाद्रौ—

“वसुरुद्रा दितिसुताः पितरः श्राद्धदैवताः । वस्वादिनामभिः सार्धं ये कुर्वन्ति समाहिताः ॥

“श्राद्धे पितृन्समभ्यर्च्य ते यांति फलमक्षयम्” ॥ इति ।

पैठीनासिः—“वसवः पितरो रुद्राः पितामहा आदित्याः प्रपितामहाः य एवं विद्वान्पितृन्यजते २०
वसवो रुद्रा आदित्याश्चास्य प्रीता भवन्ति” इति । अवश्यं नामगोत्रमंत्राद्युच्चारणवद्वस्वादिरूपेण
पित्रादयो ध्यातव्या इत्युक्तं भवति । निमंत्रणप्रभृत्या श्राद्धपरिसमाप्तैर्वैश्वदेविकं प्रदक्षिणं यज्ञोप-
वीतिना कार्यं पित्र्यमपसव्यं प्राचीनावीतिना कार्यम्

“यज्ञोपवीती देवानां कुर्यात्सर्वं प्रदक्षिणम् । अपसव्यं ततः कृत्वा पितृणामप्रदक्षिणम् ॥

“दक्षिणाग्राश्च दर्भाः स्युः स च वै दक्षिणामुखः” ॥ इति स्मरणात् । पितृमेघसार- २५
कृत्सर्वं देवार्थमुपचारमुपवीती प्राङ्मुखः प्रदक्षिणं प्रागग्रैर्देवैर्देवतीर्थपूर्वं कृत्वा पितृभ्यः सर्वं
दक्षिणामुखः कुर्यात् । पितृनंतरं देववत्सर्वं विष्णोः कुर्यात्” ॥ इति । स्मृत्यंतरे—

“उदङ्मुखस्तु देवानां पितृणां दक्षिणामुखः । प्रदद्यात्पार्वणे सर्वं देवपूर्वं विधानतः” ॥ इति ।

बोधायनः—“आचमने चाग्निमुखे चाभिश्चरणे चानुव्रजनप्रदक्षिणेषु च पश्चाद्धोमेषु यज्ञोपवीत-
मन्यत्र प्राचीनावीतम्” ॥ इति । पश्चाद्धोमः प्रायश्चित्तहोमः । अत्र कपर्दी— ३०

“आधारदार्वाग्निमुखाज्यभागौ प्रदक्षिणानुव्रजनेषु तद्वत् ।

“आधारयोः स्विष्टकृति प्रसिद्धं यज्ञोपवीतं हि कपर्दिनः स्यात्” । पितृमेघसारेऽपि “आ
समाप्तैः प्राचीनावीतमन्यत्र प्राणायामाधारहोमाज्यभागान्निमुखस्विष्टकृद्धोमप्रायश्चित्ताहुत्याभि-
श्रवणाचमनप्रदक्षिणनमस्कृष्टानुव्रजनेभ्यः” इति । भाष्यकारः “निरूहोद्वासनपरिध्याधानलेखोल्ले-
खनादिकं पित्र्येऽपि समानम्” इति दैवसमानमित्यर्थः । ३५

स्मृत्यन्तरे—

“सूक्तस्तोत्रजपं त्यक्त्वा विना च परिवेषणम् । विसर्जनं सौमनस्यं स्वागतं प्रार्थनां तथा ॥
“विप्रप्रदक्षिणं चैव स्वस्तिवाचनकं विना । पिंडाघ्राणं दक्षिणां च प्रत्युत्थानादिकं विना ॥
“पित्र्यमन्यत्प्रकर्तव्यं प्राचीनावीतिना सदा” ॥ इति । **मनुः** (३।२७९)—

५ “प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतं द्रिणा । पित्र्यमा निधनात्कार्यं विधिवद्भर्माणिना” ॥ इति ।
आ निधनादाश्राद्धपरिसमाप्तेरित्यर्थः । विशेषांतरमाह **कात्यायनः**—

“दक्षिणं पातयेज्जानु देवान्परिचरन्सदा । पातयेदितरं जानु पितृन्परिचरन् सदा” ॥ इति ।

बोधायनः—

“प्रदक्षिणं तु देवानां पितृणामप्रदक्षिणम् । देवानामृजवो दर्भाः पितृणां द्विगुणाः स्मृताः” ॥ इति ।

१० द्विगुणाः मध्यमंगेन द्विगुणीकृता इत्यर्थः ॥ **शौनकः**—“दर्भान् द्विगुणभुग्नानासनं प्रदाय” इति ।
आसनग्रहणं दर्भसाध्यपितृकर्मोपलक्षणार्थम् ।

आचमनविधिः—

पादप्रक्षालनानंतरं कर्त्ता मंडलस्योत्तरभागे ईशानदिग्भागे वा पूर्वमाचामेत् । ततो निमंत्रित आचामेत्

१५ “मंडलस्योत्तरे भागे विप्रस्याचमनं भवेत् । अमृतं स्याद्धि ततोयमन्यत्र रुधिरं भवेत् ॥

“कुंडस्योत्तरपूर्वे वा द्विजस्याचमनं भवेत् । दक्षिणे तु सुरातुल्यं पश्चिमे रुधिरं भवेत् ॥

“कर्त्तुं राचमनात्पूर्वं भोक्तुराचमनं यदि । शुनो मूत्रसमं तोयमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥

“कर्त्तुं राचमनं पूर्वं कुंडस्योत्तरतो भवेत् । अपि वेशानदिग्भागे कार्यमाचनं तदा” ॥ इति **स्मरणात्**—

आचमनानन्तरं कर्त्तव्यम् । आचमनानंतरं कर्त्तव्यमाह ऋतुः—

२० “दर्भपाणिर्द्विराचम्य शुक्लवासा जितेंद्रियः । परिश्रिते शुचौ देशे गोमयेनोपलेपिते ॥

“दक्षिणाप्रवणे सम्यगाचांतान्प्रयतान्छुचीन् । आसनेषु सदर्भेषु विविक्तेषूपवेशयेत्” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः (आ. २२६-२२८)—

“अपराण्हे समभ्यर्च्य स्वागतेनागतांस्तु तान् । पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् ॥

“द्वौ देवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उदगैकैकमेव वा” इति । द्वौ वैश्वदेवे द्वौ प्राङ्मुखौ ब्राह्मणानुपवेश्यौ ।

२५ पित्र्ये पित्र्यादिस्थाने त्रय उदङ्मुखः उपवेश्यः । वैश्वदेवे पित्र्ये च एकैकं वा उपवेशयेदित्यर्थः ।

चंद्रिकायाम्—

“विप्रौ तु प्राङ्मुखे द्वौ तु पूर्वं निवेशयेत् । उत्तराभिमुखान्विप्रान् त्रीन् पितृभ्यश्च सर्वदा” ॥ इति ।

विज्ञानेश्वरः—“पित्रादीनां त्रयाणामयुग्मान्कुशान्द्विगुणभुग्नानप्रदक्षिणं वामतो विष्टरार्थमास-
नेषूदकपूर्वं दत्त्वा पुनरुदकं दद्यात् । अपः प्रदाय द्विगुणभुग्नान् कुशान्दत्त्वा ‘अपः प्रदाय’

२० **इत्याश्वलायनस्मरणात्** । “एतच्चाद्यंतयोरुदकदानं वैश्वदेवे पित्र्ये च प्रतिपादनार्थं द्रष्टव्यम्” इति ।

पितृभेदसारेऽपि—“प्राङ्मुखानुदगपवर्गौ वैश्वदेवे पित्र्ये तु उदङ्मुखान्प्रागपवर्गान्प्राङ्मुखान्वा

दक्षिणापवर्गान्विप्रान्वा सदर्मोपकृतेष्वासनेषूदकदानपूर्वं द्विगुणदर्भान्वामतो विष्टरार्थं दत्त्वा

निवेश्यापः प्रदाय” ॥ इति ।

बोधायनोऽपि—

“अयुग्मान्ब्राह्मणान्सुप्रक्षालितपाणिपादानप आचमय्य सदर्भोपकृतेष्वासनेषु प्राङ्मुखानुपवेशय-
त्युदङ्मुखान्वा यदि प्राङ्मुखान् दक्षिणापवर्गयद्युदङ्मुखान्प्रागपवर्गम् ” इति । स एव—
“प्रदक्षिणं तु देवानाम्” इति । देवानां ब्राह्मणाः प्रदक्षिणं दक्षिणादिगुपक्रममुदपवर्गं यथा भवति
तथा आसीरन्नित्यर्थः । यक्षः—“दक्षिणासंस्था आसीरन्नस्पृशंतः परस्परम्” इति । “दक्षिणा- ५
संस्थता ह्येषां पितॄणां श्राद्धकर्मणि” इति । निष्ठा समाप्तिः । असंस्पृशंत इति अनुच्छिष्टदशायामपि
परस्परस्पर्शो यथा न भवति तथा आसीरन्नित्यर्थः ॥ तथा च गार्ग्यः—

“स्पर्शे स्पर्शे भवेत्पापमेकपंक्तिनियोगतः । हीनवृत्तादिपंक्तौ तु युक्तं तस्माद्विवेचनम् ” इति ।
चंद्रिकायाम्—

“आसनेष्वासने दद्यान्न तु हस्ते कदाचन । दीयते यदि मूढात्मा निराशाः पितरो गताः” ॥ इति । १०
प्रचेताः—“दर्भश्चैवासने दद्यान्न तु पाणौ कदाचन ” इति ।

पुराणेऽपि—

“आसने चासनं दद्याद्वामे वा दक्षिणेऽपि वा । पितृकर्मणि वामे वै दक्षिणे देवकर्मणि ” ॥

उपवेशनक्रमः । उपवेशनक्रममाह विष्णुः—“विप्रान् स्वागतान्स्वाचांतान्यथाभूयो-
विधंकुशोत्तरेष्वासनेषूपवेशयेत् ” इति । यथाभूयोविधं विद्यातारतम्यानुसारेण वैश्वदेविक- १५
ब्राह्मणपंक्तौ पैतृकब्राह्मणपंक्तौ च प्रथमद्वितीयादिक्रमेणोपवेशयेदित्यर्थः ।

पैठिनिसिरपि—“विद्यातपोधिकानां वै प्रथमासनमुच्यते ।

“एकपङ्क्त्युपविष्टानां भोजनादि समं स्मृतम् । अयुक्तोऽग्रासनं गच्छन् पंकत्या हरति दुष्कृतम्” ॥ इति ।
नियुक्त एव गच्छेदित्यर्थः । **हारीतोऽपि—**

“संतिष्ठमानेष्वहंसु योऽनर्होऽग्रासनं श्रयेत् । गृणहाति स मलं पंक्तेरायुषा च वियुज्यते ” ॥ इति । २०
तस्माम्मान्यानतिक्रमेणैवाग्रासनं समश्रयेदित्यभिप्रायः । **चन्द्रिकायाम्—**

“पाणिपादमुखाद्राश्च स्वाचान्ताः सुसमाहिताः । तेष्वसनेषु संस्थाप्य विप्रास्ते क्रमेण तु ” ॥ इति ।
येन क्रमेणोपवेशने कृते मान्यानतिक्रमः तेन क्रमेणेत्यर्थः ।

पूर्वमासनोपकृत्यभावे स्मृत्यंतरेऽभिहितम्—

“तत्रासनानि देयानि तिलाश्वापि कुशैः सह । पृथक्पृथक्चासनेषु तिलतैलेन दीपिका ” ॥ इति । २५
स्थापनीया इति शेषः

उपवेशनप्रकारः । उपवेशनप्रकारमाह यमः—“आसनं संस्पृशन्सव्येन पाणिना दक्षिणेन ब्राह्मण-
मुपसंगृह्य समाध्वमिति चोक्त्वोपवेशयेत् ” इति । आस्यतामित्युक्त्वा वोपवेशयेत् । “आस्यता-
मिति तान्ब्रूयात् आसनं संस्पृशन्नपि” इति स्मृत्यंतरे विधानात् । यमः—

“जान्वालभ्य ततो देवानुपवेश्य ततः पितॄन् । समस्तान्निर्व्याहृतिभिरासनेषूपवेशयेत् ” ॥ इति ॥ ३०

उपविष्टनियमाः । उपविष्टब्राह्मणनियमाश्च स्मृत्यंतरे दर्शिताः—

“पवित्रपाणयः सर्वे ते च मौनव्रतान्विताः । उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शं वर्जयंतः परस्परम् ” ॥ इति ।
मौनित्वं च ब्रह्मोद्यकथाव्यतिरिक्तविषम् ।

अत एव यमः—“ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्युः पितृणामेतदीप्सितम् ” ॥ इति
 दर्भासनदानात्पूर्वकृत्यम् । कंबलाद्यासनेषूपवेशनानंतरं दर्भासनदानात्पूर्वकृत्यमुक्तं स्मृत्यंतरे—
 “श्राद्धभूमिं गयां ध्यात्वा ध्यात्वा देवगदाधरम् । ताभ्यां चैव नमस्कृत्य ततः श्राद्धं प्रवर्त्तयेत्” ॥ इति ।
 श्राद्धं करिष्ये इत्येवमुपविष्टान्ब्राह्मणान्पृच्छेदित्यर्थः । अत एवोक्तं तत्रैव —

५ “उभौ हस्तौ समौ कृत्वा जानुभ्यामंतरे स्थितौ । सप्रश्रयश्चोपविष्टान्सर्वान्पृच्छेत् द्विजोत्तमान्” ॥ इति ।
 कुरुष्वेति तैरनुज्ञातो देवताभ्यः पितृभ्यश्चेति मंत्रं त्रिः पठेत् । तदुक्तं ब्रह्मांडपुराणे—

“श्राद्धं करिष्ये इत्येवं पृच्छेद्विप्रान्समाहितः । कुरुष्वेति स तैरुक्तो मंत्रमेतं त्रिरुच्चरेत् ॥
 “देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः ॥
 “आद्येऽवसाने श्राद्धस्य त्रिरावृत्तं जपेत्सदा ।

१० “पठ्यमानमिमं श्रुत्वा श्राद्धकाल उपस्थिते । पितरः क्षिप्रमायांति राक्षसाः प्रव्रवंति च” ॥ इति ।
 अत्र कर्त्तव्यांतरमाह निगमः—‘अपहता’ इति ‘तिलान्विकिरेत्’ इति । ‘अपहता असुरा रक्षांसि
 पिशाचा ये क्षयंति’ इति मंत्रेण तिलान्विकीर्य ब्राह्मणासनेषु पूर्वोक्तप्रकारेण दर्भासनं दद्यात् ।
 “कुरुष्वेति स तैरुक्तो दद्यादर्भासनं ततः” इति स्मरणात् । दर्भासनं च ब्राह्मणहस्ते अप
 आसिच्य कार्यम्

१५ “पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टगार्थान्कुशानपि । आवाहयेदनुज्ञातो ‘विश्वे देवास’ इत्युच्चा” ॥ इति
 याज्ञवल्क्यस्मृत्यः (आ. २२९) । देवकर्मणि यवसहितं दर्भासनं दद्यात् ‘देवानां सयवा दर्भाः’
 इति काटकगृह्येऽभिधानात् । कंबलाद्यासनस्य दक्षिणभागे पुरुरवार्द्रवसंज्ञकानां विश्वेषां देवाना-
 मिदमासनमिति वामे तु पितृपितामहप्रपितामहानामिदमासनमिति दर्भासनं दद्यात् ।
 तथा चंद्रिकायाम्—

२० “अक्षय्यासनयोः षष्ठी द्वितीयावाहने स्मृता । अन्नदाने चतुर्थी स्याच्छेषां संकुद्वयः स्मृताः” ॥ इति ।

आसनदानानन्तरकृत्यम् । अनंतरकृत्यमाह यमः—

“यवहस्तस्ततो देवान् विज्ञाप्यावाहनं प्रति । आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवा स इत्युच्चा” ॥

“विश्वेदेवासः शृणुतेति मंत्रं जपित्वा ततोऽक्षतान् ॥ ओषधय इति मंत्रेण विकिरेत्तु प्रदक्षिणम्” ॥ इति ।
 अस्यार्थः चंद्रिकायामुक्तः—“श्राद्धकर्ता गृहीतयवः पुरुरवार्द्रवसंज्ञकान् विश्वान् देवानावाहयामीति

२५ विज्ञाप्य तैरावाहयेत्यनुज्ञातो विश्वे देवास आगतेत्यनया ऋचा विश्वान् देवान्ब्राह्मणेष्ववाह्य
 यवान्ब्राह्मणस्य दक्षिणपादे सव्यपादे च दक्षिणजानुनि सव्यजानुनि च दक्षिणांसे वामांसे च
 शिरसि च समारोप्य विश्वेदेवाः शृणुतेतेमं हवं म इति मंत्रं जपित्वा प्रदक्षिणं दक्षिणपादादि
 मस्तकांतमोषधयः प्रतिमोदध्वमिति मंत्रेणाक्षतानारोपयेत्” ॥ इति । तथा च हेमाद्रौ—

“देवार्चा दक्षिणादिः स्यात्पादजान्वंसमूर्धसु । शिरोसजानुपादेषु वामांगादिषु पैतृके” ॥ इति ।

३० स्मृत्यंतरेऽपि—

“देवेभ्यो निखिलं दद्यात्पादजान्वंसमूर्धसु । शिरोसजानुपादेषु वामांगादिषु पैतृके ॥

“पितृभ्यो निखिलं दद्यात्स्वधाकारेण सर्वदा । अक्षय्यमासनं चैव वर्जयित्वाऽर्घ्यमेव च” ॥ इति ।

कात्यायनस्तु—“ विश्वान् देवानावाहयिष्यामीति पृच्छत्यावाहयेत्यनुजानाति ” ॥ इति । अत्र क्रतुदक्षसत्यादीनां च दक्षप्रजापतेर्दुहितरि विश्वाख्यायां लोकविश्रुतायामुत्पत्तिः समभूदिति उत्पत्तिमपि ज्ञात्वाऽवाहनं कर्तव्यम् । उत्पत्तिश्च तेषां पुराणेऽभिहिता—

“दक्षस्य दुहिता साध्वी विश्वा नाम परिश्रुता । तस्याः पुत्रा महाभागाः विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः” ॥ इति उक्तोत्पत्तिरावाहनसमये ज्ञातव्या । अत एव क्रतुदक्षादिसंज्ञां दक्षदुहितर्युत्पत्तिचयेन विदुरावाह- ५ नकर्तारः । तेषामनुकल्पमाह शंखः—

“ नाम चैव तथोत्पत्तिं न विदुर्ये द्विजातयः । श्लोकमेतं पठेयुस्ते ब्राह्मणानां समीपगाः ॥
“ आगच्छंतु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः । ये अत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवंतु ते ” ॥ इति ।
‘ विश्वेदेवाः शृणुतेमं हवं मे ’ इति मंत्रजपानंतरमेतं श्लोकं जपेयुरित्यर्थः । तथा च बोधायनेन
‘ विश्वेदेवाः शृणुत आगच्छंतु ’ इति मंत्रद्वयं विश्वेदेवावाहने विहितम् । आपस्तंबिनामपि १०
बोधायनोक्तमेव ग्राह्यम् । “ बोधायनमतं कृत्वा स्वसूत्रफलभागभवेत् ” इति स्मरणात् ।
याचिदं वचनम्

“ ततो मंत्रं जपेन्मौनी विश्वेदेवास आगत । विश्वेदेवाः शृणुतेति द्वितीयं तदनंतरम् ॥
“ तृतीयं तु जपेन्मंत्रं आगच्छंत्वित्यतः परम् ” ॥ इति तदाश्वलायनादिविषयम् । यद्यपि न कापि दश विश्वेदेवा देवतात्वेनोक्ताः किंतु द्वौ द्वावेकस्मिन्श्राद्धे देवतात्वेनोक्तौ तथाप्यावाहनादौ १५
पुरूरवाद्विसंज्ञकान्विश्वेदेवानावाहयामीत्येवं बहुवचनांततयैव प्रयोगः कार्यः । “ विश्वान्देवा-
नावाहायिष्यामीति पृच्छति । निरंगुष्ठं गृहीत्वा तु विश्वान्देवान्समाह्वयेत् ” इति बहुवचनांततयैव
प्रयोगदर्शनात् । एवं पित्रादिषु पितरः पितामहाः प्रपितामहा इति सर्वोपचारेषु बहुवचनांतप्रयोगो
युज्यते । चंद्रिकायाम्—वैश्वदेविकब्राह्मणानेकत्वेऽपि न प्रतिब्राह्मणमावाहनावृत्तिः । सकृदावाहनेनै-
वानेकाधिष्ठानदेवताध्याससंभवात् । यद्यदेवताराधनार्थं यवारोपणादि तत्प्रतिब्राह्मणमावर्त्तनीयं २०
संनिपत्योपकारकेष्ववृत्तिं विना ब्राह्मणांतरे कार्यासिद्धेः । ‘ विश्वेदेवाः शृणुते ’ इति मंत्रजपस्तु नाव-
र्त्तते सकृज्जपेनैव जपसाध्यादृष्टासिद्धेरिति ।

पैतृकावाहनमाहाश्वलायनः—“ पितृनावाहयिष्येति ब्राह्मणान्पृष्टावाहयेति तैरनुज्ञात उशंतस्त्वेति मंत्रेणावाह्य नमो वः पितर इति मंत्रेणोपातिष्ठते ” इति

प्रचेताश्च—“ शिरःप्रभृति पादांतं नमो व इति पैतृकम् ” इति । **याज्ञवल्क्यः** (आ. २३३)— २५

“ द्विगुणांस्तु कुशान् दत्वा ह्युशंतस्त्वेत्यृचा पितृन् । आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायंतु नस्ततः ” ॥ इति ।

पुराणे—

“ जपेदायंतु न इति मंत्रं सम्यगशेषतः । शुद्धचर्थं पितृसत्रस्य त्रिः कृत्वा सर्वतो दिशंम् ” ॥

“ तिलांस्तु प्रक्षिपेन्मंत्रमुच्चार्यापहता इति ” । बोधायनादिभिरायात पितर इति पित्रावाहनं ऊर्जं वहंतीरिति तिलोदकप्रक्षेपणं च विहितम् ।

३०

अर्घ्यपरिकल्पनम् । अनंतरकृत्यमाह **याज्ञवल्क्यः** (आ. २३०)—

“ यवैरन्वकीर्याथ भाजने सपवित्रके । शन्नो देव्या पयः क्षिप्त्वा यवोसीति यवांस्तथा ” ॥ इति ।

मत्स्यपुराणे—

“ विश्वान् देवान्यवैः पुष्पैरभ्यर्च्यसिन्पूर्वकम् । पूरयेत्पात्रयुग्मं तु स्थाप्यं दर्भपवित्रके ” ॥ इति ।

प्रचेताः—

“एकैकस्य तु विप्रस्य अर्घ्यपात्रं विनिक्षेपेत् । यवोऽसीति यवान्नीत्वा गंधपुष्पैः सुपूजितम्” ॥ इति ।
अर्घ्यपात्रं प्रतिपात्रं भेदेन कार्यम् । तदुक्तं चतुर्विंशतिमते—

“द्वे द्वे शलाके देवानां पात्रे कृत्वा पयः क्षिपेत्” इति । प्रतिदेवं पात्रं साग्रौ द्वौ द्वौ दर्भौ निधाय
५ जलं निक्षिपेदित्यर्थः । कात्यायनीये तु—“विश्वेषां देवानामेकमर्घ्यपात्रं पितॄणां त्रीणि” इति ।

पवित्रकरणप्रकारमाह योगयाज्ञवल्क्यः—

“पवित्रे स्थ इति मंत्रेण द्वे पवित्रे च कारयेत् । अंतर्दर्भे कुशच्छिन्ने कौशे प्रादेशसंमिते” ॥ इति ।
कुशच्छिन्ने कुशमंतर्धाय छिन्ने । कौशे कुशमय इत्यर्थः । तथा च यज्ञपार्ष्वः—

“ओषधीमंतरे कृत्वा अंगुष्ठांगुलिपर्वणोः । छिंद्यात्प्रादेशमात्रं तु पवित्रं विष्णुदैवतम् ॥

१० “न नखेन न काष्ठेन न लोहेन न मृन्मयात् । नखेन तु भवेद्याधिः काष्ठेनार्थो न सिध्यति ॥

“आयसेन भवेन्मृत्युमृन्मये कलहो ध्रुवम्” ॥ इति । अनंतरं ‘स्वाहाध्या’ इति मंत्रेण देवतार्थ-
ब्राह्मणसमीपे अर्घ्यपात्रं स्थापयेत् । तथा च गार्ग्यः—“स्वाहेति चैव देवानां होमकर्मण्यु-
दाहरेत्” ॥ इति चंद्रिकामाधवीययोरिदं व्याख्यातम्—“देवानां होमकर्माणि अर्घ्यदानकर्म-
ण्युपस्थिते अर्घ्यपात्रं स्थापयितुं स्वाहाध्या इति मंत्रमुच्चारयेदिति प्रकरणादवगम्यते” इति ।

१५ पैतृकार्यविधिमाह विष्णुः—“दक्षिणापवर्गेषु चमसेषु पवित्रांतर्हितेषु अप आसिंचति शन्नोदेवी-
रिति” । प्रचेता अपि—“यज्ञीयवृक्षचमसेषु पवित्रान्तर्हितेषु एकैकस्मिन्नपि आसिंचेत्” इति ।
शौनकोऽपि—“तैजसाश्रममयमृन्मयेषु पात्रेषु एकद्रव्येषु अनेकद्रव्येषु वा दर्भान्तर्हितेषु शन्नो-
देवीरिति मंत्रेणापो निनीय तासु तिलानावपति ‘तिलोसि सोमदेवत्य’ इति । अत्र पात्रेष्विति
बहुवचनं त्रिष्वेवावतिष्ठते ‘त्रीण्येवोदपात्राणि’ इति प्रचेताः स्मरणात् । तथा च वैजावापः—

२० “कीर्त्वा पितॄणां त्रीण्येव कुर्यात्पात्राणि धर्मवित् । एकस्मिन्वा बहुषु वा ब्राह्मणेषु यथाविधि” ॥ इति ।
पित्रादीनां त्रयणामेकैकस्यानेकब्राह्मणानिमंत्रणे सर्वेषामेकब्राह्मणानिमंत्रणेऽपि त्रीण्येवाध्यापात्राणि
तिलान् कीर्त्वा प्रक्षिप्य कुर्यान्न तु ब्राह्मणसंख्ययेत्यर्थः ।

“मृत्पात्रेणाध्यातोयं च मृद्वन्येनानुलेपनम् । घृतधूपं तु यद्वत्तं निराशाः पितरो गताः” ॥ इति ।
स्मृत्यंतरम् । स्मृत्यर्थसारे—

२५ “द्रव्याभावे द्विजाभावे यद्येको ब्राह्मणो भवेत् । पात्राणि सादयेत्रीणि न तु ब्राह्मणसंख्यया” ॥ इति ।
अत्र विशेषमाह बोधायनः—“त्रीणि पितॄणामेकमथवा” इति । अर्घ्यपात्राणि विवृतानि न
कुर्यात् । न पुनः पूरयेत् । तानि नोद्धरेत् । द्रव्या आदाय अर्घ्यं दद्यात् । तथा च शौनकः—
“यदा चैवोद्धृतं पात्रं निवृतं वा यदा भवेत् । अभोज्यं तद्वेच्छाद्धं कुद्वैः पितृगणैर्गतेः ॥

“नोद्धरेत्प्रथमं पात्रं पितॄणामर्घ्यपूरितम् । अवृतास्तत्र गच्छति पितरः शौनकोऽब्रवीत् ॥

३० “आपोशनं करे कृत्वा पात्रे कृत्वा तिलोदकम् । पूरणं तु पुनः कृत्वा सुरापानसमं भवेत्” ॥ इति ।
पितृमेधसारे—“कुत्सनस्कंदने प्रणीतावन्मंत्रवत्पुनरर्घ्यं गृण्हीयात्” इति । एकदेशस्कंदने न दोष
इत्यर्थः । पैतृकार्यपवित्रे विशेषोऽभिहितश्चतुर्विंशतिमते—“तिस्रस्तिस्रः शलाकास्तु पितृपात्रेषु

पार्षणे” ॥ इति । शलाकाः अभिन्नाया दर्भा इति यावत् । अर्घ्यपात्रेषु तिलप्रक्षेपणानंतरं कर्त्तव्यमुक्तं ब्रह्मपुराणे—“अर्घ्याः पुष्पैश्च गंधैश्च ताः प्रपूज्याश्च शास्त्रवत्” इति । तिलमिश्रा या अर्घ्या आप-
स्तासु गंधपुष्पाणि प्रक्षिपेदित्यर्थः । अनंतरं कर्त्तव्यमाह शौनकः—“ताः प्रतिग्राहयिष्यन्स्वधार्या” इति ।
ता आपो ब्राह्मणैः प्रतिग्राहयिष्यन्स्वधार्यमंत्रेण स्थापयेदित्यर्थः । कात्यायनः—

“पैतृकं प्रथमं पात्रं ततः पैतामहं न्यसेत् । प्रपैतामहं ततोऽन्यस्य नोद्धरेन्न च चालयेत्” ॥ इति । ५
अर्घ्यदानम् । अर्घ्यपात्रं स्थापयित्वा विप्रहस्तेऽर्घ्यं दद्यात् । तदाह गार्ग्यः—“दत्त्वा हस्ते
पवित्रं तु हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत्” इति । याज्ञवल्क्योऽपि (आ. २३१)—

“‘या दिव्या’ इति मंत्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत्” इति । ‘या दिव्या आपः पयसा संबभूवुः’ इति मंत्रांते
‘पुष्करवार्द्धवसंज्ञका विश्वेदेवा इदं वोऽर्घ्यम्’ इत्युक्त्वा वैश्वदेविकब्राह्मणस्यैकैकस्य दक्षिणहस्ते
पवित्रेणांतर्हिते एकैकपात्रस्थमुदकं दद्यादित्यर्थः । पैतृकार्घ्यदानमाह कात्यायनः—“सपवित्रेषु १०
हस्तेषु ‘या दिव्या’ इति पितरेतत्तेऽर्घ्यं पितामहैतत्ते अर्घ्यं प्रपितामहैतत्ते अर्घ्यमिति ब्राह्मणांजलिषु
पात्राणि निनीय पितृभ्योऽक्षयमस्त्विति शेषं दर्भेष्ववनेजयति” इति । पात्राणि पात्रस्थोदकानीत्यर्थः ।
पैठिनसिः—“ततो ब्राह्मणहस्तेषूदकपूर्वं दर्भान्प्रादायोदकपूर्वमर्घ्योदकं ददाति” ॥ इति । या
दिव्या इत्युक्त्वाऽसावेतत्ते अर्घ्योदकमिति अपस्पृश्यैवमेवेतरयोरिति । अत्र विशेषमाह यमः—
“या दिव्या आप इति पात्रं पाणिभ्यामुद्धृत्य नामगोत्रं च गृहीत्वा सपवित्रमर्घ्यं हस्ते दद्यात्” ॥ इति । १५
पात्रं पात्रस्थं जलमिति यावत्

“स्पृष्टमुद्धृतमन्यत्र नीतमुद्गाढितं तथा । पात्रं दृष्ट्वा व्रजत्याशु पितरः प्रशंसति च ” ॥ इति
कात्यायनस्मरणात् । प्रचेता अपि—

“अप्रदक्षिणमेतेषामेकैकं तु पितृक्रमात् । संबोध्य नाम गोत्राभ्यामेष तेऽर्घ्यं इतीरयेत्” ॥ इति ।
ब्राह्मणहस्ते प्रथममपो निनीयार्घ्यं पवित्रं दक्षिणाग्रतया क्षिप्त्वा या दिव्या इति मंत्रांते २०
अमुकगोत्र अमुक शर्मन्वसुरूप अस्मत्पितुः इदं ते अर्घ्यं रुद्ररूपास्मत्पितामह आदित्यरूपा-
स्मत्प्रपितामह इदं ते अर्घ्यमिति दक्षिणहस्ते पितृतीर्थेनार्घ्यं दत्त्वा अप उपस्पृशेदित्यर्थः ।
श्लोकगौतमः—“पूर्ववत्पृथगैकैकमेकैकनार्घ्ययेत्क्रमात्” इति ।

अनंतरं कर्त्तव्यमाह याज्ञवल्क्यः (आ. २३५)—

“दत्त्वाऽर्घ्यं संस्रवांस्तेषां पात्रे कृत्वा विधानतः । पितृभ्यस्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यर्घः” ॥ इति । २५
एवमर्घ्यं दत्त्वा तेषामर्घ्याणां संस्रवान्ब्राह्मणहस्तगलितार्घ्योदकानि पितृपात्रे संगृह्य पितृभ्यः
स्थानमसीत्यनेन मंत्रेण तत्पात्रं न्युब्जमधोमुखं कुर्यादित्यर्थः । तथा च प्रचेताः—

“प्रथमे पितृपात्रे तु सर्वान्संभृत्य संस्रवान् । पितृभ्यः स्थानमसीति कुर्याद्भूमावधोमुखम्” ॥ इति ।
गोभिलस्तु—“न्युब्जं कुर्यात्पवित्रवैत्” इति अर्घ्यपवित्राण्यदाय पितृपात्रे निधाय तैः
सह भूमौ न्युब्जं कुर्यादित्यर्थः । कात्यायनः—“कुशवत्यां भूमावधोमुखं कुर्यात्तस्योपरि च ३०
कुशम्” इति । निदध्यादिति शेषः । कुशग्रहणं गंधादेरपि प्रदर्शनार्थम् । न्युब्जं पात्रं प्रकृत्य
‘गंधमाल्यैः पात्रमभ्यर्च्य’ इति शौनकस्मृतेः । न्युब्जीकरणस्य कालांतरमाहात्रिः—

“अपसव्यं ततः कृत्वा पिंडपात्रैर्वा समाहितः । क्षिप्त्वा दर्भपवित्राणि मोचयेत्संस्रवांस्ततः” ॥ इति ।

एवं च पिंडपार्श्वे सपवित्रसंस्त्रावमोचनविधानान्न्युब्जकरणमपि पिंडप्रदानानंतरमिति गम्यते । शिष्टाचारानुगुणो विकल्पोऽत्र द्रष्टव्यः ।

गन्धादिदानम् । न्युब्जकरणानंतरं कर्त्तव्यमाह बैजावापः—

“ तस्योपरि कुशान्दत्त्वा प्रदद्याद्देवपूर्वकम् । गंधपुष्पाणि धूपं च दीपं वस्त्रोपवीतके ” ॥ इति ।

५ तस्य न्युब्जीकृतस्योपरि कुशगंधपुष्पाणि दत्त्वा वैश्वदेविकब्राह्मणपूर्वकं गंधादि दद्यादित्यर्थः । अनेनैतदुक्तं भवति—वैश्वदेविकासनदानानंतरं पैतृकासनदानं वैश्वदेविकावाहनानंतरं पैतृका-वाहनमित्येवं पदार्थानुसमयेनैवासनावाहनाध्यगंधपुष्पधूपदीपाच्छादनादयः पदार्था वैश्वदेविकाः पैतृका अनुष्ठेयाः । न तु वैश्वदेविकासनाद्याच्छादनांतपदार्थकांडादूर्ध्वं पैतृकासनादि-पदार्थाः इति पदार्थानुसमयेनानुष्ठानं कार्यम् । एवं हि तेषां प्रधानप्रत्यासत्तिर्भवति । न वैषम्यं

१० च । अन्यथा केषांचित्प्रधानभूतपैतृकपदार्थप्रत्यासत्तिः केषांचिन्नेति वैषम्यमापद्येत । अत्र केचिदाहुः—“ अपसव्यं ततः कृत्वा पितृणामप्रदक्षिणम् ” इति याज्ञवल्क्येन वैश्वदेविक-पदार्थकांडादूर्ध्वं पैतृकार्चनविधानात्कांडानुसमयो युक्त इति । यथाशिष्टाचारमिह व्यवस्था ।

विष्णुनापि गंधादिदानमुक्तम् । “ अनुलेपनवस्त्रालंकरणपुष्पधूपदीपादि पित्रर्थाब्राह्मणहस्ते अपो निनीय ” ॥ इति । विलेपनं विप्राः स्वयं कुर्युः श्राद्धकर्ता वा । तत्र व्यासः—

१५ “ दत्त्वा विप्रकरे गंधान्गंधद्वारेति पूजयेत् ” इति । शातातपः—

“ पवित्रं तु करे कृत्वा यः समालभते द्विजान् । राक्षसानां भवेच्छ्राद्धं निराशाः पितरो गताः ” ॥ इति । समालंभनं गंधैर्विलेपनम् । देवलः—

“ यज्ञोपवीतं विप्राणां स्कंधान्नैवावतारयेत् । गंधादिपूजासिद्ध्यर्थं देवे पित्र्ये च कर्मणि ” ॥ इति । शंखः—

२० “ उपवीतं कटौ कृत्वा यः कुर्याद्वात्रलेपनम् । एकवासाश्च योऽश्रीयान्निराशाः पितरो गताः ” ॥ इति ।

क्रतुः—

“ ललाटे वर्तुलं दृष्ट्वा स्कंधे मालां तथैव च । निराशाः पितरो यांति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम् ” ॥ इति । एवं च

“ वर्जयेत्तिलकं फाले श्राद्धकर्मणि सर्वदा । तिर्यग्वाऽप्यूर्ध्वपुंड्रं वा धारयेच्छ्राद्धकर्मणि ” ॥ इति

२५ वर्तुलाकरपुंड्रस्य निषेधात् “ चंदनं तु यथारुचि ” इति स्मरणादूर्ध्वपुंड्रं त्रिपुंड्रं वा यथारुचि कर्त्तव्यम् । मृद्गस्मादिधारणनिषेधस्तु पुंड्रनिरूपणावसरे प्रतिपादितः । स्कंधे मालाधारणे दोष-स्मरणाच्छिरस्येव विप्रेण माला धार्या । तत्रापि शिखायामेव धार्या “ न नियुक्तः शिखावर्जं माल्यं शिरसि वेष्टयेत् ” इति बृद्धमनुस्मरणात् । पुष्पदाने मंत्रमाह विष्णुः (६५।९)

“ पुष्पावतीरिति पुष्पं दद्यात् ” ॥ इति ।

३० “ ओषधयः प्रतिमोदध्वमेनं पुष्पावतीः सुपिप्पलाः । अयं वो गर्भं ऋत्विजः प्रतनः सधस्थमासदत् ” ॥ इति मंत्रस्य मध्यप्रतीकोपादानमेतत् । धूपदाने मंत्रमाह व्यासः—

“ धूपार्थे धूरसीत्युक्त्वा दद्यात् सघृतगुग्गुलम् ” ॥ इति । हस्तवातप्रापितो धूपो न विप्रेण सेव्यः । तथा च शातातपः—

“ हस्तवाताहतं धूपं ये पिबन्ति द्विजोत्तमाः । वृथा भवति तच्छ्राद्धं तस्मात् परिवर्जयेत् ” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“ पाददेशे तु यद्दीपं धूपं च मुखदेशतः । यो ददाति च मूढात्मा सौऽधे तमासि मज्जति ” ॥

हेमाद्रिः—

“ प्रतिपात्रं द्विजे दीपाः स्थापनीयाः प्रयत्नतः । पितृयानेषु मार्गेषु सदा लोकः प्रजायते ” ॥ इति ।

व्यासोऽपि—

“ स्थाप्याः प्रतिद्विजं दीपाः श्वेतसूत्रजवर्तयः । गव्येण माहिषेणापि घृतेन कृततेजनाः ॥

“ अथवा तिलतैलेन पूरिता विमलार्चिनः । पितृनुदिश्य दातव्याः प्रत्येकं च यथाविधि ॥

“ तेन लोकेनं पितरो दीप्यन्ते दिवि सर्वतः ।

“ श्राद्धभोजनकाले तु दीपो यदि विनश्यति । पुनरन्नं न भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

“ कर्तुरायुष्यहानिः स्यात्पुनः श्राद्धं समाचरेत् ” ॥ इति । विष्णुधर्मोत्तरे—

“ यथा विहन्ति ध्वांतानि दीपः प्रज्वलितोऽभितः । तथैव सर्वपापानि श्राद्धदत्तो निहन्ति सः ” ॥ इति ।

संग्रहे—“ आसनेष्वासनं ब्रूयादर्घ्येष्वर्घ्यं द्विजो वदेत् । सुगंधश्च सुपुष्पाणि सुमाल्यानि सुधूपकः ” ॥

“ सुज्योतिश्च सुदीपश्च स्वाध्यापनमिति क्रमात् ” ॥ इति । इदं व आसनमिदं वोऽर्घ्य-
मित्येवमासनादिषु कर्त्रा दत्तेषु स्वासनमित्यादि निमंत्रितो ब्रूयादित्यर्थः । स्मृत्यन्तरे—

“ अर्घ्येद् ब्राह्मणान्पूर्वं प्रतिसंवत्सरादिके । भूमिशुद्धिं ततः कुर्यात्पश्चात्पात्रं तु निक्षिपेत् ॥ १५

“ पूर्वं पात्रं तु निक्षिप्य पश्चादभ्यर्चने कृते । यदन्नं पात्रनिक्षिप्तं सुरामांससमं हि तत् ” ॥ इति ।

गंधादिभिर्ब्राह्मणानभ्यर्च्यग्नौकरणं कृत्वा भूशुद्धिं कृत्वा पश्चाद्भोजनपात्रं निक्षिपेदित्यर्थः । अपेत-
वीतेति मंत्रेण भूमिशुद्धिमाचरन्ति शिष्टाः । अन्ये तु अपेतवीतेति मंत्रेण भूशुद्धेर्बोधायनादिभि-
रत्रानुक्तत्वात् ‘ अपहता असुरा रक्षांसि ’ इति तिलप्रक्षेप एव भूशुद्धिरित्याहुः ।

अग्नौकरणम्—गंधपुष्पादिभिर्ब्राह्मणानभ्यर्च्यग्नौकरणाख्यं कर्म कुर्यात् । तदाह कात्यायनः— २०

“ गंधान् ब्राह्मणसात्कृत्वा पुष्पाण्यृतुभवानि च । धूपं चैवानुपूव्येण अग्नौ कुर्यादतः परम् ” ॥ इति ।

ऋतुभवानि स्वोद्भवकालत्वेन प्रसिद्धवसंतादिकालभवानि पुष्पाणि चशब्देन दीपादिकं गृह्यते ।

हारीतः— “ अथोद्धृत्यान्नं पांक्तिमूर्धन्यं सर्वान्वा पृच्छत्याग्नौकरिष्ये ” इति । पारस्करः—

“ दत्त्वा गंधादिधूपांश्च सपिष्मद्विरुद्धरेत् । पैतृकैरभ्यनुज्ञातो जुहोति पितृयज्ञवत् ” ॥ इति ।

पैतृकैर्ब्राह्मणैरिति शेषः । तथा च मनुः—(३।२१०)

“ तेषामुदकमानीय सपवित्रं तिलोदकम् । अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह ” ॥ इति ।

सहपैतृकैर्ब्राह्मणैः सर्वैर्युगपदनुज्ञात इत्यर्थः । आश्वलायनः (४।७।२-५)—“ उद्धृत्य घृताक्तमन्नं

पृच्छत्यग्नौ करिष्ये करवै कटावणीति वा । प्रत्यनुज्ञा क्रियतां कुरुष्व कुर्विति । अथाग्नौ जुहोति

यथोक्तं पुरस्तात् ” ॥ इति । कात्यायनः—“ उद्धृत्य घृताक्तमन्नं पृच्छत्यग्नौ करिष्ये इति कुरुष्वे-

त्यनुज्ञातः पिंडपितृयज्ञवद्धत्वा ” इति । प्रचेताः—“ ओं कुरुष्वेत्यनुज्ञातो हुताग्नौ पितृयज्ञवत् ” इति । ३०

‘ उद्धृत्यतामग्नौ च क्रियताम् ’ इत्यामंत्रयते । ‘ काममुद्धृत्यतां कामग्नौ च क्रियताम् ’ इत्यतिसृष्ट

उद्धरेज्जुहुयाच्चेत्येवं बोधायनोऽपि । याज्ञवल्क्यः (आ. २।३६-३७)—

“ अग्नौ करिष्यन्नादाय पृच्छेदन्नं घृतप्लुतम् । कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो हुत्वाग्नौ पितृयज्ञवत् ॥

“ हतशेषं प्रदद्यात् भोजनेषु समाहितः । यथालाभोपपन्नेषु रौप्येषु त विशेषतः ” ॥ इति ।

अत्र विज्ञानेश्वरः—(पृ. ६८)

“ अग्नौ करिष्यन्वृताप्लुतमन्नमादायाग्नौकरिष्य ” इति ब्राह्मणान्पृच्छेत् । घृतग्रहणं सूपशाकादिनिवृत्त्यर्थम् । ततस्तैः कुरुष्वेत्यनुज्ञातः समिधमुपसमाधाय मेक्षणेनादायावदानसंपदा ‘सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः’ इति पिंडपितृयज्ञकल्पेनाग्नौ जुहुयात्ततो मेक्षणमग्नौ प्रहृत्य हुतशेषं मृन्मयवर्जं यथालाभोपपन्नेषु विशेषतो रौप्येषु पित्रादिभाजनेषु दद्यात् । न वैश्वदेवभाजनेष्वित्यर्थः ” इति । हारीतः—“कुरुष्वेत्यनुज्ञातः पूर्वोद्धृतेग्नौ सकृदाच्छिन्नैरुपमूललूनैः परिस्तीर्णं समित्तन्त्रेण प्राङ्मुखो मेक्षणेनाहुतिद्वयं हुत्वा मेक्षणमग्रावेव कुर्यात् ” इति । पूर्वोद्धृते परिस्तरणात्पूर्वमेवोद्धोषिते समित्तन्त्रेण आहुतिद्वयार्थमेकमेव समिधमाधायेत्यर्थः ।

वैजावापः—

१० “ आज्यमासिच्योद्वास्य यज्ञोपवीती द्वे आहुती जुहोत्यग्नय इति पूर्वा सोमायेत्युत्तराम् ” ॥ इति । आश्वलायनः—प्राचीनावीतीधममुपसमाधाय मेक्षणेनावदायावदानसंपदा जुहुयात् । सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ” इति । अत्र पितृयज्ञधर्मकाग्नौकरणे प्राचीनावीत्वोपवीतितित्वयोर्थथास्वसूत्रं व्यवस्था द्रष्टव्या । अत्राहुतित्रयमाह मनुः—(३२११)

“अग्निमसोमयमानां च कृत्वा चाप्यायनं द्विजः । हविर्दानेन विधिवत्पश्चात्संतर्पयेत् पितॄन् ” ॥ इति ।

१५ आप्यायनहोममिति यावत् । स्मृत्यन्तरेऽपि—“ अन्नं निधाय समिधं जुहुयाज्जातवेदसि ।

“ अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम इति ब्रुवन् । सोमाय पितृमते स्वधा नम इति ब्रुवन् ।

“ इत्येते होममंत्रास्तु त्रयाणामनुपूर्वशः । जुहुयाद्यंजनक्षारवर्जमन्नं ततो द्विजः ॥

“ अनुज्ञातो द्विजैस्तैस्तु त्रिः कृत्वो भरतर्षभ ” ॥ इति । अत्र व्यवस्थामाह कात्यायनः—

“स्वाहा स्वधा नमः सव्यमपसव्यं तथैव च । आहुतीनां च या संख्या सावगम्या स्वसूत्रतः” ॥ इति ।

२० पराशरोऽपि—

“अग्नौकरिष्य इत्युक्त्वा तैरुक्तः क्रियतामिति । गृह्योक्तेनैव विधिना हुत्वा पात्रे प्रदापयेत्” ॥ इति ।

हुत्वा हुतशेषं पितृब्राह्मणभोजनपात्रेषु दद्यान्न वैश्वदेविकब्राह्मणपात्रेष्वित्यर्थः । तथा च पुराणे—

“ हुतावशिष्टमल्पाल्पं विप्रपात्रेषु निक्षिपेत् । अग्नौकरणशेषं तु न दद्याद्वैश्वदेविके ” ॥ इति ।

गृह्योक्तेनैव विधिनेत्युक्तत्वादापस्तंबेन पार्वणप्रकृतिभूते मासिश्राद्धे यन्मे मातेत्यादिमंत्राणामाम्नात-

२५ त्वादन्नस्योत्तराभिर्जुहोत्याज्याहुतीरुत्तरा इति चोदित्वाच्चापस्तंबसूत्रिणामन्यसूत्रिणामिव पितृयज्ञधर्मकाग्नौकरणहोमो न युक्तः । तथा च संग्रहकारः—

“ अग्नीन्धनादि प्रतिपद्य कर्म कृत्वाज्यभागांतमथावदाय यन्मेति मंत्रैः प्रतिमंत्रमग्नौ कार्यस्तथा सप्तभिरेव होमः । स्वाहादिमंत्रैरपि सर्पिषा स्युर्होमास्ततः स्विष्टकृतं तु हुत्वा । भस्मव्यपोह्योत्तरतोऽन्नहोमो लेपे तु दर्भस्य संमार्जनादि शेषं च हुत्वा परिषेचनांतं पात्रेषु दद्याद्भुतशेष-
३० मन्नमिति । सप्तभिरन्नहोम इत्येकवर्गोद्देशपार्वणाभिप्रायेणोक्तम् । दर्शमहालयादौ तु ऊहितमंत्रसाहित्यात्रयोदशसंख्यासंपत्तेः । तत्र च यन्मे मातामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातामहो वृंक्ताम् । अंतरन्यं मातामहादधे । यन्मे मातुः पितामही इत्येवमूहः कार्यः । आमुष्मान् इत्यत्र मातामहादेश्वतुर्थ्यतया नामग्रहणं कर्त्तव्यम् । मातामहमातामह्योर्भृताहश्राद्धे चोहेन होमः कर्त्तव्यः ।

१ कखक्ष-दोहित्र ।

तथा च संप्रहकारः—

“ योज्यः पित्रादिशब्दानां स्थाने मातामहादिकः । अन्नाहुतौ तथा स्पर्शे जलपिंडादिदानके ” ॥

“ यन्मे मातामहीत्यादि तत्रोदाहरणं भवेत् ” ॥ इति । स्पर्शे एष ते तमधुमाऽऽर्म्मिरित्यादिभिरन्नस्पर्शे मार्ज्यतामितिजलदाने एतत्ते ततेति पिंडदाने च पित्रादिशब्दस्थाने मातामहादिशब्द उक्त इत्यर्थः । पितृसपिंडीकरणे जीवपितृकर्तृकश्राद्धे च यन्मे पितामही प्रलुलोभ पितामहो वृत्ताम् । यन्मे पितुः पितामही पितुः प्रपितामहीत्येवमूहः । तस्माद्वचं नोहेदित्यूहप्रतिषेधः प्रकृतिभूतमासिश्राद्धविषयः । ‘ न प्रकृतावूहो विद्यते ’ इति प्रकृतावूहनिषेधात् मासिश्राद्धव्यतिरिक्तेषु द्विपितृकेणोः कार्य इत्येके । एतदग्नौकरणं च प्राचीना वीतिना कार्यं पैतृकत्वात् । तथा आपस्तम्बः—“अपरपक्षे पित्र्याणि प्राचीनावीतिना प्रसव्यं दक्षिणतोऽपवर्गः” ॥ इति । स्मृत्यन्तरे—“अकृत्वा पार्वणं होमं श्राद्धं कुर्यात् द्विजोत्तमः । तच्छ्रान्दमासुरं श्रेयं कर्ता च नरकं व्रजेत्” ॥ इति । १० अथ परिवेषणादिविधिः ।

“ तत्र तावदमत्राणि देयानि सति संभवे । भोजने हैमरूप्याणि दैवे पित्र्ये यथाक्रमम् ” ॥ इति । प्रतिपादितानि श्रेष्ठानि संपाद्यानि । तेषामलाभे तैजसानीति उपकल्पनिरूपणे प्रतिपादितम् । तानि पात्राणि द्विः प्रक्षालयेत् । तथा च ब्रह्मांडपुराणे—

“ प्रक्षाल्य हस्तपात्रादि पश्चादग्निर्विधानवित् । प्रक्षालनजलं दर्भांस्तिलैर्मिश्रं क्षिपेच्छुचौ ” ॥ इति । १५ हस्तनिर्मृष्टपात्रादीति मध्यमपदलोपि समासः । प्रथममपो निनीय हस्तेन निर्मृज्यनानंतरं जलेनैव प्रक्षालयेदित्यर्थः । आदिशब्देन घृतादिधारणार्थानि गृह्यते । एवं प्रक्षालितेषु पात्रेषु चतुरश्रमंडलस्थापितेषु हुतशेषं किंचित्प्राचीनावीतिना पितृपात्रेषु निधाय संपादितान्यपदार्थान्परिवेषयेत् । तथा च शौनकः—

“ हुत्वाग्नौ परिशिष्टं तु पितृपात्रेष्वनंतरम् । निवेद्यैवापसव्येन परिवेषणमाचरेत् ” ॥ इति । २० अपसव्येनेति हुतशेषनिवेशनेनान्वेति न परिवेषणेन । तथा च काष्णार्जिनिः—

“अपसव्येन कर्तव्यं पित्र्यं कर्म विशेषतः । अन्नदानादृते सर्वमेवं मातामहेष्वपि” ॥ इति । अन्नदानं परिवेषणमित्यर्थः । स्मृत्यन्तरे—

“ अपसव्येन यस्त्वन्नं ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति । विष्टामश्नति पितरो दाता च नरकं व्रजेत् ” ॥ इति । २५ होमाद्यशेषेण नोपस्तरणाभिधारणे कुर्यात्

“ अग्नौकरणशेषेण यदन्नमभिचारितम् । निरंगुष्ठं च यदन्नं न तत्प्रीणाति वै पितृन् ” ॥ इति । स्मरणात् । परिवेषणप्रकारो मनुना (३।२२४) दर्शितः—

“ पाणिभ्यामुपसंगृह्य स्वयमन्नस्य वर्धितम् । विप्रान्तिके पितृन् ध्यायन् शनकैरुपनिक्षिपेत् ॥

“ एकेनैव तु हस्तेन यदन्नमुपनीयते । तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः सहसा दुष्टचेतसः ” ॥ इति । ३० अन्नस्य वर्धितमन्नस्य पूर्णं परिवेषणार्थं पात्रमित्यर्थः । स्वयमिति वचनात्स्वयं परिवेषणं मुख्यम् । अत एव वायुपुराणे “ फलस्यानंतता प्रोक्ता स्वयं तु परिवेषणे ” इति । यत्तु तत्रैवोक्तम्

“ परिवेषणं प्रशस्तं हि भार्यया पितृवृत्तये । पितृदेवमनुष्याणां स्त्री सहाया यतः स्मृता ” ॥ इति । तदितरापेक्षया वेदितव्यम् । भार्ययापि सवर्णयैव परिवेषणं कार्यम् । तथा च नारायणः—

“ यद्वद्रव्यं यत्पवित्रं च यत्पित्र्यं यत्सुखावहम् । द्विजातिभ्यः सवर्णाया हस्तेनैव तु दीयते ” ॥ इति ।

हस्तेन हस्तद्वयेनेत्यर्थः । ‘ उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहृत्य परिवेषयेत् ’ इति स्मरणात् । हस्त-
द्वयेनापि न साक्षाद्देयं किंतु दर्व्यादिद्वारा । अत एव वृद्धशातातपः—

“ हस्तदत्तास्तु ये स्नेहलवणव्यंजनादयः । दातारं नोपतिष्ठंति भोक्ता भुंजीत किञ्चिषम् ॥

“ नापवित्रेण हस्तेन नैकेन न विना कुशम् । नायसेनायसे नैव श्राद्धे तु परिवर्जयेत् ” ॥ इति ।

५ आयसे अयोमये नैव परिवेषयेदित्यर्थः । प्रशस्तानि परिवेषणपात्राण्याह विष्णुः (७९।२२)

“ घृतादिदाने तैजसानि पात्राणि फल्गुपात्राणि वा प्रशस्तानि ” अत्र च पितृगाथा भवति—

“ सौवर्णराजताभ्यां च खाद्वेनौदुंबरेण वा । दत्तमक्षयतां याति फल्गुपात्रेण या पुनः ” ॥ इति ।

खाद्वेन खड्गमृगशृंगकृतदर्व्यादिना फल्गुपात्रेण काकोदुंबरिकारुख्यदारुकृतदर्व्यादिनान्तरितं
कृत्वा देयमित्यर्थः । शौनकः—“ पाकं सर्वमुपानीय संवेद्य च पृथक् पृथक् ” ॥ अनिषिद्धदर्व्या-

१० यसंभवे चंद्रिकायामुक्तं ‘ विधिना देवपूर्वं तु परिवेषणमारभेत् ’ इति संवेद्य । भोक्तृणामन्नगुणा-
न्संविदितान्कृत्वेत्यर्थः । “ भक्ष्यभोज्यगुणानुक्त्वा भोजयेद्वाह्मणान् शनैः ” इति बृहस्पतिस्मरणात् ।

पुराणे—

“ तप्यमानास्तपस्तीव्रं प्रेषिता ब्रह्मशासनात् । विश्वेदेवास्तु रक्षार्थं पितृयज्ञेषु सर्वदा ॥

“ अतः पूर्वं प्रदातव्यं तेभ्योऽन्नं पितृकर्मणि ” ॥ इति । मनुः (३।२२६)—

१५ “ गुणांश्च सूपशाकाद्यान्पयो दधि घृतं मधु । विन्यसेत्प्रयतः सम्यग्भूमावेव समाहितः ” ॥ इति
गुणान् अन्नानुग्राहकतया गुणभूतान्सूपादीन्भूमौ निहितेषु स्वल्पभाजनेषु प्रक्षिपेत् । न प्रधाना-
न्नार्थं महाभोजने निहितेष्वित्यर्थः । तथा च हारीतः—“ भूमावेव निदध्यान्नोपर्युपरिपात्राणि ”
इति । चंद्रिकायामिदं व्याख्यातम्—यान्युपरि पात्राणि महाभाजनोपरि निधेयानि घृताद्याधार-
भूतानि स्वल्पपात्राणि तानि श्राद्धे भूमावेव निदध्यात् । न भाजनस्योपरि” इति । स्मृत्यंतरे—

२० “ भोज्यपात्रेणाज्यपात्रमुपपात्रे तु निक्षिपेत् । भोज्ये निक्षिप्य चेद्भुंक्ते सुरापानसमं हि तत् ॥

“ अन्ने च पायसे चैव सूप्ते च स्थापितं घृतम् । मोहाद्यदि च भुंजीत सुरापानसमं भवेत् ॥

“ सूप्ते च पायसं चाज्यं दद्याद्भोक्तुश्च दाक्षिणे । तैलपक्वं तथा वामे शेषेष्वनियमः स्मृतः ” ॥ इति ।

पात्राभिमंत्रणादि । संपादितं सर्वं पात्रेषु निक्षिप्य पात्राभिमंत्रणं कुर्यात् । तदाह प्रचेताः—

“ सर्वं प्रकृतं दत्त्वा पात्रमालभ्य जपेत् ” इति । अत्र विशेषमाह याज्ञवल्क्यः (आ. २३८)—

२५ “ दत्त्वाञ्च पृथिवीपात्रमिति पात्राभिमंत्रणम् । कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजांगुष्ठं विवेशयेत् ” ॥ इति ।

‘ पृथिवी ते पात्रम् ’ इत्यादिना मंत्रेण पात्राभिमंत्रणं कृत्वा ‘ इदं विष्णुः ’ इत्यनया ऋचा द्विजांगुष्ठं
अन्ने निवेशयेदित्यर्थः । कात्यायनः—“ वैष्णव्यर्चा यजुषा चांगुष्ठमन्नेऽवगाह्य ” इति ।

यमस्तु सार्थवाहिकमंगुष्ठनिवेशनविधिं वदन् अत्र विनियुक्तयजुर्मंत्रस्वरूपमाह—

“ अंगुष्ठमात्रो भगवान् विष्णुः पर्यटते महीः । राक्षसानां वधार्थाय कोपवान्प्रहरिष्यति ॥

३० “ तस्माच्छ्राद्धेषु सर्वेषु अंगुष्ठग्रहणं स्मृतम् । विष्णो हव्यं च कव्यं च ब्रूयाद्रक्षेति च क्रमात् ” ॥ इति ।
तत्र दैवेऽन्ने अंगुष्ठनिवेशनात्पाक् विष्णो हव्यं रक्षस्वेति यजुर्ब्रूयात् । पित्र्येऽन्ने विष्णो कव्यं रक्ष-
स्वेति यजुर्ब्रूयादित्यर्थः । अत्र वृद्धाचारानुसारी प्रयोगः । भोजनपात्रेषूपस्तरि पित्रादिपात्रेषु
हृतशेषं निधाय सर्वेषु पात्रेष्वन्नानि दत्त्वाभिषार्य पात्रस्याधस्तादुपरिष्ठाच्च दर्भांनिक्षिपेत् ।
एष ते ततेत्यादिमंत्रैः प्रतिपुरुषं क्रमात् पित्रादिपात्रदत्तपदार्थोपस्पर्शनं केचिद्विच्छंति ।

अपरे तु होमानंतरमेष ते ततेत्यादिभिः सर्वान्नाभिमर्शनमाहुः । ‘सर्वमुत्तरैरभिष्टुशेत् कृत्तान्वा’ प्रति-
पुरुषमित्यापस्तंबस्मरणात् । तत उपवीती दक्षिणं जान्वाच्य उदङ्मुखः प्रथमं देवार्थमन्नमभ्यु-
क्षणेन अवोक्ष्य पात्रमालभ्य ‘पृथिवी ते पात्रम्’ इत्यभिमन्त्र्य ‘इदं विष्णुर्विचक्रम’ इत्यृचा ‘विष्णो
हव्यं रक्षस्व’ इति यजुषा च द्विजाङ्गुष्ठं निवेक्ष्य च प्राचीनावीती जान्वाच्य सव्यं दक्षिणामुखः
पित्र्यं परिविष्टमन्नमभ्युक्षणेनावोक्ष्य पात्रमालभ्य जपाङ्गुष्ठनिवेशनांतं कुर्यात् । एतच्च दैवे पित्र्ये च ५
ब्राह्मणानेकत्वे प्रतिब्राह्मणपात्रं “कार्यम् एकैकविप्रस्य गृहीत्वाङ्गुष्ठमादात्” इति स्मृतेः । अनंतरं
कर्त्तव्यमाह विष्णुः—नमो विश्वेभ्यो देवेभ्यो इत्यन्नामादौ प्राङ्मुखो निवेदयेत् । पित्र्ये पितामहाय
च प्रपितामहाय नामगोत्राभ्यामुदङ्मुखेष्विति । चतुर्विंशतिमतेऽपि—

“पात्रालंभं द्विजः कुर्यादिदं वोऽन्नमितीरयेत्” इति । पात्रालंभनं वामहस्तेन कृत्वा
अन्नत्यागात्पात्रमनुसृजन्नेव विश्वेदेवा इदं वोऽन्नमित्युच्चारयन्नन्नत्यागं कुर्यादित्यर्थः । वैश्वदेविकान्न १०
त्यागप्रकारमाहान्निः—

“हस्तेन मुक्तमन्नाद्यमिदमन्नमुदीरयेत् । स्वाहेति च ततः कुर्यात्स्वसत्ताविनिवर्तनम्” ॥ इति ।
परिवेषकहस्तेन मुक्तं परिविष्टमन्नाद्यमिदमन्नमिति विश्वेभ्यो देवेभ्य इति देवतोद्देशकशब्दोच्चारणा-
नंतरमुच्चारयेत् । इदमन्नमित्युदीरणानंतरं हविर्दानप्रकाशकं स्वाहेति मंत्रमुच्चारयेत् । ततो न
ममेति सत्वपरित्यागं कुर्यादित्यर्थः । पित्रादिभ्योन्नत्यागप्रकारमपि स एवाह— १५

“गोत्रसंबंधनामानि इदमन्नं नमः स्वधा । पितृक्रमादुदीर्येति स्वसत्तां विनिवर्तयत्” ॥ इति ।
पित्रादिक्रमाद्गोत्रसंबंधनामोच्चारणपूर्वकं देवतोद्देशं कृत्वा इदमन्नमिति प्रदेयद्रव्यं निर्दिश्य
स्वधेति कव्यदानप्रकाशकं मंत्रमुच्चार्य न ममेति स्वत्वपरित्यागं कुर्यादित्यर्थः । संग्रहे—

“अन्नब्रह्मात्मकं ध्यात्वा द्विजमात्मानमेव च । श्राद्धभूमिं गयां ध्वात्वा भोक्तारं च गदाधरम् ॥

“उदीर्य गोत्रसंबंधनामानि च ततः परम् । इदमन्नं ततः स्वाहा स्वधाश्रद्धौ यथोचितम् ॥ २०

“उदीर्य च नमःशब्दं न ममेति ततो वदेत्” ॥ इति । अत्र प्रयोगश्चंद्रिकायामुक्तः—अन्नमङ्गुष्ठनिवेशना-
नंतरं दक्षिणहस्तेन यवसहितमुदकमादाय सव्यहस्तेन पात्रमालभ्य इदमन्नं हविर्ब्राह्मण आहवनीयार्थं
इदं भूर्गया अयं भोक्ता ब्राह्मणो गदाधरः पुरुर्वार्द्रवसंज्ञकविश्वेभ्यो देवेभ्य इदं परिविष्टमन्न-
मातृतेः परिवेक्ष्यमाणं च स्वाहा नमो न ममेत्युक्त्वा भाजनसमीपे यवसहितमुदकं निनीय भक्त्या
प्रणामं कुर्यात् । ततः पैतृकब्राह्मणसंनिधौ दक्षिणामुखे उपविश्य दक्षिणहस्तेन तिलानुदकं २५
चादाय वामहस्तेन पात्रमालभ्य ब्राह्मणो गदाधर इत्यंतमुक्त्वा अस्मत्पित्रे अमुकगोत्रायामुकशर्मणे
वसुरूपाय इदं परिविष्टमन्नामातृतेः परिवेक्ष्यमाणं च स्वधा नमो न ममेतीत्युक्तभाजनसमीपं
तिलसहितं सलिलं निनीय प्रणामं कुर्यात् । पितामहायामुकशर्मणे रुद्ररूपाय प्रपितामहायामुक-
शर्मणे आदित्यरूपायेति विशेषतः इति ।

“अदत्तमन्नं विप्रस्तु पाणिना स्पृशते यदि । त्रयस्ते नरकं यान्ति दाता भोक्ता तथा पिता” ॥ इति । ३०
स्मृत्यन्तरम् । अत्र विष्णुपुराणे (३।१५।३४, ३६)—

“पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । वृत्तिं प्रयांतु मे भक्त्या यन्मयैतदुदाहृतम् ।

“यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्यभोक्ताऽव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र ।

“तत्संनिधानादपथांतु सद्यो रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे” ॥ इति । पुराणांतरे—

“ईशानविष्णुकमलासनकार्तिकेयवन्नित्रयार्करजनीशगणेश्वराणाम् ।

“क्रौंचामरेंद्रकलशोद्भवकाश्यपानां पादाभमामि सततं पितृमुक्तिहेतोः ॥

“एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः । त्रीन्लोकान्व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः” ॥ इति ।

अनंतरकृत्यमाह लघुयमः—

५ “अन्नहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं च यद्भवेत् । सर्वमच्छिद्रमित्युक्त्वा ततो यत्नेन भोजयेत्” ॥ इति ।
अच्छिद्रं जायतामित्येतावदेव बोधायनेनोक्तम् । एतच्च प्रागेवापोशनदानाद्वक्तव्यम्

“आपोशनकराग्राणामच्छिद्रस्य तु भाषणात् । निराशाः पितरो यांति देवैः सह न संशयः” ॥ इति
प्रचेतःस्मरणात् । अनंतरकृत्यमाह पारस्करः—

“गायत्रीं त्रिः सकृद्वाऽपि जपेद्वाहतिपूर्वकम् । मधु वाता इतित्यूचं मध्वित्येतत्त्रिकं तथा” ॥

१० प्रचेताः—

“आपोशनं प्रदायाथ सावित्रीं त्रिर्जपेत्तथा । मधु वाता इति तृचं मध्वित्येतत्त्रिकं तथा” ॥ इति ।
आपोशनदानविधानान्नित्यभोजनाश्रितनियमाः परिषेचप्राणाहुत्यादयो भोक्तृणामत्रापि संतीति
गम्यते । अत एव कस्यचिद्भोजननियमस्यात्र प्रतिषेधार्थं तदनुष्ठाने दोषमाह भरद्वाजः—

“पितृणामन्नमादाय बलिं यस्तु प्रयच्छति । स्तेयेन ब्राह्मणस्तेन स सर्वस्तेयकृद्भवेत्” ॥ इति ।

१५ बलिः भोजनात्किंचिदन्नाग्रं भर्माजाय वै बलिरित्युक्तमित्यर्थः । अत्रिरपि—

“दत्ते वाऽप्यथवाऽदत्ते भूमौ यो निक्षिपेद्वलिम् । तदन्नं निष्फलं याति निराशैः पितृभिर्गतेः” ॥ इति ।
स्मृत्यंतरे—

“आपोशने धार्यमाणे यस्तु भूमौ जलं क्षिपेत् । तदन्नमासुरं प्रोक्तं न दातुः पारलौकिकम्” ॥ इति ।

२० “आपोशनं न गृणहीयात् स्वयमेव नृपोत्तम । अन्यैर्दक्षिणपार्श्वस्थैरन्नस्योपरि गृह्यता” ॥ इति
ब्रह्माण्डपुराणम् । प्राणाहुत्यनंतरकर्तव्यमाह याज्ञवल्क्यः (आ. २३९)—

“सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति तृचम् । जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुंजीरंस्तेऽपि वाग्यताः” ॥ इति ।
यथासुखमत्र जुषध्वमित्यध्याहारः । अत एव व्यासः—

“जुषध्वमिति ते चोक्त्वा सम्यग्विधृतभाजनाः । कृतमौनाः समश्रीयुरापोशानादनंतरम्” ॥ इति ।
विधृतभाजनाः वामहस्तधृतभोजनपात्रा इत्यर्थः । एतच्चान्ननिवेदनप्रभृति कर्तव्यम्

२५ यदाह वसिष्ठः—

“उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं पितृभ्योऽन्नं निवेदितम् । तदन्नं संप्रतीच्छंति ह्यसुरा नष्टचेतसः ॥

“तस्मादश्नूयं हस्तेन कुर्यादन्नमुपस्थितम् । भोजनं तु समालभ्य तिष्ठेद्रोच्छ्रेषणात् द्विजः” ॥ इति ।

अंगुष्ठनिवेशनप्रभृतिभोजनसमाप्तिपर्यंतं वामहस्तेन भाजनम् परित्यज्यन्नेव वर्तते । कंदूशमनाद्यर्थं

वामहस्तव्यापारसमये तु दक्षिणहस्तेन भाजनं समालभ्य वर्ततेत्यर्थः । अंगुष्ठनिवेशनात्पूर्वं

३० भोक्त्रा अन्नस्पर्शो न कर्तव्यः । “अन्नस्पर्शो न कर्तव्यः प्रागंगुष्ठनिवेशनात्” इति स्मृतेः ।
विष्णुपुराणे (३।१।२८-२९)—

“ततोऽन्नमृष्टमत्यर्थमभीष्टमतिसत्कृतम् । दत्त्वा जुषध्वमिच्छातो वाच्यमेतदनिष्ठुरम् ॥

“भोक्तव्यं तैश्च तच्चित्तैर्मैनिभिः सुमुखैः सुखम् । अक्रुध्यता चात्वरता देयं तेनापि भक्तिः” ॥ इति ।

पारस्करः—

“ संकल्प्य पितृदेवेभ्यः सावित्रीमधुमज्जपः । श्राद्धं निवेद्यापोशनं जुषप्रैषोऽथ भोजनम् ” ॥ इति ।

अभिष्रवणम् । भोजनोपक्रमानंतरं कर्त्तव्यमाह कात्यायनः—“अश्वत्सु जपेत् व्याहृतिपूर्वी गायत्रीं सप्रणवां सकृच्चिर्वा रक्षोघ्नीः पित्र्यमंत्रान्पुरुषसूक्तमप्रतिरथमन्यानि च पवित्राणि ” इति । रक्षोघ्नीः “ कृणुष्वपाजः प्रसितिं न पृथ्वीम् ” इत्याद्या ऋचः । पित्र्यमंत्राः ‘ उदीरतामवर ५ उत्परास ’ इत्याद्याः । अप्रतिरथम् ‘ आशुः शिशान ’ इति सूक्तम् । मन्त्ररपि (३२२३)—
“स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि । आख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानि च” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः (आ. २४०)—

“ अन्नमिष्टं हविष्यं च दद्यादक्रोधनोऽत्वरः । आवृतेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजपं तथा ” ॥ इति ।
अत्र विज्ञानेश्वरः (पृ. ७० पं. ३)—“ पवित्राणि श्रीपुरुषसूक्तपत्रमानप्रभृतीनि जपित्वा १० वृत्तान्ज्ञात्वा पूर्वोक्तजपं च सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति वृचमित्युक्तं जपेत् ” इति ।

सायणीये—

“ श्राद्धभोजनकाले तु कर्त्ता भ्राता सुतोऽपि वा । दौहित्रो वाऽथ पौत्रो वा सपिंडो वा विचक्षणः ॥
“यस्त्वभिष्रावयेद्भोक्तृच तच्छ्राद्धं पावनं भवेत् । अन्यं वाहूय तं वृत्त्या श्रावयेत्तं निरक्षयेत् ॥
“ श्राद्धक्रियासमाप्तौ तु प्रदद्याज्जपदक्षिणाम् । अत्युच्चैरतिशीघ्रं च हित्वैव श्रावयेद्बुधः ॥ १५
“ रक्षोघ्नं पैतृकं चैव दिवाकीर्त्ययुतं तथा । वैष्णवं त्रिसुपर्णी च नाचिक्रेतं तथा पठेत् ॥
“ रक्षोघ्नादिजपाशक्तो जपेत्पुरुषसूक्तकम् । तत्राप्यशक्तो गायत्रीमा वृते रसकृज्जपेत् ॥
“ एकोद्दिष्टे च सपिंड्ये षोडशेष्वनुमासिके । एषु श्रावयेत्सूक्तमन्यत्र श्रावयेद्बुधः ” ॥ इति ।
“ अभिष्रवणहीनो यः श्राद्धं कुर्वीत मूढधीः । तदन्नं मांसतुल्यं स्यात् तद्देहमसुरालयम् ” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरम् । स्मृत्यर्थसारे—

२०

“ नांदिमुखे गयाश्राद्धे नवश्राद्धे च मासिके । सपिंडीकरणश्राद्धे न जपेत्पितृसूक्तकम् ” ॥ इति ।
जपोऽयमुपवीतिना कर्त्तव्यः । अत एव जमदग्निः—

“ अपसद्येन कर्त्तव्यं सर्वं श्राद्धं यथाविधि । सूक्तस्तोत्रजपं मुक्त्वा विप्राणां च विसर्जनम् ” ॥ इति ।

दातृभोक्तृनियममाह वृद्धशातातपः—

“ अपेक्षितं यो न दद्याच्छ्राद्धार्थमुपकल्पितम् । कृपणो मंदबुद्धिस्तु न च श्राद्धफलं लभेत् । २५
“ अपेक्षितं याचितव्यं श्राद्धार्थमुपकल्पितम् । न याचते द्विजो मूढः स भवेत्पितृघातकः ” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

“ अपेक्षितं द्विजो मोहाद्भुजानो यो न याचते । अपेक्षितं यो न दद्यात्तावुभौ पितृघातकौ ” ॥ इति ।

निगमेऽपि—

“ अवश्यमर्थयेच्छ्राद्धे पित्र्यमुपकल्पितम् । न याचते द्विजो मूढः स भवेत् पितृघातकः ॥ ३०
“ अपेक्षितं यो न दद्यात् श्राद्धार्थमुपकल्पितम् । अथ कृच्छ्रासु घोरासु तिर्यग्योनिषु जायते ” ॥ इति ।

यत्तु यमेनोक्तम्—

“ कृच्छ्रद्वादशरात्रेण मुच्यते कर्मणस्ततः । तस्माद्विद्वाभैव दद्यान्न याचेन्न च दापयेत् ” ॥ इति ।

यदप्युक्तं वायुपुराणे—

“याचते यदि दातारं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । पितरस्तस्य कुप्यंति दातुर्भोक्तुर्न संशयः” ॥ इति । तच्छ्राद्धार्थमकल्पितविषयम् । सामान्येनाभिधानात् । श्राद्धार्थमुपकल्पितवस्तुविषयेऽपि अत्यन्ताधिकं दाता न दद्यात् । भोक्ता च न प्रतिगृह्णीयात् । तथा च शङ्खलिखितावपि—

५ “नात्यधिकं दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात्” इति । अनपेक्षितवस्तुनो निवारणप्रकारमाह निगमः—

“नान्नपानादिकं श्राद्धे वारयेन्मुखतः क्वचित् । अनिष्टत्वाद्वहुत्वाद्वा वरणं हस्तसंशये ” ॥ इति । शंखलिखितावपि—“अन्नपानं प्रभूतामिति न ब्रूयुरन्यत्र हस्तसंज्ञया” इति । एवं याचमानोऽपि न मुखतः कुर्यात् “याचनप्रतिषेधश्च कर्त्तव्यो हस्तसंज्ञया” इति स्मृतेः । मौनभंगप्रसंगाच्च अपेक्षितं वस्तु ददामीत्युक्त्वा नो दद्यात् । तथा च यमः—

१० “यावद्धविष्यं भवति यावद्विष्टं प्रमीयते । तावदंशंति पितरो यावन्नाह ददाम्यहम् ” ॥ इति । परिविष्टवस्तुषु यन्निवशेषतया भुक्तं यच्च भोक्तुं पुनर्गृह्यते तत्तस्येष्टमित्यनुमाय तस्य प्रतिषेधसूचनाभावे देयम् । तथा च स एव—“यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यः तद्द्यादविमत्सरी ” ।

देवलः—

“अन्नपानकशीतोदं दद्यादेवाविलोकिताम् । वक्तव्ये कारणे संज्ञा कुर्वन्भुंजीत पाणिना” ॥ इति ।

१५ ब्रह्मांडपुराणे—

“निराशो नित्यभुविप्रः श्राद्धकर्त्ताऽथ याचितः । विष्णुः सर्वात्मको भुङ्क्ते इति मत्वा न दोषभाक् ।

“न चाश्रु पातयेज्जातु न शुक्लं गिरमिरयेत् । न चोदीक्षेत भुंजानं न च कुर्वीत मत्सरम् ॥

“न दीनो नापि वा कुद्धो न चैवान्यमना नरः । एकाग्रमाधाय मनः श्राद्धं कुर्यात्सदा बुधः ” ॥ इति । शुक्लं निष्ठुराम् । मनुः (३२२९-२३०)—

२० “नास्त्रमा पातयेज्जातु न कुप्येन्नाचृतं वदेत् । न पादेन स्पृशेदन्नं न चैनमवधूनयेत् ॥

“आस्रं गमयति प्रोतान्क्रोपोरीनचृतं शुनः । पादस्पर्शी तु रक्षांसि दुष्कृतीरवधूननम् ” ॥ इति । आस्रं बाष्पः । तदन्नं प्रोतान्पिशाचान् गमयति पितृनित्यर्थः । व्यासः—

“क्रोधेनैव च यदन्नं यदन्नं त्वरया पुनः । यातुधाना विलुपंति जल्प्यवाचोपपादितम् ॥

“खिन्नाग्नौ न तिष्ठेत् संभियौ च द्विजन्मनाम् ” ॥ इति । काष्णार्जिनिः—

२५ “भक्ष्यभोज्यानि चोष्यानि पेयलेह्ययुतानि च । सर्वश्रेष्ठानि यो दद्यात्सर्वश्रेष्ठो भवेन्नरः ” ॥ इति । स्मृत्यन्तरे—

“अदत्तमन्नं विप्रस्तु पाणिना स्पृशते यदि । त्रयस्ते नरकं यांति दाता भोक्ता तथा पिता ॥

“मृत्पात्रगतमर्च्यं च मृत्तिकागंधलेपनम् । मार्जारोच्छिष्टशेषं च निराशाः पितरो गताः ॥

“न वदेन्मानुषीं वाचं न चैवाश्रूणि पातयेत् ॥

३० “तर्जन्यां रजतं धृत्वा यत्पितृभ्यः प्रदीयते । अन्तोस्ति परमाणूनामस्यांतो न हि विद्यते ॥

“श्राद्धकर्त्ता वृतानां चैत्यंकावन्वयं तु भोजयेत् । पितरस्तस्य षण्मासं चंडालोच्छिष्टभोजिनः” ॥ इति ।

यत्तु मनुवचनम् (३२४३)

“ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थमुपस्थितम् । ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रातिपूजयेत् ” ॥ इति

यदपि स्मृत्यन्तरवचनम्—

“ उपविष्टेषु विप्रेषु यथागच्छेत् द्विजोऽतिथिः । निर्मन्त्रितैरनुज्ञातः कामं तमपि भोजयेत्” ॥ इति । तत्पक्त्यन्तरे तदैव भोज्यत्वपरम् । अत एव चंद्रिकायाम्—“ यदा अतिथिर्भोजनार्थमुपाविष्टः तदा तं गंधपुष्पादिभिरर्चयित्वा पितृभ्योऽन्नत्यागानंतरमस्मै ब्राह्मणाय विष्णुरूपाय शिवरूपाये-
दमन्नं परिविष्टमातृतेः परिवेक्ष्यमाणं च न ममेति तदर्थं परिविष्टमन्नं त्यजेत्” इति । अन्नपानदाता ५
लवणादिन्यूनत्वाधिक्याभावेन हविषः सादृश्यं पुनः प्रदानार्थं न गच्छेदित्याह शंखः—

“ श्राद्धे नियुक्तान् भुञ्जानान्न पृच्छेद्ववणादिषु । उच्छिष्टाः पितरो यांति पृच्छतो नात्र संशयः ॥

“ बाहुः पतति दातुर्वै जिह्वा भोक्तुश्च भिद्यते ” ॥ इति ।

भोक्तृनियमाः । भोक्तृनियममाह प्रचेता—

“ पीत्वापोशनमग्नीयात्पात्रे दत्तमगर्हितम् । सर्वेन्द्रियाणां चापल्यं न कुर्यात्पाणिपादयोः” ॥ इति । १०

भोजनार्थव्यापारादधिकव्यापारः इन्द्रियाणां चापल्यम् । तत्र दोषमाह हारीतः—

“ उद्धृत्य पाणिं विहरन् सक्रोधा विस्मयान्वितः । श्राद्धकाले तु यद्भुंक्ते न तत्प्रीणाति वै पितृन्” ॥ इति

बोधायनः—

“ पादेन पादमाक्रम्य यो भुंक्तेऽनापदि द्विजः । नैवासौ भोज्यते श्राद्धे निराशाः पितरो गताः” इति ।

निगमेपि—“ तूष्णीं भुञ्जीरन्नविलोक्यमाना अनुद्धृत्य पात्रम्” इति । तूष्णीं वाग्व्यापारमंतरेण १५
अविलोक्यमाना दिश इत्यर्थः । मनुरपि (३१२३६-२३७)—

“ अभ्युष्णमन्नं सर्वं स्याद्भुञ्जीरंश्चैव वाग्यताः । न च द्विजातयो ब्रुगुर्दात्रा पृष्टा हविर्गुणान् ॥

“ यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदन्नंति वाग्यताः । तावद्धि पितरोऽर्शंति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः” ॥ इति
वाग्यमन्त्रिधानादेव हविर्गुणावचने सिद्धे पुनर्निषेधो हस्तसंकेतेनापि हविर्गुणसूचननिषेधार्थः ।

यदाहात्रिः—

“ हुंकारेणापि यो ब्रूयात् हस्ताद्वापि गुणान्वदेत् । भूतलाच्चोद्धरेत्पात्रं भुंचेद्धस्तेन वाऽपि तत् ॥

“ प्रौढपादो बहिःकक्षो बहिर्जानुकरोऽथ वा । अंगुष्ठेन विनाश्राति मुखशब्देन वा पुनः ॥

“ पीतावशिष्टं तोयादि पुनरुद्धृत्य वा पिबेत् । खादितार्थं पुनः खादेन्मोदकादि फलादि वा ॥

“ मुखेन वाधमेदन्नं निष्ठीवेद्भोजनेऽपि वा । इत्यन्नं तु द्विजः श्राद्धे भुक्त्वा गच्छत्यधोगतिम्” ॥ इति

भूतलात्पात्रोद्धरणे दोषोऽन्नाधारमाह भाजनविषयः । प्रौढपाद आसनाधारोपितपादः । बहिः २५

कक्षः उत्तरवासो बहिर्भूतकक्ष इत्यर्थः । वृद्धशातातपः—

“ आसने पादमारोप्य यो भुंक्ते तु द्विजोत्तमः । हंति दैवं च पित्र्यं च तदन्नं च प्रजां पशून्” ॥ इति ।

प्रचेताः—

“ न स्पृशेद्दामहस्तेन भुञ्जानोऽन्नं कदाचन । न पादौ न शिरे वस्ति न पदा भाजनं स्पृशेत्” ॥ इति ।

निगमेऽपि—

“ मांसापूपफलेश्वादि दंतच्छेदैर्न भक्षयेत् । ग्रासशेषं नो निरस्येत्पीतशेषं तु नो पिबेत्” ॥ इति ।

ग्रासशेषं अस्यापितग्रासशेषं भोजनपात्रे न निक्षिपेदित्यर्थः । सुमंतुः—

“ अक्रोधनो रसान् सम्यगद्याद्यत्स्वस्य रोचते । आतृप्ति भोजनं तेषां कामतोऽनवशेषणम्” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“श्राद्धे भुञ्जन् द्विजो यस्तु बहुभाषी मिताशनः । स पापी नरकं याति श्राद्धहन्ता भवेद्ध्रुवम्” ॥ इति ।

“भोक्ता भोजयिता श्राद्धे मौनी स्याच्चासमाप्तिः । न ह्युक्तपाणिरुक्त्वा तु शनैर्दोषो न विद्यते ” ॥

इत्याश्वलायनः । व्यासः—

५ “न किञ्चिद्वर्जयेत् श्राद्धे नियुक्तस्तु द्विजोत्तमः । न मांसं प्रतिषेधेत न चान्यस्यान्नमीक्षयेत्” ॥ इति ।

प्रचेताः—“दंतछेदं हस्तपानं वर्जयेच्चातिभोजनम्” इति । हस्तपानं हस्तेन पेयादिपानं वर्जयेत् ।

अपि तु लघुपात्रेणैव कुर्यात् । अतिभोजनं तृप्तौ संत्यामपि भोजनमित्यर्थः ॥ उशनाः—

‘भोजनं तु न निःशेषं कुर्यात् प्राज्ञः कथंचन । अन्यत्र दध्नः क्षीराद्वा क्षौद्रात् सक्तुभ्य एव च’ ॥ इति ।

यत्तु जमदग्निनोक्तम्—‘न निंदेयुर्नावशेषयेयुः’ इति तदधिकावशेषविषयम् । यतोऽनंतरमाह स एव

१० “अल्पं पुनरुत्सृष्टव्यं तस्यासंस्कृतप्रमीतानां भागधेयत्वात्” ॥ इति । असंस्कृतप्रमीतानामनुपनीतमृ-

तानामित्यर्थः । उच्छिष्टस्यासंस्कृतप्रमीतादिभागधेयत्वं च मनुराह—(३१२४५)

“असंस्कृतप्रमीतानां त्याग्निनां कुलयोषिताम् । उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरेच्च यत्” ॥ इति ।

त्याग्निनां संन्यासिनाम् किञ्चिदुच्छिष्टं दासवर्गवृत्तये भूमिगतं कुर्यात् । यत आह स एव—(३१२४६)

“उच्छेषणं भूमिगतमजिह्वस्याशठस्य च । दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ” ॥ इति ।

१५ आश्वलायनः—

“शेषयेद्भोजने भुक्त्वा सर्वान्किञ्चित्ततस्ततः । यत्तु शिष्टं भोजनेषु तदश्रंत्यति हर्षिताः ॥

“दाता मृतस्य योन्नादि तस्मात्तत्परिशेषयेत् ” ॥ इति । प्रमादाद्भोक्तृणां परस्परस्पर्शं उच्छिष्टस्पर्शोऽपि भोजनोपरमो न कार्य इत्याह शंखः—

“श्राद्धपंक्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् । तदन्नमत्यजन् भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥

२० “उच्छिष्टलेपनस्पर्शं प्रक्षाल्यान्येन वारिणा । भोजनांते द्विजः स्नात्वा गायत्रीत्रिशतं जपेत्” ॥ इति ।

पात्रेऽन्योच्छिष्टपतनेऽपि स एव—

“उच्छिष्टस्पर्शनं ज्ञात्वा तत्पात्रं परिहृत्य च । अस्पृष्ट्वा पाणिना पात्रं भूमिं समनुलिप्य च ॥

“अन्यत्पात्रं निधायात्र सर्वान्नं परिवेषयेत् । परिषिच्य ततः पश्चाद्भोजयेच्च न दोषकृत” ॥ इति ।

व्यासोऽपि—

२५ “उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शं स्पृष्टपात्रं विसृज्य च । सर्वान्नपूर्ववत् दत्त्वा भोजयेत्तु द्विजोत्तमः ” ॥ इति ।

उच्छिष्टस्पर्शं पात्रद्वयं परित्यज्य पात्रांतरयोर्द्वावपि भोजयेदित्यर्थः । अत्र भोक्तुरुच्छिष्टस्पर्शभावे

उच्छिष्टपात्रं परित्यज्य पात्रांतरे भोजयेत्स्पर्शं भोजनांते द्विजाः स्नात्वा गायत्र्याः त्रिशतं जपे-

दित्युक्तं प्रायश्चित्तमपि कुर्यात् । स्मृत्यन्तरे—

“श्राद्धपंक्तौ तु भुञ्जानो विष्णुमूर्तोत्सर्जनं प्रति । व्रजेद्यदि हि मूढात्मा श्राद्धघाती भवेद्ध्रुवम् ॥

३० “उपोष्य तद्दिने कर्त्तापरेद्युः श्राद्धमाचरेत् ” ॥ इति ।

पितृस्थानीयव्यातिरिक्तस्य वमने स्मृत्यन्तरे—

“विश्वेदेवाद्वितीयो वा तृतीयो वांतिकृद्भवेत् । प्राणादिपंचभिर्मन्त्रैर्यवित् द्वात्रिंशसंख्यकम् ॥

होमशेषं समाप्याथ श्राद्धशेषं समापयेत् ” ॥ इति । अन्यत्रापि—

“ एक एव यदा विप्रो भोजने छर्दितो यदि । तदैवाग्निं समाधाय होमं कुर्याद्यथाविधि ॥

“ तत्स्थाननामगोत्रेण चासनादिभिरर्चयेत् । अन्नत्यागं प्रकुर्वीत ततोऽग्नौ जुहुयाच्चरुम् ॥

“ प्राणादिपंचकैर्मन्त्रैर्यावत् द्वात्रिंशसंख्यकम् । होमशेषं समाप्याथ श्राद्धशेषं समापयेत् ” ॥ इति ।
छर्दितब्राह्मणभोजने पात्रं त्यक्त्वा लौकिकाग्निं समाधाय तत्स्थाननामगोत्रोच्चारणपूर्वकमासनादिभि- ५
रभ्यर्च्य हुतशेषं चरुं प्राणादिपंचभिर्मन्त्रैः षडावृत्तैः पुनरुपादानसमानाभ्यां च हुत्वा श्राद्धशेषं
समापयेदिति व्याख्यातारः । संग्रहे—

“श्राद्धपङ्क्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो वमयेद्यदि । लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्य त्वर्चयेच्च हुताशनम्” ॥ इति ।
पितृस्थानायस्य वमने त्रयाणां वमने पुनःश्राद्धमुक्तं तत्रैव—

“ पितृणां तत्र सर्वेषां पितुर्वा वमनं यदि । तद्दिनो^१ चोपवासश्च पितुः श्राद्धं परेऽहनि ” ॥ इति । १०
एतच्च पिण्डदानात्प्राग् वमने वेदितव्यम् ।

“ अकृते पिण्डदाने तु पिता यदि वमेत्तदा । पुनः पाकं प्रकुर्वीत श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ” ॥ इति
स्मरणात् । यत्तु वचनम्—

“ अकृते पिण्डदाने तु भुञ्जानो ब्राह्मणो वमेत् । पुनः पाकात्तु कर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि ” ॥ इति ।
अत्र द्वितीयः पिण्डदानशब्दः श्राद्धपरः । तस्मिन्नहनि पुनःपाकेन श्राद्धविधायकमिदं वचनद्वयं १५
दर्शादिश्राद्धविषयम् । क्षयाहश्राद्धस्य परदिने विहितत्वात् । दर्शादौ पुनःपाकेन श्राद्धकरणा-
संभवे आमेन वा कार्यम् ।

“ श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते ” ॥ इति
मरीचिस्मरणात् । संकल्पश्राद्धेऽपि त्रयाणां वमने पितुरेकस्य वा वमने पुनः श्राद्धमुक्तं स्मृत्यन्तरे—

“ भुक्तिक्रियायाः प्राधान्यं श्राद्धे संकल्पसंज्ञके । अत्रैव पितृविप्राणां उपवाते पुनःक्रिया ” ॥ इति । २०
यत्तु वचनम्—

“ प्राधान्यं पिण्डदानस्य भोजनस्य तदंगताम् । अतो भुक्तिक्रियाहानौ श्राद्धवृत्तिं न मन्यते ” ॥ इति
तत्संकल्पव्यतिरिक्तपार्वणश्राद्धे पितृस्थानीयव्यतिरिक्तब्राह्मणभुक्तिक्रियाहानिविषयम् ।

ऋग्विधाने तु—

“ इन्द्राय सोमसूक्तेन श्राद्धविघ्नो यदा भवेत् । अग्न्यादिभिर्भोजनेन श्राद्धं संपूर्णमेव वा ॥ ” इति । २५
अत्र इन्द्राय त्रयसोमसूक्तजपेन होमेन भोजने न चेति विधानमुक्तम् । तत्र व्यवस्था व्याख्यातुमर्हति-
पिण्डदानात्परं वमनेन श्राद्धविघ्ने सूक्तजपेन श्राद्धं संपूर्णतामेति । पिण्डदानात्प्राक्तु पितृव्यतिरिक्तस्यै-
कस्य वमनेन श्राद्धविघ्ने होमेन अनेकस्य वमनेन तद्विघ्ने होमसूक्तजपाभ्यां पितृस्थानोपवेशितस्य
वमनेन तद्विघ्ने तु परदिने पुनः श्राद्धभोजनेन नेति । तथा च शौनकः—

“ भोजनोपरमात्पूर्वं प्रक्रमात्परतो यदि । श्राद्धविघ्ने पुनः कार्यं जपहोमौ न तृप्तिदौ ” ॥ इति । ३०

“ अग्निनाशे यदा श्राद्धे ज्योतिर्यत्र विनश्यति । तद्दिने चोपवासश्च पुनः श्राद्धं परेऽहनि ” ॥

अथ विकिरणविधिः । तत्र प्रचेताः—

“ वृत्तिं बुध्वाऽन्नमादाय सतिलं पूर्ववज्जपेत् । वृत्तिं पृच्छेत्ततः पृष्ठा ब्रूयुस्तृप्ताः स्म इत्यपि ” ॥ इति ।

पूर्ववज्जपोदित्यस्यार्थः कात्यायनेन प्रपञ्चितः “ गायत्रीं मधुमतीं मधु मध्विति जप्त्वा तृप्ताः स्थ इति पृच्छति ” इति । व्यासः—

“ तृप्ताः स्थ इति पृष्ठास्ते ब्रूयुस्तृप्ताः स्म इत्यर्थः ” ॥ इति । अनंतरकर्तव्यमाह मनुः (३।२४४)—

“ सार्ववर्णिकमन्त्राद्यं संनीयाप्लाव्य वारिणा । समुत्सृजेद्भुक्तवतां अग्रतो विकिरन् भुवि ” ॥ इति ।

५ संनीय व्यंजनैः सह संयोज्य सार्ववर्णिकं सर्ववर्णिहितार्थमुत्सृजेदित्यर्थः । मत्स्यपुराणे—

“ भुक्तवत्सु ततस्तेषु भोजनोपांतिके नृप । प्रोक्ष्य भूमिमथाद्भिस्तु भूमौ पितृपरायणः ।

“ ततो विकिरणं कुर्याद्विधितृष्टेन कर्मणा ” इति । मार्कंडेयः—

“ उदङ्मुखानां विप्राणां पुरतः सोदकं ततः । अन्नं तु विकिरेद्भुक्त्या पुनर्दद्यात्तिलोदकम् ” ॥ इति विष्णुपुराणे (३।१५।१७)—

१० “ तृतेष्वेतेषु विकिरेदन्नं विप्रेषु भूतले । दद्याच्चाचमनार्थाय तेभ्यो वारि सकृत्सकृत् ” ॥ इति । आचमनार्थाय नित्यभोजननियमेषूक्तं अमृतापिधानमसीति मन्त्रपूर्वकं यत् गण्डूषं तदर्थं वैश्वदेविक-
त्रिपूर्वकं प्रतिविप्रं सकृत् सकृत् जलं दद्यादित्यर्थः । याज्ञवल्क्यः (२४१)—

“ अन्नमादाय तृप्ताः स्थ शेषं चैवानुमान्य च । तदन्नं प्रकिरेद्भूमौ दद्याच्चापि सकृत्सकृत् ” ॥ इति । व्याख्यातेतद्विज्ञानेश्वरेण (पृ. ७० पं ७)—सर्वमन्नमादाय तृप्ताः स्थेति पृष्ठास्तृप्ताः स्म इति तैः

१५ प्रत्युक्तः शेषमस्ति किं क्रियतामिति पृष्ठा इष्टैः सह भुज्यतामित्यभ्युपगम्य तदन्नं पितृस्थानीयस्य ब्राह्मणस्य पुरस्तादुच्छिष्टसंनिधौ दक्षिणाग्रदर्भातिर्हितायां भूमौ तिलोदकप्रक्षेपपूर्वं ये अग्निदग्धा इत्यनयर्चा निक्षिप्य पुनस्तिलोदकं प्रक्षिपेत् । तदनंतरं ब्राह्मणहस्तेषु गंडूषार्थं सकृदपो दद्यात् ” इति ।

बोधाद्यनस्तु—उत्तरापोशनानंतरं विकिरदानमाह— “ स्वधायुक्तानि ब्राह्मणान्यभिप्रावयिष्यन् रक्षोघ्नानि च नैर्ऋतानि च तृप्तानप आचमय्याशनेष्वन्नशेषान्प्रकिरति “ ये अग्निदग्धा येऽनग्नि-

२० दग्धा ” इति । प्रचेताश्च— “ ये अग्निदग्धेति भुवि क्षिपेत् ” । स्मृत्यंतरे—

“ पितृदैवतयोर्मध्ये भुवं प्रोक्ष्य तिलान्क्षिपेत् । ततो दर्भान्समास्तीर्य तूष्णीं दत्त्वा तिलोदकम् ॥

“ उच्छिष्टं तिलमिश्रेण पिंडं दद्यात्समाहितः । ये अग्निदग्धा येऽनेति दद्यादुच्छिष्टसंनिधौ ” ॥ इति ।

अत्र केचिदाहुः— “ मनुयाज्ञवल्क्यबोधाद्यनचंद्रिकामाधवीयविज्ञानेश्वरादिषु ‘ ये अग्नि-
दग्धा ’ इत्यनेन विकिरदानविधानादन्यस्यानुक्तेस्तावन्मात्रमेव विकिरदानं कार्यमिति । एतदुच्छिष्ट-

२५ पिण्डं काकेभ्यो विशास्तिकाकपिण्डमिति च व्यवहरन्ति । काकस्वीकारे च यत्नं कुर्वन्ति ।

“ वायसा स्वीकृते पिण्डे शुनां शूद्रेण दूषिते । ताहिने चोपवासश्च पुनः श्राद्धं परेऽहनि ॥ इति

पठन्ति । अन्ये तु—प्रतिब्राह्मणमुच्छिष्टसंनिधौ मंत्रांतरेण विकिरदानं कृत्वा ये अग्निदग्धा येऽनग्नि-

दग्धा इत्यनेनोच्छिष्टपिण्डदानं च कार्यमित्याहुः । तदाह आश्वलायनः— “ श्रावयित्वा च पृष्ठा च देवानां विकिरं चरेत् ” इति । मधुमती अक्षन्ममीमदंत इति च श्रावयित्वा संपन्नं पृष्ठाऽनंतरं वैश्व-

३० देविकं विकिरं चरेदित्यर्थः । स्मृत्यंतरे “ मंत्रेण विकिरं कुर्यान्मुख्यब्राह्मणसंनिधौ ॥

“ असोमपाश्च ये देवा-यज्ञभागविवर्जिताः । तेषामन्नं प्रदास्यामि, विकिरं वैश्वदेविकम् ” ॥ इति विश्वदेवार्थब्राह्मणयोर्मुख्यः प्रथमं वृत इत्यर्थः ।

रत्नावल्याम्—

“उच्छिष्टैरेव विकिरं सदैवं प्रतिपादयेत् । अन्यथा कुरुते यस्तु निराशास्तस्य देवताः” ॥ इति ।
स्मृत्यन्तरे तु “ पात्रे यवकुशास्तीर्णे देवानां विकिरं चरेत् ” इति प्राप्ते—

“ अनन्तरं सुतृप्तेषु तेषु विप्रेषु भक्तितः । अन्नशेषं प्रविकिरेद्भेषु विधिवन्नुप ॥

“ असोमपेति मंत्रेण विकिरं वैश्वदेविकम् । असंस्कृतेति मंत्रेण पैतृकं विकिरं क्षिपेत् ॥ ५

“ असंशयो भवेद्विष्णुमनुना वैष्णवं क्षिपेत् ” ॥ इति । स्मृत्यन्तरे—

“ असंस्कृतप्रमीता ये त्यागिन्यो याः कुलस्त्रियः । दास्यामि तेभ्यो विकिरमन्नं ताम्यश्च पैतृकम् ॥

“ एतेन विकिरेत्पित्र्ये मुख्यब्राह्मणसन्निधौ ” ॥ इति । तथा विकिरभागिनो दर्शयति मनुः (३२४५)

“ असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् । उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्भेषु विकिरे च ये ” ॥ इति ।

मार्कण्डेयस्तु—“ ये चापमृत्युना केचिन्मृत्युं प्रातः स्ववंशजाः । विकिरेण प्रदानेन वृत्तिं यांति च तेऽखिलाः ” ॥ १०

“ ये चादन्ताः कुले बालाः क्रियायोग्या ह्यसंस्कृताः । सर्पिडास्ते तु विकिरे संमार्जनजलाशिनः ” ॥ इति ।

विकिरदानानन्तरमुपवीती भूत्वा आचामेत् । अत एव मरीचिः—

“ श्राद्धेषु विकिरं दत्त्वा यो नाचामेन्मतिभ्रमात् । पितरस्तस्य षाण्मासं भवंत्युच्छिष्टभोजिनः ” ॥ इति ।

अनन्तरमुत्तरापोशनार्थमुदकं दद्यात् । तथा च मङ्गलसावाक्यम्—

“ तदन्वाचमनार्थाय दद्याच्चापः सकृत्सकृत् ” इति । अत्र मरीचिः—

१५

“ हस्तं प्रक्षाल्य गंडूषं यः पिबेदविचक्षणः । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां नोपतिष्ठते ” ॥ इति ।

गंडूषं यः पिबेद्भोजनान्ते अमृतापिधानमसीति मंत्रेणापो यः पिबेदित्यर्थः । गंडूषकरणात्पूर्वं

हस्तलेपनिमार्जनं तत्क्षालनं आसनादुत्थानं च न कार्यमित्याह आश्वलायनः—

“ प्राग्गंडूषजलाद्भुक्त्वाऽन्नहस्तं निमृजेद्भुधः । प्रक्षालयेच्च नोच्छिष्टेपीठाद्विप्रः सदैव हि ॥

“ यो भुक्त्वोत्थायाचामति पीठाद्विप्रः सदाऽशुचिः । स्नात्वा शुचिर्भवेच्छ्राद्धे श्राद्धहा च नराधमः ” ॥ इति । २०

अस्यार्थः प्रयोगस्मारकृताभिहितः—यो भुक्त्वा पीठादुत्थायोत्तरापोशनार्था अप आचामति तदा

अशुचिर्भवेत् । स्नात्वैव श्राद्धे शुचिर्भवेदिति । गंडूषकरणप्रकारश्च तेनैवोक्तः—

“ अर्थं पिबति गंडूषं अर्थं त्यजति भूतले । प्रीणन्ति पितरः सर्वे ये चान्ये भूमिदेवताः ” ॥ इति ।

उच्छिष्टपिण्डं वायसेभ्यो दद्यात्

“ बलिं बलिभुजो यत्र प्रदत्तं नैव भुंजते । नैव वृताः प्रयास्यन्ति पितरस्तस्य सानुगाः ” ॥ इति २५

शंखलिखितस्मरणात् । हस्तप्रक्षालने विशेषमाह शातातपः—

“ विश्वदेवानिविष्टानां चरमं हस्तधावनम् । विसर्जनं च निर्दिष्टं तेषु रक्षा यतः स्थिता ॥

“ दैवपूर्वं तु यो दद्याद्धस्तप्रक्षालनोदकम् । निराशाः पितरो यांति देवरक्षाविवर्जिताः ” ॥ इति ।

विष्णुरपि (७३२४-२५)—“ उदङ्मुखेष्वाचमनमादौ दद्यात् । ततः प्राङ्मुखेषु ततः सुप्रोक्षितमिति

श्राद्धदेशं प्रोक्ष्य दर्भपाणिः सर्वं कुर्यात् ” ॥ इति । अस्यार्थश्चंद्रिकायामुक्तः—पैतृकब्राह्मणेषु प्रथम-

हस्तप्रक्षालनपूर्वकाचमनार्थमपो दत्त्वा पश्चाद्द्वैश्वदेविकब्राह्मणमेषु दत्त्वा सुप्रोक्षितमिति मंत्रेण श्राद्ध-

देशं प्रोक्ष्य दर्भपाणिः सर्वमुपरितनं कर्मजातं कुर्यादिति ।

हस्तप्रक्षालनानन्तरविधिः । अनन्तरकर्तव्यमाह अगस्त्यः—“ अथाचांतेषु चाचम्य

वारि दद्यात्सकृत्सकृत् ” ॥ इति । मार्कण्डेयः—

“ पितृणां नामगोत्रेण जलं देयमनन्तरम् । ब्राह्मणानां द्विजैर्वाच्यमिदमक्षय्यमस्त्विति ” ॥ ३५

स्मृत्यन्तरे—“रोचत इति वैश्वदेवान्वाचयित्वा पितृन्स्वदितमिति वाचयेत् ” ॥ इति । मत्स्यः—

“स्वस्तिवाचनकं दद्यादक्षय्योदकमेव च । सलिलं नामगोत्रेण दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥

“गोभूहिरण्यवासांसि नवानि शयनानिव । दद्याद्यदिष्टं विप्राणामात्मनः पितुरेव हि ॥

“वित्तशाठ्येन रहितः पितृभ्यः प्रीतिमाचरन्ति ” ॥ इति । जमदग्निः—

५ “सलिलं नामगोत्रेण दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् । हिरण्यधनवासांसि हर्म्याणि शयनानि च ” ॥ इति ।
चंद्रिकायाम्—“ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥

“यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे । तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षय्यमिच्छता ” ॥ इति ।

पारस्करः—“हिरण्यं विश्वेभ्यो देवेभ्यो रजतं पितृभ्यः अन्यच्च गोकृष्णाजिनादिकं यावच्छक्नुयात्

“एकपक्तयुपविष्टानां विप्राणां श्राद्धकर्मणि । भक्ष्यभोज्यं समं देयं दक्षिणा त्वनुसारतः” ॥ इति ।

१० निमंत्रितब्राह्मणविद्यागुणतारतम्येनेत्यर्थः । अनिमंत्रितविप्रेभ्योऽपि दक्षिणादानमाह बृहस्पतिः—

“ज्ञातयो बांधवा निःस्वास्तथैवाथ च येऽपरे । प्रदद्याद्दक्षिणां तेषां सर्वेषामनुरूपतः ” ॥ इति ।

देवलः—“आचांतेभ्यो द्विजेभ्यस्तु प्रयच्छेदथ दक्षिणाम् ” ॥ इति । स एव—

“दक्षिणां पितृविप्रेभ्यो दद्यात्पूर्वं ततो द्रयोः । सर्वं कर्मापसव्येन दक्षिणादानवर्जितम् ” ॥ इति ।

जमदग्निस्तु—“अपसव्यं तु तत्रापित्स्योऽपि भगवान्यमः ” ॥ इति । अत्र व्यवस्था दर्शिता

१५ माधवीये—ब्राह्मणोद्देशेन दक्षिणादाने पितृपूर्वक्रमः । उपवीतं च पितृद्देशेन दक्षिणादानं प्राचीना-
वीतिना कार्यम् । तच्च वैश्वदेविकब्राह्मणपूर्वकमिति । ब्रह्माण्डपुराणे—

“श्राद्धभुग्दक्षिणां नेच्छेत् कर्ता दद्यात्तु दक्षिणाम् । तावुभौ पूर्णकर्माणौ श्राद्धभुक् न तु दोषभाक् ॥

“श्राद्धभुक् श्राद्धमध्ये यो नालं मे दक्षिणेति च । तस्मिंस्तत्र प्रदातव्यं दत्ते तौ नरकालयौ ॥

“अदत्त्वा दक्षिणां श्राद्धे श्वो दास्यामीति यो वदेत् । दिने दिने भवेद्दृद्धिर्दक्षिणापरिमाणतः ॥

२० “तस्मादवश्यं दातव्यमदाता रौरवं व्रजेत् । श्राद्धभुक् श्राद्धकर्तारं सवृद्धिं दक्षिणां ततः ॥

“एकवारं त्रिवारं वा पृच्छेच्च दिनपञ्चकम् । ततः परं न पृच्छेत्तु कर्तारं हन्ति दक्षिणा ॥

“पुनः श्राद्धं चरेत्कर्ता षष्ठेऽह्नायुर्विबुद्धये । अथवायुष्यहोमं वा चरेत्प्रोक्तं महर्षिभिः ॥

“यत्किंचिद्दक्षिणाकाले स्वस्वशक्त्यनुसारतः । तदक्षयं भवेत्तृप्तिं ददाति स्वापितृन् प्रति ॥

“लक्षं लक्षपतिर्दद्यात् दरिद्रस्तु वराटिकाम् । वित्तशाठ्यं न कुर्वीत श्राद्धकाले समाहितः ॥

२५ “सत्यां संपदि लोभाद्यः श्राद्धं न कुरुते द्विजः । स विज्ञेयो नरपशुर्गार्दभी योनिमाविशेत् ॥

“तस्य पङ्क्तौ न भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ” ॥ इति ।

अनंतरं कर्तव्यमाह याज्ञवल्क्यः (आ. २४४-२४९)—

“दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् । वाच्यतामित्यनुज्ञातः प्रकृतेभ्यः स्वधोच्यताम् ॥

“ब्रूयुरस्तु स्वधेत्युक्ते भूमौ सिंचेततो जलम् । विश्वेदेवाश्च प्रियंतां विप्रैश्चोक्ते इदं जपेत् ॥

- “ दातारो नोभिवर्धतां वेदाः संततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यपगाद्बहु देयं च नोऽस्त्विति ॥
 “ इत्युक्त्वा च प्रिया वाचः प्रणिपत्य विसर्जयेत् । वाजे वाज इति प्रीतः पितृपूर्वं विसर्जयेत् ॥
 “ प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुंजीत पितृसेवितम् । ब्रह्मचारी भवेत्तां तु रजनीं ब्राह्मणैः सह ” ॥ इति ।

मत्स्यः—

- “ दक्षिणां दिशमाकांक्षन्पितृन्याचेत मानवः । दातारो नोभिवर्धतां नोभेदेयं च नोऽस्त्विति ॥ ५
 “ अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि । याचिताश्च नः संतु मा च याचिष्म कंचन ॥
 “ एवमस्त्विति तैर्वाच्यं मूर्ध्ना ग्राह्यं च तेन तत् । पश्चाद्विसर्जयेद्देवान् पूर्वं पैतामहान्द्रिजान् ” ॥ इति ।
 षट्पिण्डदानविधिः । विप्रविसर्जनानंतरं पिण्डदानमाह आपस्तम्बः (८।२।९)—

“ भुक्त्वतोऽनुव्रज्य प्रदक्षिणीकृत्य दैधं दक्षिणाग्रान्दर्भान्संस्तीर्य तेषूत्तरैरपो दत्वोत्तरैर्दक्षिणापवर्गा-
 न्पिण्डान्दत्त्वा पूर्ववदुत्तरैरपो दत्वोत्तरैरुपस्थायोदपात्रेण त्रिः प्रसव्यं परिषिच्य न्युब्जपात्राण्युत्तरं १०
 यजुरनवानं त्र्यवरार्धमावर्त्तयित्वा प्रोक्ष्य पात्राणि द्वन्द्वमभ्युदाहृत्य सर्वतः समवदायोत्तरेण यजुषा
 शेषस्य ग्रासावरार्धं प्राश्नीयात् ” । इति । भुक्त्वतो व्रजतो ब्राह्मणान् यज्ञोपवीती आग्रहसीमांत-
 मनुव्रज्य प्रदक्षिणीकरोति । अथ प्रयेत्य प्राचीनावीती । पिण्डप्रदानदेशे दक्षिणाग्रान्दर्भान्द्वेधा
 संस्तृणाति । तत्र पुरस्तात्पित्राद्यर्थं पश्चान्मात्राद्यर्थं ततस्तेषु मार्जयतां मम पितर इत्यादिभिस्त्रिभि-
 र्मार्जयतां मम मातर इत्यादिभिश्च यथादर्भं दक्षिणापवर्गमपो दत्त्वा अनंतरमुत्तरैरेतत्ते ततासावि- १५
 त्यादिभिः षड्भिः षट्पिण्डान् ददाति । अथ पूर्ववन्मार्जयतामित्यादिभिरेवापो ददाति । अथोत्तरैर्ये च
 वोत्रेत्यादिभिः षड्भिर्मंत्रैर्यथालिङ्गं पितृन्मातृश्च त्रिरुपतिष्ठते । तृप्यतेत्यनेन त्रिरावावृत्तेनोभयां-
 स्तत्रेण । तत उत्तरया पुत्रान्पौत्रानभितर्पयेतीरित्युभयेषां पिण्डान्युगपदुदपात्रेण त्रिः प्रसव्यमविच्छिन्नं
 परिषिचति । अनंतरं पात्राणि होमार्थानि च पिण्डार्थानि च न्युब्ज अधोबिलानि कृत्वा उत्तरं
 यजुः तृप्यत तृप्यतेत्याम्नान एव त्रिरभ्यस्तमनवानं अनुच्छ्रंसं त्र्यवरार्धं त्रिरभ्यावृत्तिरवमात्रा २०
 यस्यावर्त्तनस्य तत्र्यवरार्धं यथा भवति तथा आवर्त्तयति ततश्चावमयापि मात्रया तृप्यतेति
 नव कुत्वोभ्यसितव्यं भवति । एवमनवानं यावच्छक्यावर्त्तं ततः पात्राणि न्यग्भूतानि प्रोक्ष्य
 द्वन्द्वमभ्युदाहरति । अथ शेषस्यान्नस्य ग्रासावरार्धं सर्वतः सर्वेभ्योऽन्नभेदेभ्यः समवदाय उत्तरेण
 यजुषा प्राणे निविष्ट इत्यनेन प्राश्नीयात् । इदं प्राशनं भोजनेच्छायामसत्यामपि कार्यम् ।
 कर्मीगत्वादिति । तात्पर्यदर्शनेऽस्यार्थोभिहितः ।

२५

काव्यायनादीनां त्रिपिण्डादिदानविधिः ।

पिण्डत्रयदानमवघ्राणं चाह मनुः (३।२।५-२।६, २।८)

- “ त्रींस्तु तस्माद्धविःशेषान् पिण्डान्कृत्वा समाहितः । औदकेनैव विधिना निवपेद्दक्षिणांमुखः ।
 “ न्युब्ज पिण्डांस्ततस्तास्तु प्रयतो विधिपूर्वकम् । तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम् ॥
 “ उद्देशेण तु निनयेच्छनैः पिण्डांतिकं पुनः । अवजिघ्रेच्च तां पिण्डान्यथान्यूनान्समाहितः ” ॥ इति । ३०
 आचमनात्पूर्वं पिण्डत्रयदानमाह याज्ञवल्क्यः (आ. २।४२)—
 “ सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः । उच्छिष्टसंनिधौ पिण्डान्दद्याद्धि पितृयज्ञवत् ॥
 “ मातामहानामप्येवं दद्यादाचमनं ततः ” ॥ इति ।

अत्र विज्ञानेश्वरः (पृ. ७० पं. १३) — पिंडपितृयज्ञकल्पातिदेशेन चरुश्रपणसद्भावे अग्नौ-
करणशिष्टचरुशेषेण सह सर्वमन्नमुपादायाग्निसंनिधौ पिंडान्दद्यात् । तदभावे ब्राह्मणार्थसाधित-
मन्नमुपादाय तिलमिश्रं दक्षिणामुख उच्छिष्टसंनिधौ पिंडपितृयज्ञकल्पेन पिंडान् दद्यात् ।
मातामहानामपि तच्छ्राद्धे वैश्वदेवावाहनादि पिंडप्रदानपर्यंत कर्मैवमेव कर्तव्यम् । अनंतरं

५ ब्राह्मणानामप्याचमनं ददाति । आश्वलायनः—

“भुक्तवत्स्वाचांतेषु पिंडान्निदध्यादनाचांतेष्वित्येके ” ॥ इति मनुस्तु (३२६१)—

“पिंडनिर्वापणं केचित्पुरस्तादेव कुर्वते ” इति । चंद्रिकासाधवीर्ययोरिदं व्याख्यातम्—भोजना-
त्पुरस्ताद्ब्राह्मणानामर्चनानंतरं अग्नौकरणानंतरं वा पिंडनिर्वापणं केचिदिच्छंति । केचिदिति
वचनादपरे ब्राह्मणभोजनानंतरमाचमनादवागवा ब्राह्मणविसर्जनात् पश्चाद्वा पिंडनिर्वापणं कुर्वते
१० इत्यवगम्यते इति । अत्र यथास्वशासं व्यवस्था । तथा च स्मृत्यंतरम्—

“मुनिभिर्भिन्नकालेषु पिंडदानं तु यत्स्मृतम् । तत्तु शास्त्रमतं यत्र तत्र कुर्याद्विचक्षणः ” ॥ इति ।

लोकाक्षिस्तु—“अप्रशस्तेषु श्राद्धेषु भोजनात्पूर्वं पिंडनिर्वापणं सपिंडीकरणादिषु प्रशस्तश्राद्धेषु
पश्चादेवोक्तयेत् ” ॥ इति ।

अप्रशस्तेषु सपिंडीकरणात्प्राग्विहितेषु श्राद्धेषु भोजनात्पूर्वं पिंडनिर्वापणं सपिंडीकरणादिषु
१५ प्रशस्तश्राद्धेषु पश्चादेव पिंडनिर्वापणमित्यर्थः । एतच्च येषां स्वगृहेषु पिंडदानकालो नोक्तस्त-
द्विषयमित्याहुः । पराशरः—

“सुतृतैस्तैरनुज्ञातः सर्वेणाग्नेन भूतले । सतिलेन ततः पिंडान् सम्यक् कृत्वा समाहितः ॥

“पितृतीर्थेन सलिलं तत्र सिंचेयथाक्रमम् । दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु पुष्पधूपादिपूजितम् ॥

“स्वपित्रे प्रथमं पिंडं दद्यादुच्छिष्टसंनिधौ । पितामहाय चैवान्यत्तत्पित्रे च तथापरम् ॥

२० “दर्भमूले लेपभुजः प्रीणयेत्पेकपर्षणम् ” ॥ इति स्मृत्यंतरम्—

“उपमूलान्समास्तीर्य दर्भानुच्छिष्टसंनिधौ । कृत्वावनंजनं दद्यात् त्रींस्त्रीन्पिंडान्यथाक्रमम्” ॥ इति ।

भारतेऽपि—

“सतिलेन ततोऽग्नेन पिंडान्स्त्रीनिव पुत्रकः । पितृनुद्दिश्य दर्भेषु दद्यादुच्छिष्टसंनिधौ ” ॥ इति ।

देवलः—

२५ “ततः सर्वाशनं पात्रे गृहीत्वा विधिवत्स्वयम् । तेषामुच्छेषणस्थाने तेन पात्रेण निक्षिपेत् ॥

“पात्राणां खड्गपात्रेण पिंडदानं विधीयते । राजतौडुंकराभ्यां वा हस्तेनैवाथवा पुनः ॥

“मधुसर्पिस्तिलयुतांस्त्रीन्पिंडान् निर्वपेद् बुधः । जानु कृत्वा तथा सव्यं भूमौ पितृपरायणः ” ॥ इति ।

यथास्वगृहं पिंडसंख्या अवगंतव्या । आपस्तंबसूत्रिणां तु मासिकश्राद्धकल्पनानुष्ठातृणां पिंड-
षट्कं पिंडपितृयज्ञकल्पेनानुष्ठातृणां पिंडत्रयमिति विवेकः ।

३० ननु उच्छिष्टसंनिधिरशुचिदेशो भवति तत्र कथं पिंडदानं विधीयत इत्याशंक्याहात्रिः—

“पितृणामासवस्थानादग्रतस्त्रिष्वरत्निषु । उच्छिष्टसन्निधानं तन्नोच्छिष्टासनसंनिधौ ” ॥ इति ।

त्रिष्वरत्निष्वित्युच्छिष्टसंपर्करहितासन्नदेशोपलक्षणार्थम् । अत एव जातुकर्णिः—

“व्याममात्रं समुत्सृज्य पिंडांस्तत्र प्रदापयेत् ” इति ॥

भास्करोऽपि—“ पात्राणां बाहुमात्रे वा पिंडदानं विधीयते ” इति ॥ व्यासोऽपि—

“ अरत्निमात्रमुत्सृज्य पिंडांस्तत्र प्रदापयेत् । यत्रोपस्पर्शनं वापि प्राप्नोति न हि पिंडदः ” ॥ इति ।

द्वयाध्रः—“ गंधपुष्पाणि धूपं च दीपं चैव निवेदयेत् ॥

“ यत्किञ्चित्पच्यते गेहे भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् । अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिंडमूले कथंचन ” ॥ इति ।

द्वितीयावनेजनमध्यमपिण्डप्राशनादिविधिः । अनंतरकृत्यमाह बृहस्पतिः -

५

“ समभ्यर्च्योद्पात्रं तु तेषामुपरि निक्षिपेत् ” इति । विष्णुः—“ पिंडानां निर्वपणं कृत्वा अर्च्यपुष्पधूपानुपलेपनान्नादिभक्ष्यान्निवेद्येदुपपात्रमासिचेत् ” इति । एतच्च द्वितीयावनेजनं पिंडपात्रप्रक्षालनोदकेन कार्यम् । “ पात्रनिर्णेजनेनैव पुनः प्रत्यवनेजयेत् ” ॥ इति स्मरणात् । पुत्रार्थी मध्यमं पिंडं पत्न्यै दद्यात् । तथा च वायुपुराणे—“ पत्न्यै प्रजार्थं दद्यात्तु मध्यमं मंत्रपूर्वकम् ” इति । मध्यमं पिंडमित्यर्थः । मंत्रस्तु मत्स्येन दर्शितः—

१०

“ आधत्त पितरो गर्भमत्र संतानवर्धनम् ” इति । मनुः (३२६२-२६३)—

“ पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा । मध्यमं तु ततः पिंडमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी ॥

“ आयुष्मंतं सुतं विदेशशोमेधासमन्वितम् । धनवंतं प्रजावंतं धार्मिकं सात्विकं तथा ” ॥ इति ।

यमः—

“ यत्तथा मध्यमं पिंडं पत्नी प्राश्नाति वाग्यता । पुत्रकामा सपुत्रां तां कुर्वति प्रपितामहाः ” ॥ इति । १५
शंखलिखितौ—“ पत्नी मध्यमं पिंडमश्रीयादार्त्तवस्नाता ” इति । अगृहीतगर्भा अत्रार्तवस्नाते-
त्युच्यते । ततश्च गृहीतगर्भा पत्नी नाश्रीयात् ।

अत एवैवंविधे विषये मध्यमपिंडस्य प्रतिपत्त्यन्तरमाह बृहस्पतिः—

“ अन्यदेशगता पत्नी गर्भिणी रोगिणी तथा । तदा तं जीर्णवृषभः छागो वा भोक्तुमर्हति ” ॥ इति ।
जीर्णो गतरेताः । अत एव वायुपुराणे—

२०

“ गतवीर्यश्च यो ह्यश्वोऽनड्वांश्चैव तथाविधः । तयोः पिंडः प्रदातव्यो यथा वीर्यं न रोहति ” ॥ इति ।
प्रतिपत्त्यन्तरमाहापस्तंबः—

“ यदि पत्नी विदेशस्था उच्छिष्टा यदि वा मृता । दुरात्माऽननुकूला च तस्य पिंडस्य का गतिः ॥

“ आकाशं गमयेत्पिंडं जलस्थो दक्षिणामुखः । पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा दिक् तथैव च ” ॥ इति ।

यत्तु देवलेनोक्तम्—

२५

“ ततः कर्मणि निवृत्तिं पिंडांश्च तदनंतरम् । ब्राह्मणोग्रिरजो गौर्वा भक्षयेदप्सु वा क्षिपेत् ” ॥ इति ।
तत्पुत्रार्थत्वाभावविषयम् । तत्सद्भावे मध्यमपिंडव्यतिरिक्तपिंडान्तरविषयं च । तीर्थश्राद्धे पिंडा-
नामप्येव प्रक्षेपः । तदुक्तं विष्णुधर्मोत्तरे—

“ तीर्थश्राद्धे सदा पिंडान्क्षिपेत्तीर्थे समाहितः । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा पित्र्या दिक्सा प्रकीर्तिता ” ॥ इति ।

उच्छिष्टसंमार्जनादि । अनंतरं उच्छिष्टदेशं संमार्जयेत् । अत एव याज्ञवल्क्यः (आ. २२५)—
“पिंडांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा । प्रक्षिपेत्सत्सु विप्रेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत्” ॥ इति ।
अयमर्थः । सत्सु विप्रेषु विप्रविसर्जनात्प्रागुच्छिष्टं न मार्जयेत् । किंतु तेषु विसर्जितेषु पिंडप्रतिपत्तौ
च कृतायां शोधयेदिति । यत्तु व्यासेनोक्तम्—

५ “उच्छिष्टं न प्रमृज्यात्तु यावन्नास्तमितो रविः ” इति यच्च वसिष्ठेनोक्तम्—

“श्राद्धे नोद्वासनीयानि उच्छिष्टान्या दिनक्षयात् । श्रयोतंते वै स्वधाकारास्तान् पिबंत्यकृतोदकाः” ॥ इति
तद्गृहसंभवविषयम् । अत एव प्रचेताः—

“भुक्तवत्सु ततो भुंके कव्यशेषं स्वगोत्रजैः । आ सायं श्राद्धशालायां द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत्” ॥ इति ।
बंधुभिः सह पितृसेवितशेषभोजनार्थं गृहांतरसद्भावे आसायमुच्छिष्टदेशशोधनं न कार्यम् । गृहां-

१० तराभावे ब्राह्मणेषु विसर्जितेषु पिंडप्रतिपत्तौ च कृतायां कर्तव्यमित्युक्तं भवति ।

पात्रचालनादि । पात्रचालनमात्रं सत्सु विप्रेषु स्वस्तिवाचनात्पूर्वमवश्यं कर्तव्यम् ।
अन्यथा दोषस्मरणात् । तथा च नारायणः—

“अचालयित्वा तत्पात्रं स्वास्ति कुर्वति ये द्विजाः । निराशाः पितरस्तेषां शप्त्वा यांति यथागतम्” ॥ इति ।
बृहस्पतिरपि—

१५ “भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वास्ति कुर्वति ये द्विजाः । तद्दत्तमसुरैर्भुजं निराशैः पितृभिर्गतैः” ॥ इति ।
पात्रचालने विशेषमाह जातुर्काणिः—

“पात्राणि चालयेच्छ्राद्धे स्वयं शिष्योऽथ वा सुतः । न स्त्रीभिर्न च बालेन नासजात्या कथंचन” ॥ इति ।
भुक्तिपात्राणि निखनेत्

“भुक्तिपात्रं समुद्धृत्य निखनेत्तु प्रयत्नतः । अलब्धप्रेतकार्येषु तस्य त्यागो विधीयते” ॥ इति

२० स्मरणात् । यत्नत इति यथा श्वादिभिः स्पर्शाभावः तथा निखनेदित्यर्थः । श्राद्धे तूच्छिष्टपात्राणि
गते निक्षिप्य गोपयेत् । मृद्धिराच्छादयेत् । श्वादि “यथा न स्पृशते तथा ” इति स्मरणात् ।
न शूद्राय श्राद्धशेषं दद्यात्—

“श्राद्धं दत्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति । पितरस्तय षण्मासं भवंत्युच्छिष्टभोजनाः ” ॥ इति
स्मृतेः । स्मृत्यंतरेऽपि—

२५ “भुक्तिपात्रस्थमुच्छिष्टं बालेभ्यो यः प्रयच्छति । भृत्येभ्यो वृषलेभ्यो वा स श्राद्धं हंत्यसंशयम्” ॥ इति ।

“भुक्तिपात्रस्थमुच्छिष्टं पशुभ्यो यः प्रयच्छति । अजेभ्यो महिषीभ्यो वा स श्राद्धं हन्त्यसंशयम्” ॥ इति ।

आश्वलायनः—

“न शूद्रं भोजयेत्तस्मिन् गृहे यत्नेन तद्दिने । श्राद्धशेषं न शूद्रेभ्यो ददाति च खलेष्वपि ” ॥

श्राद्धदिने नित्यश्राद्धमधिकृत्यं मार्कण्डेयेनोक्तम्—“पृथक्पाकेन नेत्यन्ये” इति । पृथक्पाकेन नित्य-

३० श्राद्धं कार्यं नेत्यन्ये न पृथक्पाकेन कार्यं किंतु श्राद्धशेषेणैव कार्यमित्यन्ये मन्यन्त इत्यर्थः ।
एतच्च नित्यश्राद्धं श्राद्धांतरे कृते सत्यनियतम् । यदाह स एव—

“नित्यक्रियां पितृणां च केचिदिच्छंति मानवाः । न पितृणां तथैवान्ये शेषं पूर्ववदाचरेत् ” ॥ इति ।

पितृणां नित्यक्रियां नित्यश्राद्धं केचिदिच्छंति । अन्ये नेच्छंति । शेषे वैश्वदेवादिकं पूर्ववदाचरेत्
नियमेनैव कुर्यादित्यर्थः ।

अत्र पैठीनसिः—

“श्राद्धं निर्वर्त्य विधिवद्वैश्वदेवादिकं ततः । कुर्याद्विक्षां ततो दद्यात् हन्तकारादिकं तथा” ॥ इति ।
ततः पितृपाकसमुद्धृतादन्नादित्यर्थः । आश्वलायनः—

“दानाध्ययनदेवार्चाजपहोमादिकान् क्रमात् । न कुर्याच्छ्राद्धदिवसे प्राग्विप्राणां विसर्जनात् ॥

“श्राद्धेऽहि भोजयेद्वास्तौ न बालानपि यत्नतः । प्राक्पिण्डदानाद्गन्धाद्यैर्नालंकुर्यात् स्वविग्रहम्” ॥ ५

यत्तु पैठीनसिवचनम्—

“पितृपाकात्समुद्धृत्य वैश्वदेवं करोति यः । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां नोपतिष्ठते” ॥ इति
तच्छ्राद्धस्यादौ पृथक्पाकादेव वैश्वदेवकरणं न पितृपाकादित्येवंपरम् । अत एव श्राद्धे भोजनात्पूर्वं
पितृपाकाद्वैश्वदेवकरणे दोषोऽभिहितः पुराणे

“प्रातिवासरिको होमः श्राद्धादौ क्रियते यदि । देवा हव्यं न गृण्हन्ति कव्यं च पितरस्तथा” ॥ इति । १०

आनुशासनिके—

“यदा श्राद्धं पितृभ्यश्च दातुमिच्छति मानवः । तदा पश्चात्पकुर्वीत निर्वृत्ते श्राद्धकर्मणि” ॥ इति
“ततोऽग्नेनावशिष्टेन पूजयेदतिथीनपि” । ब्राह्मणभोजनात्पूर्वं वैश्वदेवकरणं च स्मृत्यन्तरेऽभिहितम्—

“वैश्वदेवाहुतीरमावर्गब्राह्मणभोजनात् । जुहुयाद्भूतयज्ञादि श्राद्धं कृत्वा ततः स्मृतम्” ॥ इति ।

एतच्चाहिताग्निविषयम् । एवं च श्राद्धादौ अग्नौकरणानंतरं वा पृथक्पाकादेव वैश्वदेवहोमः । १५

निर्वृत्ते तु श्राद्धे पितृपाकात् इति चंद्रिकादौ निर्णीतम् । यत्तु लोकाक्षिणोक्तम्—

“पित्रर्थं निर्वपेत्पाकं वैश्वदेवार्थमेव च । वैश्वदेवं न पित्रर्थं न दार्शं वैश्वदेविकम्” ॥ इति ।

अस्यास्यर्थः—पैतृकब्राह्मणभोजनार्थं वैश्वदेविकब्राह्मणभोजनार्थं च पृथक्पाकं कुर्यात् ।

दार्शनमावास्याश्राद्धार्थं निरुत्तमन्नं कृतेऽपि श्राद्धेन वैश्वदेवहोमार्थं भवतीति । अत्र न दार्शं
वैश्वदेविकमित्येतदाहिताग्निदर्शश्राद्धविषयं तस्य दर्शश्राद्धात्प्रागेव वैश्वदेवविधानेन श्राद्धांते २०
श्राद्धशिष्टेन वैश्वदेवायोगात् । अग्निमतां दर्शश्राद्धात्प्रागेव वैश्वदेवविधिश्च तेनैव दर्शितः—

“पक्षांतं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च सामिकः । पिंडयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः” ॥ इति ।

पक्षांतकर्माण्यन्वाधानं अन्वाहार्यकं अमावास्याश्राद्धमित्यर्थः । एवं च सामिकामावास्याश्राद्धे वैश्व-
देवार्थं पृथगेव पाकः इति चंद्रिकायाम् । अत्र यच्चान्यद्वक्तव्यं तद्वैश्वदेवप्रकरणेऽभिहितम् ।

पितृशेषभोजनम् । वैश्वदेवार्थं पृथक्पाके कृतेऽपि पितृपाकशेषादेव भोजनम्

२५

“प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुंजीत पितृसेवितम्” (आ. २४९) इति याज्ञवल्क्यस्मरणात् ।

अभोजने दोषमाह देवलः—

“श्राद्धं कृत्वा तु यो विप्रो न भुंक्ते तु कदाचन । देवा हव्यं न गृण्हन्ति कव्यानि पितरस्तथा” ॥ इति ।

एतच्च पितृसेवितभोजनं सर्वविधात्पितृसेवितादुपादाय कर्तव्यम् । तथा च मत्स्यः—

“ततश्च वैश्वदेवांते सभृत्यसुतबांधवः । भुंजीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम्” ॥ इति । ३०

अतिथ्यादीनामपि शेषभोजने न दोष इति चन्द्रिकादावनेकवचनपुरःसरं प्रतिपादितम् ।

“पितृशेषं तु यो भुङ्क्ते सोऽन्यज्ञातिकुलोद्भवान् । प्रदाय कर्त्रे स्वं पुण्यं पापमादाय गच्छति” ॥ इति ।

यथा शिष्टाचारस्तथा कर्तव्यम् । अतिथ्यादीनां वैश्वदेवशिष्टान्नं व्यञ्जनं च पितृशेषमेव दातव्यम् ।

“फलशकव्यञ्जनानि पयो दधि घृतं मधु । पक्वापक्वानि यानि स्युस्तेषां शेषो न विद्यते” ॥

यदापि क्षुन्नं विद्यते तदापि शेषभोजनस्यावश्यकत्वात्सर्वमेव पितृसेवितं लेशतो भोक्तव्यम् । अत एवापस्तम्बः—(२।७।१७।१६) “ सर्वतः समवदात्तरेण यजुषा शेषस्य ग्रासवराध्यं प्राश्नीयात् ” ॥ इति । असति तु पितृशेषे पाकांतरं कृत्वा भोक्तव्यम् “ भुंजीतैव कृते श्राद्धे पुत्री नोपवसेद्गृही ” ॥ इति । स्मरणात् । अत एवैकादश्यादौ भोजनप्रत्याम्नायः स्मर्यते—

५ “ उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् । उपवासं तदा कुर्यादाग्राय पितृसेवितम् ” ॥ इति । एतदाग्राणं च कर्तव्यतिरिक्तविषयम् ।

“ कर्तव्योन्यैर्न भोक्तव्यं श्राद्धे प्राप्ते हरेर्दिने । पितृशेषं तथाग्राय उपवासफलाप्तये ” ॥ इति ।

“ कर्ता नोपवसेच्छ्राद्धे पित्र्येऽप्येकादशीदिने । तयोरप्याधिकं ब्रूयुः पितृशेषं महर्षयः ” ॥ इति । एकादशीव्यतिरिक्तादिने ज्ञातिभिरपि अवश्यं पितृशेषं भोक्तव्यमित्याह—

१० “ पितृशेषं न यो भुङ्क्ते को वा ज्ञातिकुलोद्भवः । पितृद्रोही स विज्ञेयः पुत्रपौत्रविना कृतः ॥

“ अकिञ्चनोऽपि कर्ता स्यात् स्वान्नमादाय तद्गृहे । भोक्तव्यमेव सत्पुंभिः पुत्रपौत्रादिवृद्धये ” ॥ इति ।

“ पितृशेषं तु यो भुङ्क्ते कर्ता तु ज्ञातिभिर्विना । यमस्य शमलं भुङ्क्ते दाता प्राशयते पितृन् ” ॥ पितृसेवितभोजननियमोऽनुज्ञापेक्षा एव । अत एव शातातापः—

“ शेषमन्नमनुज्ञातं भुंजीत तदनन्तरम् । इष्टैः श्राद्धं तु विधिवद्वृद्धिमान्सुसमाहितः ” ॥ इति ।

१५ निगमोऽपि—“ अनुज्ञातो गृह्यान् बालवृद्धांश्च परितोष्य भुंजीत ” ।

श्राद्धदिने दातृभोक्तृनियमाः । दातृभोक्तृनियममाह बृहस्पतिः—

“ तां निशां ब्रह्मचारी स्याच्छ्राद्धकृच्छ्राधिकैः सह । अन्यथा वर्त्तमानौ तु स्यातां निरयगामिनौ ” ॥ इति ।

मत्स्यः—

“ पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुने । श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक् चैव सर्वमेतद्विवर्जयेत् ॥

२० “ स्वाध्यायं कलहं चैव दिवा स्वापं च स्वेच्छया ” इति ।

यमः—“ पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनसंगमम् । संध्या प्रतिग्रहं होमं श्राद्धभुक् त्वष्ट वर्जयेत् ॥

“ दंतधावनतांबूलं क्षौराभ्यंगमभोजनम् । रत्यौषधपरान्नानि श्राद्धकर्त्ता विवर्जयेत् ” ॥ इति ।

संध्याहोमयोः प्रतिषेधस्त्वकृतप्रायश्चित्तस्य कृते तु प्रायश्चित्ते कुर्यात् । अत एव भविष्यत्पुराणम्—

“ दशकृत्वः पिबेच्चापो गायत्र्या श्राद्धभुक् द्विजः । ततः संध्यामुपासीत जपेच्च जुहुयादपि ” ॥ इति ।

२५ जुहुयादित्येतदन्यस्य होतुरलाभे द्रष्टव्यम् । तल्लाभे तु तेनैव हावयेत् । यदाह कात्यायनः—

“ सूतके च प्रवासे च अशक्तौ श्राद्धभोजने । एवमादिनिमित्तेषु हावयेद्वा नियोजयेत् ” ॥ इति ।

हावयेद्वेति यद्गोभिलादिभिरुक्तं तदेवमादिनिमित्तेषु योजयेदित्यर्थः ।

यथाशक्ति श्राद्धानुष्ठानम् । यथाशक्ति श्राद्धानुष्ठानमाह शातातापः—

“ यथाकर्थाच्चिन्तितं यत्कुर्यादिदुक्षयादिषु । पात्रद्रव्यादिसंपत्सु निन्ये काम्यफलं लभेत् ” ॥ इति ।

३० अमावास्यादिषु चोदितं श्राद्धं पात्रद्रव्यादिसंपत्त्यभावेऽपि यथाशक्ति कुर्यादिति पूर्वार्थस्यार्थः ।

देवलः—

“ पात्रालाभेऽपरं कृत्वा पितृयज्ञविधिं नरः । निर्दिश्याप्यन्नमुद्धृत्य यत्र पात्रं ततो गतिः ॥

“ पात्राभावे क्षिपेद्ग्नौ गवे दद्यादथाप्सु वा । न तु प्राप्तस्य लोपोऽस्ति पैतृकस्य विशेषतः ” ॥ इति ।

अस्यार्थः—“पात्राभावे अनुकल्पतयाऽप्युक्तपात्रस्याप्यलाभे पितृयज्ञविधिं अग्नौकरणं कृत्वा अन्नं भाजने उद्धृत्य निर्दिश्य चतुर्थतशब्देन देवान्पितृश्रोद्दिश्य उद्धृतमन्नं त्यक्त्वा अदूरे विप्रोऽस्ति चेत्तत्र नीत्वा तस्मै तदन्नं समर्पयेत् । दूरस्थे तु पात्रे निर्दिष्टमन्नमग्नौ क्षिपेत् । अथवा गवे भक्षणार्थं प्रयच्छेन्नयाशुदके वा क्षिपेत् । न तु पात्राभावमात्रेण कर्मणो लोपः कार्यः इति ” ।

संकल्पश्राद्धविधिः । विस्मृतपार्वणानुष्ठानासंभवे तु व्यासेनोक्तम्—

५

“त्यक्ताग्नेः पार्वणं नैव नैकोद्दिष्टं सपिंडनम् । अत्यक्ताग्नेस्तु पिंडोक्तिस्तस्मात्संकल्प्य भोजयेत्” ॥ इति ।
त्यक्ताग्नेः अविधानेनोत्सृष्टाग्नेः पार्वणैकोद्दिष्टसपिंडीकरणात्मकश्राद्धकर्मणि नैवाधिकारः । पिंडोक्तिः श्राद्धं कर्त्तव्यमित्युक्तिः । अत्यक्ताग्नेरेव श्राद्धाधिकारः इति यावत् । तस्मादत्यक्ताग्निरेवाशक्तौ संकल्पविधानेन श्राद्धं कुर्यादित्यर्थः । तत्स्वरूपमधस्तात्प्रतिपादितम् ।

आमश्राद्धविधिः—पक्वद्रव्यसंपादनासंभवे तु सुमंतुः—

१०

“पाकाभावेऽधिकारः स्याद्विप्रादीनां नराधिप । अपत्नीनां महाबाहो विदेशगमनादिभिः ॥
“सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विदुर्बुधाः । आत्मनो देशकालाभ्यां विप्रुवे समुपागते ॥
“आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पुत्रजन्मनि । चंद्रसूर्यग्रहे चैव दद्यादामं विशेषतः ” ॥ इति ।
विप्रादीनां त्रैवर्णिकानां पत्नीरारहितानां विदेशगमनादिभिश्च कारणैः पाकसंपादनासंभवे आमश्राद्धे अधिकारः स्यात् । चंद्रसूर्यग्रहेऽपि यस्य पाकासंभवः भोक्तृब्राह्मणस्य वा अलाभः स आमं दद्यादित्यर्थः । उशनाः—

“अपत्नीकः प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला । सिद्धाच्चेन न कुर्वीत आमं तस्य विधीयते” ॥ इति ।
सिद्धाच्चेन लब्धक्रीतादिपक्वाच्चेन न कुर्वीति चंद्रिकायां व्याख्यातम् । जमदग्निः—

“न भवेद्यस्य सामग्री दारा वा गृहमेव च । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत वृद्धो बालश्च यो भवेत् ।
“यावत्स्यान्नाग्निसंयुक्त उत्सन्नाग्निरथापि वा । आमश्राद्धं सदा कुर्याद्वस्तेऽग्नौकरणं भवेत्” ॥ इति । २०

हारीतः—

“श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते ” ॥ इति ।
अनेन मासिकमाब्दिकं च श्राद्धमवश्यं पक्वेन कार्यमित्युक्तं भवति । एतच्च प्रतिपादितमधस्तात् ।
यत्तु जमदग्निनोक्तम्—

“आब्दिकं श्रद्धया श्राद्धं श्राद्धकाले यथाविधि । पक्वेन वा शृतेनापि नूनं कुर्यात्सुतः पितुः ” ॥ इति २५
तच्छ्रद्धयावश्यं कार्यमित्येवंपरम् । अन्यथा

“माससंवत्सरादृते न तत्कुर्यान्मृतेऽहनि । आपद्यपि च नामेन तन्मासि हरिवासरे—

“कुंष्ण इंदुक्षये वापि कुर्यादग्नेन वार्षिकम् ” ॥ इत्यादि बहुस्मृतिविरोधप्रसंगः ।

आमश्राद्धे विशेषमाह व्यासः—

“चतुर्थस्यैव पाथेयं सपिंडीकरणात्परम् । आमेनेव तु कर्त्तव्यं पुनः श्राद्धं न सोऽर्हति” ॥ ३०

“आमं ददतु कौंतेय दद्यादन्नं चतुर्गुणम् । सिद्धाच्चे तु विधिर्यः स्यादामश्राद्धेऽप्यसौ विधिः ॥

“आवाहनादिसर्वः स्यात्पिंडदानं च भारत । दद्याच्च द्विजातिभ्यः शृतं वाऽशृतमेव वा ॥

“तेनाग्नौकरणं कुर्यात्पिंडांस्तेनैव निर्वपेत् ।

“आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदस्तदा । हस्तेऽग्नौ करणं कुर्याद् ब्राह्मणस्य विधानतः ” ॥ इति ।

षट्त्रिंशन्मते तु—

“आमश्राद्धं यदा कुर्यात्पिण्डदानं कथं भवेत् । पिण्डपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा ॥” इति ।

हिरण्यश्राद्धादिविधिः । “आमश्राद्धासंभवे तु हेमश्राद्धमाह व्यासः—

“द्रव्याभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । हेमश्राद्धं प्रकुर्वीत यस्य भार्या रजस्वला ” इति ।

५ अत्राप्यामश्राद्धोक्ता विशेषा यथासंभवमनुसंधेयाः । हेमद्रव्यालोभेऽप्युक्तं स्मृत्यन्तरे—

“तृणानि वा गवे दद्यात्पिण्डान्वापि च निर्वपेत् । तिलोदकैः पितृन्वापि तर्पयेत्स्नानपूर्वकम् ॥

“अग्निना वा दहेत्कक्षं श्राद्धकाले समागते । तस्मिंश्चोपवसेदन्हि जपेद्वा श्राद्धसंयुतान् ॥

“अंगानि पितृयज्ञस्य यदा कर्तुमशक्नुयात् । स तदा वाचयेद्विप्रान् सकला सिद्धिरत्स्विति ” ॥

एवमनुकल्पानुष्ठानेऽपि शाठ्याभावे सति मुख्यकल्पानुष्ठानफलं भवति

१० “श्राद्धानुकल्पं यः कुर्याज्जात्यवस्थाद्यपेक्षया । श्राद्धांगांशेऽप्यवामोति मुख्यश्राद्धफलं नरः” ॥

इति स्मरणात् । श्राद्धांगांशे यथाशक्ति कतिपयांगानुष्ठानेऽपि कृत इत्यर्थः ।

श्राद्धप्रशंसा । श्राद्धं प्रशंसति सुमंतुः—

“श्राद्धात्परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ” ॥ इति

देवलः—

१५ “अरोगः प्रकृतिस्थश्च चिरायुः पुत्रपौत्रवान् । अर्थवानर्थकामी च श्राद्धकामो भवेदिह ॥

“परत्र च परां तुष्टिं लोकांश्च विविधाञ्छुभान् । श्राद्धकृतसमवामोति यशश्च विपुलं नरः ” ॥ इति

यमोऽपि—

“ये यजन्ति पितृन्देवान्ब्राह्मणान्सहुताशनान् । सर्वभूतान्तरात्मानं विष्णुमेव यजन्ति ते ॥

“आयुः पुत्रान्पशूस्वर्गं कीर्तिः पुष्टिं बलं श्रियम् । पशून्सुखं धनं धान्यं प्राप्नुयात्पितृपूजनात् ” ॥ इति ।

२० बृहस्पतिः—

“य एवं वेत्ति मतिमांस्तस्य श्राद्धफलं भवेत् । उपदेष्टाऽनुमंता च लोके तुल्यफलौ स्मृतौ ” ॥

हारीतोऽपि—

“इमं श्राद्धविधिं पुण्यं कुर्याद्वाऽपि पठेत्तु यः । सर्वकामैः स मृद्नोति अमृतत्वं च गच्छति ” ॥ इति ।

अकरणेऽपि दोष स्तेनैव दर्शितः—

२५ “न तत्र वीरा जायन्ते नारोगा न शतायुषः । न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति यत्र श्राद्धं विवर्जितम् ” ॥ इति ।

आदित्यपुराणेऽपि—

“वसन्ति पितरश्चेति कृत्वा मनसि यो नरः । श्राद्धं न कुरुते तत्र तस्य रक्तं पिबन्ति ते ” ॥

मार्कण्डेयः—

“अन्यायोपार्जितद्रव्यैर्यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः । तृप्यन्ति तेन चंडालाः पुल्कसाद्याश्च योनयः ” ॥ इति ।

३० ननु प्रातिस्विकशुभाशुभकर्मवशेन स्वर्गनरकादिगतानां दूरस्थकव्यभोक्तृत्वसामर्थ्यराहितानां मनुष्याणां पुत्रादिभिर्दैतैरन्नपानादिभिस्तृप्त्यसंभवात् संभवेऽपि स्वयमात्मनामप्यनीशानाः कथं स्वर्गादिफलं प्रयच्छन्तीत्यत्राह । याज्ञवल्क्यः (आ. २६९-२७०)—

“वसुरुद्रादितिसुताः पितरं श्राद्धदेवताः । प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितृन् श्राद्धेन तर्पिताः

“आयुः प्रज्ञां धनं धान्यं स्वर्गं मोक्षं सुखानि च । प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ” ॥ इति

अत्र विज्ञानेश्वरः— न ह्यत्र देवदत्तादय एव श्राद्धं कर्मणि संप्रदानभूताः पित्रादिशब्दै-
रुच्यन्ते । किंतु अधिष्ठातृवस्वादिदेवतासहिता एव यथा देवदत्तादिशब्दैर्न शरीरमात्रं नाप्यात्म-
मात्रं किंतु शरीरविशिष्ट आत्मान उच्यन्ते एवमधिष्ठातृदेवतासहिता एव देवदत्तादयः पित्रादि-
शब्दैरुच्यन्ते । अतश्च अधिष्ठातृदेवतावस्वादयः पुत्रादिभिर्दत्तान्नपानादितुष्टाः संतस्तानपि
देवदत्तादींस्तर्पयन्ति कर्तृश्च पुत्रादीन्फलेन संयोजयन्तीति । शातातपः— ५

“वसवः पितरो ज्ञेया रुद्रा ज्ञेयाः पितामहाः । प्रपितामहास्तथादित्या इत्येषां वैदिकी श्रुतिः ” ॥ इति ।

पैठानसिः— “ वसवः पितरो रुद्राः पितामहा आदित्या प्रपितामहा य एवं विद्वान्पितृन्यजते
वसवो रुद्रा आदित्याश्चास्य प्रीता भवन्ति ” ॥ इति । मनुवरपि— (३।२।८४)

“ वसून्वदन्ति तु पितॄन् रुद्रानेव पितामहान् । प्रपितामहांस्तथादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी ” ॥ इति ।

व्यासः—

१०

“ यथा गोषु प्रनष्टो वै वत्सो विंदति मातरम् । एवं श्राद्धेऽन्नमुद्दिष्टं मंत्रः प्रापयते पितॄन् ” ॥
मत्स्योऽपि— “ नामं गोत्रं पितॄणां तु प्रापकं हव्यकव्ययोः ।

“ नाममंत्रास्तथा देशा भावांतरगतानपि । प्राणिनः प्रीणयन्त्येते तदाकारत्वमागतान् ॥

“ देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः । तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वे ह्युपगच्छति ॥

“ देवत्वे भोग्यरूपेण पशुत्वे तु तृणं भवेत् । श्राद्धान्नं वायुरूपेण नागत्वेऽप्युपतिष्ठति ॥ १५

“ पानं भवति यक्षत्वे गृधृत्वे च तथा मिषम् । दनुजत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे रुधिरोदकम् ॥

“ मानुषत्वेऽन्नपानादि नानाभोगकरं तथा । रतिः शक्तिः स्त्रियः कांता भोज्यं भोजनशक्तिता ॥

“ ज्ञानशक्तिः सविभवा रूपभारोग्यमेव च । श्राद्धपुष्पमिदं प्रोक्तं फलं ब्रह्मसमागमे ” ॥ इति ।

नामानि देवदत्तदत्तजदत्तादीनि । मंत्राः पृथिवी ते पात्रम् इत्यादयः । आदेशः इदमन्नादिकममुष्णै
भवत्वित्येवमादिनिर्देशः । पुष्पमवांतरफलं ब्रह्मसमागमे ब्रह्मप्राप्तिः परमफलं प्रोक्तमित्यर्थः । २०

हारीतः—

“ कालेऽन्यथा गतं पात्रे विधिना प्रतिपादितम् । प्राप्नोत्यन्नं तथा दत्तं जंतुर्यत्रोपतिष्ठते ।

“ यन्नाम्ना पातयेत्पिडं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ” ॥ इति ।

“ परेद्युरपि तत्प्रीत्यै ब्राह्मणान् भोजयेत् द्विजः । अनपेक्षस्थितस्यैव शापं दत्त्वा व्रजन्ति ते ” ॥ इति ।

॥ इति वैद्यनाथदीक्षितविरचिते स्मृतिमुक्ताफले श्राद्धनिरूपणं नाम चतुर्थः परिच्छेदः । २५

हरिः ओम् । श्रीयवतेश्वरार्पणमस्तु । श्री शके १७६४ शुभकृत्तम संवत्सरे मार्गशीर्ष-
कृष्णपक्षे नवम्यां तद्दिने गुरुवासरे समाप्तं । स्वार्थं परार्थं च ।

“ तैलाद्रक्षेज्जलाद्रक्षेद्रक्षेच्छिथिलबन्धनात् । मूर्खहस्ते न दातव्यं एवं वदति पुस्तकम् ॥
श्रीकालभैरवप्रसन्न । श्री । श्रीगणेशायनमः । वैद्यनाथीय श्राद्धकांड अनुक्रमणिका प्रारंभः । ऊर्ध्वो- ३०
छिष्टादौ । विधुरविधवाविषये पत्युषितशवप्रायश्चित्तं । “ सर्पाश्चान्यादिमरणे आहिताग्निविधवाविषये ।
संस्कर्तारः । अग्निनिर्णयः । उत्तपनलक्षणं कपालाग्निलक्षणं । भार्याद्वयेभिर्संसर्गात्पूर्ववृत्तौ परवृत्तौ ॥